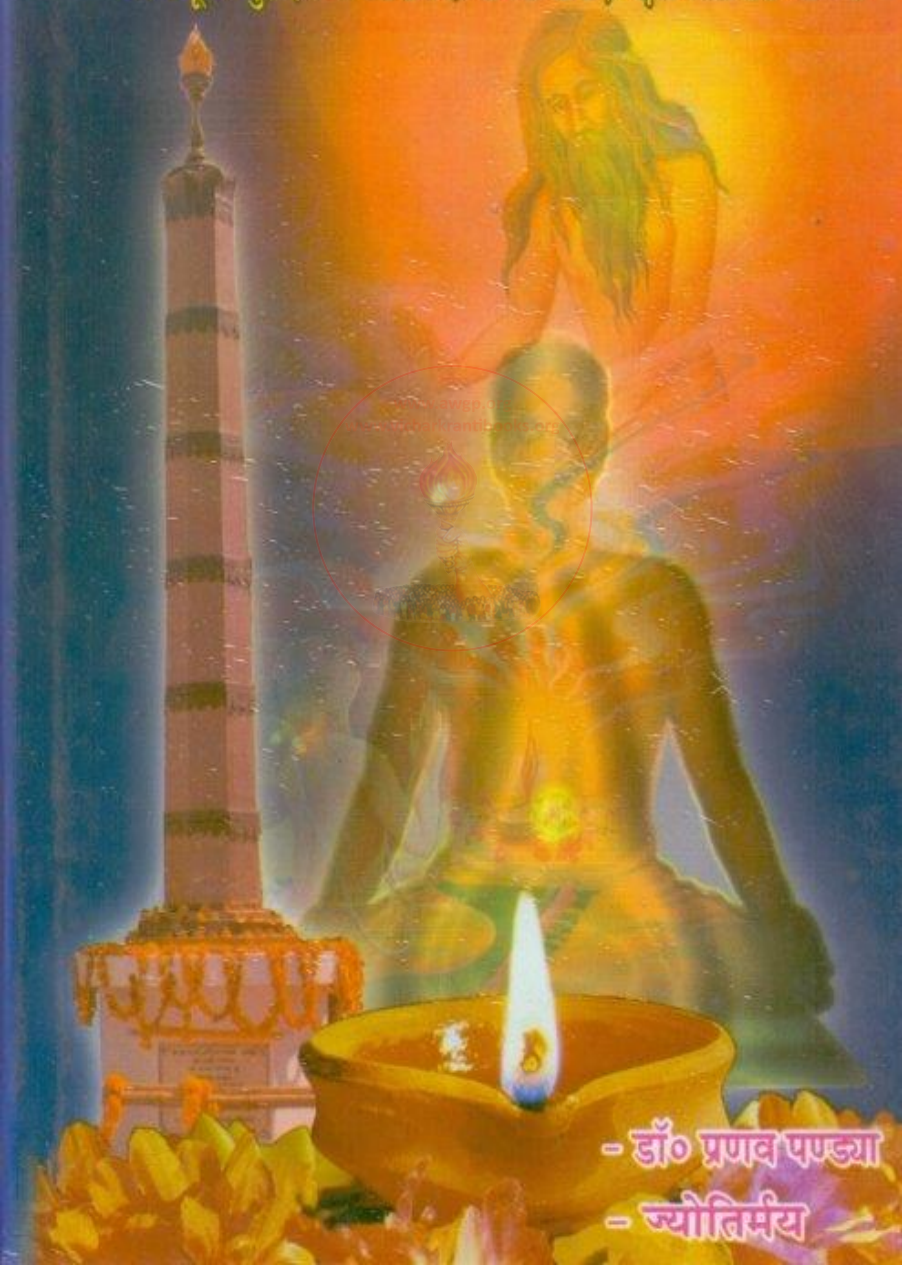




चेतना की शिखर यात्रा

परम पूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ; एक असमाप्त जीवनी



- डॉ० प्रणव पण्ड्या

- ज्योतिर्मय

: BOOK MADE AVAILABLE FOR DIGITIZATION BY :

VICHARKRANTI PUSTAKALAY
SURAT, INDIA

: OUR MAIN CENTERS :

Shantikunj, Haridwar,
Uttaranchal, India – 249411
Phone no : 91-1334- 260602,
Website : www.awgp.org
E-mail : shantikunj@awgp.org

Gayatri Tapobhumi,
Mathura, U.P., India – 281003
Phone no : 91-0565-2530128,
Website : www.awgp.org
E-mail : yugnirman@awgp.org

: BOOK DIGITIZED BY :

Vicharkranti Pustakalay, Thana-Faliya, Dindoligam, Surat-394210, Gujarat, India
E-mail: vicharkranti.awgp@gmail.com | Website : www.vicharkrantibooks.org



चेतना की शिखर यात्रा

(पं० श्रीराम शर्मा आचार्य: एक असमाप्त जीवनी)

खण्ड-एक



प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००



लेखक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
ज्योतिर्मय

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

पुनरावृत्ति सन् २०१३



मूल्य : १४० रुपये

मुद्रक :
युग निर्माण योजना प्रेस,
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्दिष्णुः, गुरुर्देव सर्वेश्वरः।
गुरुर्देव परब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवे नमः॥





आत्म निवेदन

संवत् दो हजार चालीस की रामनवमी को गुरुदेव मौन में चले गए। लोगों से मिलना जुलना बंद कर दिया। साधकों और कार्यकर्ताओं को अब तक उनका सान्निध्य निर्बाध मिलता आ रहा था। वह क्रम टूट गया। उनके 'एकान्त' और 'मौन' के निर्णय से हम सभी लोग स्तब्ध रह गये। कुछ दिन पहले तक तो वे देश में जगह-जगह बनी शक्तिपीठों में प्राण-प्रतिष्ठा के लिए सघन यात्राएँ कर रहे थे। अचानक यह 'एकान्त' और 'मौन'। आगे क्या होगा? जिस मार्गदर्शन में वे अब तक 'मनुष्य में देवत्व के उदय' और 'धरती पर स्वर्ग के अवतरण' की साधना कर रहे थे, वही उनसे दूर हो रहा है। अब मार्गदर्शन कैसे उपलब्ध होगा, उनके सान्निध्य से वंचित हम लोग क्या करेंगे? वह असमंजस ज्यादा समय तो नहीं रहा, लेकिन जितनी देर भी रहा मन, प्राण जैसे निचुड़ गए। उन्होंने 'एकान्त' और 'मौन' का तत्काल कोई कारण भी तो नहीं बताया था।

गुरुदेव का संदेश आया। वह संदेश आश्वासन भी था और भविष्य के लिए मार्गदर्शन भी। कहा कि जो अस्तित्व अभी तक प्रत्यक्ष, प्रकट और स्थूल रूप में सक्रिय दिखाई दे रहा था वह दिनोदिन सूक्ष्मीभूत होता जाएगा। इससे किसी को चिंतित या निराश होने की आवश्यकता नहीं है। प्रत्यक्ष से जो काम संपन्न किए जा सके हैं, उनसे हजार-लाख गुना ज्यादा काम सूक्ष्मीकरण से संभव होंगे। यह आश्वासन किसी देहधारी सामान्य मानवीय सत्ता की ओर से नहीं, हजारों लाखों लोगों के जीवन में प्रकाश उत्पन्न करने वाले सिद्धपुरुष की ओर से थे। कम से कम यहाँ तो हम उन्हें अलौकिक, दिव्य चेतना, परम पूज्य कह लें। अगले पृष्ठों में जहाँ उनकी गाथा गायी है, वहाँ वे सहज सामान्य से विलक्षण और महान होते गए साधक के रूप में ही हैं। इसलिए सिर्फ यहाँ अपनी श्रद्धा-भावना व्यक्त करने का मन है कि हम उन्हें इष्ट-आराध्य कह लें। तो गुरुदेव के उस आश्वासन को बाद के दिनों में चरितार्थ होते देखा गया।

सूक्ष्मीकरण साधना के संबंध में उन्होंने कहा था कि अभी तक असंभव सा लगने वाला युग परिवर्तन का महत्कार्य इस साधना के प्रभाव से संभव होता दिखाई देगा। भगवान शिव के प्रतिनिधि गणों की तरह पाँच वीरभद्र

प्रकट होने की बात भी साधकों ने सुनी। वीरभद्र शिव के वे समर्थ रूप हैं, जो उनके कार्य को उन्हीं की सामर्थ्य के अनुरूप संभव कर दिखाते हैं। पौराणिक संदर्भों के अनुसार ये एक ही शिव सत्ता के पाँच स्वरूप हैं। गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण के प्रभाव से जिन वीरभद्रों के प्रकट होने की बात कही, वह चेतना के स्तर पर ही संपन्न होना था। सूक्ष्मीकरण का एक पक्ष यह भी था कि गुरुदेव अपने आपको साधकों के अस्तित्व में व्यक्त करेंगे। जो साधक या कार्यकर्ता बहुत सामान्य दिखाई देते हैं वे अपनी वर्तमान स्थिति से कई गुना समर्थ होकर युगसाधना कर रहे होंगे।

यह आश्वासन गुरुदेव के श्रीमुख से निकली वाणी और लेखनी से निसृत हुए शब्दों से सीधे मिला था। प्रत्यक्ष सान्निध्य सहज उपलब्ध होते हुए संपर्क का अचानक नितान्त अभाव हो जाने की दो विषम स्थितियों के बीच सेतु बनाने के लिए उन्होंने कुछ समय तक दृश्य-श्रव्य माध्यमों का उपयोग भी किया। परिजनों तक उनके संदेश वीडियो केसेटों के जरिए पहुँचे। यह सिलसिला कुछ समय तक ही चला। परिजन स्तब्ध भाव से उबरे और सहज होने लगे। उनकी आत्मिक स्थिति गुरुदेव के संदेशों को ग्रहण करने में समर्थ होने लगी तो यह उपक्रम आगे चलाने की आवश्यकता नहीं रही।

यद्यपि चिंताएँ एकदम निर्मूल नहीं हो गई थीं। बीच-बीच में कांटों की तरह वे उठ आती थीं। लेकिन गुरुदेव का आश्वासन जिस तरह चरितार्थ हो रहा था, उसके अनुभव चिंताओं का उच्छेद भी करते जाते थे। प्रत्यक्ष संपर्क पूरी तरह बंद था। बीच में कुछ अपवाद ही रहे होंगे, जब उन्होंने किन्हीं अनिवार्य कारणों से कुछ साधकों से भेंट की होगी। ऐसे अवसर कम ही आते थे। ऐसे ही किसी अवसर की प्रतीक्षा में एक विशिष्ट साधक का शान्तिकुञ्ज आगमन हुआ। वह तंत्रमार्ग का अनुयायी था। यहाँ आने का उद्देश्य गुरुदेव से दीक्षा लेना था और उनका मौन खुलने की प्रतीक्षा कर रहा था।

उस साधक की अपनी अनुभूति थी और बातचीत में उसने बताया भी कि गुरुदेव साक्षात् शिव की सत्ता हैं। अभी आप लोगों ने देखा और अनुभव ही क्या किया है? जिन योगियों के पास होकर मैं आ रहा हूँ वे भी चर्चा करते हैं और मेरी अपनी भी अंतर्दृष्टि है कि ऐसी सत्ताएँ शरीर में रहते हुए कम और सूक्ष्म रूप धारण करने के बाद कई गुना काम करती हैं। अभी तो सिर्फ शंख बजा है। थोड़े से लोगों ने ही जाना है कि युग बदल रहा है पर कुछ वर्षों के बाद



आत्म निवेदन

देखना कि गुरुदेव शक्ति का कितना प्रचण्ड प्रवाह उत्पन्न कर जाते हैं। उनके शरीर छोड़ देने के बाद यह प्रभाव प्रत्यक्ष दिखाई देने लगेगा। सैकड़ों, हजारों सामान्य लोग असाधारण उपलब्धियाँ अर्जित कर रहे होंगे। ये उपलब्धियाँ अपने समय और समाज को समृद्ध करती हुई होंगी। उन दिनों और भी साधक यहाँ आया करते थे। उनकी अनुभूति भी लगभग इसी प्रकार की थी।

संवत् दो हजार सैंतालीस (२०४७) की गायत्री जयंती को गुरुदेव ने शरीर छोड़ा। उनके पार्थिव शरीर को अंतिम प्रणाम करने के लिए दक्षिण भारत से आए एक शाक्त सिद्ध ने कहा कि यह व्यक्ति आने वाले युग का महानायक है। पूछा कि आप कैसे कहते हैं? उन्होंने कहा यहाँ आए लोगों से अनुमान मत लगाइये। भविष्य में हजारों लाखों लोग उनके विचारों को जानेंगे, उनके कार्यों को समझेंगे और उनके होते चले जाएंगे। उन्होंने जिन मूल्यों की स्थापना की है, लोग उन्हें जीने की चेष्टा करेंगे। उन साधक की यह अनुभूति १९८६ से ९० के बीच हुए मिशन के विस्तार से भी सही सिद्ध होती है। उक्त साधक सिर्फ आध्यात्मिक कारणों से गुरुदेव के पास आए थे। उन्हें शायद पिछले पाँच-छह वर्षों के विकास की जानकारी नहीं रही हो। उन्होंने सिर्फ अपनी अंतर्दृष्टि से ही भावी संभावनाओं को देखा हो लेकिन गायत्री परिवार के तमाम परिजन उन वर्षों के साक्षी हैं।

गुरुदेव के शरीर में रहते ही १९८८ में आरम्भ हुए युगसंधि महापुरश्चरण ने असंख्य लोगों को युगसाधना में प्रवृत्त किया। उनके शरीर छोड़ने के बाद वंदनीया माताजी के सान्निध्य में चली गतिविधियाँ और उपलब्धियाँ भी इस बात की साक्षी हैं कि गुरुदेव का आश्वासन सूरज की किरणों की तरह प्रत्यक्ष हो रहा था। विभिन्न क्षेत्रों और दिशाओं से लोग आ रहे थे। आहूत भी और अनाहूत भी। महाप्रयाण के वर्ष में ही देश के विभिन्न भागों में स्थानों पर छह दीप महायज्ञ, उसके बाद शान्तिकुञ्ज में हुआ श्रद्धांजलि समारोह, शपथ समारोह, अश्वमेध यज्ञों की घोषणा और इस तरह के तमाम कार्यक्रमों में उमड़ उठा जनसमुदाय भी गुरुदेव की सूक्ष्मीकरण की सामर्थ्य को प्रकट कर रहा था। गायत्री परिवार के स्थानीय संगठनों में और शक्तिपीठों, प्रज्ञा संस्थानों में काम कर रहे कार्यकर्ता, विभिन्न क्षेत्रों में सक्रिय विभूतिवान लोग, उनके प्रयास और परिणामों के रूप में भी जैसे गुरुदेव व्यक्त हो रहे थे।

यह हमारी और हम जैसे असंख्य परिजनों की निजी भावनाएँ हैं। 'चेतना की शिखर यात्रा' को तर्क और तथ्य की दृष्टि से पढ़ रहे बुद्धिजीवी पाठक तथ्य को दूसरी तरह भी समझ सकते हैं। इस ग्रंथ में जिनकी हम सब गुरुदेव के रूप में आराधना करते हैं, उन आचार्य श्रीराम शर्मा की जीवनगाथा लिखने की चेष्टा की है। सुधी पाठक इतिहास का अवलोकन करें और देखें कि भारतीय धर्म संस्कृति के सर्वग्राही समग्र स्वरूप को परिभाषित करने का काम किस समय में और किस महिमावान विभूति ने किया है। साधु संत, दार्शनिक, मनीषी, संगठनकर्त्ता और यति योद्धाओं से इतिहास भरा पड़ा है। एक से एक असाधारण विभूतियाँ। अपने-अपने क्षेत्र में अद्भुत-अनुपम। वे सभी विभूतियाँ धर्म साधना और ज्ञान की अलग-अलग धाराओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। सभी धाराओं का समुच्चय किसी एक व्यक्तित्व में होने जैसा उदाहरण बारह सौ साल पहले सिर्फ आदि शंकराचार्य के रूप में ही दिखाई देता है। बारह सौ वर्ष बाद उस घटना की मानो (या जैसे) पुनरावृत्ति हुई है। जो चेतना आदि शंकराचार्य के रूप में भारतीय धर्म संस्कृति, साधना और ज्ञान के शिखर रूप में व्यक्त हुई थी उसकी वैसी ही एक यात्रा आचार्य श्रीराम शर्मा के रूप में संपन्न हुई है। देशकाल के अनुरूप कार्यशैली में भिन्नता भले हो लेकिन समूचे धर्म और अध्यात्म को संगठित, समन्वित करने जैसा प्रयास कहीं और नहीं हुआ है।

बारह सौ वर्ष पूर्व भारतीय धर्म या कहें कि सनातन धर्म के सामने कई दिशाओं से गंभीर चुनौतियाँ थीं। ऋषिप्रणीत तत्त्वज्ञान का प्रायः लोप हो गया था और उनका स्थान अपनी ढपली पर अपना राग अलापने वाली कूपमंडूकता या जड़ता ने ले लिया था। वैष्णव, शाक्त, ब्राह्म, शैव, गाणपत्य, पांचरात्र, वेदान्त, योग, आर्हत, बौद्ध और तंत्र के वाम, दक्षिण जैसे मार्गों के नाम पर जो उच्छृंखलता फैल रही थी उसने सनातन धर्म की गरिमा ही ध्वस्त कर दी थी। ये सभी धाराएँ परम लक्ष्य तक पहुँचाती हैं, लेकिन उस समय इनका तत्त्वदर्शन वाणी विलास की वस्तु बनकर रह गया था। विभिन्न धाराएँ न केवल वितंडा फैला रही थीं बल्कि टकराव और द्वन्द्व भी रच रहीं थीं। आस्था और आचरण में उन धाराओं का कहीं चिह्न भी नहीं दिखाई दे रहा था। परिणाम विग्रह और पतन के रूप में पूरे समाज को भुगतना पड़ रहा था।

आदि शंकराचार्य ने बहुत छोटी उम्र में इस तथ्य को देखा। उनके सम्बंध में जो विवरण मिलते हैं, वे उन्हें सामान्य मनुष्य कम अवतारी चेतना

आत्म निवेदन

ज्यादा निरूपित करते हैं। किंवदन्तियों और कथाओं के विश्लेषण में नहीं जायें तो सिर्फ इतना ही कि अपने ज्ञान, तप और कर्मकौशल से उन्होंने तमाम चुनौतियों को जीता। आठ वर्ष की उम्र में उन्होंने संन्यास ले लिया था। माँ के एक ही पुत्र थे। संन्यासी को अपना परिवार भूल जाना पड़ता है। लेकिन शंकराचार्य की माँ ने वचन लिया कि अंतिम समय में मेरे पास ही रहोगे। माँ का निधन हुआ तब शंकर दौड़े चले आए और आपद धर्म के रूप में उनसे संन्यास की मर्यादाओं का किंचित उल्लंघन किया। उस समय के समाज में शंकराचार्य का प्रबल विरोध हुआ था। लेकिन कुमारिल भट्ट जैसे विद्वानों को कहना पड़ा कि शंकर से मर्यादा का हनन नहीं होता है। अगर उनसे मर्यादा टूटती है तो निर्धारण की सामर्थ्य किसी के पास नहीं है। कोई और उसका निर्धारण नहीं कर सकता। अर्थात् शंकराचार्य का आचरण ही प्रमाण था।

शंकराचार्य के सामने एक ही महत्कार्य था, वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा। काल के प्रवाह ने उस पर जो विक्षेप जमा कर दिये थे, उन्हें दूर करना। सनातन धर्म के मर्म से अनभिज्ञ होने के कारण अथवा निहित स्वार्थों के चलते लोगों ने उसे जर्जर कर दिया। शंकराचार्य ने इन अवरोधों को दूर करने के लिए व्यापक और सशक्त उपाय किये। शास्त्रीय पक्ष को सिद्ध करने के लिए तर्क का अवलंबन लिया। प्रतिपादनों की मनमानी व्याख्या करने और लोगों में भ्रम उत्पन्न कर अपने संकीर्ण स्वार्थ को ही असली धर्म बताने वाली प्रवृत्ति उन दिनों व्याप्त थी। ऐसे लोगों ने भारत के लगभग सभी पुण्य क्षेत्रों को अपना अड्डा बना लिया था। आचार्य ने उन सभी क्षेत्रों की यात्रा की और धूर्त विद्वानों को ललकारा। अपनी असाधारण मेधा और तर्कशक्ति से उन्हें परास्त किया और तीर्थ क्षेत्रों को उनके चंगुल से मुक्त कराया।

ऐसे अवसर भी आये जब धूर्त धर्मध्वजियों ने तर्क से नहीं जीत पाने पर आचार्य की हत्या के षडयंत्र भी रचे। उदाहरण के लिए कर्णाटक में कापालिकों ने उन पर सशस्त्र हमला बोल दिया था। आचार्य ने अपने तप, तेज और शिष्यों ने सक्रिय प्रतिकार कर उस आक्रमण को निरस्त किया। आचार्य के विरुद्ध शाक्तों, तांत्रिकों, बौद्धों और अन्य संप्रदायों के धर्मध्वजियों द्वारा रचे गये षडयंत्रों के अनेक विवरण मिलते हैं। उनके विरुद्ध कितने ही शक्तिशाली और अचूक लगने वाले आक्रमण किये गये हों लेकिन जैसे सनातन धर्म की

आत्मा उनकी रक्षा कर रही थी। संघर्ष और सृजन दोनों पक्षों का निर्वाह करते हुए उन्होंने तीर्थों, धर्म, अध्यात्म का आलोक वितरित करने वाली संस्थाओं और समाज में व्याप्त प्रचलनों को पाखंड से मुक्त कराया। धर्मतंत्र को शुद्ध सात्विक उपासना और आत्मशोधन की प्रेरणा देने वाला आश्रय बनाया।

धर्मतंत्र के प्रति अश्रद्धा अथवा अज्ञान का एक कारण संभवतः वैदिक ग्रंथों की दुरूहता भी था। सनातन धर्म का तत्त्वज्ञान जिस प्रस्थानत्रयी में समाहित है, उन के संबंध में विद्वान ही एक मत नहीं थे तो सामान्य जनों से क्या अपेक्षा की जाए? आचार्य ने उपनिषदों की विशद व्याख्या लिखी। ब्रह्मसूत्र और गीता पर सुबोध भाष्य रचे। इन ग्रंथों के माध्यम से सनातन धर्म के संदेश को ग्राह्य बनाया। यही नहीं सामान्य जनों के लिए बोधगम्य भाषा में सरस श्लोकों की रचना की। प्रकरण ग्रंथ लिखे। स्तवन सूक्तियाँ और छोटी-छोटी काव्य रचनाएँ कीं। उनकी रचनाओं में उस समय प्रचलित सभी साधना परंपराओं का विवेचन है। वह विवेचन अपनी धारा में सिद्ध स्तर की विभूति द्वारा की गई व्याख्या के स्तर का ही है। शैव साधकों के लिए भी वे आश्रय हैं और वैष्णव, गाणपत्य, शाक्त साधकों के लिए भी।

अद्वैत वेदांत का मार्ग अपनाने वाले साधक भी शंकराचार्य में विश्राम पाते हैं और योग, तप, तंत्र का अवलंबन लेने वाले साधक भी। सनातन धर्म की सभी शाखाएँ आचार्य शंकर के पाण्डित्य से पुनः व्याख्यायित हुई हैं। अद्वैत वेदांत सनातन धर्म का सारतत्त्व है। उसका वही स्वरूप इन दिनों भारतीय धर्म की पहचान बना हुआ है, जो शंकराचार्य ने निश्चित किया। विचार के स्तर पर एक व्यापक क्रांति का अनुष्ठान करते हुए आचार्य शंकर ने धर्म को संगठित करने का बीड़ा भी उठाया। उनसे पहले संन्यासी लोक से विमुख एक मुमुक्षु साधक मात्र होते थे। वे समाज का ऐसा दायित्व थे जिसे बदले में कोई कर्तव्य नहीं निभाना है। आचार्य ने देश भर में फैले हजारों संन्यासियों को संगठित किया। मठों और अखाड़ों के रूप में उन्होंने ऐसी स्थापनाएँ कीं जहाँ रहकर साधु संन्यासी धर्म साधन के साथ लोक आराधन भी कर सकें। धर्म पर अर्थात् धर्म पालन के क्षेत्र में जब भी संकट आए तो शास्त्र से भी और आवश्यक हुआ तो शास्त्र से भी उनका सामना कर सके। उनके स्थापित अखाड़ों, आश्रमों और संन्यासी संप्रदायों का गौरवपूर्ण इतिहास रहा है।



आत्म निवेदन

चार दिशाओं में चार मठों की स्थापना भारतीय समाज के लिए आचार्य शंकर का एक और वरदान रही हैं। मठों की किसी समय देश में बड़ी प्रतिष्ठा थी। वह समय भी इतिहास ने देखा है जब यहाँ बैठे आचार्य के उत्तराधिकारी मठ के अध्यक्ष अपने अपने क्षेत्र में घूम-घूमकर धार्मिक भावनाएँ जागृत रखते थे। चार दिशाओं में स्थापित चार मठ विद्या, साधना और आध्यात्मिक प्रयोगों के केन्द्र हुआ करते थे। समय के थपेड़ों ने उनकी चमक को धुंधला कर दिया और उनकी धर्म परंपरा विच्छिन्न हो गई लेकिन इतिहास आज भी कहता है कि शंकर ने उन मठों और अपने दूसरे कार्यों से सनातन धर्म पर छाए संकट के बादल छांट दिए।

शंकराचार्य के बाद वैसा सर्वांगीण प्रयास पिछले बारह सौ वर्ष में शायद ही हुआ हो। और अतीत में जाएँ तो लगभग उससे बारह शताब्दी पहले भगवान बुद्ध के रूप में धर्म की संस्थापना और पाखंड को निरस्त करने के रूप में एक और आंधी उठी थी। अपने मताग्रहों के कारण कई विद्वान बुद्ध को सनातन धर्म और वेदों के विरुद्ध निरूपित करते हैं। लेकिन बुद्धवाणी में ऐसा कहीं नहीं है। वह यज्ञ, अग्निहोत्र, कर्मकांड के नाम पर होने वाले अधर्म पर ही आघात कर रहे थे। उन्होंने जगह-जगह कहा है, 'एस्स धम्मो संनतनो' (यही सनातन धर्म है)। यज्ञों में हिंसा, ऊंचनीच और सभी प्रकार की विषमता को निरस्त करते हुए उन्होंने आत्मकल्याण के सीधे सादे मार्ग का उपदेश दिया।

यह बात अलग है कि बुद्ध की गंगोत्री से निकली स्वच्छ, निर्मल धर्मगंगा कालान्तर में कलुषित होने लगी और उसके परिष्कार के लिए शंकर जैसी विभूति को उछींग कराना पड़ा। आचार्य शंकर ने पापाचार में लिप्त कथित धर्मावलम्बियों पर जमकर प्रहार किया। जिन लोगों ने भगवान बुद्ध को वैदिक धर्म के विरुद्ध बताया, वही शंकर को भी बौद्ध धर्म पर प्रहार करते हुए दर्शाते हैं। तथ्य यह है कि दर्शन और लोक साधना की दृष्टि से शंकराचार्य भगवान बुद्ध का ही नया रूप लगते हैं। कुछ स्थानों पर परंपरा उनका उल्लेख 'प्रच्छन्न बौद्ध' के रूप में करती भी है।

आशय यह है कि सनातन धर्म की प्रतिष्ठा और परिष्कार के व्यापक प्रवाह समय-समय पर उमड़ते रहे हैं। क्या यह संयोग ही है अथवा नियति का कोई विधान कि ऐसे व्यापक प्रयोगों में बारह सौ वर्ष का अंतर रहता आया है। शंकराचार्य के बाद इसी अंतर से उत्तरभारत में एक प्रयोग आरंभ होता है।



सनातन धर्म का उद्बोधन करने वाला एक मंत्र किसी किशोर के जीवन में प्रवेश करता है और उसे यह दायित्व सौंपा जाता है कि इसके आधार पर राष्ट्र की आत्मा को जगाना है। वह गायत्री मंत्र भारतीय धर्म के सभी अनुयायी प्रातः और सायं संध्या वंदन के समय जपते रहे हैं। श्रुति-स्मृति को प्रमाण मानने वाला सभी व्यक्ति जिस तरह सनातन धर्म के अनुयायी सिद्ध हो जाते हैं उसी तरह उनके लिए गायत्री मंत्र की उपासना भी आवश्यक, अनिवार्य धर्मकृत्य हो जाती है। इसके माध्यम से वे हजारों वर्ष पुरानी परंपरा अथवा आर्ष ऊर्जा के स्रोत से जुड़ते और आत्मिक पोषण प्राप्त करते हैं।

पता नहीं इस अंधकार युग में गायत्री मंत्र को सामान्य जनों के लिए क्यों प्रतिबंधित कर दिया गया? वह कान में बताया और बिना उच्चारण किए पढ़ा जाने वाला शब्दसमूह भर बना दिया गया। जिस किशोर को उसकी मार्गदर्शक सत्ता ने गायत्री को बंधनमुक्त करने और जन-जन के लिए सुलभ बनाने का दायित्व सौंपा था उसके सामने भगवान बुद्ध और शंकराचार्य के समय जैसी कठिन चुनौतियाँ भी थीं। देश पराधीन था। अशिक्षा, अज्ञान, अभाव और सामाजिक कुरीतियों ने भारतीय समाज को बुरी तरह ग्रस्त कर रखा था।

धर्म के नाम पर वैसा ही पाखंड और बाबावाद प्रचलित था जैसा भगवान बुद्ध और शंकराचार्य के समय में समाज को सभी दिशाओं से निगल रहा था। इन चुनौतियों से लड़ने के लिए स्वतंत्रता आन्दोलन और समाज सुधार के छुटपुट प्रयास आरंभ हो चुके थे। किशोर से युवा होते जा रहे श्रीराम शर्मा अथवा पंडित श्रीराम शर्मा अथवा आचार्य श्रीराम शर्मा अथवा जन-जन के अपने परम पूज्य गुरुदेव के सामने इन प्रयासों से सामंजस्य बैठाते हुए भारतीय धर्म को पुर्नभाषित और संगठित करने का महत्कार्य प्रस्तुत था। हम लोग तो यही कहेंगे कि दैव या नियति ने उन्हें यह उत्तरदायित्व सौंप दिया था।

आचार्य श्री धर्मक्षेत्र में अकस्मात् सक्रिय नहीं हो गये। उनका सामाजिक जीवन, स्वतंत्रता सेनानी, सत्याग्रही के रूप में आरंभ होता है। धर्मक्षेत्र का निर्धारण यद्यपि चौदह-पंद्रह वर्ष की आयु में ही हो गया था लेकिन वहाँ वे बीस-बाइस साल की उम्र में सक्रिय दिखाई देते हैं। इस बीच में विभिन्न तीर्थों की यात्रा करते हैं, हिमालय के गुह्य प्रदेशों में जाते हैं, ज्ञात-अविज्ञात सिद्ध पुरुषों से मिलते हैं। शान्तिनिकेतन से लेकर रमण आश्रम और शांकर मठ और

आत्म निवेदन

अरविंद आश्रम जैसी संस्थाओं के सघन संपर्क में आते हैं। महात्मा गांधी का साबरमती आश्रम उनकी आध्यात्मिक साधना के साथ लोक साधना के लिए भी अध्ययन का विषय बनता है। आचार्य श्री के प्रारंभिक वर्ष उन कामों की तैयारी के वर्ष थे जो उसके बाद के पचास वर्षों में संपन्न किए जाने थे।

उनके महत्कार्य का प्रस्थान बिंदु तय करना कठिन है। गायत्री मंत्र की खुली दीक्षा, अपने गाँव में अछूत स्त्री की परिचर्या, बीमार गायों की रक्षा, पंद्रह वर्ष की उम्र में महापुरश्चरण साधना का आरंभ, साहित्य का सृजन, यज्ञ आन्दोलनों का सूत्रपात, गायत्री परिवार की स्थापना, महापुरश्चरण साधना संपन्न होने के बाद मथुरा में सहस्रकुंडीय गायत्री महायज्ञ जैसी बीसियों घटनायें हैं जिनमें से प्रत्येक को आरंभ कहा जा सकता है। हमारी मान्यता है कि इनमें एक भी प्रस्थान बिंदु नहीं हैं। प्रत्येक कार्य काल की उस अविच्छिन्न धारा का ही एक प्रवाह है जो पिछले ढाई हजार या उससे भी ज्यादा वर्ष पहले से चली आ रही है। ये काम उसकी निरंतरता से निकली छोटी-मोटी सरणियाँ ही हैं।

साहित्य की दृष्टि से आचार्य श्री की लिखी पुस्तकों की संख्या तीन हजार के आसपास पहुँचती है। सन् १९४० के जनवरी माह से अखंड ज्योति के रूप में प्रतिमास वे एक पुस्तक तो नियमित ही लिखते रहे हैं। विद्वानों और मनीषियों का ध्यान उनके जिस अवदान पर सबसे पहले जाता है वह आर्ष वाङ्मय का उद्धार है। चारों वेद, एक सौ आठ उपनिषद्, बीस स्मृतियाँ, चौबीस गीताओं के सरल सुबोध भाष्य रचने और उन्हें जनसुलभ बनाने का अकेला काम इतना बड़ा था कि उन्हें महामनीषी के रूप में प्रतिष्ठित कर सकता था लेकिन उनका उद्देश्य महामनीषी सिद्ध होना नहीं था।

गायत्री परिवार की स्थापना सनातन धर्म को परिभाषित करने का ऐसा सूत्रपात था जिसमें शिव, शाक्त, वैष्णव, सभी साधना मार्गों के लोग संगठित हुए। मथुरा में गायत्री तपोभूमि के रूप में तीर्थ स्थापना का उपक्रम आरंभ हुआ। वह क्रम रुका नहीं है। अभी जारी है। देश भर में छोटे-बड़े हजारों गायत्री महायज्ञों के आयोजन आचार्य श्री की दिग्विजय यात्रा के रूप में देखे जा सकते हैं। सन् १९७१ में उनके सान्निध्य में हुए पाँच सहस्र कुण्डीय महायज्ञ उन क्षेत्रों में धर्म की विजय घोषणाएँ थीं।

इन आयोजनों के बाद आचार्य श्री ने अपनी यात्राएँ बारह वर्ष के लिए स्थगित कर दीं। साधना पक्ष को अधिक महत्त्व देते हुए शान्तिकुञ्ज को अपनी

गतिविधियों का केन्द्र बनाया। बारह वर्ष में यहाँ विभिन्न स्तर के साधना सत्र चले। उनमें हजारों साधकों ने अपनी आंतरिक स्थिति के अनुरूप मार्गदर्शन प्राप्त किया। उसके प्रकाश में आगे भी बढ़े। ऐसे विवरण अक्सर मिलते हैं, जिनमें कुछ साधकों के सिद्ध स्तर तक पहुँचने की स्थिति प्रमाणित होती है। इन साधकों को अपनी सिद्धियों का उपयोग करने के लिए सख्ती से मना किया हुआ है।

प्रायः शान्तिकुञ्ज में ही रहने और साधकों को तैयार करते हुए भी आचार्यश्री ने संगठन पक्ष को यों ही नहीं छोड़ दिया। शक्तिपीठों की स्थापना का अभियान यहीं से छिड़ा। इन दिनों देश भर में चौबीस सौ से ज्यादा शक्तिपीठ अथवा प्रज्ञा संस्थान हैं। आवश्यकता के अनुरूप संस्थान कार्यक्रम निश्चित करते हैं और अपने क्षेत्र को जीवंत जाग्रत बनाये रखते हैं। 'वयं राष्ट्रे जाग्रयाम पुरोहिताः' का उद्धोष इन शक्तिपीठों, प्रज्ञासंस्थानों में साकार हो रहा है।

तर्क, तथ्य और प्रमाण इस युग की प्रमुख कसौटियाँ हैं। आचार्य श्री कहते थे कि धर्म और अध्यात्म को इन कसौटियों पर खरा सिद्ध होना चाहिए। इसके लिए १९६९ में वैज्ञानिक अध्यात्मवाद से आरंभ कर हरिद्वार में 'ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान' की एक लम्बी कहानी है। इस यात्रा में धर्म, अध्यात्म ही नहीं समाज शास्त्र, इतिहास, राजनीति, जीवविज्ञान, रासायनिकी आदि ज्ञान की सभी धाराओं का स्पर्श किया गया। वह सूत्रपात अब वटवृक्ष का रूप ले चुका है। उसका विस्तार देव संस्कृति विश्वविद्यालय की स्थापना तक पहुँच गया है। इस परियोजना को प्राचीन और आधुनिक का, पूर्व और पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान का समन्वय भी कहा जा रहा है।

यह परिचय संकेत मात्र है। आचार्य श्री के संबंध में यह उल्लेख किए बिना प्रस्तावना अधूरी रहेगी कि यह महत्कार्य उन्होंने लौकिक या सामाजिक दायित्वों से विरत होकर संपन्न नहीं किया। गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए उन्होंने वे कार्य संभव कर दिखाये जो संन्यासी संघों के बूते में नहीं थे। इसका अर्थ संन्यास की अवमानना नहीं है। आचार्य श्री मानते थे कि आज के युग में गृहस्थ में रहते हुए ही समाज का आराधन भली प्रकार किया जा सकता है। वह आराधन घर परिवार से मुक्त रहते हुए पूरा समय समाज के लिए देने वाले साहस या संकल्प की तुलना में अच्छे और मर्यादित परिणाम देता है। दूसरे लोगों को कम से कम यह बहाना करने का मौका नहीं देता कि क्या करें, घर गृहस्थी के झंझट आड़े आते हैं। वैसे भी भारतीय धर्म परंपरा गृहस्थ आश्रम को प्रतिष्ठा देती है। हमारे सभी ऋषि-मुनि सद्गृहस्थ थे। अवतारी सत्तायें भी इसी

आत्म निवेदन

आश्रम में रही हैं। और समाज की उल्लेखनीय सेवा कर सकने वाले मध्य युगीन संत भी गृहस्थ धर्म का पालन करते रहे हैं।

आचार्य श्री ने गायत्री मंत्र को आधार बनाया। किन्हीं और हाथों से आरंभ होता तो यह संभावना भी थी कि गायत्री साधना का एक और संप्रदाय खड़ा हो जाता। लेकिन आचार्यश्री के लिए गायत्री मंत्र के शब्द गुच्छ में भारतीय धर्म दर्शन के बीज अक्षर छुपे हुए थे। उसका अंकुरण हुआ और सनातन धर्म के उपवन में सभी तरह के साधना पुष्प खिलने लगे। बाद के वर्षों में तो वे इन अक्षरों के आधार पर विश्व धर्म की व्याख्या भी करने लगे थे। अस्तु।

आचार्य श्री का जीवन चरित प्रस्तुत है। यह स्वांतःसुखाय है। प्रस्तुत करते हुए संतोष है कि अपने इष्ट आराध्य का स्मरण हो रहा है। यह स्मरण औरों को भी आनंदित करेगा। उनके जीवन से संबंधित तथ्य ढूंढने में जो श्रम करना पड़ा, कठिनाइयाँ आई और कई अवसरों पर दुविधाएँ उठीं; उन सबसे पार होते हुए, आह्लाद हुआ। उस तरह की यात्रा से कोई भी साधक प्रफुल्लित हो सकता है।

पहली कठिनाई यह आई कि आचार्य श्री के संबंध में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध नहीं थी। उन्होंने अपने बारे में विशेष कुछ कहा नहीं। जो कुछ बताया वह साधकों के उपयोग को ध्यान में रखकर ही कहा गया था। परिजनों ने उनसे कई बार अनुरोध किया तो उसे टाल गए। कहने लगे जो प्रत्यक्ष है, वह ज्यादा महत्वपूर्ण है। परिजन फिर भी अनुरोध करते रहे तो उन्होंने 'हमारी वसीयत और विरासत' शीर्षक से एक पुस्तक लिखी। उस पुस्तक में आचार्यश्री के जीवन प्रसंग कम थे, विचार और जीवन दर्शन को ही ज्यादा सूत्रबद्ध किया गया था। परिजनों ने उसे पढ़ा तो गुरुदेव से फिर अनुरोध दोहरा दिया। इस अनुरोध में अपेक्षा पूरी नहीं होने का उलाहना भी था। गुरुदेव का उत्तर होता था कि उनके विचार ही उनका जीवन है।

आचार्य श्री ने अपनी कोई आत्मकथा नहीं लिखी लेकिन निजी चर्चाओं में, पत्रों में और लेखन में कुछ स्फुट प्रसंग व्यक्त हो जाते थे। उन घटनाओं को संकलित किया गया। स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास से आवश्यक संदर्भ खंगाले गए। उनके समकालीन रहे व्यक्तियों और स्वजन संबंधियों से भी पूछा तलाशा। उनके साथ कभी सक्रिय रहे और अब निवृत्त हो चुके कार्यकर्ताओं

से भी आग्रह अनुरोध किया। जो सामग्री उपलब्ध हुई उसे सुसंगत ढंग से प्रस्तुत कर दिया गया है। इस जीवन चरित में आचार्यश्री के जीवन के कुछ अविज्ञात प्रसंग भी लिखे गए हैं। सन् दो हजार से पहले तक इन प्रसंगों के बारे में चर्चा पर उन्होंने रोक लगा रखी थी। उस मर्यादा का निर्वाह किया गया। उनकी चर्चा का समय आया तो वे उपलब्ध भी हो गए। पाठक पढ़ेंगे और उन प्रसंगों को स्वयं ही पहचान सकेंगे।

जीवन चरित में हम निजी अनुभूतियों और चमत्कारों का उल्लेख करने से बचे हैं। यदि उस पक्ष की चर्चा की जाए तो ग्रंथ का विस्तार कम से कम दस खंडों में जाएगा। वह इसलिए भी अभीष्ट नहीं है कि निजी अनुभूतियाँ गुरुदेव और साधकों के वैयक्तिक संबंध हैं। उन संबंधों में हम क्यों ताकझांक करें।

विनम्र भाव से किंतु दृढ़ता के साथ यह निवेदन किया जा रहा है कि प्रस्तुत जीवन चरित में लिए गए तथ्यों की अच्छी तरह परीक्षा कर ली गई है। अविज्ञात अथवा अल्पज्ञात तथ्यों या घटनाओं के संबंध में तो और भी सजगता बरती गई। इससे पहले कहीं भी आए उल्लेखों में यदि कोई विरोधाभास आया तो उसका भी निराकरण कर लिया गया, उस जाँच पड़ताल में फिर कितना ही समय लगा हो। सामग्री जुटाते और प्रस्तुत करते समय कई बार ऐसी संवेदना जगी कि गुरुदेव स्वयं लिखा रहे हैं। इस चरित में जो कुछ भी जीवंत और प्राणवान है वह उन्हीं का आशीर्वाद है। प्रस्तुतिकरण में कहीं कोई त्रुटि रह गई हो तो दोष हमारा है और हम उसके लिए गुरुदेव से क्षमा चाहते हैं।

गीता जयन्ती
संवत् २०५८

—प्रणव पण्ड्या
—ज्योतिर्मय





अनुक्रम

	आत्मनिवेदन	३
१-	भारत भाग्य विधाता (नियति का विधान, भगवान का चुना हुआ देश, दिव्य चेतना का हस्तक्षेप, परिस्थितियाँ बदलने लगीं, विपरीत हुआ अनुकूल, सूक्ष्म जगत में आह्वान,)	१९
२-	गंगा से यमुना तक (महामना के सहयोगी, मातृत्व की विलक्षण अनुभूति, गाँव घर में बजी बधाई, संन्यासियों में भी जगी ललक)	३७
३-	सत्यं परं धीमहि (यज्ञीय जीवन की दीक्षा, साधना का खेल, हिमालय हमारा घर, विद्या का वितरण, छपको की सेवा, प्रायश्चित या पुरस्कार)	५०
४-	भागवत भूमि का सेवन (श्रीकृष्ण के आंगन में, भटकना छोड़ो, विश्रामघाट पर क्षोभ, पिताश्री का संवरण, तुम भगवान के हुए, सर्पदंश की चेतावनी, मृत्यु के दर्शन)	६९
५-	अंकुर आने लगे (गायत्री का विग्रह मिला, प्रणाम है बच्चा, रास की पड़ताल, श्रीराम में जागा रोष, फिरंगी फौजियों से मुकाबला)	८८
६-	बलिहारी गुरु आपुनो (प्रकाश शरीर का अवतरण, समय ठहर गया, कबीर की काया पर विवाद, सावधान हुए रामदास, माँ काली से जीवंत संपर्क, साधनाओं की प्रयोगशाला, बहुत आगे हो ठाकुर,	१०५

मार्गदर्शक सत्ता का आदेश, स्थूल की सीमा
और आवश्यकता, माँ ने उलाहना दिया)

- ७- **सिद्धि के मार्ग पर संकल्प** १३१
(समाज का नया गठन, आततायी का सिर फोड़ा,
साधना सहचरी का आगमन, हर बीमार सेवा
का अधिकारी, किशोर सुराजियों के लिए चिंता,
सैनिक के लिए हुंकार, महापुरश्चरण और समाज
साधना, गिरवर के घर कथा)
- ८- **हिमालय से आमंत्रण** १५५
(कम से कम सामान, शांकर मठ का विवाद,
तपोवन में पहला दिन, नंदनवन में मिला
सान्निध्य)
- ९- **दीक्षा भूमि की यात्रा** १८०
(आत्मकमल की गंध चाहिए, भारत माता की
प्रतिमा, सिद्धिमाता से भेंट, मंदिर नष्ट नहीं होते,
साधो सहज समाधि भली, काशी करवत का
मर्म, विश्वविद्यालय में उथल पुथल, माँ आनंदमयी
से भेंट, देशी अंग्रेजों से संघर्ष)
- १०- **स्वातंत्र्य यज्ञ में आहुति** २०४
(गिरफ्तारी का अभिनंदन, झंडा जुलूस यों
निकला, साधना का असमंजस, प्रारब्ध का
अतिक्रमण, जागीरदार को समझ आई, आगरा
में डेरा, वचन नहीं संकल्प, पहला भाषण, सैनिक
का दीवार संस्करण, पुलिस को चकमा और
गिरफ्तारी)
- ११- **आशीष और आश्वासन** २३०
(अब सावधान रहेंगे, क्रांतिमार्गी भक्ति, आजादी
लेकर ही आना, लोकदेवता ग्रामदेवता,
सुधारवादी की पहल, उनका उद्योग उन्हें ही
सौंपा, भिलावटी में किसान)

- १२- परिक्रमा के पथ पर २४९
(गोवर्धन धारण का रहस्य, गोप बालों का विक्षोभ
अपाहिज की आस्था, रेल यातायात रोका,
अधिवेशन में उद्यापन, मालवीय जी की प्रेरणा)
- १३- विश्व जहाँ आश्रय पाये २६९
(‘सर’ यानी सम्मान के पट्टे, नचिकेता प्रसंग)
- १४- महर्षि रमण के आश्रम में २८०
(दायित्व से अवकाश, चमत्कारों की प्रकृति,
पहाड़ी पर प्रेरणा)
- १५- निर्मलीकरण का पुरुषार्थ २९१
(जीवन में आश्रम का प्रवेश, अपने आप सुधार,
शिवमंदिर में हरिजन, भागवत कथा से संचय,
और अब पंडित श्रीराम, माँ की प्रतीक्षा, जेब
में रखा यह सिका भी)
- १६- तैयारियों का दौर ३०९
(थियोसोफी में बिखराव, एनी बीसेंट के
उत्तराधिकारी, जहाँ चूक हुई, महात्मा गांधी से
असहमति, ग्राम देवता की आराधना)
- १७- दक्षिण में प्रवास ३२७
(सैनिक में रोचक प्रसंग, दान के साथ दक्षिणा,
स्वराज सुनिश्चित दिखा, आंदोलन का अतिक्रम,
जगत पसारे हाथ, मठ की दुर्दशा, जलाहारी
बाबा से भेंट, तिरुपति की कठिन यात्रा, देव
प्रतिमा का शृंगार)
- १८- नये आलोक का संकल्प ३४५
(संसार ईश्वर का नृत्य, परंपरा की दृष्टि, मार्ग
का निर्धारण, अरविंद आश्रम की ओर, दिव्य
चेतना का आश्वासन, एक अविख्यात प्रसंग,
बदलता हुआ क्रम)

१९- आलोक उद्घाटित हुआ

३६०

(जीवन समग्र रूप में, सुदर्शनधारी श्रीकृष्ण,
ब्रजधाम में स्थापना, परिचर्या और स्वाध्याय,
विचित्र आपत्ति, पत्नी का निधन)

२०- अभिभावक योग का आरंभ

३७९

(माँ की पुत्रवधू कामना, साधना में मिले संकेत,
माँ को प्रणाम करो, सबके लिए ममत्व, नये
आवास की चुनौती, स्नेह संकल्प की परीक्षा)

२१- प्रतीक्षा में खड़ा भविष्य

३९४

(अप्रिय विवाद का अंत, स्वाधीनता की कठिन
डगर, जवाब में सिर्फ बचाव, चुनौतियों भरा
उत्सव, नये साधकों की माँग)

चित्र विवरण

पृष्ठ संख्या ६४ एवं ६५ के मध्य ० युगऋषि की जन्मभूमि
० आचार्य श्री के माता-पिता ० करुणा के सागर आचार्य श्री
० हिमालयवासी गुरुसत्ता से साक्षात्कार

पृष्ठ संख्या १४४ एवं १४५ के मध्य ० स्वतन्त्रता संग्राम
सेनानी आचार्य श्री ० पूज्यवर की जन्मस्थली; कतिपय
स्मृतियाँ ० आचार्य श्री की प्रथम सहधर्मिणी ० तप की प्रतिमूर्ति
आचार्य श्री

पृष्ठ संख्या २४८ एवं २४९ के मध्य ० युगऋषि द्वारा रचित
प्रथम ग्रन्थ ० आद्यशक्ति गायत्री के उत्रायक ० ऋषि पं. श्रीराम
शर्मा आचार्य ० आचार्य श्री की साधना स्थली
० अखण्ड ज्योति पत्रिका के प्रथम अंक का मुखपृष्ठ

पृष्ठ संख्या ३३६ एवं ३३७ के मध्य ० आचार्य श्री की
असाधारण सादगी ० आचार्य श्री की गुरुसत्ता का निवास स्थल
देवात्मा हिमालय ० आचार्य श्री द्वारा सम्पन्न महापुरश्चरण
० ऋषियुग्म द्वारा आतिथ्य सत्कार

भारत भाग्य विधाता

बीसवीं शताब्दी या पिछले सौ साल भारतीय समाज ही नहीं विश्व इतिहास में भी उथल-पुथल और गहन परिवर्तन के साल रहे हैं। सन् १९०५ में बंगाल विभाजन से देश भर में जो प्रतिक्रिया हुई और बाद के वर्षों में जिस तरह राष्ट्रीय चेतना जागी, उसकी परिणति बयालीस वर्ष बाद भारत को स्वतंत्रता मिलने के रूप में दिखाई दी। बंग भंग की घटना एक निमित्त मात्र थी। व्यापक परिप्रेक्ष्य में वह इतनी महत्वपूर्ण नहीं थी कि ब्रिटिश साम्राज्य की नियति ही बदल जाए। छः साल बाद विभाजन रद्द हो गया था; लेकिन उस निमित्त ने राष्ट्र को जगा दिया। जनमानस में स्वतंत्रता की प्यास निरंतर बढ़ती गई। बंगाल के विभाजन ने माँ भारती की लाखों-करोड़ों संतानों को अपना बोध कराया। वे सक्रिय होते गए और रौलट एक्ट का विरोध, जलियाँ वाला बाग, असहयोग आन्दोलन, सविनय अवज्ञा और सत्याग्रह आंदोलन से लेकर साइमन कमीशन बहिष्कार और भारत छोड़ो आंदोलन जैसे पड़ावों से गुजरते हुए १५ अगस्त १९४७ तक पहुँचे। कितने ही आरोह और अवरोहों से होते हुए राष्ट्र की चेतना जिस शिखर पर पहुँची, उसकी अनुभूति प्रत्येक भारतीय को गौरव से अभिभूत कर देती है।

चालीस के दशक में मिली स्वाधीनता सिर्फ भारत के लिए ही नहीं पूरे विश्व समाज के लिए, समूची मनुष्य जाति के लिए नई संभावनाओं के द्वार खोलती हुई आई थी। जिन दिनों यहाँ स्वतंत्रता आंदोलन लड़ा जा रहा था, उन दिनों दूसरे देशों में भी भारी उथल-पुथल हो रही थी। सतही तौर पर देखने से उन संदर्भों में भारत की स्वाधीनता का विशेष महत्व प्रतीत नहीं होता। यह उपलब्धि, विजय या घटना रूसी क्रांति, चीन में गणतंत्र की स्थापना और कम्युनिस्ट राज आने, आयरलैण्ड के स्वतंत्र होने या इजराइल के उदय जैसा ही एक अध्याय है। इतिहास के हजारों पृष्ठों में कुछ गिने चुने पन्ने हैं जो हिमालय से समुद्र तक फैले भूभाग की घटनाओं को सहज प्रवाह में अपने भीतर समेटे हुए

हैं। सतही तौर पर तो भारत की स्वतंत्रता और भी सामान्य घटना थी। उस दृष्टि से देखने वालों के लिए यह उपलब्धि राष्ट्र के अपने पुरुषार्थ, पराक्रम के बल पर नहीं, वैश्विक परिस्थितियों के दबाव से अनायास ही मिली मानी जाती है। दूसरे महायुद्ध में ब्रिटेन जर्जर हो गया था। वह भारत पर शासन करने में अक्षम हो चला था। वहाँ की आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक स्थिति इस योग्य नहीं थी कि भारत जैसे उपनिवेश पर शासन कर सके। अपनी विवशताओं और दबावों के चलते ब्रिटेन ने मजबूरी में भारत को स्वतंत्रता दी। वह अक्षम नहीं हो रहा होता या वहाँ के शासकों में इतिहास विवेक नहीं आता, तो भारत बाद के वर्षों तक, संभव है अभी तक पराधीन ही रहता। क्योंकि आंदोलनों, प्रदर्शनों और धरनों के सिवा यहाँ की जनता ने कोई जुझारूपन नहीं दिखाया था। लड़-झगड़कर या संघर्ष की राह पर चलते हुए स्वतंत्रता अर्जित करना न तो यहाँ के स्वभाव में था और न ही सामर्थ्य के भीतर।

निश्चित ही स्वतंत्रता या क्रांतिकारी परिवर्तनों के लिए कीमत चुकाना पड़ती है। संयुक्त राज्य अमेरिका को अपनी स्वतंत्रता के लिए एक वर्ष तक एक हजार वर्गमील क्षेत्र में अंग्रेजों से सतत् संघर्ष करना पड़ा। पाँच वर्ष तक इस युद्ध की तैयारियाँ हुईं और युद्ध में सभी वर्ग के लोगों ने हिस्सा लिया। किसानों ने खेती के काम आने वाले औजार गलाकर हथियार बनाए। 'स्वतंत्रता के पुत्र' नामक संस्था में उनके साथ मजदूर, गुलाम, पादरी, वकील और सरकारी कर्मचारी भी शामिल हुए।

लोकतंत्र की स्थापना के लिए अठारहवीं शताब्दी में फ्रांस के लोगों ने सात साल तक विभिन्न मोर्चों पर लड़ाइयाँ लड़ीं। आर्थिक, प्रशासनिक, राजनैतिक और सामाजिक टकरावों में आसपास के देशों ने भी अवरोध उत्पन्न किए और संघर्ष को पेचीदा बनाया। फ्रांस की राज्य क्रांति ने वहाँ के नायक नेपोलियन बोनापार्ट को भी धूल चटा दी। इतिहास के विद्यार्थी जानते हैं कि कमोबेश बारह साल तक चली भीषण उलटपेठ ने फ्रांस को एक मुकाम पर पहुँचाया। उस सतत् संघर्ष ने वहाँ समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के मंत्र को संभव करने योग्य दिशा दी।

भारत को अपनी स्वतंत्रता के लिए न तो अमेरिका जैसा युद्ध लड़ना पड़ा और न ही लोकतंत्र के लिए फ्रांस की तरह वर्षों युद्ध की आग में जलना पड़ा। इन देशों ने जिस राज्य या प्रभु देश के विरुद्ध युद्ध छेड़ा था, वह ब्रिटेन ही था। फ्रांस की जनता ने ब्रिटेन के अलावा अपने यहाँ के शासकों से भी लोहा लिया। उनके सामने दोहरी चुनौतियाँ थीं और दोनों मोर्चों पर उन्हें भारी बलिदान देना पड़े।

सन् १९११ में चीनी राज्य क्रांति और वर्षों की उथल-पुथल के बाद जनवादी सरकार की स्थापना, रूसी क्रांति और जापान में राष्ट्रवाद के उदय जैसे अध्याय भी वहाँ के लोगों ने अपने रक्त से लिखे। हजारों-लाखों लोगों ने इन परिवर्तनों के लिए अपना उत्सर्ग किया होगा। पहले और दूसरे विश्वयुद्ध में जर्मनी, इटली, आस्ट्रिया, स्पेन, पोलैण्ड आदि देशों को वहाँ चले संघर्षों ने लगभग ध्वस्त कर दिया था। उस ध्वंस को झेलने और वापस उठ खड़े होने में इन देशों को जैसे कठिन प्रयत्न और संघर्ष करने पड़े, उनकी तुलना में भारतीय जनता ने कुछ खास बलिदान नहीं किए। जिन क्रांतिकारियों और बलिदानियों ने भारत को स्वतंत्र करने के लिए संघर्ष की राह चुनी उनके उत्सर्ग को जरा भी कम करके नहीं आंका जाए। लेकिन यह तथ्य है कि बीसवीं सदी का भारत औपचारिक संगठनों, थोड़े से असहयोग विरोध और शासकों तथा भारतीय नेताओं की सौहार्द्र पूर्ण वातावरण में हुई वार्ताओं के चलते ही मुक्त हो गया। निश्चित ही दूसरे महायुद्ध के दबाव और ब्रिटेन की जर्जर स्थिति भी कारण होंगे, लेकिन १९४७ के बाद भी ब्रिटेन की हालत वैसी ही थी। बाद के चालीस वर्षों में कम से कम दो दर्जन देशों ने अपने भाग्य-भविष्य का निर्धारण किया। उस निर्धारण के लिए संबंधित देशों को अपना अस्तित्व दांव पर लगा देना पड़ा।

साधारण प्रयत्नों या आंदोलनों प्रदर्शनों धरनों, बहिष्कार जैसे कोमल संघर्ष से ही भारत को स्वतंत्रता क्यों मिल गई? यहाँ के नागरिकों को दूसरे देशों की तरह उत्सर्ग क्यों नहीं करने पड़े? प्रत्यक्ष घटनाओं के आधार पर मूल्यांकन करने वाले समीक्षकों को यह कहने की छूट है कि विश्व की बदली हुई परिस्थितियाँ और अंतरराष्ट्रीय दबावों के चलते यह देश अनायास ही स्वतंत्र हो गया। अंतर्दृष्टि रखने वाले, सूक्ष्म जगत में होने वाली हलचलों को अपनी शुद्ध और सिद्ध चेतना से समझने की क्षमता रखने वाले सिद्ध जनों की दृष्टि कुछ और ही देखती है। उनके अनुसार भारत की स्वतंत्रता एक दैवी योजना का भाग है। उस योजना के अनुसार विश्व को अध्यात्म युग में प्रवेश करना है। नए युग में यह प्रवेश भारत के नेतृत्व में ही संभव होगा; क्योंकि उसके पास संसार को देने के लिए एक विलक्षण संदेश है। वह मनुष्य जाति को नई दिशा देने की सामर्थ्य रखता है।

भारत की स्वतंत्रता ईश्वरीय योजना का एक भाग है तो यह देश पराधीन क्यों हुआ? इसका उत्तर देते हुए श्री अरविंद ने अपने पत्र “वन्दे मातरम्” के अप्रैल १९०८ के अंक में लिखा था-“हिन्दुस्तान में इंग्लैण्ड का



समय समाप्त हो चुका है। भगवान की इच्छा थी कि कुछ समय के लिए इंग्लैण्ड भारतवर्ष पर राज करे। सारी दुनिया यह देखकर चकित रह गई कि अंग्रेजों ने कितनी आसानी से सारे देश को हथिया लिया। लोगों ने सोचा कि यह अंग्रेजों की अप्रतिम प्रतिभा के कारण, उनके असामान्य गुणों के कारण संभव हो सका है। इंग्लैण्ड ने इस मान्यता को खूब बढ़ावा दिया और इससे लाभ उठाया।

‘सच्ची बात तो यह है कि इंग्लैण्ड ने भारतवर्ष को कभी जीता नहीं। उसे ‘क्यों और कैसे’ का पता लगे, उससे पहले ही भारत को उसके हाथों में सौंप दिया गया। सामान्यतः जिन लोगों ने इंग्लैण्ड के लिए काम किया, कुछ अपवादों को छोड़कर वे बहुत छोटे आदमी थे। भागवत कृपा के बिना वे यूरोप में या कहीं और इतिहास में अपने लिए कोई स्थान नहीं बना पाते। भारत को हराने का सेहरा न तो जीतने वालों की विशेष प्रतिभा या क्षमता के सिर बांधा जा सकता है और न ही परतन्त्र जाति की दुर्बलता को इसके लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। यह इतिहास का एक ऐसा चमत्कार है, जिसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। कहा जा सकता है कि यह एक ऐसा उदाहरण है, जिसमें किन्हीं विशेष गुणों के बिना ही एक महान् उद्देश्य सौंपा गया था और एक सौभाग्य विशेष उसकी निगरानी कर रहा था कि वह अपना उद्देश्य पूरा कर सके।’

‘यह उद्देश्य पूरा होते ही भगवान का वह देवदूत जो इंग्लैण्ड की रक्षा करने के लिए उसके पास खड़ा है और हाथ के इशारे से आने वाली सभी कठिनाइयों और विपदाओं को दूर कर देता है, उसकी ढाल नहीं बनेगा। इंग्लैण्ड यहाँ तभी तक रह सकता है, जब तक भारत को उसकी जरूरत है। जरूरत पूरी होते ही उसे हट जाना होगा; क्योंकि अंग्रेजी राज न तो अपने भुजबल से यहाँ आया है और न ही अपने बलबूते पर खड़ा है, जो वह ठहर सके। अगर इंग्लैण्ड इस देश की सहायता करना चाहे तो उसकी सहायता लेकर और यदि नहीं करना चाहे तो उसके बिना और विरोध करे तो विरोध के होते हुए भी भारत अपने लक्ष्य को चरितार्थ करके रहेगा।’

नियति का विधान

बीसवीं शताब्दी के पहले दशक में बंग-भंग आंदोलन को छोड़कर ऐसी कोई घटना नहीं हुई थी, जिससे लगे कि भारत की सोई हुई चेतना जाग रही थी। बंगाल के विभाजन का व्यापक विरोध हुआ था। प्रबल होते हुए भी वह

भारत भाग्य विधाता

इतना प्रचण्ड नहीं था कि उस आधार पर स्वतंत्रता की भविष्यवाणी की जा सके। श्री अरविंद को योगविद्या की प्रारंभिक शिक्षा देने वाले योगी विष्णु भास्कर लेले ने विभाजन के खिलाफ खड़े हुए क्रांतिकारियों को भगवान् का यंत्र बताया था। उन्होंने यह भी कहा था कि इन प्रयासों का कोई सार नहीं है। भगवान् भारत की नियति लिख चुके हैं।

सन् १९०९ में अण्णा साहब पटवर्धन से क्रांतिकारी आंदोलन के बारे में बातचीत के दौरान लेले ने यह भी कहा था कि 'तुम चाहें जितना प्रयास करो, अंग्रेज अपना काम पूरा किए बिना इस देश से नहीं हटेंगे। उनका काम यहाँ जैसे ही पूरा होता दिखाई देगा, वे क्षीण होते जायेंगे। सन् १९४७ तक वे इतने कमजोर हो जाएँगे कि अपने आप यहाँ से चले जाएँगे। उन्हें भगाने के लिए लड़ने-भिड़ने या अनावश्यक रक्त बहाने की जरूरत नहीं होगी।'

एक अन्य अवसर पर लेले ने भारत की स्वाधीनता के बारे में फिर पूछा गया। उन्होंने कहा 'अंग्रेज सरकार विदेशी आक्रमण या विप्लव को कुचलने के लिए पूरी तरह तैयार है। उन्हें भगाने के लिए क्रांतिकारियों ने जो तैयारी की है, वह बिलकुल अपर्याप्त है। मुठ्ठी भर क्रांतिकारी इतनी बड़ी अंग्रेज सेना का सामना नहीं कर सकेंगे। ज्यादा जिद की तो वे अपना जीवन गंवाएँगे। भारत विश्व का भाग्य विधाता देश है, वह उठेगा और पूरी शक्ति से उठेगा। क्रांतिकारी, आंदोलनकारी और सामाजिक कार्यकर्ता उसके उठने में निमित्त मात्र बनेंगे।'

अंतर्दृष्टि संपन्न सभी महान विभूतियों ने अपने समय में भारत की स्वतंत्रता को अपरिहार्य बताया है। सन् १९४७ पंद्रह अगस्त को लाल किला पर तिरंगा फहराया गया। उसे स्वाभाविक और अवश्यंभावी विधान ही कहा जाना चाहिए। सूक्ष्म जगत में वर्षों पहले इस संभावना को इतिहास की तरह लिखा जा चुका था। इस तथ्य को हजारों शहीदों, लाखों क्रांतिकारियों और सत्याग्रहियों के उत्सर्ग की अनदेखी नहीं समझा जाए। स्वामी सच्चिदानंद के शब्दों में उनके प्रयास लाठी टिकाए ग्वाल-बालों की तरह स्तुत्य है। उन्होंने उत्साह दिखाया और ईश्वर के प्रिय पात्र बने। स्वतंत्रता सेनानियों के प्रयास भी भगवान् द्वारा नियत और चरितार्थ किए जा रहे भारत के भविष्य में एक भावभरे अनुदान की तरह ही मानने चाहिए। भारत की स्वतंत्रता को ईश्वर का नियत किया हुआ विधान मान लेने के बाद यहाँ के अतीत और भविष्य को समझने में मदद मिलेगी।

क्या है भारत का अतीत और भविष्य? अतीत का अर्थ इतिहास या कालक्रम के अनुसार समाज में घटी घटनाओं का ब्यौरा नहीं है। वह भारत की महान् सभ्यता और संस्कृति है, जिसे राजा महाराजाओं या योद्धाओं और धनपतियों ने नहीं ऋषि-मुनियों ने संवारा। उनके तप और पुरुषार्थ से भारत ने भौतिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में उन्नति के शिखर छुए। ईश्वर का अनुग्रह इस देश पर बरसता रहा और वह दिनोंदिन समृद्ध होता गया। उस वैभव और उत्कर्ष के विस्तार में न जा कर अरविंद को उद्धृत करना ही पर्याप्त होगा। उन्होंने लिखा है, 'प्राचीन काल में यह देश संसार से अलग-थलग विचारों और चेतना के नए आयाम खोज रहे ऋषि-मुनियों की कुटिया के समान था। अपनी विशेष भौगोलिक स्थिति के कारण यह शेष मानव जाति से कटा हुआ था। वह एक शांत आश्रम की तरह था, जहाँ अपनी और विश्व समाज की समस्याओं पर विचार किया जाता था और जीवन के रहस्य खोले जाते थे, उसके चिंतन के कण सारे एशिया में कौंध जाते थे और अलग-अलग सभ्यताओं का निर्माण करते थे। उसकी संतान अन्य देशों और सभ्यताओं को प्रकाश देती थी, उसकी अनंत बुद्धिमत्ता के छींटों से दर्शनशास्त्र उठ खड़े होते थे। जब बाधाएँ टूट गईं और हिमालय के दर्रों से और लोगों ने यहाँ प्रवेश शुरू कर दिया तो भारत से शान्ति खिसकने लगी। भारत को संघर्ष की सदियाँ बिताना पड़ी।'

'धीरे-धीरे पराभव का ऐसा युग आ गया, जिसमें भारत के विचारों से ही उत्पन्न सभ्यताओं ने उस पर अपने आपको लादने की कोशिश शुरू कर दी। भारत ने उन प्रयत्नों को अंगीकार किया। यूनानी, सीथियन, मुसलमान, ईसाई और यहाँ तक कि यूरोपीय विज्ञान या जड़वाद को भी भारत ने आत्मसात कर लिया। अब जितनी सामग्री आत्मसात करनी है, वह इतिहास में अद्वितीय और अनुपम है पर भारत के लिए यह बच्चों का खेल है। उसकी बुद्धि हर चीज को अपनी भुजाओं में ले सकती है। उसका अंतर्मन हर एक की गहराई को नाप सकता है। उसकी भौतिकता पर कभी कोई आँच नहीं आ सकती और वह दुनिया के बड़े-से बड़े काम करने में समर्थ है। निष्क्रियता का वह जमाना गया, जब भारत दूसरों की बातें सुना करता था। अब वह बाहर की चीजें लेकर उनकी नकल करने या उन्हीं में कुछ सुधार कर लेने से संतुष्ट नहीं होगा। उनके योगदान को वह कच्चे माल के रूप में स्वीकार करेगा। अपनी अनुपम सृजन शक्ति से भौतिक सूत्रपात करने के उस योगदान का उपयोग करेगा।'

भगवान का चुना हुआ देश

उद्धरण शब्दशः इसी प्रकार नहीं हैं लेकिन जिस प्रसंग का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है उसका संदेश इसी से मिलता-जुलता है। सन् १९७२ का एक चर्चा प्रसंग है। गुरुदेव हिमालय के गुह्य प्रदेशों में करीब एक वर्ष का अज्ञातवास बिताकर शांतिकुंज लौटे थे। शांतिकुंज के मुख्यभवन में पहली मंजिल पर जहाँ उनकी और माताजी की पादुकाएँ प्रतिष्ठित हैं, वहाँ गुरुदेव कुर्सी पर बैठे हुए थे। भारत के विराट् और महिमावान् स्वरूप का परिचय विश्वसमाज को कराने के लिए शोध-अनुसंधान पर चर्चा चल रही थी। दुनिया को अपनी महिमा और गरिमा से अवगत कराना है तो तथ्य और प्रमाण भी चाहिए। शोध-अनुसंधान का उद्देश्य वैसी सामग्री जुटाना था। यह शोध अनुसंधान बाद में 'समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान' पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ है।

गुरुदेव के लेखों और उद्बोधनों में भारत के दिव्य लीला भूमि होने की स्थापना मुखर रही है। किन्हीं परिजन ने उनसे पूछ लिया कि 'ईश्वर को भारत से विशेष लगाव क्यों है कि वह यहीं अवतार लेता है? हम अपने आपको सभ्यता और संस्कृति का प्रकाश उपलब्ध करने वाली सबसे पुरानी जाति मानते हैं। कहीं हम श्रेष्ठता की ग्रंथि से पीड़ित तो नहीं हैं। अगर हम शक्ति, ज्ञान, कौशल और संगठन में किसी से कमजोर नहीं हैं, तो सदियों तक गुलाम क्यों रहे? अगर हम महाबली और रणबांकुरे थे, तो हमलावरों को यहाँ सफलता मिलनी ही नहीं चाहिए थी।'।

परिजन के प्रश्न में संदेह या आक्षेप नहीं जिज्ञासा का भाव था। अज्ञातवास से लौट आने की सूचना ज्यादा लोगों को नहीं थी। मुश्किल से चार-छः व्यक्ति प्रतिदिन आते थे। गुरुदेव तब माताजी के कक्ष के दाएँ वाले कमरे में बैठकर, लेखन और भावी कार्यक्रमों का निर्धारण करते थे। परिजन के पूछने पर गुरुदेव ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया, 'भारत भगवान का चुना हुआ देश है। देखते नहीं हो, यहाँ ईश्वर ने स्वयं शरीर धारण कर सत्य और धर्म की प्रतिष्ठा की। चौबीस अवतार हुए हैं यहाँ। ऋषि, मुनि, योगी-यति और सिद्ध संतों की संख्या का कोई अनुमान ही नहीं लगाया जा सकता। दुनिया के और देशों में हुए संतों की गणना की जाए, उनकी विभूतियों का विवरण इकट्ठा किया जाए तो वह सब भारत में हुई अध्यात्म विभूतियों के एक अंश के बराबर नहीं होगा। जितने विचार, विश्वास और साधना संप्रदाय यहाँ हैं, उतने संसार के बाकी सभी देशों को मिला कर भी नहीं होंगे। यहाँ उन सभी विद्या धाराओं में सामंजस्य है, जो

कहीं और मुखर हो तो उनके अधिकारी विद्वान् आपस में ही टकरा जाए। प्रकृति, ऋतु, नदीनद, पर्वत, मैदान, प्राणिजगत् और निवासियों तक में विविधता है। इस विविधता को देखते हुए क्या नहीं लगता कि भारत भगवान का चुना हुआ देश है? वह यहाँ अपनी लीला या प्रकृति के नए-नए प्रयोग कर रहा है।'

कुछ क्षण रुक कर गुरुदेव ने उन परिजन को निहारा। शब्दों में जितना कुछ कहा गया उससे कहीं ज्यादा, कई गुना संदेश उस दृष्टि निक्षेप में संप्रेषित कर दिया गया। गुरुदेव को निहारते देखकर ऐसा नहीं लगा कि कोई बौद्धिक सीख मिली हो। उन परिजन ने अपनी अनुभूति लिखते हुए कहा- 'मुझे अपना बचपन याद हो आया, जब कोई जटिल प्रश्न सामने आता तो अपने पिताश्री से पूछने जाता था। वे मेरे प्रश्न का उत्तर किसी किताब में से नहीं देते थे। न ही वे किसी सूचना या तथ्य का उल्लेख करते थे। बस कुछ सैद्धांतिक बातें समझाते और स्नेह से देखने लगते थे। मैं भूल जाता था कि जो पूछा है उसका उत्तर क्या है? उनकी बातें सुनकर और उससे भी ज्यादा उनकी दृष्टि पी कर संतुष्ट हो जाता था। ऐसा प्रतीत होता था कि चाभी मिल गई है। पुस्तक एक बंद पिटारी है, जिसमें ताला लगा हुआ है। चाभी लगाओ, ताला खोलो और पिटारी में बंद समाधान प्राप्त कर लो। गुरुदेव के संक्षिप्त से उद्बोधन और कुछ पल के दृष्टिनिक्षेप से उनके बचपन की उस अनुभूति को हरा कर दिया।'

'समाधान तर्क से चाहिए तो वह भी है।' गुरुदेव ने फिर कहा, 'संसार एक चक्र की तरह है। वह घूमता रहता है। कुछ अरे ऊपर जाते हैं तो दूसरे नीचे आते हैं। भारत के साथ भी यही हुआ। कोई भी जाति सदा के लिए शिखर पर नहीं होती। उत्थान के साथ पतन भी है। कुछ सौ साल की गुलामी को पतन मान सकते हैं, लेकिन उसने भारत को नष्ट नहीं कर दिया। कई जातियाँ अथवा समाज पचास-सौ साल के दमन में ही नष्ट हो गए। यूनान, मिस्र, ईरान और रोम की प्राचीन सभ्यताएँ अपनी रक्षा नहीं कर सकीं। उनका मूल अस्तित्व कभी का समाप्त हो गया। भारत उन देशों की सभ्यताओं से ज्यादा रौंदा और कुचला गया, फिर भी वह आज उठकर खड़ा हो गया है। इसे भारत का नष्ट होना कहोगे या उसकी जिजीविषा का प्रमाण? तथ्यों के प्रकाश में देखोगे तो भी पाओगे कि कुछ बात है जो भारत को अजर, अजेय और अक्षुण्ण बनाए हुए हैं।'

और भी कई मनीषियों तत्त्वदर्शियों ने अपनी तरह से इस तथ्य की पुष्टि की है कि भारत को तपःपूत देवात्माओं, ऋषि-मुनियों और दिव्य शक्तियों का

भारत भाग्य विधाता

संरक्षण प्राप्त है। उनकी ऊर्जा इस देश की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक स्थिति को संभाले हुए हैं। उसका स्वास्थ्य लड़खड़ाता भी है तो एक स्थिति से ज्यादा नीचे नहीं गिरता। विजातीय तत्त्व अथवा शक्तियाँ आक्रमण करती हैं। वे कितनी ही प्रबल हों, उसे एक सीमा से ज्यादा पीछे नहीं धकेल पातीं। वह सीमा आते ही भारत तन कर खड़ा हो जाता है और विपरीत परिस्थितियों को चीरकर विजेता की भूमिका में आ जाता है। भारत की यह विजयिनी ऊर्जा गुह्य क्षेत्रों में चुपचाप तपस्या कर रहे योगियों और ऋषियों के पुण्य प्रभाव से उभर कर आती है। ईश्वर का अथवा जगत नियन्ता का विशेष अनुग्रह तो उसे मिला ही हुआ है।

ऋषि सत्ताओं के अनुग्रह की एक बानगी दिसंबर १९७१ में एक बड़ी घटना के रूप में देखी गई है। उन दिनों भारत और पाकिस्तान का युद्ध चल रहा था। युद्ध आरंभ होने से पहले की स्थितियाँ प्रायः सभी जानते हैं। पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) से हजारों लोग दल के दल बनाकर भारत चले आ रहे थे। वहाँ के शासक जनता का बुरी तरह उत्पीड़न कर रहे थे। पूर्वी पाकिस्तान अथवा बांग्लादेश की प्राकृतिक संपदा का दोहन वहाँ से दो हजार किलोमीटर दूर स्थित पश्चिमी पाकिस्तान के हुक्मरान कर लेते थे और उसे अपने यहाँ उपयोग में ले लेते थे। उत्पादक देश अथवा क्षेत्र के हिस्से में शोषण, दलाली और उत्पीड़न ही आता था। बांग्लादेश के लोग बीस साल तक सहते रहे, उचित और न्यायपूर्ण अधिकारों के लिए आवाज उठाते रहे। उन्हें सुनने के स्थान पर शासक उपेक्षा और दमन की नीति अपनाते रहे। दमन उत्पीड़न असह्य होने लगा तो पूर्वी पाकिस्तान के लोग बागी हो गए। उस हिस्से ने स्वतंत्र राज्य की घोषणा कर दी। दमन चक्र और तेज हुआ तो प्रतिरोध और क्रांति की ज्वाला भी भड़कने लगी।

दिव्य चेतना का हस्तक्षेप

बांग्लादेश में चल रहे संग्राम का प्रभाव भारत पर भी पड़ा। जो लोग उत्पीड़न और दमन का मुकाबला नहीं कर सके या जिनके लिए स्थितियाँ दूभर हो उठीं, वे भारत आने लगे। यहाँ आते जा रहे लोगों की संख्या कुछ हजार, हजार से लाख और लाख के बाद करोड़ होती हुई दो करोड़ से ऊपर पहुँच गई। इतने लोगों की देखभाल का जिम्मा भारत सरकार को उठाना पड़ रहा था। साधन उन



दिनों बेहद कम थे। उन्हें निचोड़कर और यहाँ के नागरिकों पर अतिरिक्त कर लगा कर किसी तरह शरणार्थियों की व्यवस्था की जा रही थी।

पाकिस्तान को बांग्लादेश की जनता के उत्पीड़न से ही संतोष नहीं हुआ। अपनी राजनैतिक विवशताओं के चलते वहाँ के शासकों ने भारत पर युद्ध भी थोप दिया। पूर्वी और पश्चिमी सीमाओं पर जुलाई १९७१ से ही दबाव बढ़ने लगा, जो कुछ ही सप्ताहों में युद्ध के रूप में बदल गया। महाशक्तियाँ भी उन दिनों जैसे पाकिस्तान के साथ थी। बांग्लादेश के लोगों का उत्पीड़न किसी को दिखाई नहीं दे रहा था। भारत पर बढ़ रहा दबाव भी अनदेखा किया जा रहा था। युद्ध आरंभ होने से पहले भारत ने विश्व जनमत का ध्यान खींचने की भरपूर चेष्टा की। प्रधानमंत्री और कैबिनेट के कई वरिष्ठ मंत्रियों ने ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी, इसराइल और अरब अमीरात देशों की यात्राएँ की। वहाँ के शासकों को वस्तुस्थिति से अवगत कराया, लेकिन कोई अंतर नहीं पड़ा। किसी ने भी पाकिस्तान के शासकों को समझाने की कोशिश नहीं की। मौन रह कर या सैनिक सहायता भेजकर ये महाबली देश पाकिस्तान को ही बढ़ावा देते रहे।

अक्टूबर १९७१ में चीन संयुक्त राष्ट्र का सदस्य बना। संयुक्त राष्ट्र में पहुँच जाने के बाद बांग्लादेश और वहाँ से आ रहे शरणार्थियों के मामले में भारत की स्थिति और भी दयनीय होती गई। वह अलग-थलग और अकेला पड़ने लगा। महाशक्तियों ने चेतावनी या धमकी दे डाली कि भारत ने कोई सामयिक पहल की तो वे उसे आक्रमणकारी घोषित कर देंगे और पाकिस्तान का साथ देंगे। यही नहीं भारत को दी जाने वाली सभी सहायता भी बंद कर दी जाएगी। भारत के सामने पड़ौसी पाकिस्तान के उद्धत आतंक या तांडव को सहन करने के सिवा कोई उपाय नहीं बचा था।

सोवियत संघ के अलावा भारत के पक्ष में कोई नहीं था, लेकिन इस महादेश की भी अपनी विवशता थी। भौगोलिक दूरी और राजनैतिक विवशताओं के चलते वह चाह कर भी पहल नहीं कर सकता था। कुल मिलाकर भारत की स्थिति एकाकी, असहाय और निरीह हो गई थी। पूर्वी सीमाओं पर तो पाकिस्तान ने अधोषित जंग छेड़ ही रखी थी, दिसंबर का पहला सप्ताह शुरू हुआ ही था कि पश्चिमी सीमा पर भी हमला कर दिया गया। भारत के सामने उस आक्रमण का जवाब देने और युद्ध घोषित करने के सिवाय कोई चारा नहीं रह गया।

युद्ध घोषित हुआ। पूर्वी और पश्चिमी सीमाओं पर घमासान छिड़ने लगा। दो-तीन दिन में ही पाकिस्तानी सेना के पाँव उखड़ने लगे। वह पीछे हटने

भारत भाग्य विधाता

लगी। बांग्लादेश के मोर्चे पर प्रतिपक्षी सेना का दबाव कम पड़ने लगा और भारतीय सेना आगे बढ़ती दिखाई दी, तो आक्रांता के साथ खड़े देशों ने पहल की। पहल पाकिस्तान के पक्ष में ही थी। इस पहल का नेतृत्व अमेरिका कर रहा था। संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद् में मामला ले जाने की तैयारियाँ की जाने लगीं। इन तैयारियों का उद्देश्य किसी देश पर नैतिक दबाव डालना ही होता है।

अमेरिका इस तैयारी पर ही ठहरा नहीं रहा। उसने सामरिक दबाव भी बढ़ाया और सातवें जहाजी बेड़े का रुख हिंद महासागर की ओर करने के आदेश दिए। उस समय तक यह संसार का सबसे बड़ा जहाजी बेड़ा था जिस पर युद्धक विमान, प्रक्षेपास्त्र, विमानभेदी तोपें, हवा से हवा में मार करने वाली मिसाइलें और पर्याप्त गोला बारूद से लैस सैनिक टुकड़ियाँ थी। सामर्थ्य की दृष्टि से सातवाँ बेड़ा इतना सक्षम था कि भारत पाक युद्ध की स्थिति उलट सकता था। तब भारत की नौ सेना इतनी सक्षम नहीं थी कि बेड़े को ध्वस्त कर सके या उसके मुकाबले देर तक टिकी रह पाए। भारत पाक युद्ध ने घमासान रूप ले लिया तो निर्णय हफ्ते दस दिन के भीतर ही हो जाना तय था। निर्णायक स्थितियाँ बन रही थीं, लेकिन सातवें बेड़े का मुँह हिन्द महासागर की ओर होने के बाद स्थितियाँ दूसरा ही रुख ले रही थीं।

रुख बदलती स्थितियों से न केवल भारत सरकार, बल्कि बांग्लादेश की मुक्तिवाहिनी, वहाँ के नागरिकों और भारतीय जनमानस में भी चिंता की लहर दौड़ गई थी। अजीब सी भयावह स्तब्धता छाई जा रही थी। ५ दिसंबर १९७१ तक यही समाचार आ रहे थे कि सातवाँ बेड़ा भारत की समुद्री सीमा के समीप आ गया है। ताजा बुलेटिनों में यह दूरी घटती ही सुनाई देती थी। आकाशवाणी के समाचार बुलेटिनों में सातवें बेड़ों की हलचलों के बारे में संपादित सूचनाएँ प्रसारित की जाती थीं, ताकि लोगों का मनोबल बना रहे। ब्रिटेन की प्रसारण एजेंसी ब्रिटिश ब्राड कास्टिंग कॉरपोरेशन (बी. बी. सी.) के प्रसारणों में बेड़े के बारे में ज्यादा जानकारियाँ होती थीं। ६ दिसम्बर की रात और ७ दिसम्बर की भोर तक बेड़े के भारतीय सीमा के करीब और करीब पहुँचने के समाचार आए। दिसंबर सन् १९७१ का सातवाँ तारीख सूर्य उदय होने के बाद की पहली खबर थी कि बेड़े ने अपना रुख बदल दिया है और वह भारतीय सीमा से दूर खिसकने लगा है।

क्या हुआ ? रातों रात स्थितियाँ कैसे बदल गईं ? कोई कूटनीतिक पहल नहीं, विश्व जनमत का कोई दबाव नहीं। अमेरिकी शासन व्यवस्था को बारीकी

से समझने वाले बताते हैं कि इस स्तर पर पहुँचने के बाद वहाँ का सुरक्षा मुख्यालय पेटांगन अपना निर्णय कभी नहीं बदलता। जहाजी बेड़ा रवाना होने के बाद वापस लौटने का उदाहरण अमेरिकी इतिहास में एक भी नहीं है। सेनाओं के कूच करने, युद्ध की घोषणा होने और समर शुरू होने के बाद तुरंत वापसी या विराम होने की घटनाएँ दूसरे देशों में भी नहीं घटी हैं। अमेरिकी प्रतिरक्षा मंत्रालय ने रातोंरात निर्णय क्यों पलट दिया? युद्ध रोकने, बंद करने अथवा आक्रमण वापस लेने जैसे विलक्षण फैसले का अधिकार अमेरिकी राष्ट्रपति को ही है। तत्कालीन राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन के सामने अचानक ऐसी क्या विवशताएँ आ गई कि उन्हें बेड़ा वापस बुलाने का निर्णय लेना पड़ा। अमेरिकी मामलों के विशेषज्ञ विश्लेषक इस प्रश्न का उत्तर आज तक नहीं ढूँढ़ पाए हैं।

क्या कोई दैवी हस्तक्षेप हुआ? श्रद्धालुजनों के मन में उस समय भी जिज्ञासा थी। राजनांदगाँव (छत्तीसगढ़) के एक साधक मोहन देवांगन ने ७ दिसंबर १९७१ की भोर एक सपना देखा कि अमेरिकी बेड़ा हिंद महासागर पारकर बंगाल की खाड़ी में प्रवेश कर रहा है। श्रीलंका की सीमा को धड़धड़ाता हुआ पार कर रहा है। गति क्षण-प्रतिक्षण तेज होती जा रही है। कोई प्रत्यक्ष चिह्न नहीं दिखाई दिया, लेकिन आभास हुआ कि समुद्र में ठीक उसी स्थान की सीध में पहुँचा जहाँ रामेश्वर सेतु बांधा गया था। उस जगह कुछ पत्थर तैरते हुए दिखाई दिए। पत्थरों पर 'राम' नाम खुदा हुआ था। स्वप्न में यह दृश्य देख रहे साधक ने देखा कि उन पत्थरों के बीच में एक बड़ा युद्धपोत (स्पष्ट ही सातवाँ बेड़ा) गुजर रहा है। अचानक जैसे बिजली कौंधती है और समुद्र का सीना चीर कर एक हाथ मुठ्ठी बाँधे प्रकट होता है। पहले मुठ्ठी बाहर आती है, फिर कलाई और कुहनी तक बाहर आते हुए हाथ की ऊँचाई आकाश छूने लगती है। मुठ्ठी खुलते ही पंजा चौड़ा होता दिखाई देता है और धीरे से युद्धपोत को ढंक लेता है। इस तरह ढँक लेता है कि पोत का कोई भी हिस्सा दिखाई देना बंद हो जाता है। अगले ही क्षण स्थिति सामान्य हो जाती है। समुद्र शांत है। साधक इस दृश्य को देखते हुए अनुभव भी कर रहे थे कि हाथ की आकृति 'लाल मशाल' थामे हुए हाथ जैसी है।

शांतिकुंज के अखण्ड दीप के सामने जप कर रही कुछ देव कन्याओं को भी इसी तरह की अनुभूति हुई थी। सातवें बेड़े के वापस जाने की खबर प्रसारित होने से पहले वंदनीया माताजी ने प्रणाम के लिए आए साधकों से कहा

भारत भाग्य विधाता

था, अब खतरा टल गया है। इस युद्ध में भारत की जीत सुनिश्चित है। दुनिया की कोई भी शक्ति उसे परास्त नहीं कर सकती। युद्ध समाप्त होने के बाद देखना भारत दिनोंदिन प्रगति करेगा। उसे विश्व का मार्गदर्शन करने का दायित्व निभाना है और जल्दी ही वह इस योग्य हो जायेगा। अनेक साधकों को दिखाई दिए स्वप्न, आभास और अनुभूतियों के दस दिन बाद युद्ध समाप्त हो चुका था और भारत ने अपने आपको सिद्ध कर दिखाया था कि वह सत्य और न्याय के मार्ग पर है। भौतिक दृष्टि से प्रत्यक्ष समर्थ नहीं दिखाई देते हुए भी वह दुनिया भर के अनुचित अवांछनीय विरोध का सामना करने में सक्षम है। उसे पराभूत करना अब किसी के वश में नहीं है।

विजय के बाद भारत ने शक्ति, साधना और सिद्धि के क्षेत्र में दिनोंदिन प्रगति की है। उसकी यह नियति पहले ही लिखी जा चुकी थी। भारत के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने १५ अगस्त १९४७ के अपने प्रसिद्ध भाषण में जिसे 'नियति से साक्षात्कार' घोषित किया था, वह नियति भी वर्षों पहले अंकित हो गई थी, लेकिन उसके अक्षर जिस समय उभरते दिखाई देने लगे थे, वह सन् १९११ का वर्ष था।

परिस्थितियाँ बदलने लगीं

सन् १९११ का वर्ष भारतीय राष्ट्र के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। छः साल पहले वायसराय लार्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन किया था। इस विभाजन ने भारत राष्ट्र को झकझोर कर जगा दिया। वायसराय के फैसले से लोगों में इतना रोष फैला कि वे अंग्रेजी माल का, विशेष कर इंग्लैण्ड में बने कपड़ों का बहिष्कार करने लगे। इन्हीं दिनों 'वन्दे मातरम्' का उद्घोष किया जाने लगा। भारत को मातृभूमि और 'माँ' के रूप में पूजने, उसे अंग्रेजी दासता के बंधनों से मुक्त कराने के लिए जन चेतना जगाई जाने लगी। सरकार को आंदोलन सहन नहीं हुआ। उसने फूट डालने और दमन करने की नीति अपनाई। आंदोलन में भाग लेने वालों को जुर्माने, सुविधाओं में कटौती और नौकरी आदि में रुकावट डालने की नीति अपनाई गई। फिर भी आंदोलन नहीं रुका तो दमन की नीति अपनाई गई।

दमन ने लोगों का रोष और भड़का दिया। सशस्त्र विरोध और क्रांतिकारी गतिविधियाँ शुरू हो गईं। जन भावनाओं के आगे सरकार को झुकना पड़ा और

सन् १९११ में आखिरकार बंगाल का विभाजन रद्द कर दिया गया। इतिहासकार रमेशचंद्र मजूमदार लिखते हैं कि 'भारतीय जनता ने पहली बार प्रबल प्रतिरोध की भावना व्यक्त की। उन दिनों भारत के विभिन्न भागों में जिस तरह गुप्त समितियाँ बनने और सक्रिय होने लगी थीं, उसका स्पष्ट उद्देश्य अंग्रेजी राज को उखाड़ फेंकना था। न केवल बंगाल में, बल्कि पंजाब और मद्रास जैसे दूरवर्ती प्रांतों में भी गहरी अशांति की आम हालत थी। सरकार की कठोर कार्रवाइयाँ भी क्रांतिकारियों को रोक न सकी। वह उबाल बंग भंग को वापस लेने के सिवाय किसी और कदम से थमने वाला नहीं था। दिसंबर १९११ में दिल्ली दरबार के समय सम्राट जार्ज पंचम और महारानी ने बंगाल विभाजन को रद्द कर दिया।'

विपरीत हुआ अनुकूल

दिल्ली दरबार की दूसरी घोषणा में भारत की राजधानी कलकत्ता से बदल कर दिल्ली ले आने का निर्णय था। दोनों घोषणाएँ एक दूसरे की पूरक साबित हुईं। राजधानी यहाँ ले आने से क्रांतिकारियों का उबाल थोड़ा ठंडा हुआ। वह उसी तरह विस्फोटक रूप लेता जाता तो संभव था कि स्वातंत्र्य चेतना जगाने का काम वर्षों तक प्रभावशाली ढंग से नहीं चलता। अंग्रेज सरकार को यह लाभ हुआ कि वह जन आक्रोश का तुरंत शिकार होने से बच गई। इस फैसले में मुख्य भूमिका रखने वाले वायसराय लार्ड हार्डिंग की हालांकि आलोचना हुई थी। यहाँ के अंग्रेज अधिकारियों और ब्रिटेन के लोगों ने उसे खूब बुरा-भला कहा, लेकिन समय ने सिद्ध कर दिया कि उसका फैसला सही था। तीन साल बाद पहला विश्वयुद्ध छिड़ गया। भारत के राजा-महाराजाओं और समाज के श्रेष्ठवर्ग ने अंग्रेजों का खुलकर साथ दिया। युद्ध समाप्त होने के बाद अंग्रेज सरकार अपने कई वायदों से मुकर गई, लेकिन भारतीय समाज में आत्मविश्वास और जागरण की जो लहर उत्पन्न हुई थी, वह निरंतर तीव्र होती गई।

१९११ की राजनैतिक घटनाएँ भारत की भावी दिशा तय करने वाली हलचलें थीं। उस वर्ष को देश का भविष्य निश्चित करने वाला वर्ष भी कह सकते हैं। सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी उन दिनों कई महत्वपूर्ण गतिविधियाँ चल रही थीं। उस वर्ष भारतीय धर्म और अध्यात्म की एक महत्वपूर्ण आस्था को नई अभिव्यक्ति भी मिली। नवजागरण के उस दौर में राजा राम मोहन राय, केशवचंद्र सेन, महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर, महादेव गोविंद रानाडे,

भारत भाग्य विधाता

गोपाल कृष्ण गोखले, लोकमान्य तिलक आदि चिंतक और नेता भारत के स्वर्णिम अतीत और आंतरिक वैभव का साक्षात् करा रहे थे। मैडम ब्लेवाट्स्की, कर्नल ऑलकाट, एनी बीसेंट आदि यूरोपीय विद्वान भारतीय अध्यात्म के गीत गा रहे थे। स्वामी विवेकानंद ने पश्चिम में भारतीय धर्म-संस्कृति का जो विजय उद्घोष किया था, उसकी गूँज इन विभूतियों की वाणी और कर्म में सुनाई देती थी।

पश्चिमी विद्वान भारतीय धर्म दर्शन के तात्त्विक रूप की मुक्त कंठ से सराहना करते थे, उस आधार पर नए विश्व की रचना का स्वप्न भी देखते थे, लेकिन उन्हें यहाँ के कई प्रचलनों से भारी परहेज था। कुछ भारतीय विभूतियाँ और प्रवृत्तियाँ भी इसी धारा को अपनाए हुए थीं। रामधारी सिंह दिनकर ने उस स्थिति का विश्लेषण करते हुए लिखा है, 'ये लोग केवल संशोधित हिन्दुत्व का समर्थन करना चाहते थे, किन्तु केवल संशोधित हिन्दुत्व के साथ समग्र हिन्दुत्व का त्राण नहीं था। आखिर इस बात का क्या जवाब था कि इन सुधारकों और प्रगतिशील विचारों के बावजूद सारी जनता पत्थर को पूज रही थी, राम और कृष्ण को अवतार मान रही थी एवं पुराणों और पुरोहितों को छोड़ने के लिए तैयार नहीं थी? उस समय का हिन्दुत्व ईसाइयत का भारतीय संस्करण हो गया था।'

एनी बीसेंट ने संशोधित या तथाकथित प्रगतिशील हिन्दुत्व को अधूरा और खण्डित बताया। उन्होंने केवल वेद, उपनिषद् और गीता के तत्त्वज्ञान की विवेचना ही नहीं की, बल्कि स्मृति, पुराण, धर्मशास्त्र और महाकाव्य से जब, जहाँ जो संदर्भ मिले, सनातन धर्म के समग्र रूप का आख्यान आरंभ कर दिया। इंग्लैण्ड में जन्मी और वहीं शिक्षित हुई, पली-बढ़ी एनी बीसेंट के मुँह से पुनर्जन्म, अवतार, देवता, योग, जप, तप, अनुष्ठान, सिद्धियाँ और चौरासी लाख योनियों की बातें सुनकर वे भारतीय भी अचकचा कर उठ गए जो आधुनिक सुधारवादियों के प्रचार से संशय में पड़ गए थे। प्रचार के प्रभाव से वे अपने आपको लज्जित भी अनुभव करने लगे थे। सन् १९१४ में उन्होंने अपने एक भाषण में कहा कि 'सनातन धर्म की रक्षा भारत और यहाँ के लोग ही कर सकते हैं। अपने चालीस वर्ष के गंभीर चिंतन के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि सनातन धर्म विश्व के सभी धर्मों से ज्यादा वैज्ञानिक, गहन और आध्यात्मिकता से परिपूर्ण है। इसकी रक्षा यहीं के लोग कर सकते हैं। हम बाहरी लोग आपकी चाहे जितना प्रशंसा करें, आपका उद्धार आपके ही हाथ में है। आप किसी प्रकार के भ्रम में न रहें। सनातन धर्म के बिना भारत के सामने कोई भविष्य नहीं है।'

एनी बीसेंट ने सनातन धर्म का जो स्वरूप पश्चिमी विद्वानों और उनके भारतीय अनुयायियों को समझाया था, उसके स्रोत वेद, उपनिषद, दर्शन, स्मृतिशास्त्र, रामायण, महाभारत और पुराण आदि ग्रंथ थे। उसमें देवी-देवता, सिद्ध आत्माएँ, अवतार, दैवी शक्तियाँ और ईश्वर के सगुण-निर्गुण सभी रूप समाविष्ट हैं। तीर्थ, आश्रम, देवस्थान, मंदिर, देवालय और आश्रम आदि पवित्र स्थानों पर उसकी तरंगे विशेष रूप से अनुभव की जा सकती हैं। वह गूढ़ तत्त्व चिंतन से लेकर सहज लोकविश्वासों में, विविध रूपों में प्रकट होता है। ब्रिटेन से चलकर आई भारत भक्त विदुषी एनी बीसेंट ने १९२० के बाद भारत की स्वतंत्रता के लिए चल रहे प्रयत्नों को भी प्रेरित किया, लेकिन उनका मूल योगदान सांस्कृतिक था।

बनारस के सेंट्रल हिन्दू कॉलेज में उन्होंने भारत के तत्त्वज्ञान की मीमांसा की और कहा कि सनातन धर्म का पुनर्जीवन, उत्थान और उसे सुदृढ़ बनाना पहला भारतीय अनुष्ठान है। इस कार्य के साथ ही आत्म सम्मान, अतीत का गौरव, भविष्य में विश्वास और भारत के साथ विश्व के नए निर्माण के दायित्व भी जुड़ जाते हैं। यह भाषण सन् १९११ में दिया गया था। उल्लेखनीय है कि इस कॉलेज की स्थापना एनी बीसेंट ने स्वयं की थी। स्थापना और विकास के लिए उन्होंने अपनी संचित संपदा लगा दी थी। यही कॉलेज आगे चलकर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के रूप में परिणत हो गया। हमारे चरित नायक के दीक्षा गुरु पंडित मदन मोहन मालवीय ने विश्वविद्यालय की स्थापना के बाद उसके विकास और गौरव के लिए जो किया अथवा कर सके, उसके मूल में भारतीय आत्मा एनी बीसेंट का परिश्रम ही जाता था।

सूक्ष्म जगत में आह्वान

बनारस के पंडितों द्वारा 'सर्वशुक्ला सरस्वती' के रूप में संबोधित एनी बीसेंट की एक रहस्यपूर्ण घोषणा का उल्लेख भी आवश्यक है। मूलतः यह घोषणा 'थियोसोफिकल सोसायटी' या 'ब्रह्मविद्या समाज' की संस्थापक मैडम ब्लेवाट्स्की की है। सोसायटी या समाज के अनुयायी मानते हैं कि हिमालय के शरीरधारी और अशरीरी कई सिद्ध संतों से मैडम ब्लेवाट्स्की के संपर्क हैं। उन सिद्ध संतों की प्रेरणाओं से सोसायटी की जनक विदुषी ने कई रहस्यमयी घोषणाएँ कीं। उनमें एक यह कि हिमालय की सिद्ध आत्माएँ भारत का उसकी

नियति से साक्षात्कार कराने के लिए कृतसंकल्प हो गई हैं। उनकी योजना के अनुसार कोई समर्थ, दिव्य आत्मा शरीर धारण करेगी, जो एक छोटे से आरंभ के साथ निरंतर सक्रिय होती जायेगी और उपयुक्त समय पर पूरे वैभव के साथ प्रकट होगी।

मैडम ब्लेवाट्सकी के सहयोगी कर्नल ऑलकाट का निरूपण था कि बोधिसत्व (भगवान बुद्ध का अवतार) का एक अवतरण इन्हीं दिनों होना है और उपयुक्त समय पर वे प्रकट होंगे। उनके जन्म लेने योग्य परिस्थितियाँ नहीं बनीं तो हो सकता है वे किसी शरीर को चुन लें। उस शरीर के माध्यम से अपना काम करेंगे। एनी बीसेंट की अनुभूति कुछ अलग ही तरह की थी। सार्वजनिक जीवन में, खासकर राजनैतिक चेतना जगाने के लिए काम कर रहे लोग अपने गुह्य अनुभवों को सबके सामने उजागर नहीं करते। सार्वजनिक रूप से कहने पर विशिष्ट राजनैतिकों को भी अपनी छवि का संकोच होता है। एनी बीसेंट मूलतः आध्यात्मिक महिला थी। उन्हें जैसा अनुभव हुआ, कह दिया।

आस्ट्रेलिया में कुछ साधकों को एक ध्यान-प्रयोग समझाते हुए उन्होंने बताया कि यह प्रयोग सूक्ष्म जगत के संपर्क में ले जाता है। दिव्य और सिद्ध आत्माओं का सान्निध्य मिलता है। साधना में गति होने के बाद अपने बारे में ही नहीं समाज और विश्व के बारे में भी आभास होने लगता है। ऐसे ही प्रयोग में गुजरते हुए उन्होंने अनुभव किया था कि १९११ में एक ऐसे शिशु का जन्म होगा जिसकी सूक्ष्म जगत् में देर से प्रतीक्षा की जा रही है। वह शिशु सामान्य शिशुओं की तरह पलेगा, बढ़ेगा और धीरे-धीरे सक्रिय होगा। जैसे-जैसे वह सक्रिय होता जायेगा, वैसे-वैसे सनातन धर्म पर छाए बादल छटने लगेंगे। वह अपने उज्ज्वल प्रखर रूप में प्रकट होगा।

शिविर में कर्नल ऑलकाट के विद्यार्थी और थियॉसोफी के पारंपरिक साहित्य का अध्ययन करने वाले साधक भी थे। उनमें से एक ने जिज्ञासा की कि महात्माओं ने तो कहा है कि बोधिसत्व अपने लक्षणों के साथ प्रकट होंगे। वे लक्षण पहले से ही निर्धारित हैं। उन्हीं के आधार पर तथागत के नये अवतार की पहचान की जायेगी। आपकी बात उनसे अलग तरह की है। क्यों? यह पूछने पर एनी बीसेंट ने कहा था कि 'मैं ध्यान की अवस्था में हुआ अनुभव बता रही थी। अन्य महानुभावों की बातों का खण्डन करना उद्देश्य नहीं है। कहीं कोई विरोध दिखाई देता है, तो यह अर्थ नहीं है कि सत्य अलग-अलग है। एक ही सत्य अपनी स्थिति और दृष्टि के कारण भिन्न पहलुओं में दिखाई देता है।'

एनी बीसेण्ट ने अपने अनुभव को बाद में भी कुछ अवसरों पर कहा। यह चर्चा साधकों के बीच ही हुई। बोधिसत्व को मानवी कलेवर में उतारने, नये अवतार की प्रतीक्षा करने, कई लोगों द्वारा अपने आपको भगवान घोषित करने और कुछ अन्य कारणों में कतिपय विलक्षणताएँ दिखाई देने के बाद उन्हें साक्षात् ईश्वर घोषित करने के प्रसंग भी आए। एनी बीसेंट की घोषणा इन सबसे अलग थी। वे किसी चमत्कार की घोषणा नहीं कर रही थीं, न ही राम और कृष्ण की लीलाओं के काव्यात्मक वर्णनों की उसी रूप में पुनरावृत्ति होने की बात कह रही थीं। उनकी घोषणा यह थी कि बताये गये वर्ष में जन्म लेने वाले एक शिशु का व्यक्तित्व इतना प्रखर और तेजस्वी होकर उभरेगा कि लाखों, करोड़ों लोगों के आध्यात्मिक जीवन में नयी आशा का संचार हो सकेगा।

उस शिशु का जन्म कहाँ होगा? पारिवारिक पृष्ठभूमि क्या होगी? किस तिथि, नक्षत्र में वह जन्म लेगा? इन बातों का उन्होंने कोई जिक्र नहीं किया। एनी बीसेण्ट का संकेत तात्कालिक और आश्वासन मात्र था। इसके पीछे निकट भविष्य में कोई बहुत बड़ा चमत्कार होने की भविष्यवाणी कर लोगों को निश्चित हो जाने का संदेश देने का उद्देश्य कतई नहीं था।

एनी बीसेण्ट ने सन् १९११ में वाराणसी की ही एक कक्षा में स्पष्ट किया था। संभवतः वह बसंत पंचमी का दिन था। उन्होंने साधक मण्डली से कहा- 'सनातन धर्म में जो शक्ति निहित है, वह शक्ति किसी तारे या ग्रह-नक्षत्र के कारण नहीं है, बल्कि स्वभाव से ही है। जब भी धुँध गहरी होती है, जब भी उसका स्वरूप धुँधलाने लगता है, बाहरी कारण उसे ढँकने लगते हैं, तो एक स्थिति आने पर वह पूरे वेग से प्रकट करता है। सनातन धर्म भारत का ही नहीं पूरे विश्व का भविष्य है। उस पर छाये मल-विक्षेप दूर करने के लिए सामान्य आत्माएँ पर्याप्त, समर्थ नहीं होतीं। विशिष्ट आत्मा, जिसे सनातन धर्म से ऊर्जा और पोषण लेने वाले सिद्धों का सहयोग भी प्राप्त हो, ही उस प्रयोजन को पूरा करती हैं। वह समय अब आ गया है।'



गंगा से यमुना तक

अक्टूबर १९१५ में बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी एक्ट पास होने के चार महीने बाद माघ शुक्ल प्रतिपदा को विश्व विद्यालय की स्थापना हुई। संवत् १९७२ (सन् १९१६) की उस तिथि को वायसराय लार्ड हार्डिंग ने शिलान्यास किया। बंगाल के गवर्नर, तीन प्रांतों के उपराज्यपाल, बारह महाराजा और कई विद्वान्, जमींदार, साहूकार आदि इस अवसर पर उपस्थित थे। यह विश्वविद्यालय, एनी बीसेंट के स्थापित सेंट्रल हिन्दू कॉलेज का ही विकसित रूप था। संकल्प करीब पाँच साल पहले लिया गया था। इसके लिए एनी बीसेंट, महामना मदनमोहन मालवीय और दरभंगा के महाराजा रामेश्वर सिंह ने मिल कर काम शुरू कर दिया था। निश्चय किया गया कि बैंक में पचास लाख रुपये जमा हो जाए और एक करोड़ रुपये इकट्ठे होने की स्थिति बन जाए तभी विश्वविद्यालय की विधिवत स्थापना हो।

सरकार और कुछ राजा-महाराजा मिलकर भी इतना संचय कर सकते थे, लेकिन महामना मालवीय जी ने समर्थ लोगों के सहयोग के साथ जन साधारण से दान लेने का प्रस्ताव भी रखा। सामान्य आय स्थिति के लोगों से चंदा जुटाने का उद्देश्य उनसे आत्मीयता जोड़ना था। समर्थ लोगों के विपुल सहयोग के साथ छोटे-छोटे अंशदानों से मार्च १९१३ तक इक्कीस लाख रुपये जमा हुए। पचास लाख की अभिलषित राशि जुटाने में दो साल और लगे। इतने संचय में बीकानेर, जोधपुर और कश्मीर रियासतों से मिले वार्षिक अनुदान भी शामिल थे। जन सहयोग जुटाने के लिए पूरे देश के विद्वानों, नेताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं और पुरोहितों, उपदेशकों से भी अपील की गई थी। सभी वर्गों के सैकड़ों लोग जुटे और दिन रात लगे रहे। पाँच वर्ष की अवधि में लक्ष्य का आधे से ज्यादा भाग इकट्ठा हो गया। अंशदान में मुट्ठी अनाज से लेकर एक पैसा, आधा पैसा और आने दो आने जितनी छोटी रकम भी थी।

व्रज क्षेत्र में जो गिने-चुने लोग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए चंदा इकट्ठा कर रहे थे, उनमें पंडित रूपकिशोर शर्मा का नाम अन्यतम है। आगरा के पास आँवलखेड़ा गाँव में बसे पंडित रूपकिशोर शर्मा भागवत के उद्भट विद्वान् थे। दूर-दूर तक वे कथा और धर्मोपदेश करने जाते थे। महामना मदनमोहन मालवीय उनकी व्याख्यान शैली से बहुत प्रभावित थे। कुछ समय तक यों दोनों एक ही गुरुकुल में रहे थे, लेकिन दोनों के स्नेह संबंधों का आधार भागवत प्रेम ही था। भागवत कथा के समय श्रोताओं से सनातन धर्म के लिए सहयोग जुटाने की सीख मालवीय जी ने ही दी थी। लोगों से छोटी-छोटी राशि इकट्ठी करना निश्चित होने के बाद मालवीय जी ने उन्हें कम से कम ग्यारह हजार रुपये जुटाने के लिए कहा था। पंडित रूपकिशोर ने अलग-अलग समय पर यह रकम पहुँचाई। किस्तों में भेजी गई इस राशि में भागवत कथा कराने वाले यजमानों का योगदान भी समाहित है। कितनी रकम कहाँ से भेजी गई, इसका पूरा हिसाब नहीं है। एक बड़ा हिस्सा गुप्तदान के रूप में भेजा गया था। पंडित जी के वंशज इस बारे में बताया करते थे।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के एक पुरोधा होने के नाते उद्घाटन के समय पंडित रूपकिशोर शर्मा भी पहुँचे। व्रज क्षेत्र के कुछ पुरोहित विद्वान् भी उनके साथ थे। कुछ स्वजन-संबंधी और परिवार के लोग काशी की यात्रा करने के उद्देश्य से चल पड़े थे। परिवार के साथ ही करीब साढ़े पाँच साल का एक शिशु भी था। शिलान्यास और स्थापना समारोह में पण्डित जी अपने दो सहयोगियों को लेकर व्यवस्था का काम देखते रहे। दूसरे लोग काशी में देवदर्शन और गंगा स्नान, अनुष्ठान आदि कृत्यों में व्यस्त हो गए।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का स्थापना समारोह कई दिन तक चला। विश्वविद्यालय का उद्देश्य विद्यार्थियों को आधुनिक विषय पढ़ाने के साथ सनातन धर्म और भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्वों को समझाना भी था। बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी अधिनियम में ही व्यवस्था थी कि विश्व विद्यालय में हिन्दू धर्म के साथ विज्ञान की उच्च स्तरीय शिक्षा का प्रबंध होगा। यहाँ सभी जाति और सम्प्रदाय के छात्र पढ़ सकेंगे। विशेष बात यह थी कि विश्वविद्यालय के प्रबंध और संचालन में हिन्दू धर्म मानने वाले को ही दायित्व सौंपने की व्यवस्था की गई। प्रबंध समिति में गैर सरकारी सदस्यों का बाहुल्य होने की व्यवस्था भी अधिनियम में की गई। विश्वविद्यालय का जो स्वरूप उभर रहा था, वह पूरी तरह सनातन धर्म के अनुरूप था।

गंगा से यमुना तक

आलोचकों ने इसे आरंभ से ही पोंगापंथी, साम्प्रदायिक और अनुदार आदि कहना शुरू कर दिया था। कुछ लोगों ने विश्वविद्यालय के नाम से 'हिन्दू' शब्द हटाने के लिए दबाव डालने की कोशिश की। आन्दोलन तो हाल तक भी चलते रहे हैं। उन दबावों की आरंभ से ही परवाह नहीं की गई। बाद में महात्मा गाँधी ने भी हिन्दू शब्द हटाने की माँग करने वालों को गलत ठहराया था। जिस नाम से वह आज प्रसिद्ध है, उसी का समर्थन किया था।

विश्वविद्यालय का स्वरूप हिन्दू धर्म विज्ञान को उच्च स्तरीय अभिव्यक्ति देने के लिए गठित किया गया था। स्वाभाविक है कि स्थापना समारोह के यज्ञ याग, प्रवचन, कथा आदि के कार्यक्रम भी रखे जाते। आँवलखेड़ा से गए पंडित रूपकिशोर जी को भी इन कार्यक्रमों का आंशिक दायित्व सौंपा गया। यज्ञ याग और अन्य धर्म अनुष्ठानों के लिए आए पुरोहितों को ठहराने, उनकी आवश्यकताओं का ध्यान रखने और नगर भ्रमण कराने के काम में वे लगे हुए थे। उस अवधि में उन्हें अपने परिजनों की सुध नहीं रही। कौन कहाँ ठहरा है, क्या खा रहा है, कहाँ विश्राम कर रहा है आदि की चिंता करना तो दूर रहा, उन्हें उनका ध्यान भी नहीं रहता था।

समारोह शुरू हुए पाँच दिन बीते होंगे। वसंत पंचमी का दिन था। विद्या की देवी सरस्वती के अवतरण का दिन व्याख्यान, गोष्ठी, अधिकारियों की बैठक आदि नियत क्रम के अनुसार चलते रहे। सरस्वती पूजा उस दिन का विशेष आयोजन था। आम के पत्तों और बौरों से वेदी सजाई गई। साठ-सत्तर विद्यार्थी और अध्यापक वेदी के सामने बैठे। वेदी के सामने ही यज्ञकुण्ड स्थापित किया गया। मंत्रोच्चार के साथ यज्ञ आरंभ हुआ। मालवीय जी कर्मकाण्डों का संचालन कर रहे थे। सामने बैठे छात्र भी अनुकरण करते हुए मंत्र बोल रहे थे। इन बच्चों में पंडित रूपकिशोर जी के पुत्र श्रीराम भी थे। उम्र चार पाँच वर्ष के बीच रही होगी। सामान्यतः यह बालक माँ और परिवार के लोगों के साथ रहता था। उस दिन पंडित जी कुछ सोच कर वहाँ ले आए थे। सरस्वती पूजा में भाग लेने के अलावा कुछ समय मालवीय जी का सान्निध्य लाभ कराना भी शायद उद्देश्य रहा हो।

पर्व उत्सव की प्रक्रिया अपने ढंग से चलती रही। छात्र जब मंत्रों का उच्चारण करते या दोहराते तो वातावरण और भी मनोरम हो उठता था। बच्चे ही थे। कहीं-कहीं उच्चारण में दोष आ जाता था, लेकिन उस ओर ज्यादा लोगों ने

ध्यान नहीं दिया। उपस्थित पंडितों और अध्यापकों ने उनका उत्साह बढ़ाना ही श्रेयस्कर समझा। इन बच्चों में सबसे छोटी उम्र के बालक श्रीराम थे। वह जब मंत्र पाठ करते तो मालवीय जी की दृष्टि उनकी ओर पड़ जाती। इतने छोटे बालक को मंत्रोच्चार करते देख वे अपलक निहारते रह जाते। पर्व देवता का पूजन सम्पन्न होने और प्रसाद वितरण के बाद मालवीय जी उस बालक के पास आए। स्नेह से सिर पर हाथ फेरा।

निकट आते ही बालक श्रीराम ने उनके चरणों में प्रणाम कर लिया था। दुलारते हुए मालवीय जी ने पूछा—‘तुम्हारे पिता कहाँ हैं, वत्स?’ बालक श्रीराम कुछ बोलते इससे पहले ही पंडित रूपकिशोर जी सामने आ गए। मालवीय जी के सामने विनम्र भाव से खड़े हो गए और कहने लगे—‘यह आपका ही स्नेह और वात्सल्य है महामना!’ मालवीय जी ने बालक के बारे में दो-चार बातें और पूछी। उसे गौर से कुछ देर देखते रहे और पूछा—उपनयन हो गया है क्या? पंडित जी ने कहा—अभी प्रतीक्षित है। आपके हाथों सम्पन्न हो तो अहो भाग्य!

मालवीय जी के चेहरे पर स्मिति की रेखा खिंच गई। उनकी सफ़ेद मूँछों के पीछे खिले हुए होंठ स्पष्ट प्रतिभासित हो रहे थे। जैसे कह रहे थे कि पंडित जी आपने मेरे मन की बात अपने मुँह से कह दी। मालवीय जी ने कहा कि मैं ही मंत्र दीक्षा दूँगा। संकल्प लिया जा चुका है, इसलिए दीक्षित माना जा सकता है। अभी क्रिया सम्पन्न नहीं हुई, संकल्प हुआ है, इसलिए दीक्षा का आरंभ हुआ मानिए। उपयुक्त समय पर दीक्षा भी संपन्न हो जायेगी। वह उपयुक्त समय कुछ वर्ष बाद आना था। उस दिन परिसर में और कार्यक्रम भी थे। श्री बीसेण्ट का व्याख्यान होना था। मैसूर (अब कर्नाटक) के महाराज कृष्णराज वादियार, डॉ. सुन्दरलाल आदि आभिजात्य जनों के साथ भी महामना का अलग-अलग विमर्श चलना था।

स्थापना समारोह विश्वविद्यालय की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण था ही और भी कई घटनाएँ थी, जिन्होंने उसे इतिहास के नए मोड़ लाने वाला आयोजन बना दिया। सनातन धर्म और संस्कृति के नए उन्मेष के साथ विद्या, धन, कला, शक्ति, साधना और शौर्य की सात धाराओं वाली गंगा जैसे वहाँ परिवर्तित हो उठी थी। महात्मा गाँधी ने राष्ट्रीयता की भावनाओं से ओतप्रोत भाषण वहाँ दिया था, जिसमें प्रतिभाओं को ललकारा गया था। उन्हें अपने कर्तव्य से विमुख बताते हुए गाँधी जी ने राजा महाराजाओं और श्रीमंतों की कड़ी आलोचना कर दी थी।

व्याख्यान में राजा महाराजा भी उपस्थित थे। गाँधी जी की आलोचना से वे उत्तेजित हो उठे। उन्होंने कार्यक्रम का बहिष्कार कर दिया और उठकर चले गए। विरोध में उठकर जाने वालों में एनी बीसेन्ट भी थीं। मदनमोहन मालवीय उस आयोजन में शांत बैठे रहे। उन्होंने लोगों के उठकर जाने की परवाह नहीं की। किसी भी तरह का दबाव माने बिना सत्य को स्वीकार करने और उसके साथ खड़ा होने के और भी कई प्रसंग हैं, जो उन दिनों घटे और उनके संस्कार वातावरण में घुले-मिले और वहाँ आए लोगों के चित्त में जाने अनजाने छापे।

महामना के सहयोगी

मालवीय जी के सहयोगियों में पंडित रूपकिशोर आदर से याद किया जाने वाला नाम था। राजनीति, शिक्षा, समाज सुधार और सेवा कार्यों में निरत रहते हुए भागवत के कथा प्रसंगों और तत्त्वदर्शन की विवेचना मालवीय जी का प्रिय धर्म अनुष्ठान था। पंडित रूपकिशोर जी अपने क्षेत्र में भागवत व्यास के रूप में श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाते थे। पंडित रूपकिशोर अपने आपको महामना का विनम्र शिष्य और अनुयायी ही कहते थे। उनका क्षेत्र भी अपेक्षाकृत छोटा था, लेकिन ब्रजमण्डल में वे मालवीय जी की कथा शैली के प्रतिनिधि प्रवक्ता कहे जाते थे। उस क्षेत्र के राजा-रजवाड़ों में पंडित जी का बहुत मान-सम्मान था।

कथा उपदेश वाणी की कला नहीं है। अपनी बात कहने का ढंग आना चाहिए। उसका प्रभाव पड़ता है, लेकिन जो कहा जा रहा है, उसके पीछे आस्था का बल भी होना चाहिए। यह बल उपदेशों को पहले अपने जीवन में उतारने से आता है। भागवत करुणा और भक्ति का शास्त्र है, वह प्रेत-पिशाचों को भी कषाय-कल्मषों से मुक्त करता है। धुंधकारी प्रेत की कथा भागवत कथा के समय महात्म्य प्रसंग में हर बार सुनाई जाती है। करुणा और भक्ति के तत्त्व पंडित जी के जीवन में पूरी आभा के साथ प्रकट हुए थे। उनके सम्पर्क में आकर बहुत लोगों ने अपनी बुराईयाँ छोड़ी। छोटे-मोटे दोष-विकारों से मुँह मोड़ने की सैकड़ों घटनाएँ हैं। एक अवसर ऐसा भी आया जब पंडित जी के निवास से कुछ दूर जंगल में रहने वाले धांधू नामक डकैत ने लूटमार करना छोड़ दिया। इलाके में उसका आतंक था। उसका अपना कोई गिरोह नहीं था, लेकिन वह खुद बहुत बलवान था। उसमें पचीस तीस लोगों से जूझने की सामर्थ्य थी।

पंडित जी कथा कहने के लिए जा रहे थे कि रास्ते में धांधू से मुलाकात हो गई। कहने लगा आप ब्राह्मण देवता हैं, आपका अनादर तो नहीं करूंगा, लेकिन मैं दस्यु हूँ। लूटना छोड़ दूँ तो अपना और आश्रितों का निर्वाह कैसे करूंगा? इसलिए आपके साथ बल प्रयोग तो नहीं करूंगा। सिर्फ यही चाहूंगा कि आपके पास जो कुछ भी है, वह चुपचाप रख दें।

धांधू ने पूरे वेग से कहा था। सामान्य मनःस्थिति का व्यक्ति धांधू के दमखम, बुलन्द आवाज और डपट से काँपने लगता। पंडित जी पर उसके डरावने व्यक्तित्व का कोई असर नहीं हुआ। जिस निश्चित भाव से वे जा रहे थे, उसी निर्द्वन्द्व भाव से ठिठक कर खड़े हो गए और धांधू को निहारने लगे। अपनी धमकी का कोई असर होता न देख डाकू अचरज में पड़ गया। उसने कहा—पंडित जी मैंने जो कहा, वह आपने सुन लिया है न। पंडित जी ने कहा सुन लिया है, पर मैं अभी तुम्हें कानी कौड़ी भी नहीं दूँगा। अगर कथा सुनने चलते हो तो वचन देता हूँ कि वहाँ जो भी दान दक्षिणा आएगी, सब तुम्हें सौंप दूँगा। धांधू की आँखें चौड़ी हो गई। पहले अचरज से बड़ा अचरज सामने आ गया था।

दोनों में कुछ देर संवाद हुआ। पता नहीं पंडित जी की किस बात का असर हुआ कि धांधू कथा सुनने के लिए राजी हो गया। वह साथ चल पड़ा। भागवत सप्ताह की पूरी अवधि में उसने ध्यान से कथा सुनी, पुराने संस्कार बीच-बीच में जोर मारते। वह लोगों को डराने धमकाने लगता, लेकिन यह देर तक नहीं चला। भागवत सप्ताह पूरा होने के बाद पंडित जी ने दान-दक्षिणा समेट कर धांधू के हाथ में सौंपी। रुपये, पैसे, आभूषण और मेवों आदि से गठरी बंध गई थी। डाकू ने गठरी उठाई सिर पर रखी और कह उठा आदेश करें प्रभुजी किधर चलना है? पंडित जी ने कहा जहाँ तुम ले जाना चाहते हो ले जाओ, मैंने अपना वचन पूरा कर दिया। धांधू ने गठरी उतार कर एक तरफ रखी और पंडित जी के चरणों में लोट गया। जोर-जोर से रोते हुए वह कह रहा था, मुझे राह मिल गई भगवन्। आप मुझे क्षमा करें। मैं मेहनत और ईमानदारी की कमाई ही खाऊँगा। उसी से अपने परिवार का गुजारा चलाऊँगा। अनुनय विनय कर वह बोझ पंडित जी के घर तक छोड़ने गया। जिसने भी देखा एक बार तो विश्वास नहीं किया कि यह धांधू डाकू है।

मातृत्व की विलक्षण अनुभूति

आँवलखेड़ा में एक पुरानी हवेली थी। भाई, भतीजे, चाचा-ताऊ सब उसी में रहते थे। संयुक्त परिवार था। यजमानों, जिज्ञासुओं और स्वजन-संबंधियों का आना-जाना भी बना रहता था। खासी चहल-पहल रहती। पंडित रूप किशोर जी तब पचपन वर्ष के थे। उनकी पत्नी दानकुँवरि को घर में सब लोग ताई जी कहते थे। पंडित रूपकिशोर सब भाई-बहिनों में बड़े थे। घर में जितने भी बच्चे थे, उनका पंडित जी को ताऊ जी और उनकी जीवन संगिनी को ताई कहना स्वाभाविक ही था। वे परिवार के सभी सदस्यों का ध्यान रखती। देवरानियों और बहुओं के लिए वे जेठानी या रिश्ते में सास नहीं वात्सल्य और क्षमा से भरी बड़ी बहिन या माँ से भी बड़ी ताई ही लगती थी। रात के चौथे पहर उठती और देर रात तक जागते हुए स्वजन संबंधियों का और मेहमानों का ध्यान रखने में व्यस्त रहती।

सन् १९११ में उन्हें मातृत्व का आभास हुआ। पहली संतान गर्भ में आई। ताई जी को कुछ विलक्षण अनुभव होने लगे। बहुत सहजता से वे बताती थी कि इन अनुभवों से उन्हें डर नहीं लगता, अटपटा भी महसूस नहीं हुआ। पास-पड़ोस की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों से चर्चा की तो उन्होंने बताया कि कुल देवता प्रसन्न हो रहे हैं। ये प्रतीतियाँ वही करवा रहे हैं। बहुत बाद में स्पष्ट हुआ कि ये अनुभव पूर्वजों या कुल देवताओं के अनुग्रह आशीर्वाद स्वरूप ही नहीं है। वे बताया करती थी कि एक सुबह घर में दूध औटाया जा रहा था। चूल्हे पर बर्तन चढ़ा हुआ था। स्नान पूजा से निवृत्त हो कर वे और दिनों की तरह बाद में किए जाने वाले कार्यों के बारे में सोच रही थी। शरीर में इतनी स्फूर्ति और सक्रियता थी कि देर रात तक काम करना पड़ा, तो भी कभी सुस्ती नहीं आई। कठोर परिश्रम करने पर भी थकान अनुभव नहीं हुई। उस सुबह न जाने क्या हुआ कि झपकी लग गई। वे बैठी हुई थी और पलकें मुँद गईं। लगा जैसे नींद आ गई है और कोई सपना देख रही है।

सपना किसी अज्ञात प्रदेश के वन का है। वे उस निर्जन प्रदेश में अकेली हैं। चारों ओर सूर्य की स्वर्णिम आभा बिखरी है। पूर्व दिशा में तप्त अग्नि पिण्ड की तरह सिन्दूरी लाल रंग का गोला उदित हो रहा है। उसी उदित सूर्य का प्रकाश चारों ओर फैल रहा है।

वातावरण में व्याप्त सुगंध ने ताई जी को अभिभूत कर दिया। स्वप्न दृश्य में ही वे अपनी सुध-बुध खो बैठी। फिर पूर्व दिशा में उदयाचल के पीछे से उभरता सूर्य पिण्ड धीरे-धीरे प्रखर होता जा रहा है। पिण्ड के मध्य में एक नारी आकृति की झलक दिखाई दे रही है। स्वर्णिम कांति से युक्त वह आकृति हंस पर बैठी है। दायें हाथ में कमण्डल और बायें हाथ में पत्राकार पोथी। ताई जी उस समय स्पष्ट नहीं देख पाई कि कौन सा ग्रंथ है। वे समझी कि भागवत है, क्योंकि पति देव इसी शास्त्र का पाठ-कथा और अनुष्ठान सम्पन्न कराते थे। वह आकृति कुछ क्षण तक दिखाई दी फिर लुप्त हो गई। देखा तो दूध उफन आया है। पतीले से उफन कर कुछ चूल्हे में भी गिर गया। जलती हुई लकड़ियों पर गिरने से छन-छिन की आवाज आ रही थी। उस आवाज से ही तन्द्रा टूटी।

पतिदेव को यह दृश्य सुनाया। ताई जी ने यह भी कहा कि उस देवी के हाथ में भागवत की पोथी थी। पंडित जी ने स्पष्ट किया कि वह पोथी श्रीमद्भागवत की नहीं, वेद की है। भागवत शास्त्र उस पोथी के एक मंत्र का व्याख्या विस्तार ही है। भागवत रामायण आदि ग्रंथों का गायत्री मंत्र की विवेचना में लिखे जाने या उनकी प्रेरणाओं को स्पष्ट करने वाले शास्त्र कहा जाता है। ताई जी को यह दृश्य बाद में भी दिखाई दिया। एक बार दोपहर के समय, तब वे भोजन आदि से निपट चुके स्वजनों का कुशल क्षेम पूछने के बाद कुछ देर के लिए बैठी थी। उस समय वे शाम को किए जाने वाले कार्यों की तैयारी करती हुई रसोई में ही थी।

ताई जी ने एक बार भाव समाधि की दशा में देखा कि वे एक सरोवर के किनारे खड़ी हुई हैं। उसमें कमल खिले हुए हैं। एक बड़े कमल पर वही आकृति विराजमान दिखाई दी, जो पहले कभी सविता मण्डल में विराजी हुई थी। एक स्वप्न में पूर्व दिशा से देवताओं के विमान उड़ते हुए दिखाई दिये। उनमें बैठी देव सत्ताएँ फूल बरसा रही थीं। पंडित जी के अनुसार ये दृश्य अंतर्जगत में हो रही हलचल के संकेत थे। संकेतों को चेतना में होने वाले परिवर्तन भी कह सकते हैं। जब भी किसी पुण्य आत्मा को शरीर धारण करना होता है और वह गर्भ में आ चुकी होती है तो इस तरह के स्वप्न दिखाई देते हैं।

घर-आँगन में भी उन दिनों कुछ विचित्र घटनाएँ होने लगीं। ताई जी बताया करती थी कि अचानक घर में सुगंध फैल जाती जैसे अगरबत्तियाँ जलाई हों या हवन किया जा रहा हो। सुगंध भीनी-भीनी होती थी। कुछ समय वह सुगंध कायम रहती और धीरे-धीरे कम हो जाती। हवेली में अचानक गर्भ बहुत

गंगा से यमुना तक

आने लगी। गाँव का घर था, पास ही गायों को बाँधने के लिए गोठ भी थी। घर की गायें तो होती ही, बाहर से भी आ जाती। कभी-कभार आठ-दस गायें रात भर रुक जातीं। वे आँवलखेड़ा के दूसरे ग्रामीणों की गोठ से ही आतीं। लोग उन्हें ढूँढ़ने निकल पड़ते और पंडित जी के यहाँ पाकर आश्चर्य करते। सामान्य दशा में पराये पशुओं को भगा दिया जाता है, लेकिन ताई जी के मन में उन दिनों विलक्षण परिवर्तन आया कि गायों को भगाने के बजाय वे उनकी सेवा करने लगतीं, उन्हें चारा-पानी देतीं।

ताई जी उस समय जरूर थोड़ी असहज हुई जब हवेली में मधुमक्खियाँ आकर भिनभिनाने लगी। जिस तेजी से वे उड़ती हुई आई, सप्ताह भर में उन्होंने हवेली में चार-पाँच छत्ते बना लिए। परिवार के सभी लोगों को असुविधा हुई। मधुमक्खियाँ किसी को काट नहीं रही थीं। फिर भी घर का वातावरण तो उनके कारण बिगड़ ही रहा था। वहाँ के लोगों ने मधुमक्खियों को भगाने के उपाय सोचे। गाँवों में एक ही उपाय होता है कि आग जला कर, धुँआ किया जाए।

ताई जी को पता चला कि मधुमक्खियों को भगाने के उपाय किए जा रहे हैं, तो वे बिगड़ गई। हालांकि घर में वही सबसे ज्यादा चलती-फिरती थी, उन्हें असुविधा भी होती थी, लेकिन उन्हें अच्छा नहीं लगा कि छत्ते उजाड़े जाए। उन्होंने डपटते हुए से कहा, मधुमक्खियाँ किसी को काटपीट नहीं रहीं। वे अपने घर में रह रहीं हैं। उन्हें नुकसान क्यों पहुँचा रहे हो। वे हमारा कुछ नहीं बिगाड़ रहीं तो हम ही क्यों उनका घर उजाड़ें? ताई जी के डपटने पर सब शांत हो गए।

पंडित रूप किशोर जी उस समय कथा कहने के लिए बाहर गए हुए थे। आठ-दस दिन बाद लौटे। घटनाक्रम पता चला तो उन्होंने भी ताई जी का समर्थन किया। यह आध्यात्मिक तथ्य समझाया कि मधुमक्खियों का आना और घर में छत्ते बनाना शिव संकेत हैं। परिवार में जब कोई दिव्य आत्मा आने वाली हो तब तो यह शिव का वरदान है। उनके भेजे हुए प्राणी फूलों की सुवास और मधु संचित कर ला रहे हैं। यह शिव का अनुग्रह और आने वाली आत्मा के लिए आश्वासन भी है।

गांव घर में बजी बधाई

संवत् १९६८ में आश्विन कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी तिथि (२० सितंबर सन् १९११) को आगरा जलेसर मार्ग पर स्थित उस गाँव की हवेली में सुबह नौ

बजे श्रीराम का जन्म हुआ। पितृपक्ष चल रहा था। सनातन धर्म की मान्यता के अनुसार इन दिनों शरीर छोड़ना और जन्म लेना दोनों ही विलक्षण है। कहते हैं कि जो लोग देह छोड़ते हैं, वे परलोक में ज्यादा नहीं भटकते। उनकी ऐसी कोई भोगवासना शेष नहीं रह जाती कि उसकी तृप्ति के लिए अशरीरी अवस्था में रहना पड़े। वे आत्माएँ या तो सीधे पितृ लोक चली जाती हैं अथवा नया शरीर धारण कर लेती हैं। इस अवधि में जन्म लेने वाली आत्माएँ भी मुक्त प्राय होती हैं। उनकी एकाध सूक्ष्म वासना शेष रहती है, जिसे पूरा करने के लिए वे शरीर में आती हैं।

यह भी कि पितृपक्ष में जन्म लेने वाले लोग उसी वंश-परम्परा के कोई मेधावी पूर्वज होते हैं। वे अपनी परम्परा को आगे बढ़ाने, उसे समृद्ध करने, गौरव बढ़ाने या पिछले जन्मों में जिन लोगों का अनुग्रह उपकार रह गया हो, उसे चुकाने के लिए आते हैं। पितृपक्ष, जन्म कुंडली और जन्म से पहले होने वाली घटनाओं के आधार पर आँवलखेड़ा के पंडितों ने भी कहा कि रूप किशोर जी के यहाँ योगी, यति आत्मा प्रकट हुई है। पचपन वर्ष की उम्र में उनका सौभाग्य उदित हुआ है।

शिशु का जन्म घर में ही नहीं, गाँव में भी उल्लास का विषय बन गया। तीस चालीस घर थे। गायों के आने, मधुमक्खियों के छत्ते बनाने, ताई जी की कही हुई बातें आश्चर्यजनक रूप से चरितार्थ होने की चर्चा आसपास के घरों में ही नहीं गाँवों में भी फैल गई थी। धर्म धारणा और लोकोत्तर ज्ञान के सहज बोध के चलते बुजुर्ग ग्रामीण उन घटनाओं के समय ही कह चुके थे कि पंडित जी के घर में योगी-यति आत्मा जन्म लेने वाली है। जन्म हो गया तो आस-पास के गाँवों से लोग जिन श्रीमंतों और कुलीन परिवारों में पंडित जी कथा कहने जाते थे, वहाँ से भी लोग आए।

गाँव के लोगों को उन सबका आना सहज लगा। विशेष लगा तो यह कि गाँव में साधु-संन्यासियों का आना-जाना बढ़ गया। पहले कभी इक्का-दुक्का साधु ही भूले-भटके आता था। शिशु का जन्म होने के बाद चार-पाँच संन्यासी प्रतिदिन आने लगे। जिस दिन जन्म हुआ उस दिन दस बजे एक ऊँचा पूरा और तेजस्वी संन्यासी हवेली के बाहर आकर खड़ा हो गया। रुदन सुनकर उसने बच्चे को देखने की इच्छा व्यक्त की। ताई जी को संकोच हुआ, लेकिन पंडित जी के समझाने पर मान गई। बच्चे को देख कर संन्यासी ने दोनों हाथ उठाए और दीर्घायु यशस्वी होने का आशीर्वाद देकर वापसी का रुख कर लिया।

गंगा से यमुना तक

ताई जी बताया करती थी कि श्रीराम का जन्म होने के बाद कोठरी में मधुर संगीत गूँजने लगा। अगले दिन सुबह तक मंत्रों के पाठ और रामायण की धुन सुनाई देती रही। ताई जी की आंतरिक स्थिति के कारण भी यह अनुभव हो सकता है, लेकिन संन्यासियों के आने-जाने से उन्हें परेशान होते हुए कई लोगों ने देखा। साधु-महात्माओं को घर के दरवाजे पर आकर ठिठक जाने और बिना कुछ बोले चुपचाप खड़े रहने से वे भी थोड़े-परेशान हुए। उन्हें भेंट-पूजा दी जाती, तो मना कर देते। सौरिगृह की ओर टकटकी लगाकर देखते रहते। बच्चे के रोने की आवाज सुनकर वे चले जाते। साधुओं के आने से पंडित जी को अजीब तो लगता था, लेकिन वे परेशान नहीं होते। ताई जी परेशान होती तो उन्हें समझा-बुझा देते।

बालक सोलह-सत्रह दिन का हुआ होगा। सूतक निवारण के बाद नाम करण संस्कार की व्यवस्था की गई। उस दिन एक विलक्षण घटना घटी, जिससे ताईजी के साथ पंडित जी भी थोड़े विचलित हुए। संस्कार के लिए विजयादशमी का दिन चुना गया। गाँव में रामलीला या रावण दहन जैसे कार्यक्रम नहीं होते थे। घरों में नवाह पारायण बिठा लिया जाता था। सप्तशती पाठ का प्रचलन भी था, लेकिन ज्यादा लोग रामचरित मानस का ही पाठ करते। बच्चे का जन्म होने के कारण घर में सूतक मनाया गया। संध्या वन्दन और पूजा-पाठ के नियम कर्म तो यथावत जारी रहे, लेकिन नवरात्रि की विशेष पूजा नहीं हुई। नवमी के दिन सूतक निवारण हुआ। उसी दिन रामचरित मानस का अखण्ड पाठ रख लिया गया। अगले दिन पूर्णाहुति, यज्ञ और यज्ञ के साथ नामकरण संस्कार।

मानस पूर्णाहुति, यज्ञ और संस्कार आयोजन में गाँव के लगभग सभी लोग आए। विजयादशमी के दिन लोगों का आना शुरू हुआ। जो भी आया उसने देखा कि हवेली के द्वार पर एक संन्यासी खड़ा हुआ है। कुछ देर बाद वहाँ एक साध्वी भी आ गई। दोनों में कोई संवाद नहीं हुआ, लेकिन नामकरण आरंभ होने तक वे एक ही जगह अविचल खड़े रहे। संस्कार आरंभ हुआ तो दोनों अंदर आ गए। ताई जी की गोद में लेटे शिशु को दोनों अपलक देखते रहे। संस्कार आरंभ हुआ तो ताई जी की निगाह उन दोनों पर पड़ गई। पहली बार देखकर वे सहमी और शिशु को पल्ले से ढकने लगीं। साधु ने कहा-‘रहने दे माई, हमें भी लाल को देख लेने दे। जी भर कर देख लें, फिर पता नहीं हम देख पाएँ या नहीं।’ साधु ने अपनी ओर इंगित किया था कि पता नहीं हम लोग बाद में रहें या न रहें। लेकिन

ताई जी को लगा कि वह बच्चे के बारे में कुछ कह रहे हैं। उन्हें गुस्सा आ गया। वे वेदी से उठी और साधु को डपटने लगी। साध्वी को भी आड़े हाथों लिया। दोनों अपनी सफाई देते रहे, लेकिन ताई जी का गुस्सा सिमटने में ही नहीं आ रहा था। पंडित जी उठे और उनके मुँह से अनायास निकल आया 'रहने दो श्रीराम की माँ'। तुम्हारे बच्चे का कोई अनिष्ट नहीं होगा। वह कुशल मंगल ही रहेगा।

संन्यासियों में भी जगी ललक

पंडित जी का कहना था कि साधु ने कहा, हम जाते हैं माई लेकिन हमारी थोड़ी-सी बात मानना। बच्चे का नाम श्रीराम ही रखना, जो उसके पिता के मुँह से अपने आप निकला है। यह प्रभु की इच्छा है। पंडित जी ने भी साधु के मत से अपना मत मिला दिया। संन्यासी और योगिनी को फिर ताई जी ने कुछ नहीं कहा। वे संस्कार सम्पन्न होने तक अपने स्थान पर खड़े रहे। शिशु के नामकरण में पिता और अनाहूत संन्यासी की अनियोजित सहमति थी।

किसी और दिन एक वृद्ध संन्यासी के डेढ़ घंटे तक हवेली के सामने खड़े रहने की एक और घटना है। ताई जी उस संन्यासी से भी बहुत घबराई थी और बड़बड़ाती हुई घर से बाहर निकली थी। संन्यासी का व्यक्तित्व देखकर वे ठिठक सी गई। कातर भाव से उन्होंने कहा-मेरे बच्चे पर क्यों नजर गड़ाते हो? क्या बिगाड़ा है उसने आपका? संन्यासी ने आश्चर्य किया कि हम बच्चे का अमंगल करने नहीं, उसका दर्शन करने आए हैं। ऐसी भावना आई थी कि हिमालय की एक सिद्ध आत्मा आपकी गोद में आई है। हम लोगों को किसी तरह पता चला तो देखने आए हैं। एक झलक देखकर चले जाएँगे। माँ ने संन्यासी का मन रख लिया और झलक दिखाकर मुड़ते ही बोली 'अब मैं किसी को भी अपने लाड़ले की झलक नहीं दिखाऊँगी। साधु बाबा यहाँ नहीं आया करें।'।

अपने कमरे में जा कर अपने इष्ट द्वारिकाधीश के आगे बैठ गई और देर तक रोती रही। हिमालय की आत्मा, संन्यासी, सिद्ध पुरुष, दर्शन और इसी तरह के संबोधनों ने माँ को व्यथित कर दिया था कि उनका बेटा आगे चलकर बिछुड़ न जाए। वह भी कहीं बाबा जोगी न बन जाए। माँ ने अपने इष्ट से यही माँगा होगा कि उसका शिशु हमेशा उसके पास रहे। कभी उससे दूर नहीं हो। भक्त ने अपने भगवान से क्या माँगा यह दोनों का निजी संवाद है। बहरहाल उस

गंगा से यमुना तक

घटना के बाद परिवार में साधु-संन्यासियों का आना और सुखद किन्तु विलक्षण स्थितियाँ बनना बंद हो गया।

शुरु के तीन-चार साल बाल लीलाओं और अपने शिशु के हाथ-पाँव चलाने से लेकर तोतली जबान में बोलते देख माता-पिता के प्रसन्न होने में ही बीत गए। श्रीराम के जन्म के बाद ढाई-तीन साल बाद परिवार में एक कन्या और आई। नाम रखा गया किरण देवी। कालांतर में दूसरी बहिन आई थी। उसका नामकरण अग्रज के नाम से ही लिया गया-रामदेवी। बहिन के जन्म लेने के बाद माता का ध्यान थोड़ा बँटना ही था। अभी तक भोजन बनाने से लेकर पूजा-पाठ करने और आगन्तुतकों की देखभाल करने तक माँ की निगाहें बेटे पर ही रहती। माँ अपने पुत्र को पिता और परिवार के दूसरे सदस्यों के भरोसे कम ही छोड़ती। जन्म के समय संन्यासियों के आने और उनके द्वारा कही गई चित्र-विचित्र बातें ताई जी के मन-मस्तिष्क में गूँजती रहती। यह अज्ञात भय सताता रहता कि कोई संन्यासी श्रीराम पर अपनी छाया न डाल जाए। किरण देवी का जन्म हुआ तो ताई जी को दूसरे लोगों का भरोसा करना पड़ा। इस मामले में भी उन्होंने पुत्र को सिर्फ पिता के हवाले ही छोड़ा। बेटे की देखभाल के साथ वे श्रीराम का भी पूरा ध्यान रखती। पंडित जी घर पर नहीं होते, तो पुत्र को नवजात कन्या के साथ ही सुलाती। पिता बाहर से आते तब उनकी छत्रछाया में कुछ ढील दे देती।



तीन सत्यं परं धीमहि

भागवत पंडित जी का परम प्रिय शास्त्र था। कथा प्रवचनों के अलावा सामान्य समय में भी वे इसी की चर्चा करते रहते। घर पर विद्वानों का जमावड़ा रहता। छोटे-मोटे प्रसंगों में भी वे भागवत के श्लोक सुना देते और हर तरह की समस्याओं का समाधान निकाल लेते। जिन दिनों बाहर रहते उन दिनों भी लोग उन्हें दूढ़ते पूछते हवेली आ जाते थे। जब वे घर पर होते तब तो कहना ही क्या? ताई जी उस समय तीन साल के श्री राम को पिता के सुपुर्द कर देती। वे लोगों की बात सुनते, उनका हल बताते या सामान्य विषयों पर चर्चा करते तो श्रीराम बैठक में ही होते। बाल सुलभ क्रीडाओं में मगन रहते या चुप बैठकर वहां उपस्थित लोगों की बातें सुनते। तीन चार साल के बच्चे के लिए शास्त्र चर्चा, तत्त्वदर्शन और भक्ति ज्ञान वैराग्य की बातें समझना शायद कठिन हो। वह उन चर्चाओं से बने वातावरण के संस्कार तो ग्रहण करता ही है। बालक अपने पूर्व जन्म के शुभ संस्कारों से निश्चित ही समृद्ध था। कह सकते हैं कि नए संस्कारों की आवश्यकता नहीं रही होगी लेकिन उस वातावरण ने संस्कारों को उभारने में सहायता तो की ही।

पद्मपुराण में भागवत महात्म्य प्रसंग और एकादश स्कंध के विषयों पर पिता जब भी चर्चा छेड़ते तो तीन चार साल के श्रीराम चुपचाप होकर बैठ जाते। उनके मुँह की ओर टकटकी बाँधे देखते रहते। ताई जी बताती हैं कि नारद जी और भक्ति के संवाद की चर्चा सुनकर उनका श्रीराम उदास हो जाता था। इस प्रसंग में यमुना तट पर भक्ति दुःखी और क्लान्त होकर बैठी है। पास ही दो बूढ़े व्यक्ति बेहोश पड़े हैं। उन्हें होश में लाने की कोशिश करती हुई स्त्री किसी सहायक के आने की प्रतीक्षा करती हुई आसपास देखती रहती है। कुछ स्त्रियाँ उसे धीरज बाँधा रही हैं। नारद जी संयोग से पहुँचते हैं और युवती से अपना परिचय देने के लिए कहते हैं।

वह स्त्री कहती है, मेरा नाम भक्ति है। ज्ञान और वैराग्य ये दोनो मेरे पुत्र हैं। काल के प्रवाह से वृद्ध हो गये हैं। आस-पास जो स्त्रियाँ हैं वे गंगा यमुना

सत्यं परं धीमहि

आदि नदियाँ हैं जो मेरी सेवा कर रही हैं। फिर भी दुःख दूर नहीं हो रहा है। क्षीण होने का कारण भक्ति ने यह बताया कि पाखण्डियों ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया। उनके छल, कपट और दुराचारों से भक्ति रुग्ण और अशक्त हो गई है। यहाँ वृंदावन में आने से अपना रोग और दैन्य तो कम हुआ लेकिन दोनों पुत्रों की जरा दूर नहीं हुई। यह कहते हुए भक्ति विलाप करने लगती है। कथा आगे बढ़ती है और नारद जी भक्ति को भागवत का उपदेश देते हैं।

भक्ति को विलाप करने का प्रसंग सुनते हुए सुन चार साल के बालक की आँखों से आँसू बहने लगे। पिताश्री प्रसंग आगे बढ़ाते हैं। भागवत सुनकर भक्ति का उद्धार हुआ उसके दोनों पुत्र भी स्वस्थ सहज और स्वाभाविक अवस्था में पहुँच गये। इसी प्रसंग में पिताश्री कहते थे कि भागवत शास्त्र सभी शास्त्रों का सार है। इन दिनों हम लोग जिस सनातन धर्म का पालन करते हैं, वह इसी शास्त्र से आया है। ज्ञान, विद्या, आचार, अवतार, भक्ति, कर्म, मंत्र, योग, साधना, इतिहास, पुराण आदि भागवत में ही समाहित है। पिताश्री की मुख मुद्रा देखकर बालक भी आश्चर्य हो जाता। उठकर वह खेलने कूदने लगता।

हवेली में होने वाली चर्चा और वहाँ के परिवेश ने बालक श्रीराम की शिक्षा का आरंभ किया। विधिवत विद्यारंभ का समय चार साल बीतने के बाद आया। पंडित जी चाहते तो अपने सान्निध्य में ही वेद शास्त्र सब पढ़ा सकते थे। लेकिन उनका मानना था कि शिक्षा ग्रहण करने के लिए गुरु का संसर्ग प्राप्त होना ही चाहिए। उस छोटे से गाँव में एक अध्यापक थे पंडित रूपराम। वे अपने घर पर ही विद्यालय चलाते थे। पंडित जी ने श्रीराम को उनके सुपुर्द किया। ताई जी बताया करती थी कि पूजा पाठ के बाद गुरुजी ने तख्ती थमाई। पट्टी सफेद रंग की थी और लकड़ी से बनी हुई थी। उन दिनों स्लेट और खड़िया का चलन नहीं था। अलग-अलग इलाकों में अलग-अलग तरह से अक्षर ज्ञान कराया जाता था। पंडित रूपराम पानी में गेरु घोलकर अक्षर अभ्यास कराते। तख्ती और गेरु की पूजा होने के बाद पहला अक्षर सिखाने लगे। सरकंडे की कलम को घुले हुए गेरु में डुबोया और श्रीराम के हाथ में दिया गया। फिर हाथ पकड़कर तख्ती पर पहला अक्षर लिखवाते हुए कहा 'ग'। श्रीराम ने भी तुरंत अनुकरण किया और गुरुजी उस अक्षर की पहचान बताने के लिए आगे कुछ बोलें उससे पहले श्री श्रीराम ने कहा- ग-गायत्री का। गुरुजी को इसकी कल्पना भी नहीं थी कि छात्र बिना बताए ही अक्षर की पहचान बता देगा। पहचान भी अपने ढंग से।



वे 'ग' अक्षर की पहचान 'गणेश' शब्द से कराते थे। उनकी मान्यता थी कि 'ग' से 'गणेश' का बोध कराने पर छात्र की बुद्धि संस्कारित होती है। गणेश बुद्धि के अधिष्ठाता देव हैं, इसलिए भी यह अच्छा श्री गणेश है। बिना बताए गायत्री से आरंभ करने पर गुरुजी ही नहीं, वहाँ उपस्थित दूसरे लोग भी चमत्कृत हुए। बाद में गुरु जी ने पूछा श्रीराम तुम्हें किसने बताया कि 'ग' मायने 'गायत्री'। विद्यार्थी ने कहा कि किसी ने भी नहीं। हवेली में सुना है। पिता जी भी इसी की कथा भागवत सप्ताह में कहते हैं। गुरु पंडित रूपराम के साथ पं० रूपकिशोर भी गद्गद हो उठे थे। दोनों ने बालक के सिर पर हाथ फेरा और स्नेह से सँघा।

उन दिनों अभिभावक अपने बच्चे को गुरु के पास रखना ही श्रेयस्कर समझते थे। छात्र गुरु के पास जितना ज्यादा रहेगा, उतना ज्यादा सीखेगा। पंडित रूपराम की पाठशाला में पन्द्रह-बीस छात्र रहते थे। आस-पास के गांवों में आए बच्चे भी थे। पढ़ाई के लिए आने वाले छात्रों की संख्या इससे दो-ढाई गुना थी। इतने छात्र तो प्रायः दिनरात रहते ही थे। कुछ विद्यार्थी आते-जाते भी रहते थे, जैसे किसी दिन वहीं सो गये तो कभी अपने घर चले गये। गुरुजी सभी छात्रों से स्नेहिल व्यवहार रखते। उनके पढ़ने, खाने, पीने, सोने, बैठने और बातचीत करने में अनुशासन दिखाई देता था। लेकिन यह अनुशासन लादा हुआ नहीं था। स्नेह और मधुर दुलार से छात्र के भीतर जगाया हुआ था। उदाहरण के लिए पाठशाला या गुरुगृह में ही सोने वाले बच्चों को गुरुजी सुबह खुद जगाते थे। बच्चे थके-माँड़े नहीं हों तो भी देर तक नींद आती है। अभ्यास नहीं होने के कारण बिना नींद आये भी बिस्तर पर पड़े रहने में मजा आता है। सुबह जल्दी उठने की आदत डालने के लिए गुरुजी खुद उन बच्चों के पास जाते। उन्हें स्नेह से पुकारते, उठाते, उषःपान कराते और नहा धोकर पढ़ने के लिए बिठा देते।

यज्ञीय जीवन की दीक्षा

बालक श्रीराम का सोना-जागना अपनी हवेली में ही रहा। सुबह सात बजे वह बिना नागा पाठशाला पहुँच जाते और देर शाम तक वहीं पढ़ते रहते। पढ़ाई पूरी होने के बाद वापस अपने घर आ जाते। पांच छह साल यह क्रम चला होगा कि पिता जी के साथ काशी की यात्रा आरंभ हुई। १९१५ में काशी हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना के समय निश्चित हुआ था कि श्रीराम को यज्ञोपवीत

सत्यं परं धीमहि

दीक्षा मालवीय जी स्वयं देंगे। उस निर्धारण को ध्यान में रखते हुए सात आठ वर्ष की आयु में पिता ने चिरंजीव का उपनयन नहीं कराया। काशी जाने पर मालवीय जी के निवास पर ही सादे समारोह में यज्ञोपवीत संपन्न हुआ। संस्कार के समय श्रीराम की आयु ग्यारह वर्ष की थी। मालवीय जी ने गायत्री को सर्ववेदमय और ब्रह्मस्वरूप होने के जो उपदेश दिये थे, वे रास्ते में हर क्षण कानों में गूँजते रहे। दस-बारह साल के बालक के लिए ये उपदेश गूढ़ भी थे और सहज ग्राह्य भी। ग्रहण कर लिये जायें तो पूरे जीवन की दिशा धारा तय हो जाती है।

अपनी समझ के अनुसार बालक श्रीराम ने पिता श्री से उपदेशों के बारे में कई जिज्ञासाएँ कीं। गायत्री को कामधेनु क्यों कहा है? ब्राह्मण कौन है, किसे गायत्री सिद्ध होती है? अगर ब्राह्मण को गायत्री सिद्ध होती है, तो इस जाति के लोग दीन-हीन क्यों होते हैं? गायत्री को किसने शाप दिया? उस शाप का विमोचन कैसे किया जाय आदि प्रश्नों का समाधान रास्ते में ही हो गया। गुरुदेव ने बाद में पिताजी से मिले सभी समाधानों का समय-समय पर उल्लेख किया। वह विवेचन गायत्री साधना के मर्म को स्पष्टतया उद्घाटित करता है। यहाँ इतना ही कि यज्ञोपवीत के बाद बालक श्रीराम ने संध्या गायत्री जप आरंभ कर दिया। यह बात मन में अच्छी तरह बैठ गई थी कि संध्या गायत्री नहीं करने से यज्ञोपवीत भंग हो जाती है। व्यक्ति को 'व्रात्य संज्ञक' अर्थात् पतित कहा जाने लगता है और यज्ञोपवीत संस्कार के समय हुआ उसका दूसरा जन्म या मनुष्य जीवन स्थगित हो जाता है। वह अपने आपको द्विज कहने का अधिकार खो देता है।

वाराणसी से लौटने के बाद बालक श्रीराम ने अपने लिए हवेली में एक कमरा निश्चित कर लिया। वहाँ वे जप ध्यान करते। संध्या-वंदन के लिए खुले में जाते। यह खुलापन घर की छत पर होता या गाँव के बाहर बने शिवालय में। अपने खेत में वटवृक्ष के नीचे भी वे संध्या वंदन के लिए जाते थे। पुत्र को जप ध्यान में इतना नियमित और तन्मय देख कर पिताश्री बहुत प्रसन्न होते थे। वे कहते श्रीराम अपना ब्राह्मण होना सार्थक करेगा। अपने आपको ही नहीं पूरे कुल को और गायत्री उपासकों को धन्य बनायेगा। पिताश्री जब 'ब्राह्मण' कहते थे तो उनका आशय इस नाम के किसी कुल या जाति में जन्म लेने वाले व्यक्ति से नहीं था। सीधे-सादे शब्दों में वे कहते थे, जिसका आचार शुद्ध हो वही ब्राह्मण है। जो ब्रह्म को जानने और पाने के लिए अपने आपको तपा रहा हो वह ब्राह्मण है।

घर में छत पर, मंदिर में, वट वृक्ष के नीचे और खुले आकाश तले बालक श्रीराम का जप ध्यान चलता। सुबह पाँच बजे के लगभग वे उठ जाते और स्नान आदि से निवृत्त होकर संध्या वंदन के लिए बैठ जाते। प्राची में सूर्योदय की लालिमा फैलने तक संध्या वंदन और गायत्री जप के साथ सविता देवता के स्वर्णिम प्रकाश का ध्यान होता। संध्या के सभी कृत्य 'अनेन संध्योपासनेन कर्मणा श्री परमेश्वरः प्रीयतां न मम। ॐ तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु' के पाठ के बाद संपन्न हो जाता। इस पाठ के साथ जप साधना का पुण्य परमात्मा को ही समर्पित कर बालक श्रीराम वापस लौट आते। सात बजे पंडित रूपराम की पाठशाला में पहुँच जाते। वहाँ शिक्षा के साथ आचार आदि का अभ्यास होता। शाम के समय भी सूर्यास्त होने के ठीक पहले सांयकालीन संध्या शुरू हो जाती। तारे दिखाई देने तक वह संध्या कर्म भी परब्रह्म को समर्पित हो जाता। यह सिलसिला कई वर्ष तक चला। शायद चार-पाँच साल।

शास्त्रीय मान्यता है कि नियम पूर्वक नियत समय पर विधि विधान से किया गया गायत्री जप तेजी से आध्यात्मिक ऊँचाइयों की ओर ले जाता है। विधि विधान का तात्पर्य अपनी साधना में श्रद्धा विश्वास का समावेश है। जो किया जा रहा है, जो समझाया गया है, उसमें प्रत्यक्ष की तरह विश्वास। कहा गया है कि गायत्री कामधेनु है, तो उसी रूप में मान लिया। यह संदेह नहीं उठा कि यह सिर्फ महत्त्व बताने के लिए ही है। सच्चाई शायद कुछ और हो। शास्त्र, गुरु और साधना में श्रद्धा सिद्धि के मार्ग पर ले जाती है। आठ-दस वर्ष की अवधि में किये गये प्रयोग और उनके फलित परिवार के लोगों को भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचाते थे। बालक श्री राम की श्रद्धा आस्था के लिए ये अनुभव अन्यथा आवश्यक नहीं थे।

साधना का खेल

बालक श्री राम प्रातः सायं संध्या और गायत्री जप के साथ दिन में भी ध्यान का अभ्यास करते। गुरुजी की पाठशाला में यह उनका प्रिय खेल था। अध्ययन से अवकाश मिलता तो वे ध्यान-जप के लिए बैठ जाते। दूसरे छात्र खेलते रहते। कुछ सहपाठियों ने भी उनके खेल में रुचि दिखाई। दो-चार साथी मिल जाने पर नया खेल तैयार हो गया। खेल का नाम रखा साधना। इस खेल में खिलाड़ी पालथी मार कर बैठ जाते। उनसे कहा जाता कि आँखें बंद कर देखने

सत्यं परं धीमहि

की कोशिश करो। उस जगह देखें जहां दोनो भौहें मिलती हैं। देखते हुए अनुभव करें कि वहां सूर्य चमक रहा है। पता नहीं कितने छात्रों ने इस खेल को समझा। बहरहाल वे चुपचाप बैठे रहते। पूछने पर कहते कि बड़ा मजा आ रहा है। बैठने से आरंभ के बाद खेल के अगले चरण में गायत्री, हिमालय, गंगा, यमुना, सरस्वती, सिद्ध संत और इसी तरह की चर्चा चल पड़ती। इन चर्चाओं में कोई तारतम्य नहीं होता। आठ दस वाक्यों से ज्यादा संगति भी नहीं बैठती। लेकिन आधा पौन घंटे तक खेल चलता रहता। कुछ दिन बाद वे चार पाँच सखाओं को लेकर जंगल भी जाने लगे। घनी छाया वाले पेड़ के नीचे बैठ कर खेल चलता।

एक बार श्री राम अकेले ही गए और तीसरे पहर लौटे। पाठशाला का समय था। गुरुजी ने समझा कि छात्र किसी काम से घर गया होगा। घर वालों ने समझा कि पाठशाला में ही होगा। इसलिए उन्हें खोजा नहीं। जिन छात्रों को "साधना-साधना" खेल में रस आने लगा था वे ढूँढ़ते रहे। तीसरे पहर उनके खेल का लीडर प्रकट हुआ तो पूछा कहाँ गये थे। श्री राम ने उत्तर दिया एक गुफा मिल गई थी। वहाँ कोई नहीं आता। आराम से उसमें बैठकर ध्यान किया जा सकता है। अगले दिन वे साथियों को लेकर गुफा के पास गए। साथी किसी तरह गुफा तक चले तो गये लेकिन भीतर जाने का साहस नहीं हुआ। डर लगा। श्रीराम अंदर घुस गए। दूसरे लड़कों से न अंदर जाते बना और न ही वापस लौटने की हिम्मत हुई। अपने लीडर के वापस आने तक बाहर ही खड़े रहे।

घंटे-डेढ़ घंटे बाद श्री राम वापस आये, तो छात्रों ने उलाहना दिया। कहा कि इस खेल में अब आगे से शामिल नहीं होंगे। श्री राम ने छात्रों के साथ छोड़ जाने की परवाह नहीं की। समय मिलते ही घंटे-आधा घंटे के लिए अकेले ही निकल जाना और गुफा में ध्यान लगाना जारी रखा। बीच-बीच में कक्षा से गायब हो जाने पर गुरुजी का ध्यान भी गया। उन्होंने श्रीराम से सीधे न पूछकर छात्रों से ही पूछ डाला। गोपालदास नामक छात्र ने बता दिया। गुरुजी ने कहा तुम उसके घर जाकर यह बात कह देना।

इस तरह ताई जी को गुफा में जाने की बात पता लग गई। उन्होंने श्रीराम को बुलाकर डांटा। कहा कि शेर चीते की गुफा होगी, किसी दिन तुम्हें देख लेगा तो फाड़ कर खा जायेगा। माँ की डांट सुनकर श्रीराम चुपचाप रहे। उनकी चुप्पी सहम उठने वाली चुप्पी नहीं थी। बल्कि उसके पीछे भाव यह था कि माँ कह रही है इसलिए प्रतिवाद नहीं करना है। कोई असर न हुआ देख ताई

जी ने कहा आगे से गुफा के आसपास भी मत फटकना। कोई जवाब न आता देख फिर कहा 'सुन लिया न। गुफा में नहीं जाना है। बोल नहीं जायेगा न'। बालक श्रीराम ने माँ की बात सिर आँखों पर रखते हुए गर्दन हिलाई। हामी भरते ही माँ ने पुत्र को हृदय से लगा लिया।

इसके बाद कोई दिन ऐसा नहीं बीता था कि स्कूल नहीं गये हों। हारी-बीमारी की बात अलग है, अन्यथा पाठशाला नियमित जाना होता था। बिना नागा और बिना देर किये अपनी कक्षा में पहुँच जाते। जिस किसी दिन नहीं आना होता था, उस दिन हवेली से सूचना पहुँच जाती थी कि आज श्रीराम अमुक कारण से विद्यालय नहीं आयेंगे। एक दिन न सूचना पहुंची और न ही श्रीराम आए। पंडित रूपराम ने सोचा कि किसी कारण सूचना नहीं भिजवाई जा सकी होगी। उन्होंने गौर नहीं किया। उसी दिन देर शाम हवेली से संदेश आया कि श्रीराम अभी तक घर नहीं पहुँचे हैं। क्या कक्षाएँ देर तक चल रही हैं?

गुरुजी के सामने अब उजागर हुआ कि उनका छात्र पाठशाला के लिए निकला तो था लेकिन कहीं और रम गया है। पहली आशंका यही हुई कि ध्यान वाली गुफा में बैठा हो जहाँ महीनों पहले कुछ सहपाठियों के साथ जाया करता था। ताईजी ने कहा श्रीराम ने मना कर दिया था, इसलिए जाने का सवाल ही नहीं उठता। फिर भी एक बार गुफा में तलाशने के लिए कुछ लोग निकले। अष्टमी या नवमी की रात थी। चन्द्रमा की मद्धिम चांदनी में रास्ता देखा जा सकता था फिर भी जरूरत पड़ने पर मशाल जलाने का इंतजाम कर लिया।

हिमालय हमारा घर

गुफा के द्वार पर पिताश्री ने आवाज लगाई। भीतर से कोई जवाब नहीं आया। गुफा की दीवारों से टकरा कर आवाज वापस लौट आई। मशाल जला कर गुफा के भीतर तलाशने का निश्चय किया गया। करीब बारह मीटर लम्बी आड़ी-टेड़ी गुफा के अन्दर तक तलाश लिया। श्रीराम का ठिकाना नहीं था। हार कर सब लोग वापस लौट आए। घर पर ताई जी ने रो-रोकर बुरा हाल बना लिया था। ढूँढ़ खोज चलती रही। अगला दिन शुरू हुआ। करीब सात बजे ताई जी के मायके सहपऊ (मथुरा) से एक सम्बन्धी आए। उनका नाम रुक्मणी प्रसाद था और गाँव के रिश्ते से वे ताई के चाचा लगते थे। वे रात को ही आ गए थे लेकिन

उस क्षेत्र की रीति के अनुसार बहिन-बेटी के घर नहीं रुका जाता है और न ही अन्न जल ग्रहण किया जाता है। इसलिए वे गाँव के बाहर एक मंदिर में ही ठहर गए थे।

भतीजी के यहाँ पहुँचे तो कोहराम मचा देखा। कारण मालूम हुआ कि कुलदीपक कल से लापता हैं। रुकमणी प्रसाद जी को ध्यान आया। रास्ते में उन्हें दस-बारह साल का एक बच्चा दिखाई दिया था। निर्जन रास्ते में उसे अकेले देखकर आश्चर्य हुआ था। पूछा भी था कि बच्चे कहाँ जा रहे हो। तो उसने सहजभाव से उत्तर दिया था हिमालय। उत्तर सुनकर रुकमणी जी हँस दिए थे। उनके मुँह से बरबस निकल आया था नटखट कहीं का। उत्तर पर हँसी इसलिए आई थी कि हिमालय आसपास तो है नहीं। पर्वत के नाम पर लोगों को सिर्फ गोवर्धन की जानकारी है, वह भी कम से कम चालीस मील दूर है। आँवलखेड़ा आकर पता चला कि वह बच्चा उनके गाँव की बेटी का ही चिरंजीव है।

रास्ते में श्रीराम के मिलने की सूचना पाकर पिताश्री और घर के कुछ अन्य पुरुष जैसे थे, उसी हालत में चल दिए। रुकमणी जी उनके साथ उस जगह ले पहुँचे, जहाँ श्रीराम रास्ते में मिले थे। उस जगह होने का कोई सवाल ही नहीं था। उसी रास्ते पर तीन-चार मील आगे गए। बरहन गाँव में एक छोटा रेल स्टेशन था। यहाँ से हाथरस की ओर जाने वाली गाड़ी मिलती थी। स्टेशन पर पूछा कि पिछली गाड़ी कब गई है? पता चला कि कल दोपहर में। एक आशा बंधी कि श्रीराम यही कहीं होंगे। आसपास ढूँढा। स्टेशन के पास एक छोटी सी झील थी। उसके किनारे बने शिवालय में श्रीराम ध्यानस्थ बैठे दिखाई दिए। देखकर जैसे सांस में सांस आई। पिताश्री ने ध्यान पूरा होने तक प्रतीक्षा की और आसन से उठते ही पुत्र को कस कर भींच लिया। यह क्या तुम्हारे हिमालय जाने की उम्र है? बिना बताए क्यों चले आए? माता-पिता का जी दुखा कर भगवान् को पाना क्या धर्म है? इस तरह के कितने ही प्रश्न पूछते हुए उन्होंने अपने बेटे के सिर पर गंगा-जमुना बहा दी।

ताई जी का सामना और कठिन था। पिता ने तो रो धोकर अपने आपको समझा लिया। ताई जी रोते-विलाप करते विक्षिप्त सी हो गई थी। बेटे को देख कर जोरों से रुलाई फूट पड़ी। उनके विलाप में श्रीराम के जन्म समय आने वाले साधु संन्यासियों, स्वप्नों, भविष्यवाणियों और पूजा पाठ आदि सभी कुछ लपेट में आ गए। हर किसी को उन्होंने जम कर कोसा, जो उनके हिसाब से श्रीराम में तप और साधना की प्रेरणा के लिए जिम्मेदार था। पुत्र ने माँ को समझाने

की कोशिश की। कहा कि साधु महात्माओं को मत कोसिये। अपने द्वारकाधीश को मत कोसिए। आपका जी मेरे कारण दुखी हुआ है। आप मुझे कोसिये।

माँ को हुए कष्ट के लिए अपने आप को उत्तरदायी ठहराने के बाद ताई जी का रुदन कुछ थमा। कुछ क्षण वे चुप रहीं। फिर रुंधे हुए कण्ठ से बोली तुमने मुझे कष्ट दिया है न? अगर मानते हो तो मुझे एक वचन दो। बालक श्रीराम आगे की बात सुनने के लिए टकटकी लगा कर देखने लगे। ताई जी ने कहा 'मुझे छोड़ कर साधु संन्यासी बनने की बात कभी नहीं सोचोगे। तुम हिमालय की आत्मा हो तो हो। मेरे जीवित रहने तक सिर्फ श्रीराम हो। मेरे सामने हिमालय में बस जाने की बात कभी मत सोचना। मेरे बाद चाहे जहाँ रहना।' ताई जी जैसे एक-एक वाक्य सोच समझ कर कह रही थी। श्रीराम ने भी एक-एक शब्द को गौर से सुना और कहा ताई मैं हमेशा आपके साथ रहूँगा। ब्रजक्षेत्र को छोड़कर भी नहीं जाऊँगा क्योंकि आपको ठाकुर जी का घर बहुत भाता है न।

लाड़ले का यह आश्वासन या वचन सुनकर ताईजी तुरन्त शान्त हो गई। उनकी शान्ति में यह दृढ़ विश्वास भी था कि बेटे ने जो कह दिया है, उसका अक्षरशः पालन करेगा, वह दिन हवेली में उत्सव की तरह मनाया गया। माँ परम आश्चस्त थी कि उनका दुलारा अब कभी उनसे नहीं बिछुड़ेगा। काम-काज के लिए अथवा किसी और प्रयोजन से प्रवास पर जाना पड़े, वह बात अलग है। वह बिछोह की श्रेणी में नहीं आता। ताई जी की आस्था और अपेक्षा पुत्र को अपनी गृहस्थी की, अस्तित्व की छाया में ही रखने की थी। श्रीराम ने उस आस्था के निर्वाह का वचन दे दिया।

हिमालय को अपना घर बताते हुए निकल जाने और वापस लौट आने के बाद शिक्षा-दीक्षा फिर पहले की तरह चलने लगी। अब पिताश्री ने भी ध्यान देना शुरू किया। चार-छह महीने में उनकी प्राथमिक शिक्षा पूरी हो जानी थी। सावधानी के तौर पर यह जरूरी समझा गया कि बालक को आगे पढ़ने के लिए गाँव से बाहर नहीं भेजा जाय। पिताश्री भागवत के विद्वान् थे ही। उन्होंने 'लघु सिद्धान्त कौमुदी' पढ़ाई, फिर 'मध्य' और 'सिद्धान्त कौमुदी' पढ़ाई। प्राथमिक शिक्षा पूरी होने के बाद और समय मिलने लगा। भागवत, रामायण और महाभारत के बाद आर्षग्रन्थों में भी अच्छी गति होने लगी। पिताश्री को आभास होने लगा था कि उनकी इहलीला पूरी होने वाली है। गुरुजी की पाठशाला छूटने के बाद उन्होंने पुत्र से कह दिया था कि दो साल तक सब कुछ भुला कर विद्या ग्रहण

सत्यं परं धीमहि

करो। उनके मन में सम्भवतः विरासत के रूप में भागवत दे जाने की बात रही होगी। शायद सोचा होगा कि पुत्र भी उनकी ही तरह भागवत का उपदेश करे। इस शास्त्र से आरम्भ कराने के पीछे दूसरा कोई आशय रहा हो, तो अनुमान ही लगाया जा सकता है।

पं. रूपराम की पाठशाला में पढ़ लेने और लिखना बांचना अच्छी तरह आ जाने के बाद श्रीराम के मन में उसे बांटने की वृत्ति का उदय हुआ। मालवीय जी से उपवीत लेने के बाद जैसे उन्होंने दूसरे बच्चों को भी जप ध्यान सिखाना शुरू किया था, उसी तरह लिखना पढ़ना भी दूसरों को बाँटने की इच्छा उमगने लगी। पिता से शास्त्र और संस्कृत सीखने के बाद थोड़ा बहुत समय बचता। श्रीराम उस समय में चौपाल पर चले जाते। वहाँ कोई न कोई बैठा रहता था। चार-पांच लोग भी जमा हो जाते तो उनका समय इधर-उधर की बातों में बीतता। श्रीराम उन्हें कुछ पढ़ कर सुनाने के लिए कहते। जिन्हें अक्षर ज्ञान था और थोड़ा बहुत पढ़ना आता था, वे तो सुना देते। जिन्हें पढ़ना नहीं आता वे चुप रह जाते। श्रीराम उनसे कहते आप पढ़ते क्यों नहीं? नहीं आता है तो सीख लेना चाहिए। आमतौर पर उत्तर होता था कि अब पढ़ने से क्या लाभ? उमर बीत गई है। थोड़ी बहुत बची है, वह भी कट जाएगी।

विद्या का वितरण

निराश करने वाला यह उत्तर सुनकर शुरू में तो कोई काट नहीं की। लेकिन जब सभी यह जवाब देने लगे तो एक दिन श्रीराम ने पढ़ाई की चर्चा छोड़े बिना कहा, जिस गुफा में मैं ध्यान करने जाता था, वहाँ खजाना गड़ा हुआ है। खजाने का नाम सुनकर चौपाल पर बैठे लोगों की आँखें चौड़ी हो गई। बालक की आध्यात्मिक रुचि और साधना स्थिति के बारे में सभी जानते थे। इसलिए किसी ने अविश्वास नहीं किया। न ही उसे हँसी में उड़ाया। पूछा- उस खजाने को निकालने के लिए क्या करना होगा? श्रीराम ने कहा लेकिन आप उस खजाने का क्या करेंगे? आपकी तो उमर निकल गई है, थोड़ी बहुत बची है वह भी कट जाएगी।

उन बुजुर्गों को समझ में नहीं आया कि श्रीराम उनको किस बहाने का उत्तर दे रहे हैं। उन्होंने कहा नहीं-नहीं खजाने का उपयोग तो किसी भी उम्र में किया जा सकता है। श्रीराम ने कहा उस धन को पाने के लिए आपको विद्याधन



कमाना होगा। आप पढ़ना सीखोगे तभी उस धन को पाने वाला विधि विधान समझोगे। यह समझाने के बाद कुछ बुजुर्ग पढ़ने के लिए तैयार हुए। कहते हैं कुछ लोगों ने उसके बाद गुफा में ढूँढ़ खोज की और वहाँ एक चट्टान के नीचे छुपाए हुए स्वर्ण आभूषण निकले। ये आभूषण धांधू नामक डकैत का छुपाया हुआ लूट का माल भी हो सकता है या महज संयोग। बहरहाल अध्यापन के दौरान श्रीराम ने उन बुजुर्गों को कुछ भजन और रामायण की चौपाइयाँ जरूर सिखा दी थी।

कुछ श्रद्धालु बुजुर्गों को उन्होंने जप के बारे में समझाया था। कहा था कि मुँह से जप करने के बजाय लिखकर जप करना ज्यादा पुण्यप्रद है। मुँह से बोलने पर तो जीव ही तरता है, लिखने पर इतनी शक्ति आती है कि साधक पत्थर को भी तार दे। लिखित जप करने वालों की वाणी अमोघ हो जाती है। वह जो भी शाप-वरदान देता है, पूरा होता है। श्रीराम का यह पहला सामाजिक अनुष्ठान था। डेढ़ साल में उन्होंने करीब चालीस लोगों को पढ़ना लिखना सिखा दिया था। अनेक विद्यार्थी इतना सीख गए थे कि प्राथमिक कक्षा की परीक्षा में बैठें तो आराम से पास हो जाएँ।

आँवलखेड़ा छोटा सा गाँव था। जितने भी लोग रहते थे, सब एक दूसरे को अच्छी तरह जानते थे। किस परिवार के कितने सदस्य हैं, कहाँ-कहाँ रिश्तेदारी है और किन पुरखों की क्या विशेषता रही है? हर घर के वयस्क व्यक्ति को दूसरे परिवारों के बारे में यह भी पता होता था कि वहाँ कौन कब आया है? लोग एक-दूसरे के सुख-दुख में काम आते थे। अपने आप में सिमट जाने की प्रवृत्ति बीसवीं शताब्दी के साठोत्तर वर्षों में ज्यादा प्रबल हुई है अन्यथा लोग हाल तक एक दूसरे के अच्छे-बुरे में काम आते रहे हैं। आँवलखेड़ा भी अपनी तमाम अच्छाइयों के साथ जी रहा था। बुराइयाँ भी थीं। उनमें सबसे बड़ी बुराई जातिगत ऊँच-नीच या छूआछूत की थी। यह स्थिति बड़ी विचित्र और अबूझ थी कि लोग पिछड़ी जाति के लोगों से नफरत नहीं करते थे। उनके सुख-दुःख का ध्यान भी रखते, लेकिन उनसे दूर-दूर रहते थे। ब्याह-शादियों में उन्हें बुलाया जाता था, लेकिन उन्हें अपने समूह में शामिल नहीं किया जाता था। उन्हें अलग पांत में भोजन कराया, बिठाया जाता, उसी तरह अगवानी की जाती और विदा भी दी जाती। घृणा नहीं होते हुए भी दुरदुराने की यह आदत किसी विकृति का ही परिणाम थी।

पिछड़ी जाति के लोग भी जैसे इस स्थिति के आदी हो चुके थे। वे ऊँची जाति वालों की बस्ती में नहीं जाते। उनके घरों के सामने से नहीं निकलते। निकलना ही होता तो जूते या मोजड़ियाँ हाथ में लेकर नंगे पाँव निकलते। उनका सिर झुका होता और टोपी या साफा भी उतार कर हाथ में रख लेते। ऊँची जाति वालों को छूना तो दूर अपनी छाया भी उन पर नहीं पड़ने देते। सवर्ण भी इस बात का ध्यान रखते थे कि निम्न जाति के लोग उन्हें छू न जाय, उनकी छाया न पड़ जाए, या सुबह-सुबह उनका मुँह न दिखाई दे जाए। इन प्रचलनों के लोग अभ्यस्त हो गए थे।

यह समझना मुश्किल था कि लोग दबाव में इनका पालन कर रहे हैं या अपने आप निभा रहे हैं। कभी कोई घटना होती तो यही समझ आता था कि ऊँची जाति वालों ने इन प्रचलनों का अभ्यस्त बना दिया है। गलती से या स्वाभिमान का थोड़ा सा उदय होने पर कोई सवर्णों को छू जाता तो उसे दण्ड झेलना पड़ता था। यह दण्ड पिटाई से लेकर बेगार देना बंद हो जाने के रूप में भुगतना पड़ता। आर्थिक स्थिति जैसी कोई उल्लेख करने योग्य बात उन पर लागू होती ही नहीं थी। उनकी रोटी सवर्णों की दया कृपा पर चलती। वह बंद हो जाती, बेगार मिलना रुक जाता तो जीना दूभर हो उठता था।

छपको की सेवा

कभी किसी को रोग बीमारी हो जाए तब भी जीना दुश्वार हो जाता। सन् १९२३ की घटना है। आँवलखेड़ा के एक कोने में, जिसे गाँव से बाहर कहना ही ठीक होगा, चार-पाँच झोंपड़ीनुमा घर बने हुए थे। इन घरों में जमादार और डोम जाति के परिवार रहते थे। इस तरफ कोई झाँकता नहीं था। मझली जाति के लोग भी नहीं, जिन्हें सवर्ण भी उन्हीं की तरह हेय मानते थे। दलित बस्ती की एक स्त्री छपको हवेली की सफाई करने आया करती थी। बड़ी उम्र के लोग उसे नाम से बुलाते थे और छोटे बच्चे चाची या अम्मा कहते थे। छपको नियमित रूप से दरबार लोगों के घरों में जाती थी। सवर्णों को तब ये लोग दरबार ही कहते थे। हारी बीमारी में भी वह नहीं चूकती थी। एकाध दिन की नागा हो जाय तो दरबार लोग हाय तौबा मचा देते थे। दस बातें सुनाते और ज्यादा हो तो काम छुड़वाने की धमकी देते थे। धमकी और सजा के डर से सर्दी, खाँसी और हाड़ बुखार के समय भी छपको की जाति बिरादरी के लोग कभी नागा नहीं करते। किसी की तबियत ज्यादा खराब होती तो उसकी जगह दूसरा कोई आता।



छपको को किसी ने बीमार पड़ते नहीं देखा था। उसके मुँह से किसी ने सिरदर्द की शिकायत भी नहीं सुनी थी। एक दिन छपको हवेली नहीं पहुँची। शाम तक इंतजार किया, वह नहीं आई। अगले दिन भी यही हाल था। वह सफाई के लिए नहीं पहुँची। पास-पड़ोस में पूछा तो वहाँ भी नहीं गई थी। चार-पाँच दिन बीत गए। छपको के परिवार में कोई और नहीं था कि अपनी जगह दूसरे को भेज देती। लोगों ने सोचा कि दूसरा इंतजाम किया जाय। किसी को यह नहीं सूझा कि वह बीमार भी हो सकती है। घर में छपको की जगह किसी और को बुलाने की बात चलने लगी तो श्रीराम के कान में भी पड़ी। उन्हें लगा कि हो न हो छपको अम्मा की तबियत खराब हो गई हो। उन्हें कोई दवा दारु देने वाला नहीं है। इसलिए वे नहीं आ पा रही हों। ताई जी से उन्होंने कहा भी कि छपको अम्मा को दवाई देना चाहिए। ताईजी ने गाँव घर के रिवाज के अनुसार कह दिया यहाँ आएगी तब दे देंगे। श्रीराम ने कहा कि वह ठीक होगी तभी आएगी न। बिना दवा के ठीक कैसे होगी? इसी क्षण किसी ने डपट दिया, जरूरी है कि वह बीमार ही पड़ी हो, हो सकता है गाँव छोड़कर चली गई हो।

श्रीराम को इस जवाब में उपेक्षा ज्यादा दिखाई दे रही थी। उनका मन नहीं मान रहा था। न जाने क्यों लग रहा था कि छपको अम्मा बीमार है। उन्होंने अपने साथियों को भी बताया, क्या किया जाय? श्रीराम की सलाह थी कि उनके घर जाकर खोज खबर ली जाय। साथियों ने छूटते ही कहा, लेकिन हम उनके घर कैसे जा सकते हैं? वहाँ जाएँगे तो अपने घर में मार पड़ेगी। दूसरे ने कहा कोई हमें घर के भीतर नहीं आने देगा। तीसरे ने कहा हम लोगों के बस का नहीं है। किसी बड़े को जाकर उनकी खोज खबर लेनी चाहिए। सभी साथी किसी न किसी बहाने छपको के यहाँ जाने की बात टाल गए।

श्रीराम ने दोबारा किसी से कुछ नहीं कहा। चुपचाप उस टोले की ओर चल दिए जहाँ छपको अम्मा रहती थी। कूड़े-कचरे और गन्दगी के ढेर पार करते और बदबूदार सड़ी नालियाँ लाँघते-फाँदते हुए छपको की झोपड़ी के सामने पहुँच गए। चार-पाँच घरों में सही ठिकाना मालूम करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। दरवाजे पर पहुँच कर पुकारा। अंदर से कोई आवाज नहीं आई तो दरवाजे के नाम पर लगी हुई घास-फूस की आड़ हटा कर झाँका। छपको अम्मा बेसुध सी चटाई पर पड़ी थी। पाँवों की आहट सुनकर उसने आँखे खोली। श्रीराम को देखकर हड़बड़ा उठी। बैठने की कोशिश करने लगी, लेकिन बैठ नहीं पाई।

उठने की कोशिश में वापस गिरते हुए छपको ने कहा यहाँ क्यों आए हो? घर पर पता चलेगा तो मार पड़ेगी। श्रीराम ने कुछ नहीं सुना। हाथ लगा कर देखा, शरीर बुरी तरह तप रहा था। बुखार है। हथेली देखना चाही, याद था कि घर में किसी को बुखार आता है तो हथेली और जीभ वगैरह देखते हैं। हथेली में घाव था। उससे बदबू आ रही थी और पीब बह रही थी। शायद घाव सड़ने लगा था और इसी की वजह से बुखार भी आ रहा था।

चिंता मत करो। मैं दवा लेकर आता हूँ। श्रीराम ने कहा और छपको अम्मा कुछ कहे, उसे सुनने से पहले ही झोंपड़ी के बाहर। दवाखाना वहाँ से काफी दूर था। झोंपड़ी से बाहर निकल कर पहले तो पड़ोस से पानी लिया और अम्मा को पिलाया। फिर दौड़कर वापस चले गए और मरहम पट्टी का सामान ले कर कुछ ही मिनटों में लौट आए। साफ धुले हुए कपड़े की पट्टी बनाई, जाने कहाँ से लाल दवा और मरहम का जुगाड़ कर लिया। मरहम पट्टी की और काढ़ा बनाकर पिलाया ताकि बुखार कुछ कम हो जाए। छपको अम्मा की आँखे डबडबा आई। दवा से ज्यादा सेवा और सहानुभूति ने काम किया। उन्हें नींद आने लगी। फिर आने की बात कह कर श्रीराम वापस चले गए।

अगले दिन के उपचार का क्या प्रबंध करना है? इस उधेड़बुन में रमते हुए श्रीराम हवेली आ गए। देखा बाहर द्वार पर ही चाचा खड़े हुए हैं। उनके हाथ में एक कलश है। द्वार पर आते ही उन्होंने कलश से जल निकाला और दोनों हाथों से भर कर तीन बार श्रीराम पर छिड़का। फिर दरवाजे के बाहर ही नहाने के लिए कहा। कपड़े वहीं लाकर पहले से रखे हुए थे। नहाने के बाद वे कपड़े पहने और पुराने पहने हुए कपड़े वहीं छोड़ दिए। शुद्धिकरण की यह कार्रवाई पूरी होने के बाद श्रीराम अंदर आए। उन्होंने कोई सवाल नहीं किया। यही कहा कि गंगाजल के साथ कुछ और जोड़ी कपड़ों का इंतजाम भी कर लेना। आगे कई दिन तक छपको अम्मा के यहाँ जाना है। पश्चाताप और क्षमा माँगने या सफाई देने की जगह पर ये वचन सुनकर घर के लोग हैरत में पड़ गए। श्रीराम ने अगली बात यह कही कि जब तक अम्मा का घाव ठीक नहीं हो जाता, रोज जाऊंगा। उत्तर में उलाहना या व्यंग्य नहीं था। निश्चय की झलक दिखाई दे रही थी। इस जवाब पर खासी डाँट पड़ी। उस दिन उपवास रखने के लिए कहा गया।

डॉट, दण्ड और दबाव से अप्रभावित श्रीराम अगले दिन भूखे ही छपको की सेवा करने गए। मरहम पट्टी कर, दवा दे कर वापस लौटे तो हवेली के बाहर ही ठिठक गए। ताईजी ने देखा। उनका मन रो रहा था। लेकिन प्रचलन के विपरीत जाने का साहस भी नहीं कर पा रही थीं। नहाने धोने का इंतजाम कर दिया। चाचा-भतीजों की व्यवस्था थी कि छपको के यहाँ जाना नहीं रोकता तो श्रीराम को घर के भीतर नहीं आने दिया जाए। उसके रहने की व्यवस्था बाहर की कोठरी में कर दी जाए और वहीं मिट्टी के बरतनों में भोजन परोसा जाय। परिवार में आए अतिथि सम्बन्धियों ने भी इस व्यवस्था की पुष्टि कर दी।

अछूत सेवा के अनोखे प्रायश्चित का निर्वाह करते हुए ताई जी ने मिट्टी के बर्तन में रोटियाँ और दाल सब्जी रख दी। भोजन देख कर श्रीराम ने दो रोटी और दाल सब्जी ली और टोले की तरफ बढ़ गए। वहाँ छपको को जगाकर रोटी खिलाई। अपने हाथ से भोजन कराते हुए श्रीराम और छपको दोनों ही आनन्द विभोर थे। छपको को खाना खिलाकर सुलाकर श्रीराम वापस लौटे। घर पर जिस कोठरी में उनके लिए प्रबंध था उसी में बैठकर भोजन किया। दिन भर घर से बाहर नहीं निकले। बाहर निकलने पर कोई लाभ नहीं था। गाँव भर में खबर फैल गई थी कि श्रीराम टोले में जाते हैं। छपको की मरहम पट्टी करते हैं। उन्हें अस्पृश्यता दोष लग गया है, इसलिए किसी को उनका संसर्ग नहीं करना चाहिए। गाँव वालों ने अपने बच्चों को श्रीराम के साथ खेलने से सख्त मना कर दिया था।

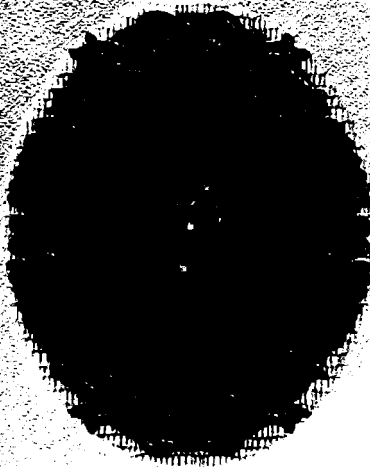
सात आठ दिन की मरहम पट्टी और उपचार के बाद छपको का घाव सूख गया। बुखार भी नहीं रहा। वह अपने हाथ से खाना बनाने लगी, तब श्रीराम ने टोले में जाना बंद किया। इस बीच अलवर में भागवत कथा सम्पन्न कर पिताश्री घर लौट आए थे। देहरी पर पाँव रखते ही उन्होंने श्रीराम को बाहरी कोठरी में जमीन पर चटाई बिछाए सोते हुए देखा। तुरन्त पूछा कि क्या हुआ? यहाँ क्यों? छोटे भाई देवलाल ने पूरा घटनाक्रम सुना दिया। उन्हें आशा थी कि शौचाचार का इतनी कड़ाई से पालन हुआ देख बड़े भैया प्रसन्न होंगे। आज तक आँवलखेड़ा और आस-पास के गाँवों में किसी ने भी टोले में जाकर अपना धर्म नहीं बिगाड़ा था। ऐसी स्थितियाँ ही नहीं बनी थीं कि कोई निर्णय लेना पड़े। अपने यहाँ स्थिति बनी और छोटे भाई ने अपने भतीजे के लिए ही दृढ़ व्यवस्था दे दी। धर्माधिकारी का दायित्व अच्छी तरह निभा लेने के लिए सराहना भी होगी।



औवलखेड़ा (आगरा) की वह हवेली, जहाँ श्रीराम का जन्म
(आश्विन कृष्ण त्रयोदशी सन् 1911) हुआ।



जिस स्थान पर जन्म हुआ, वहाँ स्थापित कीर्ति-स्तम्भ (1995)



पं. रूपकिशोर जी
(1866-1924)



माता दान कुँअरि देवी
(1886-1972)



श्रीराम शर्मा आचार्य जी
(1911-1990)



माता भगवती देवी शर्मा
(1926-1994)

(II)



माँ छपको की सेवा करते बालक श्रीराम

www.vicharkrantibooks.org



एक गाय को कसाई के घर जाने से बचाया, स्वयं गाड़ी में जुते
व उसके लिए चारा लाये।

(III)



दुर्गम हिमालय वासी स्वामी सर्वेश्वरानन्द जी महाराज



18 जनवरी (वसंत पंचमी) 1926 की ब्रह्म-वेला अखण्ड दीपक से
प्रगटे श्रीराम के जन्म-जमान्तरो के गुरु।

(IV)

प्रायश्चित्त या पुरस्कार

हुआ उलटा ही। पंडित जी ने कहा देवलाल तुमने यह क्या किया? भागवत परिवार में किसी को सेवा सुश्रुषा के लिए प्रायश्चित्त करना पड़े, यह धर्म विरुद्ध है। उन्होंने श्रीराम की पीठ थपथपाई और कहा पुत्र तुमने भागवत धर्म के मर्म को पा लिया है। इस बीच आस-पास के लोग भी हवेली में आ गए थे। वे पण्डित जी को प्रणाम करने आए थे। लेकिन देवलाल को उलाहना मिलते देख उठर गए थे। पण्डित जी कह रहे थे तुमने सुना है न संत एकनाथ ने गंगोत्री से लाया गंगाजल रामेश्वरम में भगवान् शिव पर न चढ़ा कर एक गधे को पिला दिया था और भगवान् ने उसे अभिषेक के रूप में ग्रहण कर लिया था। जीवन परमात्मा की देन है। उसकी रक्षा से बड़ा कोई धर्म नहीं है।

कुछ देर चुप रह कर वे फिर बोले, लेकिन तुम्हारा भी दोष नहीं है। समाज की मान्यताएँ ही गड़बड़ हैं। बहुत दिन तक यह सब नहीं चलने वाला। बदलेगा। धीरे-धीरे सब बदलेगा। फिर पुत्र की ओर देखकर उन्होंने कहा, 'तुम्हारा भी एक पुश्तचरण हो गया समझो। प्रसन्न रहो।'

पिताश्री की व्यवस्था ने श्रीराम का उत्साह बढ़ा दिया। कोठरी से निकल कर वे सीधे टोले की ओर गए और वहाँ छपको अम्मा को पुकारा। सुबह ही तो यह ब्राह्मण कुमार 'अब नहीं आऊंगा' कह कर गया था। अब क्यों आ गया है? छपको को गाँव वालों का डर भी सता रहा था। अभी तक झोंपड़ी में पड़ी उपचार करा रही थी। श्रीराम के आने पर गाँव में क्या प्रतिक्रिया है, इसका भान नहीं था। गाँव में जाना शुरू करेगी तब पता नहीं क्या होगा। चिंता में डूबी जा रही थी कि श्रीराम की पुकार ने फिर झिझोड़ दिया। पहला विचार यही उठा कि गाँव वालों के किसी फैसले की सूचना लेकर आए होंगे। शायद आगाह करने के लिए। वह किसी विचार पर स्थिर होती इससे पहले ही ब्राह्मण कुमार 'अम्मा'- 'अम्मा' कहते भीतर उपस्थित थे। वाणी में उल्लास गूँज रहा था और चेहरे पर गर्व, जैसे कोई बड़ी सफलता प्राप्त कर ली हो।

ब्राह्मण देवता आप यहाँ न आया करो। अब मैं ठीक हूँ। आपको यहाँ आते देख लोग मुझे गाँव में घुसने नहीं देंगे। छपको ने श्रीराम के उल्लास और गर्व को नहीं पहचान सकने या पहचान कर भी ध्यान नहीं दे पाने के कारण कहा। उसके ब्राह्मण कुमार शायद स्थिति को समझ गए थे। उन्होंने कहा- 'आप चिंता



न करें अम्मा। चाचा ने जो प्रायश्चित्त बताया था, पिताजी ने उसे मना कर दिया है। मुझे आशीर्वाद दिया है कि आपकी सेवा कर मैंने अच्छा काम किया।'

छपको को अपने कानों पर सहसा विश्वास नहीं हुआ। श्रीराम ने जोर देकर कहा 'सच कह रहा हूँ'। सुनकर अम्मा के चेहरे पर संतोष, निश्चिंतता और खुशी की मिली-जुली चमक फैल गई। अपने भावों को व्यक्त करते हुए उसने दोनों हाथ ऊपर उठा दिए जैसे आशीर्वाद दे रही हो। श्रीराम ने कहा अब किसी तरह का संकोच मत करना, अच्छा। इतना कहकर वे हवेली की ओर चल दिए।

लेकिन बात यहीं खत्म नहीं हो गई। पण्डित रूपकिशोर के निर्णय ने गाँव के पण्डितों और फिर गाँव वालों को भी नाराज कर दिया। पुत्र ने नादानी में अपराध कर लिया। प्रायश्चित्त से वह शुद्ध हो गया। यहाँ तक तो ठीक था? लेकिन पण्डित जी ने किस आधार पर उसके कृत्य को पुण्य ठहरा दिया। प्रायश्चित्त को ज्यादाती बताया। पुत्र मोह आड़े आ गया हो। उस मोह ने पण्डित जी का धर्माधर्म विवेक छीन लिया है। इस बात को तूल देने में वे स्वजन संबंधी भी पीछे नहीं थे, जो पण्डित जी की प्रतिष्ठा से जलते थे। आलोचना तीन चार दिन में ही मुखर हो उठी। जलेसर के भागवती पण्डित कल्याण शर्मा के नेतृत्व में पिताश्री को चुनौती मिली। वे घर आए और कहा आप अपने पक्ष को शास्त्र सम्मत सिद्ध कीजिए वरना पण्डित समुदाय से क्षमा माँगिए। कल्याण जी के तेवर में विरोध या द्वेष कम संशय का भाव ज्यादा दिखाई दे रहा था। इस नाते संवाद सम्भव था। इसलिए पण्डित जी ने उनका उत्तर देने की तैयारी दिखाई।

संध्या समय पंचायत बैठी। पण्डित जी ने अपना पक्ष रखते हुए कहा कि आचार पहला प्रमाण है। श्रीराम ने महामना मालवीय जी से यज्ञोपवीत ग्रहण किया है। वह प्रातः सायं नियमित संध्या गायत्री कर रहा है। शास्त्र वचन है कि तीन वर्ष तक भी कोई श्रद्धा विश्वास से गायत्री का जप कर ले तो ब्राह्मीभूत हो जाता है। श्रीराम नैष्ठिक गायत्री उपासक है और किसी को नहीं लगाना चाहिए कि अछूत कही जाने वाली छपको की सेवा कर, उसने धर्मविरुद्ध आचरण किया है। उसके मन में सुश्रुषा की प्रेरणा तो भगवती गायत्री से आनी चाहिए।

नैष्ठिक उपासना और आचार के प्रमाण ने ही आधे से ज्यादा लोगों को चुप करा दिया। फिर शबरी प्रसंग से उन्होंने समझाया कि उसके जूठे बेर खाने पर भी भगवान् की मर्यादा भंग नहीं हुई, तो अपने से छोटों या अंत्यजों की सेवा करने से मनुष्य का पतन कैसे हो सकता है? पण्डित जी ने अनेक उदाहरण और

सत्यं परं धीमहि

शास्त्र वचनों के प्रमाण देकर निरूपित किया कि अस्पृश्यता अपराध है। अंत्यजों की सेवा नहीं, अंत्यजों से घृणा करना पाप है। पण्डित जी के प्रतिपादन की किसी के पास काट नहीं थी। भागवती कल्याण जी ने उनके निरूपण को विवेक और धर्मसम्मत बताया। श्रीराम के आचरण में और पण्डित प्रवर की व्यवस्था में कोई दोष नहीं है। उन्होंने इतनी ही सावधानी रखने के लिए कहा कि समाज के आग्रह का भी थोड़ा निर्वाह करना चाहिए। इस टिप्पणी में खिसियाहट नहीं, वहाँ उत्पन्न विरोध के एक अंश को मान्यता देने और शान्ति बनाए रखने की व्यावहारिकता ही महत्वपूर्ण थी।

गाँव में विरोध सचमुच धीरे-धीरे कम हो गया। यह पण्डित पंचायत के अलावा श्रीराम के व्यवहार और सेवा भाव के कारण भी था। छपको की सेवा और उससे उत्पन्न विवाद का समाधान होने के तुरन्त बाद श्रीराम अपने अलग हुए साथियों को ढूँढते हुए उनके पास गए। घर वालों की नाराजी के डर से ही वे अलग हुए थे। वरना मन में श्रीराम के साहचर्य की ललक उनके मन में भी रहती थी। अपने मित्र के बुलाने और घर से लोगों का दबाव ढीला पड़ने पर वे साथ आ गए। अपने मित्रों को साथ लेकर श्रीराम ने स्वयंसेवकों का छोटा सा दल बनाया। इन लोगों को मरहम पट्टी और प्राथमिक उपचार की जानकारी दी। यह विद्या किसी स्कूल या शिविर में नहीं सीखी थी। ताई जी को परिवार में छोटी मोटी बीमारियों का इलाज करते देखा था। चोट मोच आने पर पट्टी बाँधते, मालिश करने की कला भी उन्हीं से सीखी थी। श्रीराम ने टोली के सदस्यों को यह कला सिखा दी।

मौसम बदलने पर उन दिनों कोई न कोई बीमारी फैलने लगती थी। सर्दी-बुखार, फोड़ा-फुंसी और उदर विकार जैसी बीमारियाँ आम बात थीं। आज भी गाँवों में ये रोग फैलते हैं। उन दिनों हालत अब की तुलना में सौ गुना खराब रही होगी। बारह-तेरह साल के श्रीराम ने अपने स्तर पर इन बीमारियों से लड़ने की ठानी। स्वयंसेवकों की टोली हर जगह इलाज के लिए नहीं जा सकती थी। उसका उपाय यह सोचा कि रोजमर्रा की समस्याओं के नुस्खे समझाएँ। नुस्खे जुटाएँ। पालतू पशुओं को होने वाली बीमारियों के घरेलू उपचार भी ढूँढे। उन्हें भी लिखा और अपने साथियों को उनकी नकल तैयार करने में लगाया। इस तरह कई प्रतियाँ तैयार हो गईं। पर्चेनुमा ये पोस्टर आँवलखेड़ा ही नहीं आस-पास के गाँवों में भी चिपकाए। पर्चे ज्यादा संख्या में नहीं थे। उन्हें चिपकाने के

लिए मंदिर, स्कूल, धर्मशाला या चौपाल जैसी जगहें चुनी गईं। जहाँ लोगों का आना जाना बना रहता है।

जिन दिनों यह काम चल रहा था, उन्हीं दिनों गाँव में बुखार फैला। लोगों को उसका नाम मालूम नहीं था। बदन में जोरों का दर्द उठता और फिर भट्टी की तरह तप उठता था। संभवतः वह मलेरिया बुखार रहा होगा। उन दिनों ऐसे किसी बुखार को तुरन्त ठीक कर देने वाली दवा भी नहीं आई थी। छटपटाने और हाय-हाय करने के सिवा किसी के सामने कोई चारा नहीं था। श्रीराम ने ताईजी से ऐसे बुखार का नुस्खा समझा। तुलसी, अदरक, लौंग आदि चीजें यहाँ वहाँ से जुटाई और बाड़े में पत्थर जमा कर चूल्हा बनाया। उसी पर काढ़ा पकाया और जिन-जिन लोगों को बुखार आया था सबको पिलाया दिन में तीन बार काढ़ा पिलाने में टोली के सभी सदस्य व्यस्त रहते थे। खाने-पीने की सुध भी भूल गए। बुखार के खिलाफ खोले गए इस मोर्चे में श्रीराम दल की ही जीत हुई। ठीक होने के बाद लोगों को बता भी दिया कि बुखार आने पर इस तरह की औषधि लिया करें।

छपको की बीमारी, उसकी सेवा और उससे उपजे विवाद की घटनाएँ श्रीराम की स्मृति में अंकित हो गई थीं। उस विवाद में कुछ मुद्दे समझने का मन था। उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा रही होगी या गाँव में हारी बीमारी के फैलने के कारण समय नहीं मिल पाया होगा। वे मुद्दे आगे चलकर स्पष्ट हुए।



भागवत भूमि का सेवन

सन् १९२४ का पहला या दूसरा महीना था। श्रीराम अपने पिता के साथ ननिहाल गए। वहाँ भागवत सप्ताह का आयोजन था। पारायण करने वाले विद्वान् दूसरे ही थे, पंडित रूपकिशोर जी को जामाता की हैसियत से निमंत्रित किया गया था। ताई जी वहाँ पहले ही पहुँच चुकी थीं। पिता पुत्र कथा आरम्भ के एक दिन पहले आँवलखेड़ा से रवाना हुए और यथासमय पहुँचे। रास्ते में पुत्र ने पिता से कुछ जिज्ञासाएँ की या यों कहें कि छपको प्रसंग के समय मन में उठे कुछ सवाल रखे। एक सवाल यह था कि आप भागवत का उपदेश करते हैं। उस अधिकार से भी छपको की सेवा को उचित ठहरा सकते थे। लेकिन कल्याण पण्डित को गायत्री उपासना का हवाला क्यों दिया?

पिताश्री ने समझाया; इसलिए कि भागवत शास्त्र गायत्री मंत्र की ही व्याख्या है। भागवत ही नहीं सभी शास्त्र इसी का विस्तार है। यह बीज रूप है। श्रीराम ने सुनकर कहा लेकिन हमने भी आपकी कथा सुनी है उसमें गायत्री मंत्र की ऐसी महिमा कहीं नहीं लिखी है। पिता ने उत्तर दिया जिसमें दिशा भी थी। उन्होंने कहा, उस महिमा का अनुसंधान तुम्हें करना है। तुम अभी शास्त्रीय पक्ष ही समझो। शास्त्रीय पक्ष यह है कि भागवत का आरम्भ गायत्री मंत्र से होता है। भागवत पुराण का पहला श्लोक ही गायत्री मंत्र की व्याख्या है। उसमें गायत्री के कई पद और अर्थ विद्यमान हैं।

श्लोक का अर्थ है- 'जिससे इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय होते हैं, क्योंकि जो आकाश आदि पदार्थों में अनुगत भी है और जिसमें इसका अभाव भी है, जो सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान है और प्रकाश स्वरूप है, जिन्होंने संकल्पमात्र से ब्रह्मा जी को वेद का उपदेश किया है, जिसके संबंध में बड़े-बड़े विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं। मरु मरीचिका के समान मिथ्या जगत् भी जिनके आधार से सत्य प्रतीत होता है, उन स्वयं प्रकाश ज्योति से सर्वदा और सर्वथा मायावान और मायातीत रहने वाले सत्य रूप परमात्मा का हम ध्यान करते हैं।'

प्रारम्भ का *श्लोक सुनाकर पिताश्री ने कहा इस पद में 'जमाद्यस्य यतः' पद से सवितुः शब्द का अर्थबोध होता है। 'स्वराट्' शब्द 'देवस्य' का बोध कराता है। इसी प्रकार 'धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं' पद से 'वरेण्य भर्ग' ओर 'तेने ब्रह्म हृदा च आदिकवये' पद गायत्री में निहित स्वराट् या त्रिभुवन को संचालित करने वाली परमशक्ति का उद्बोधन करता है। 'सत्यं परं धीमहि' गायत्री मंत्र की मूल प्रेरणा को स्वयं ही व्यक्त करता है। यही नहीं भागवत् शास्त्र का उपसंहार भी 'सत्यं परं धीमहि' से होता है। द्वादश स्कंध के तेरहवें अध्याय का उन्नीसवाँ श्लोक परम शुद्ध, मायामल से रहित और परमात्मा के सत्य को अपने भीतर धारण करने की प्रार्थना से सम्पन्न होता है। अर्थ से और शब्द से दोनों विधि से भागवत शास्त्र गायत्री का ही व्याख्या विस्तार है।

मत्स्य और वामन पुराण के संदर्भ से भी पण्डित जी ने समझाया कि भागवत् शास्त्र को गायत्री ने ही अधिकृत किया है। उसका आरम्भ गायत्री से हुआ है, इसलिए वह भागवत है। ननिहाल तक का रास्ता इस विषय पर चर्चा में कट गया कि गायत्री सभी शास्त्रों का, इस युग के प्रतिनिधि ग्रंथ भागवत का आधार है, क्योंकि वह सनातन धर्म का भी आधार है। उन्होंने समझाया, वाल्मीकि ने गायत्री के चौबीस अक्षरों के आधार पर चौबीस हजार श्लोकों में रामकथा लिखी थी। रामायण की जो प्रतियाँ इस समय मिलती हैं उनमें पूरी रामायण में एक निश्चित अंतराल से एक श्लोक गायत्री के एक अक्षर से आरम्भ होता है। उसी अंतराल के बाद एक श्लोक अगले अक्षर का उद्घोष करता है।

कुछ सौ साल पहले गोस्वामी तुलसीदास ने लोकभाषा में रामकथा गानी चाही। सनातन धर्म का स्वरूप उस समय के अनुरूप समझाना चाहा तो रामायण और भागवत दोनों का आश्रय लिया। रामायण से उन्होंने भगवान का चरित्र लिया और भागवत से भक्ति। दोनों का समन्वय कर उन्होंने रामचरितमानस लिख दिया। जानते हो गोस्वामी जी को यह ग्रंथ रचने की प्रेरणा कैसे मिली थी। बाबा वेणीमाधव ने गुंसाई चरित में गाया है कि संध्या गायत्री कर चुकने के बाद शिव-पार्वती ने ही उन्हें रामचरित लिखने का आदेश दिया था। संवत् १६३१ की रामनवमी

* जन्माद्यस्य यतो ब्रह्मयादितरतश्चार्थः ष्वभिज्ञः

तेने ब्रह्महृदा च आदिकवये मुह्यति यत्सूरयः ॥

स्वराट् तेजो वारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा ।

धाम्ना स्वेन सदा निरस्त कुहकं सत्यं परं धीमहि ॥

भागवत भूमि का सेवन

के दिन प्रातः संध्या के बाद उन्होंने ग्रंथ की रचना आरम्भ की थी। साधक किसी को भी अपना इष्ट बनाए, उसे गायत्री जप से ही आरम्भ करना पड़ता है।

श्रीकृष्ण के आंगन में

कुछ देर रुक कर उन्होंने कहा, यों समझो कि गायत्री मंत्र चाभी है और सभी साधनाएँ कोष भण्डार। इस चाभी के बिना भक्ति ज्ञान और योग का भण्डार सुलभ नहीं होता। सप्ताह पारायण की अवधि में पिताश्री गायत्री महिमा के साथ भागवत शास्त्र और धर्म की बातें बताते रहे। उन बातों में श्रीराम का मन अच्छी तरह लग रहा था। कथा पूरी होने के दिन पिता पुत्र दोनों वापस चलने की तैयारी करने लगे। ताई जी ने भी चलने का मन बनाया। बाद में किसी को छोड़ने के लिए आना पड़े इससे अच्छा है कि साथ ही निकल आया जाय। साथ चलना तय हो गया सो ताई जी ने कहा यहाँ तक आए हैं। मथुराजी पास में ही हैं। आपको असुविधा नहीं होती हो तो द्वारिकाधीश के दर्शन करते चलें। नए कार्यक्रम में लगने वाले समय का हिसाब लगाते हुए पण्डित जी सोचने लगे। ताईजी ने अपनी बात को थोड़ा और वजन दिया, श्रीराम भी साथ में ही है। उसने भी द्वारिकाधीश के दर्शन नहीं किए हैं। यमुनाजी के दर्शन भी हो जाएँगे। ताई जी का आग्रह सुन कर पण्डित जी हँसे। उन्होंने मथुरा होते हुए आँवलखेड़ा लौटने का कार्यक्रम बना लिया। इस तरह निकलने पर यात्रा में दो दिन और लग जाते थे।

व्रज मण्डल में घने छायादार वृक्षों का अभाव रहा है। रेत और धूल मिट्टी से सने रास्ते में यात्रियों को प्रायः असुविधा ही होती है। लेकिन जिन दिनों इस परिवार ने मथुरा का रास्ता लिया उन दिनों जाड़े का मौसम था। उतरते हुए माघ के दिनों में कड़कड़ाती ठंड पड़ती थी, इसलिए सहपङ्क से मथुरा आते हुए असुविधा नहीं हुई। गुनगुनी धूप ने जाड़े को दूर भगा दिया और दोपहर ढलने से पहले ही मथुरा के पास आ गए। मुश्किल से दो ढाई किलोमीटर की दूरी रही होगी, एक टेकरी दिखाई दी। ऊपर मन्दिर था। घण्टियों की आवाज आ रही थी, इससे लगता था कि लोग आते-जाते होंगे।

श्रीराम ने पिताश्री से पूछा यह किसका मन्दिर है। नगर के बाहर होने से अनुमान लगाया, ग्राम देवता का मंदिर होगा। नगर या बस्ती की सीमा शुरू होने के पहले हर जगह इस तरह के स्थान होते हैं। पुत्र ने वहाँ चलने की इच्छा जताई। ताई जी और साथ के लोगों सहित सभी टेकरी चढ़ गए। मंदिर में गोविन्द

जी की प्रतिमा स्थापित थी। उनके दर्शन कर थोड़ी देर सुस्ताने लगे। गर्भगृह के बाहर बने चबूतरे के नीचे कुछ क्षण बैठे ही थे कि गरजती हुई आवाज गूँजी 'जय जय राधे'। पण्डित जी ने देखा एक साधु उनकी ओर देखता हुआ चला आ रहा है। लम्बी दाढ़ी और सिर के उड़े हुए बालों वाले इस संन्यासी की उम्र साठ-पैंसठ के आस-पास रही होगी।

पण्डित जी ने उन्हें प्रणाम कहा। साधु ने उत्तर में पूछा कुछ आहार बचा है भगत। ताई जी ने अपनी गठरी में से चार पूड़ियाँ निकाली और उन पर अचार रख कर पण्डित जी की ओर बढ़ाया। पण्डित जी ने वह भोजन साधु को आदर पूर्वक दे दिया। जीते रहने की दुआ देता हुआ साधु जिस दिशा से आया था, उस दिशा में जाने लगा। ताई जी के पास चुपचाप बैठे श्रीराम यह सब देख रहे थे। साधु को जाते हुए देखते ही उन्होंने पुकारा, बाबाजी आपने भगवान् को देखा है। साधु बच्चे की आवाज से ठिठका और कुछ संभलते ही बोला, नहीं लेकिन देखना चाहता हूँ। उन्हें पाने के लिए ही उनकी भूमि में भटक रहा हूँ।

भटकना छोड़ो

इतना कह कर साधु निहारने लगा। श्रीराम ने कहा बाबाजी भटकना छोड़िए, भगवान् की भूमि का सेवन कीजिए। वे यहीं मिलेंगे। बात बहुत सीधी सरल थी, लेकिन साधु के मन को पता नहीं कहाँ छू गई। सेवन का न जाने क्या अर्थ समझा कि वह गोविन्द जी के मंदिर के बाहर मिट्टी में लोट गया। रज का स्पर्श पा कर जैसे उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा। वह अनुग्रहीत सा कहे जा रहा था, 'तुमने राह दिखाई बच्चा। मेरा भटकाव पूरा हो गया। प्रभु तो मिले ही हुए हैं, मैं ही अपने लोचन बंद किए था।' यह कहते हुए साधु ने श्रीराम को प्रणाम करना चाहा। वह पास आए इससे पहले ही ब्राह्मण कुमार दूर दौड़ गए थे।

ताई जी और पिताश्री साधु और पुत्र के संवाद को सुनकर चुपचाप बैठे रहे थे। श्रीराम के दौड़ लगाने पर उन्होंने रुकने के लिए कहा और रुकने पर उठ कर साथ चल दिए। द्वारिकाधीश तक की यात्रा इसके बाद चुपचाप सम्पन्न हुई। रास्ते में कोई कुछ नहीं बोला। द्वारिकाधीश के दर्शन के बाद ताई जी ने गोविन्द टेकरी वाली घटना के बारे में प्रतिक्रिया व्यक्त की, ठाकुर जी ही मेरे लाल के मुँह से बोले थे। उनके धाम में किसी के भटकने की क्या जरूरत। वह तो यहाँ पहुँचते ही मुक्त हो जाता है।

भागवत भूमि का सेवन

मथुरा पहुँच कर ताई जी ने द्वारकाधीश के दर्शन किए। श्रीराम ने मंदिर और मथुरा के बारे में पिताश्री से अनेक प्रश्न किए। इन प्रश्नों में कौतूहल और जिज्ञासा दोनों भाव समाहित थे। द्वारकाधीश मंदिर मुश्किल से दो सौ साल पुराना है। सन् १८१४ में बनवाए इस मंदिर में भगवान् श्रीकृष्ण की राजसी प्रतिमा विराजमान है। कृष्णवर्ण की इस प्रतिमा का पूजन वल्लभमार्गीय विधान से होता है। द्वारिकाधीश के दर्शन करने के बाद पूरा परिवार कटरा केशवदेव गया। भगवान् कृष्ण का जन्म वहीं हुआ समझा जाता है। इन दिनों वहाँ एक भव्य मंदिर और भागवत भवन आदि स्थापनाएँ हैं। जिन दिनों श्रीराम अपने स्वजनों के साथ गए थे, तब एक साधारण सा मंदिर था।

कटरा केशवदेव से निकल कर परिवार विश्राम घाट पहुँचा। श्रद्धालुओं का विश्वास है कि केशवदेव मंदिर में -जहाँ पहले कंस किला था- से भगवान् सीधे यमुना किनारे गए थे। उन्होंने और बलदाऊ ने कुछ समय यमुना तट पर बिताया था। भक्तों की भाषा में कंस और उसके रक्षकों से हुए संघर्ष के कारण भगवान् को जो क्लान्ति हुई थी, उसे यमुना तट पर दूर किया था। जिस जगह भगवान् ने विश्राम किया, उसे विश्राम घाट कहते हैं। बालक श्रीराम ने कहा पिताजी क्या हम लोग भी यहाँ केशव मंदिर के दर्शन से हुई थकान उतारने यहाँ आए हैं। यह जगह हमारे लिए भी विश्राम घाट है। पुत्र की नटखट बात सुनकर पिता हँसे बिना न रहे।

विश्रामघाट पर क्षोभ

मथुरा वृन्दावन की हवाओं में कृष्ण भक्ति का रस आज भी घुला हुआ है। संवेदनशील चित्त वहाँ पहुँचते ही भक्ति की तरंगों को पकड़ने लगता है। लेकिन यात्रियों को तीर्थ पुरोहितों अथवा पण्डों के कारण बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इन दिनों स्थितियाँ थोड़ी सुधरी हैं, लेकिन किसी समय यह स्थान कुछ शरारती उपद्रवी और लोभी पण्डों के कारण बहुत बदनाम था। पिताश्री वहाँ के पंडों से अच्छी तरह परिचित थे, इसलिए परेशानी नहीं हुई। फिर भी दूसरे यात्रियों को सताए जाते हुए तो उन लोगों ने देखा ही। पंडों से घिर जाने पर एक यात्री कह रहा था, आप लोग आने वालों की दान दक्षिणा के भरोसे रहते हैं। उन्हें इसके लिए मजबूर करते हैं। कोई और काम धंधा क्यों नहीं अपनाते? एक पंडे ने कहा क्या काम धंधा करे लाला? यात्री ने कहा कुछ भी, कोई भी

काम कर सकते हैं। पंडे ने उसके सुझाव का उपहास उड़ाते हुए कहा एक मेहनत तो हम कर ही सकते हैं कि तू अगर मर जावे तो तुझे जमुना जी में फेंक दें। फिर तेरे पास से जो मिलेगा वह हमारी मेहनत की कमाई होगी।

यह उत्तर सुनकर आसपास खड़े पंडों समेत दूसरे लोग भी खी खी कर हँस दिए। श्रीराम ने पिताश्री की ओर आश्चर्य से देखा। उन्होंने पुत्र की बाँह पकड़ी और चलने का इशारा किया। श्रीराम ने कहा कि वे लोग यात्री को परेशान कर रहे हैं, कोई कुछ करता क्यों नहीं? पिताश्री ने कहा 'पंडे संख्या में ज्यादा हैं। कोई कुछ कहेगा तो वे सब एक हो जाएँगे। उन लोगों से लड़ना मुश्किल है।' श्रीराम ने बाल सुलभ सहजता और निराशा से कहा 'यह भगवान कृष्ण की नगरी है या कंस की।'

ताई जी ने कहा 'है तो भगवान की नगरी लेकिन कंस का असर यहाँ हमेशा रहा है।' श्रीराम ने प्रश्न का दूसरा हिस्सा दोबारा कहा, 'क्या यह इसी तरह चलता रहेगा। कोई सुधार नहीं होगा।' पिता ने आश्चस्त किया 'ऐसा नहीं है। स्थितियाँ सदा एक जैसी नहीं रहतीं। बदलती भी हैं। वे विश्रामघाट के सती बुर्ज की ओर मुड़ रहे थे। एक गली की ओर इशारा किया और कहा अब से पचास साठ साल पहले इस गली में एक संन्यासी रहते थे। वे प्रज्ञाचक्षु थे लेकिन वेदशास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान थे। वे भी मथुरा की इन स्थितियों से दुखी थे। धर्मक्षेत्र में और भी कई बुराइयाँ हैं उन सभी बुराइयों से लड़ना चाहते थे, लेकिन उन्हें दिखाई नहीं देता था इसलिए ज्यादा कुछ कर नहीं सकते थे।'

पिताश्री अपने पुत्र को स्वामी दयानंद के गुरु स्वामी विरजानंद की कथा सुनाने लगे थे। उन संन्यासी के पास एक दिन गुजरात का एक ब्रह्मचारी आया। उस ब्रह्मचारी ने कहा मैं वेदशास्त्रों का अध्ययन करना चाहता हूँ ताकि सत्यधर्म की शोध कर सकूँ। संन्यासी ने कहा दक्षिणा क्या दोगे? ब्रह्मचारी ने कहा, आप जो भी आदेश करेंगे। संन्यासी ने कहा पाखंड का नाश। धर्म के नाम पर चल रहे अधर्म का विरोध। कुरीतियों का उन्मूलन। शिष्य ने यह दक्षिणा देना स्वीकार किया और गुरु के पास रहकर समस्त विद्या पढ़ी। विद्या ग्रहण करने के बाद शिष्य ने पूरे देश का भ्रमण किया। धर्म का आवरण ओढ़े अधर्म के प्रति लोगों को जागृत किया और धर्म के असली स्वरूप से परिचित कराया।

श्रीराम ने उत्सुकता जताई कि अकेले व्यक्ति ने कैसे यह सब कर लिया? पिताश्री ने पूछा साहस और संकल्प हो तो असंभव दीखने वाले काम

भागवत भूमि का सेवन

सहज ही संपन्न हो जाते हैं। गुरु से शिक्षा ग्रहण कर स्वामी दयानंद भ्रमण करते हुए हरिद्वार के कुंभ में गये। प्रवास में वे जगह-जगह लोगों से वैदिक धर्म की चर्चा करते। उसके मर्म को समझ कर प्रथा परंपराओं के पालन की बात करते। कुंभ में जाने का उद्देश्य यह था कि वहाँ हजारों की संख्या में लोग इकट्ठे होते हैं। गाँव-गाँव घूमने पर सौ पचास लोगों से ही संपर्क हो पाता। कुंभ में सैकड़ों व्यक्तियों से एक साथ भेंट हो जाती। हरिद्वार पहुँच कर स्वामी दयानंद ने एक छोटा सा शिविर लगाया और बाहर एक झंडे पर 'पाखंड खंडिनी पताका' लिखकर गाड़ दिया। उस पताका ने भी लोगों का ध्यान आकर्षित किया। स्वामी जी शिविर के बाहर खड़े होकर मूर्तिपूजा, श्राद्ध, अवतार, पुराण, कर्मकाण्ड आदि के नाम पर चलने वाले ढकोसलों की पोल पट्टी खोलने लगे। जाति पाँति, छुआछूत, बाल विवाह, सती प्रथा और वैवाहिक कुरीतियों, अंधविश्वासों के बारे में भी वे बोलने लगे। उनकी बातों में नयापन था और वे तर्कसंगत भी थीं। लोगों के गले उतरने लगीं। उनका विरोध भी हुआ और समर्थन भी मिला।

कुंभ और वाद की यात्राओं में मिले समर्थकों को लेकर स्वामी जी ने 'आर्यसमाज' नामक संगठन की नींव रखी। उन्होंने आजीवन यात्राएँ कीं। राजाओं और सामंतों से लेकर पंडितों, विद्वानों तक हर वर्ग के लोगों से मिले। उन्होंने दूसरे धर्म के अंधविश्वासों और कुरीतियों पर भी चोट की। उनकी बातों और कामों से जिन लोगों के स्वार्थ पर चोट पहुँचती, वही उनका विरोधी हो जाता। लेकिन उनका साथ देने वालों की भी कमी नहीं थी। उनका काम सब जगह फैल गया। 'आर्य समाज' उन्हीं के सिद्धांतों का प्रचार करती है। आज भी उनके अनुयायी सामाजिक कुरीतियों और अंधविश्वासों से लड़ रहे हैं। पिताश्री ने श्रीराम को विस्तार से बताते हुए यह जानकारी भी दी कि स्वामी दयानंद के खिलाफ हमेशा षड्यंत्र रचे जाते थे। उनकी मृत्यु भी एक षड्यंत्र में ही हुई। जोधपुर में कुछ लोगों ने मिलकर उनके रसोइये को अपनी तरफ मिलाया और उसके हाथों स्वामी जी को विष दिला दिया। स्वामी जी ने विष की दारुण पीड़ा झेली और उसी से उनकी मृत्यु हो गई। मरते मरते भी उन्होंने रसोइये को अपने पास से भगा दिया। उन्हें डर था कि लोगों को पता चलेगा तो रसोइये को जिंदा नहीं छोड़ेंगे। स्वामी जी ने उसे क्षमा कर दिया और उसके भाग जाने की व्यवस्था की।

श्रीराम यह वृत्तान्त बड़े ध्यान से सुन रहे थे। उन्होंने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। पिताश्री से मथुरा के अन्यान्य स्थानों का विवरण और कथाएँ

सुनते हुए वापस लौट आए। ननिहाल और मथुरा होते हुए संपन्न हुई इस यात्रा ने पिता के सान्निध्य में एक संस्कार दिया। वह संस्कार भारतीय धर्म और संस्कृति के प्रति एक दृष्टिकोण के रूप में था। नियति ने उनके लिए जो दायित्व चुन रखा था, उसके बाहर से किसी विशेष सहयोग की आवश्यकता नहीं थी लेकिन शुक्रदेव जैसी मुक्त आत्मकाम आत्मा को भी अपने पिता वेदव्यास से भागवत कथा सुनना पड़ी थी।

जिस हवेली में श्रीराम रहते थे, उसमें तीन चाचा उनकी संताने और भाई बहिन भी निवास करते थे। बीस पच्चीस लोगों का भरा पूरा परिवार था। चाचाओं की ससुराल पक्ष के लोग भी आते जाते रहते थे। बुआ भतीजों और दूसरे रिश्तेदारों के आने जाने से चहल पहल बनी रहती थी। हँसी-खुशी का माहौल होता। पिताश्री के रहते तक गाँव और पास पड़ौस की बस्तियों से आए लोगों से बैठक भरी रहती थी। सहपऊ से भागवत सप्ताह से लौटने के बाद पिताश्री को एक दिन सीने में दबाव महसूस हुआ। अच्छी तरह बैठे बात कर रहे थे कि दबाव और पीड़ा से दोहरे होकर लेट गए। उनके मुँह से 'नमः भगवते वासुदेवाय' मंत्र का उच्चारण हुआ और बोली बंद हो गई। घर में कोहराम मच गया। हँसी-खुशी का माहौल चिंता में बदल गया और लोग अपनी तरह से पंडित जी की सार संभाल करने लगे। यह घटना दिन में ही घटी थी। चिकित्सा सहायता तुरंत उपलब्ध हो गई और कुछ देर में होश आ गया। तीन चार दिन बाद वे सामान्य दिखाई देने लगे।

पिताश्री स्वस्थ तो हो गए लेकिन वैद्यों ने उन्हें अब सावधान रहने के लिए कहा। उन्होंने बताया कि हृदय रोग का आक्रमण हुआ है। संभल कर रहना चाहिए। यात्रा आदि से बचें, काम का बोझ कम लें और जहाँ तक हो सके लोगों से मिलना जुलना भी सीमित कर दें। पिताश्री ने सबकी सलाह सुनी। कामकाज का दबाव और मिलना जुलना तो क्या कम किया, भजन पूजन में ज्यादा समय देने लगे। इस कारण कथा वार्ताओं में हिस्सा लेना थोड़ा कम हो गया।

श्रीराम पिताश्री की बीमारी और उसके बाद उनमें आए बदलावों को बड़ी बारीकी से देख रहे थे। रोग बीमारी का शिकार होते हुए उन्होंने दूसरे लोगों को भी देखा था। लेकिन वे इलाज के बाद ठीक हो जाते थे और रोजमर्रा का जीवनक्रम अपना लेते। हमेशा की तरह सहज होने में उन्हें जरा भी देर नहीं लगती। खानपान, रहन-सहन व्यवहार और दिन भर के कामकाज पहले की तरह चलने

भागवत भूमि का सेवन

लगते। बीमारी के कारण कोई कमजोरी आती तो उसका प्रभाव दिनचर्या में शिथिलता के रूप में दिखाई देता लेकिन ऐसा नहीं होता था कि स्वभाव और प्रवृत्तियाँ ही बदल जाए।

पिताश्री का संवरण

पिताश्री शुद्ध सात्विक स्वभाव के थे। फिर भी उनमें विलक्षण परिवर्तन आया। उनके कामकाज से ऐसा लगता जैसे कुछ समेटने में लगे हुए हों। यात्रा का समय आने पर व्यक्ति जैसे अपना सामान समेटने और उस अवधि के काम निपटाने की जल्दी मचाने लगता है, उसी तरह की आतुरता पिताजी के व्यवहार में दिखाई देने लगी। उन दिनों वे बच्चों की ब्याह शादी, छोटे भाई बहिनों की जरूरतों और अभ्यागतों की जिज्ञासाओं का समाधान करने में ज्यादा समय लगाने लगे।

संवत् १९६१ (सन् १९२३) का आषाढ़ शुरु होने को था। पिताश्री ने पुत्र श्रीराम को एक दिन बुलाया और कहा कम से कम नौ दिन तक मेरे पास दो घंटा रोज बैठो और जो मैं कहता हूँ उसे ध्यान पूर्वक सुनो। पिता की आज्ञा शिरोधार्य होना ही थी। जिस दिन से पिताश्री ने अपने पास बैठने के लिए कहा था, उसके एक दिन पहले क्षौरकर्म कराया। पुत्र से कहा कि अगले सात दिन तक व्रत नियम से रहना है। दिन में एक समय भोजन और एक समय फलाहार करते हुए एकाशन व्रत की व्यवस्था दी। पिता पुत्र दोनों के लिए जमीन पर बिस्तर बिछा कर सोने की व्यवस्था की गई।

अगले दिन सुबह पिताश्री ने भागवत की कथा सुनाना आरंभ किया। यह सिर्फ श्रीराम के लिए एक शिक्षण सत्र था। और लोगों को भाग लेने के लिए आमंत्रित नहीं किया गया। भागवत का कथा-भाग और सिद्धांत पक्ष इस प्रकार कहना शुरू किया कि उस दिन का विश्राम स्थल दो घंटे पूरे होते तक आ जाए। भागवत सुनाने का उद्देश्य पिताश्री ही भलीभांति जानते होंगे। इस विषय में उन्होंने अपने चिरंजीव को भी नहीं बताया। संभवतः भागवत शास्त्र के मूल भाव जीवन और जगत के सत्य से परिचित कराना हो?

भागवत का मूल भाव क्या है? विषम परिस्थितियों में भी धर्म का साधन। अपने अभ्युदय और निःश्रेयस के लिए निष्ठापूर्वक प्रयत्न करना और प्रभु समर्पित जीवन जीवन जीना। भागवत कथा का आरंभ पृथ्वी पर कलियुग के अर्थात् विषम परिस्थितियों, जटिलताओं और आत्मिक उन्नति में बाधकों के



आधिपत्य से होता है। परीक्षित इन स्थितियों का शमन करने निकलते हैं तो कलियुग भी क्षमा माँगने लगता है। भागवत शास्त्र के अनुसार कलियुग अशुभ और विपर्यय का नाम है। परीक्षित उसका निग्रह करने लगते हैं तो वह पृथ्वी को मुक्त करने के लिए तैयार हो जाता है लेकिन अपने लिए आश्रय भी माँगता है। परीक्षित कलि को पहले चार और फिर पाँच स्थानों पर रहने की छूट देते हैं। इन पाँच स्थानों में पहले चार असत्य, मद, आसक्ति और निर्दयता में वास करने के लिए कहते हैं। अनुनय करने पर पाँचवा स्थान रजस भी छोड़ देते हैं। रजस अर्थात् लोभ, दिखावा, अकड़, संकीर्ण भाव। जहाँ भी ये विकृतियाँ होगी, वहीं कलि के दुष्प्रभाव अर्थात् शोक-संताप होंगे।

संतापों से बचने का उपाय? भागवत का एक ही संदेश है 'प्रभु समर्पित जीवन।' और सब उपाय समस्याओं को उलझाते और विपदाओं को सघन ही बनाते हैं। श्रृंगी ऋषि के शाप से परीक्षित का जीवन एक सप्ताह भर शेष रह गया तो वे चिंतित नहीं हुए। क्योंकि वे प्रभु समर्पित जीवन जी रहे थे, इसलिए उन्होंने शेष दिनों के श्रेष्ठतम उपयोग की योजना बनाई। स्थितियाँ और संयोग ऐसे बने कि सातों दिन अध्यात्म चर्चा में व्यतीत हुए। कथा पूरी होने के बाद उन्होंने मृत्यु का अतिथि की तरह स्वागत किया और उत्सव की तरह उसे अपनाया।

सप्ताह भर के सान्निध्य में पिता पुत्र ने कथा प्रसंगों का आस्वाद लिया। उनके माध्यम से अध्यात्म और तत्त्वज्ञान की चर्चा की। ज्ञान, कर्म और भक्ति के सागर में निमज्जित हुए। भागवत का एकादश स्कंध शुद्ध तत्त्वज्ञान का प्रतिपादन करता है। मुक्ति या निश्चयस की प्राप्ति के विविध उपायों की विवेचना करते हुए इस स्कंध में भगवान वेदव्यास ने ललित ललाम भाषा का उपयोग किया है। तत्त्वज्ञान की चर्चा प्रायः गूढ़ गंभीर हो जाती है। वह पंडित प्रवर लोगों के लिए ही बोधगम्य होती है। जैसे वेदांत, योग, सांख्य मीमांसा आदि शास्त्र। इन शास्त्रों में दार्शनिक सिद्धांतों का प्रतिपादन गणित के सूत्रों की तरह किया गया। भागवत कथा के एकादश स्कंध में सभी दार्शनिक मतों को काव्य में निरूपित कर दिया है।

तुम भगवान के हुए

कथा सुनने के दिनों में भी एकांत में जाने और ध्यान में लीन रहने का क्रम जारी था। अंतिम दिन की कथा सुनाने के बाद एक विचित्र घटना घटी। पिता कहानी कहने या पाठ पढ़ाने की तरह ही भागवत कह रहे थे। अनुष्ठान की

भागवत भूमि का सेवन

तरह विधि विधान की आवश्यकता नहीं समझी गई थी इसलिए पूर्णाहुति के दिन यज्ञयाग या भोग आदि का कार्यक्रम नहीं रखा गया। कथा सुनने के बाद पुत्र ने पिताश्री से पूछा श्रवण के बाद दक्षिणा दी जाती है। मैं आपको क्या भेंट करूँ? पिता अपने लाड़ले का मुँह देखते रह गए। श्रीराम ने फिर वही प्रश्न किया। पंडित जी ने बेटे की बाहें पकड़ कर खींच लिया और सीने से लगा लिया। इस बार भी कुछ नहीं बोले। तीसरी बार फिर वही प्रश्न किया तो उत्तर आया, 'अपने आपको भेंट कर दो।' श्रीराम ने कहा कि वह तो मैं आपका हूँ ही। आपका आशय यदि अपने आपको भगवान के लिए भेंट चढ़ा देने से है तो उसके लिए संकल्प ग्रहण कराइए।

पिताश्री ने हाथ में जल लेकर संकल्प कराया। फिर कहा अब तुम भगवान के हुए। आशीर्वाद लेने के बाद श्रीराम हमेशा की तरह एकांत में चले गए। गुफा वाली घटना के बाद वे जंगल में नहीं जाते थे। लेकिन कहाँ जाते हैं यह भी माँ के सिवाय किसी को पता नहीं था। उस दिन एकांत में गए तो घंटों बीत गए। शाम होने लगी फिर भी वापस नहीं आए। माँ को चिंता होने लगी। उन्होंने पंडित जी से पूछा कि बेटे को कहाँ भेज दिया है, अभी तक नहीं आया। पिता भी चिंतित हुए। हिमालय जाने वाली घटना याद आ गई। परेशान होकर वे बोले कहीं चला तो नहीं गया। माँ को भी आशंका हुई। फिर अपने आपको ढाढ़स बँधाते हुए बोली गौरी बाग के शिवालय में एक बार दिखवा लीजिए। कहीं वहाँ भक्ति में न रमा हो। गौरी बाग गाँव से एक डेढ़ मील एक छोटा सा बगीचा था। वहाँ आम अमरूद और नीम के कुछ पेड़ थे। बारहों महीने सन्नाटा रहता था। सोमवार, पूनम या शिवरात्रि के दिन लोग शिवालय में आते थे। बाकी समय सन्नाटा रहता था। इसी जगह श्रीराम ने अपना ठिकाना बना रखा था।

पिता खुद दौड़े चले गए। साथ में दो तीन व्यक्ति और थे। वहाँ जाकर देखा श्रीराम एक पेड़ के नीचे पालथी मारकर ध्यान मुद्रा में बैठे हैं। पंडित जी ने उन्हें पुकारा। कोई उत्तर नहीं आया, श्रीराम निश्चल बैठे ही रहे। उन्होंने दूसरी, तीसरी, चौथी बार पुकारा फिर भी कोई असर नहीं हुआ तो हाथ पकड़ कर हिलाने की कोशिश की। थोड़ा सा धक्का लगते ही श्रीराम आगे की ओर सिर के बल लुढ़क गए। ध्यान के समय गोदी में रखे हाथ हिलाने डुलाने के कारण प्रणाम की मुद्रा में जुड़ गए थे। लुढ़कते हुए उनकी स्थिति ऐसी थी जैसे सिर से प्रणाम करने के लिए आगे की ओर झुके हों और माथा टेक दिए हों। लुढ़कने के

बाद वे उसी स्थिति में पड़े रहे। पंडित जी के चेहरे पर हवाईयाँ उड़ने लगी। उन्होंने बेटा-बेटा कहा और नाम लेकर दसियों बार पुकारा, हिलाने डुलाने की कोशिश की, पकड़ कर बिठाना चाहा लेकिन शरीर निढाल ही रहा। अनहोनी अनिष्ट आशंका से घिर कर उन्होंने नथुनों के पास अंगुली रखकर देखा, नब्ज टटोली और हृदय की धड़कन देखी। जीवन के लक्षण हैं या नहीं? फिर भी निष्कर्ष पर पहुँचने की स्थिति ही नहीं आई और पिता के मुँह से जोर की चीख निकल गई। साथ आए लोगों के चेहरों का रंग उड़ गया।

चीख का शायद कुछ भान हुआ कि श्रीराम की ध्यान समाधि खुली। वे अपने आप उठकर बैठ गए और अपने आपको संभालने से पहले पिताश्री का अभिवादन किया। पुत्र के प्रणाम से पंडित जी आश्चर्य हुए कि उनका बेटा सकुशल है। कहने लगे, 'मैं तो डर ही गया था कि तुम चले गए।' श्रीराम ने तत्काल कोई उत्तर नहीं दिया। घर आकर पिता ने फिर वही बात दोहराई और भगवान को धन्यवाद देने लगे तो बोले कि 'आप उन्हें क्यों धन्यवाद देते हैं। आप मुझे भगवान को सौंप चुके हैं। आशीर्वाद दीजिए कि मैं अब उन्हीं का काम करूँ।' ताई जी वहीं उपस्थित थीं। उन्हें ये बातें अच्छी नहीं लग रही थी। पति से कहने लगी थी, 'आपने श्रीराम को पता नहीं क्या क्या पढ़ा सिखा दिया है। मुझे इससे बहुत डर लगता है।'

उस अनुभव के बारे में श्रीराम ने कुछ दिन बाद अपने साथियों को बताया। अपने आपको भगवान् के लिए अर्पित कर देने के बाद लगा कि मन में अपूर्व शान्ति आ गई है। ध्यान में बैठे तो संसार जैसे तिरोहित हो गया। अपने आसपास कुछ है ही नहीं। कितनी देर ध्यान में बैठना हुआ, इसका स्पष्ट आभास नहीं है। लेकिन उस अवधि में एक अद्भुत प्रसंग घटा। वह प्रसंग आंतरिक अनुभूति थी, कोई स्वप्न था अथवा दिव्य दर्शन। इस बारे में श्रीराम ने कुछ नहीं कहा। अनुभूति एक घटना की तरह थी जो प्रत्यक्ष होती लग रही थी। जिस समय यह हुई, तब भी यह आभास भी नहीं था कि ध्यान हो रहा है।

ध्यान में बैठने से पहले वे शिवालय में जाते थे। वहाँ दर्शन कर आम के पेड़ के नीचे बैठे ही थे कि यह अनुभूति हुई। दर्शन कर नीचे उतर रहे हैं। मन में भाव आया कि आसन का स्थान अभी चौबीस पचीस पग दूर है। वस्तुस्थिति तो आसन पर बैठने की है लेकिन मन का लय होने के बाद मानस पटल पर यह दृश्य चल रहा है। शिवालय के नीचे उतरते हुए पाँव के नीचे किसी कोमल वस्तु

का आभास हुआ। देखा तो एक सर्प दब गया है। क्षण भर में ही कुपित सर्प ने अपना मुँह घुमाया और पाँव पर डस लिया। इस घटना से हतप्रभ श्रीराम कुछ समझें इससे पहले साँप ने पहले पिंडली में और फिर कमर के नीचे डसा।

सर्पदंश की चेतावनी

कहीं सुन रखा था कि साँप सिर्फ एक बार ही डंसता है। साथी ने रोका तो श्रीराम ने कहा लेकिन यह अनुभव हो रहा था। ध्यान में बैठे-बैठे ही लग रहा था। दंश के बाद शरीर गिर गया। पता नहीं क्या क्या उपचार किया गया। वह सब दिखाई दे रहा था। इस तरह दीख रहा था जैसे किसी दूसरे व्यक्ति को यह सब हो रहा है। सर्प विष चढ़ने लगा तो नींद के तेज झोंके आने लगे। आसपास बैठे लोग मुँह पर पानी के छींटे मार रहे थे। वैद्य जी आ गए। उन्होंने कुछ औषधियाँ मँगाईं। तब तक मांत्रिक भी आ गया। वह मंत्र पढ़ते हुए थाली बजाने लगा। थाली की आवाज लयात्मक थी। उसके संगीत में मन डूबने-उतराने लगा। मांत्रिक थाली पीटने के साथ मंत्र भी पढ़ता जा रहा था। वैद्यजी की मंगाई औषधि आ जाने के बाद काढ़ा तैयार किया गया। काढ़ा पिया, उससे आराम मिलने के बजाय पीड़ा और बढ़ गई। लगा जैसे जगह-जगह साँप डस रहे हैं। उनके दाँतों की तीखी चुभन, जलन अनुभव होती है। फिर कुछ देर के लिए वह जगह सुन्न हो जाती है और कुछ ही पलों बाद चुभन फिर तीक्ष्ण हो जाती।

प्राण कब छूट गए? कुछ पता ही न चला। होश आया तो देखा कि जटा जूट धारी एक सौम्य संन्यासी अपना शरीर नदी से खींच कर बाहर ला रहे थे। मृत जान कर परिवार के लोगों ने शरीर को शायद नदी में प्रवाहित कर दिया था। सर्पदंश से मृत्यु को प्राप्त हुए व्यक्ति का शव जलाया नहीं जाता। उसके भौतिक कारण जो भी हों, आध्यात्मिक मान्यता के अनुसार सर्प काल का प्रतीक है। जिसे काल ने स्वयं ही चुन लिया हो उसके शरीर या अस्तित्व में ऐसा कुछ नहीं बचता, जिसे विसर्जित किया जाए। उन संन्यासी ने श्रीराम के शरीर को नदी से खींच कर बाहर निकाला और जमीन पर लिटाया। अचेत काया के पास बैठकर संन्यासी ने कुछ देर ध्यान लगाया। उन संन्यासी की सौम्य मूर्ति को पास बैठा अनुभव करते हुए चेतना धीरे-धीरे लौटने लगी। उन्होंने स्नेह से थपथपाया और कहा 'उठो घर जाओ। माता-पिता परेशान हो रहे होंगे।'।



संन्यासी का यह आदेश सुनकर उठने का उपक्रम किया तो अगला संदेश यह आया अब दोबारा यहाँ मत आना। घर में बैठकर ही ध्यान लगाना। पूछना चाहा था कि महात्मा आप कौन हैं? लेकिन डर के मारे पूछ नहीं सका। संन्यासी ने शायद मन की बात समझ ली बिना पूछे ही उत्तर दे दिया, हम इस चराचर जगत् के मुक्ति का मार्ग खोज रहे एक साधक हैं बच्चा। कोई सिद्ध महात्मा मत समझना। एक साधारण संन्यासी भर हैं।

अब कहने का साहस हुआ। इच्छा उभरी और तुरंत निवेदन भी कर दिया, 'आप हमारा मार्गदर्शन कीजिए न पूज्यवर।' संन्यासी ने कहा नहीं। 'अभी हम स्वयं पथिक हैं। लेकिन तुम्हारी मार्गदर्शक सत्ता तुम पर बराबर दृष्टि लगाए हुए है। उपयुक्त अवसर आने पर वह तुम्हारे पास पहुँचेगी। यह मत पूछना कि कब? हम सिर्फ यही कह सकते हैं कि जल्दी ही। आश्वस्त रहना और किसी को अपना गुरु बनाने की जल्दबाजी मत करना।'

संन्यासी आगे कुछ और भी कह रहे थे। क्या कहा, यह याद नहीं रहा। अंत में सिर्फ इतना ही सुनाई दिया कि उठ अब जा और आँख खुली तो सामने पिता को विचित्र स्थिति में विलाप करते हुए देखा। उठकर उन्हें प्रणाम किया। बाद में जो हुआ वह सभी को मालूम है।

पिता ने समझा कि यह घटना भागवत कथा सुनाने के कारण हुई। मोह माया के कारण थोड़ी देर तक तरह तरह के संकल्प विकल्प मन में उठते रहे। फिर कहा प्रभु को जो स्वीकार है वही होगा। श्रीराम के लिए ईश्वर ने कुछ नियत कर रखा है तो हम लोगों में से कोई भी क्या कर सकता है? संतोष करना चाहिए। कुछ देर मन को ढाढ़स बँधाते, फिर वापस पुत्र मोह में डूब जाते। यद्यपि वे अच्छी तरह जानते थे कि उनका पुत्र माता-पिता को छोड़ कर कहीं जाने वाला नहीं है। लेकिन यह मोह भी तो बड़ा विलक्षण भाव है। मन को कहीं स्थिर तो नहीं ही होने देता, उसे बाँधकर हिलाता-डुलाता भी रहता है।

पंडित जी ने उसी क्षण निश्चय कर लिया कि वे पुत्र को भागवत कथा नहीं सुनाएंगे, साधु-संतों और वैरागियों के बारे में नहीं बताएँगे, उन्हें पास फटकने भी नहीं देंगे। इस निश्चय के बाद पिताश्री ने भागवत शास्त्र का विसर्जन करने की ठानी। जब भी कोई उपदेशक कथा प्रवचन से विराम लेना चाहता है तो पूर्णाहुति का आयोजन करता है। यह परंपरा अब लुप्तप्राय है। लेकिन जिन्होंने गुरु से दीक्षा लेकर शास्त्र का उपदेश किया, वे इस मर्यादा को जानते हैं। शरीर से

भागवत भूमि का सेवन

अशक्त होने पर, वृद्धावस्था में, वैराग्य होने पर, परिव्राजक संन्यासी बन जाने के बाद कई शास्त्री कथा आयोजन से भी मुक्ति पा लेते हैं। शरीर इस योग्य नहीं रहता अथवा कथा आयोजकों के लिए आवश्यक तामझाम नहीं जुटता इसलिए वे साधनों और विधियों का त्याग कर देते हैं।

पिताश्री ने वंश परंपरा में असमय संन्यास का उदय होते देख भागवत की पोथी का विसर्जन करना चाहा। उसके लिए इक्कीस ब्राह्मण बुलाये, यज्ञ आयोजित किया और पूर्णाहुति के रूप में भागवत शास्त्र वासुदेव मंदिर में स्थापित कर दिया। जिस दिन मंदिर में शास्त्र की स्थापना की और भगवान् से निवेदन किया कि अब शास्त्र प्रवचन से विराम लेते हैं, उसी दिन बल्कि उस निवेदन के बाद ही पिताश्री की वाणी ने भी विराम ले लिया। उनका बोलना बंद हो गया। लोगों ने कहा कि पंडित जी की वाचा भगवद् गुणगान के लिए ही खुली थी। कथा से विराम लिया तो स्वर भी चले गए।

मृत्यु के दर्शन

यज्ञ संपन्न होने की रात को ही पंडित जी की हालत बिगड़ी। बोली बंद होने के बाद उनका चलना-फिरना भी बंद हो गया। वे बिस्तर पर ही पड़े रहने लगे। इशारों से बात करते और होठों में कंपन होता रहता, जैसे द्वादश अक्षर मंत्र का जप कर रहे हों। अगले दिन उन्होंने भोजन लेने से मना कर दिया। स्वजनों ने आग्रह किया तो इशारे से कहने लगे कि अब वक्त आ गया है। भोजन के द्वारा शरीर को जबर्दस्ती आगे नहीं खींचना है।

दो एक दिन में ही पंडित जी के बीमार होने और देह त्याग का संकल्प लेने की सूचना स्वजन संबंधियों में फैल गई। वे कुशल क्षेम जानने के लिए आने लगे। घर में लोगों की भीड़ रहने लगी। पंडित जी सबको देखते, हाथ जोड़कर उनका अभिवादन करते। कुछ कहते तो नहीं बनता था लेकिन चेहरे के भाव जैसे कहते थे कि जाने-अनजाने अब तक जो भी गलतियाँ हुई हों, अपने किसी व्यवहार से दुख हुआ हो, तो उसके लिए क्षमा माँगता हूँ। भावों की इस अभिव्यक्ति के बाद आगंतुक भी अभिवादन का उत्तर देते तो पंडित जी का चेहरा जैसे खिल उठता। शुक्ल पक्ष की दशमी का उदय होते ही पंडित जी ने अपने बड़े और दुलारे पुत्र श्रीराम को बताया। संकेत से ही कहा कि उठा कर बिठा दे। उन्हें बिठाया गया। पंडित जी ने फिर अपने आप पालथी लगाई।

आसन लगाया, दोनों हाथ गोद में रखे, आँखें बंद की और कुछ पल निश्चल बैठे रहे। पांच सात मिनट तक ध्यान मुद्रा में बैठे रहने के बाद उनके मुँह से 'नमो भगवते वासुदेवाय' का मंत्र निकला।

पुत्र से उन्होंने कहा कि मूल भागवत का पाठ करें। श्रीराम ने मूल चार श्लोकों का पाठ शुरू किया—'अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत्सदसत्परम्। पश्चादहं यदेतच्च.... ॥' पाठ के बाद वहाँ उपस्थित लोगों को समझाने के लिए अर्थ भी सुनाया। 'भगवान् कहते हैं कि सृष्टि के आदि में केवल मैं ही था। सत्, असत्, स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण प्रकृति भी नहीं थी। सृष्टि के पश्चात् भी मैं ही हूँ। वह विश्व जो दृष्टिगोचर हो रहा है, वह भी मैं ही हूँ। प्रलय में जो शेष रहता है, वह भी मैं ही हूँ। यह ब्रह्म का स्वरूप कहा गया है। आत्मा में असत्, दुर्बलता और दुख की जो प्रतीति होती है सत्-चित् और आनंद आदि की प्रतीति नहीं होती, उसे भी मेरी (भगवान् की) ही माया जानो।'।

'पंच महाभूत जिस तरह छोटे बड़े सभी जीवों में प्रविष्ट होते हैं और कारण रूप से पृथक् रहने के कारण अप्रविष्ट भी है, वैसे ही मूल भौतिक पदार्थों में मेरा प्रवेश है और नहीं भी है। आत्मतत्त्व के जिज्ञासु पुरुष को जानना चाहिए कि अन्वय और व्यतिरेक से जो सब जगह और सर्वदा रहे वही आत्मा है। अन्वय का अर्थ है कार्य में कारण का संबंध और व्यतिरेक का अर्थ है संबंध का अभाव।' अर्थ और भाव पूरा होते होते तक पंडित जी ने शरीर से व्यतिरेक कर लिया। उनकी आत्मचेतना विराट् चेतना में लीन हो गई। जो पद्मासन लगा कर वे बैठे थे, उसके बारे में शास्त्रों ने कहा है कि साधक अपने इष्ट में ही लय होता है। पंडित जी की अवस्था उस समय सड़सठ वर्ष थी। उनके जाते ही घर में रोना-धोना मच गया। श्रीराम लेकिन गंभीर थे, जैसे कुछ सोच रहे हो या समझने की चेष्टा में हों।

यह पहला अवसर था जब श्रीराम ने शरीर और आत्मा का संबंध विच्छेद होते देखा हो। रोना धोना मचने लगते ही श्रीराम पिता के पास आसन लगाकर बैठ गए। उसी तरह जिस तरह पंडित जी बैठे थे। ताई जी ने बेटे को इस तरह बैठते देखा तो वे जोर से रो उठीं। उन्हें न जाने क्यों लगा कि पुत्र भी पिता का अनुकरण कर रहा है उन्हें छोड़कर जा रहा है। वे वैधव्य को स्वीकार करने वाले प्रतीकात्मक क्रियाएँ संपन्न करने के स्थान पर पुत्र को झिंझोड़ने लगीं। श्रीराम फिर भी अविचल बैठे रहे। ताई जी को घर के लोगों ने समझाया। बाकी

भागवत भूमि का सेवन

क्रियाएँ संपन्न करने के लिए कहा। घर वालों के हिसाब से श्रीराम अपनी सहज वृत्ति के अनुसार मृत्यु की इस घटना को अपने ढंग से समझ रहे थे। करीब बीस मिनट तक अविचल ध्यान मुद्रा में बैठे रहकर श्रीराम अपने आप उठ गए और परिवार के लोगों के साथ पिताजी के पार्थिव शरीर की विदाई में जुट गए।

अंत्येष्टि और मरणोत्तर संस्कार के बाद परिजनों में विचार चला कि पिताजी की विरासत को कौन संभाले। जमीन जायदाद की जिम्मेदारी से श्रीराम ने अपने आपको तुरंत यह कहते हुए अलग कर लिया कि वे सिर्फ पिता की भागवत परंपरा का पालन करेंगे। स्वयं को भगवान् के लिए ही रखेंगे और उन्हें ही अपना बनाएँगे। स्वजनों ने यह सुना और समझ लिया कि मृत्यु के पूर्व पंडित जी ने सात दिन तक जो कथा सुनाई थी उसी का प्रभाव है। जिम्मेदारियाँ सिर पर आएँगी तो सब संभल जाएगा। परिवार की वर्तमान पीढ़ी में सबसे बड़े ज्योतिप्रसाद के सिर पर पगड़ी बंधी। रिवाज के अनुसार दूसरे लोगों को भी उनका दायभाग मिला। श्रीराम अंत तक यही कहते रहे कि वे घर गृहस्थी और जमीन जायदाद संभालने के लिए नहीं हैं। हमें अपने धर्म कर्तव्य का पालन करना है।

पिता के नहीं रहने के बाद श्रीराम अपने आपको अकेला अनुभव करने लगे। घर के और सदस्य भी थे, लेकिन उनकी रुचि खाने कमाने की विद्याओं में ज्यादा थी। खेती बाड़ी, व्यापार और लगान वसूली के अलावा वे कोर्ट कचहरी के कामों में भी व्यस्त रहते। उन सदस्यों की ज्योतिष, आयुर्वेद, प्रशासन और समाज सेवा के क्षेत्र में अच्छी पैठ थी। योग, ध्यान, अध्यात्म आदि में श्रीराम की ही विशेष गति थी।

बचपन और किशोरावस्था की अनेक घटनाएँ हैं जिनमें श्रीराम अत्यंत सहृदय और सहज ही विश्वास करने वाले गुणों से ओतप्रोत दिखाई देते हैं। गाँव में माताएँ बच्चों को दूध पिलाते ही मक्खन खिलाने पर विशेष ध्यान देती हैं। एक दिन श्रीराम ने गाय को दुहे जाते हुए देखा। छूटने से पहले बछड़े को गाय के पास ले जाते हैं। वह थनों में दूध उतारती है। फिर अपने उपयोग के लिए दूध दुहने लगते हैं। श्रीराम जब गाय को दुहे जाते देख रहे थे तो बछड़े को हटाया गया। बछड़ा गाय की ओर देखता, वापस जाने की कोशिश करता और मचलता रहा। गाय भी अपने वत्स की ओर टुकुर-टुकुर देखती रही। गाय और बछड़े का यह संबंध बिछोह और विवशता देख कर श्रीराम दुखी हुए। वे अंदर गए और ताई जी से कहा कि आज के बाद दूध नहीं पिएंगे।

ताई जी ने और घर के लोगों ने समझाने की कोशिश की, दूध पीने से ताकत आती है। शरीर बलवान बनता है, रोगों से लड़ने की सामर्थ्य आती है। श्रीराम के पास सबका एक ही उत्तर था बछड़े के मुँह का आहार लेकर अपना शरीर मजबूत नहीं बनाना। महीनों तक समझाने का क्रम चलता रहा। आखिर में समाधान यह निकला कि बछड़ा दूध पीते पीते तृप्त हो जाए और अपने आप गाय से दूर चला जाए तभी दूध दुहा जाए। वही दूध पीएंगे। इस शर्त पर दुहा गया दूध बहुत कम होता था, लेकिन पशुओं की आवश्यकता को ध्यान में रखना ज्यादा जरूरी समझा गया।

एक घटना गाँव के बाजार में ताला खरीदने की है। घर का काम नौकर-चाकर कर दिया करते थे। लेकिन माँ ने सोचा कि बच्चे को घर-परिवार और दुनियादारी का अभ्यास होना चाहिए। घर में रखी संदूक का ताला खराब हो गया था। दो तीन पाई में नया ताला मिल जाता। माँ ने पैसे देकर बाहर भेजा। दूकानदार ने ताले की कीमत तीन पैसे बताई। माँ ने जो कीमत बताई उससे यह चार पाँच गुना ज्यादा थी। श्रीराम ने कहा कि आप ज्यादा पैसे ले रहे हैं। दूकानदार ने कहा वास्तविक कीमत यही है। कहीं भी पूछ कर देख लो। इससे कम में मिल जाए तो। दूकानदार अपनी बात पूरी करता, इसके पहले ही श्रीराम ने तीन पैसे निकाले और ताला यह कहते हुए उठा लिया कि बस-बस रहने दो। मुझे असल कीमत मालूम है, लेकिन आपको उतने ही पैसे दे रहा हूँ, जितने आपने बताए। आप पर भरोसा है।

घर में ताई जी ने छोटी सी नसीहत दी और बात आई-गई हो गई। इस घटना के बाद श्रीराम उस दूकान के सामने से कई बार निकले होंगे, लेकिन कभी नजर उठाकर देखा नहीं। दूकानदार जरूर उन्हें आते-जाते देखता। जब भी देखता उसे ख्याल आता कि श्रीराम अब रुके, तब रुके। दस बारह दिन तक कुछ नहीं हुआ। एक दिन दूकानदार ने श्रीराम को पुकार कर बुलाया और कहा, 'मुझे पछतावा हो रहा है। मैंने तुमसे ज्यादा पैसे ले लिए। मेरे मन में उस समय पता नहीं कैसे लोभ इतना हावी हो गया कि वास्तविक कीमत से चार गुना ज्यादा पैसे ले लिए। ज्यादा लिए हुए पैसे अपने पास रख लो और मुझे माफ करो।'।

श्रीराम यह सब चुपचाप सुनते रहे। दूकानदार ने पैसे वापस दिए और फिर भी पछताता रहा तो बोले 'चाचा इसमें पछताने की क्या बात है? मैंने आपकी बात तब भी मान ली थी और अब भी मुझे कोई शिकायत नहीं है।'।

भागवत भूमि का सेवन

श्रीराम के किशोर जीवन की यह घटना किसी पर भी अविश्वास नहीं करने की प्रवृत्ति दर्शाती है। इस आदत के कारण आगे उन्हें कई बार नुकसान उठाना पड़ा; लेकिन वे यही कहते कि विश्वास ही परिवर्तन लाता है। अविश्वास और संदेह से बुराई बढ़ती ही है, दूरियाँ भी। बहुत बाद में चल कर उन्होंने इस सूत्र में एक अंश और जोड़ा था उसकी चर्चा यथा समय।



अंकुर आने लगे

हिमालय जाते हुए वापस आने के बाद श्री राम ने अपनी मर्जी से आँवलखेड़ा की सीमा भी नहीं लाघी थी। ननिहाल गए थे, लेकिन वह भी पिता के साथ और पूरे परिवार के साथ लौटना हुआ था। मथुरा ने श्रीराम को आकर्षित किया था। पिता के श्राद्ध कर्म के बाद एक दिन श्री राम ने ताईजी से कहा, 'माँ अगर मैं आपको वचन दूँ कि वापस आ जाऊँगा, तो क्या आप मुझे मथुरा जाने की अनुमति देंगी?' जिस तरह अनुमति माँगी गई थी, उसमें नहीं होने का सवाल ही नहीं था। ताईजी ने सहर्ष अनुमति दी। पूछा कि कितने दिन में वापस लौटोगे, तो बोले यही कोई आठ-दस दिन में। उस समय यातायात के पर्याप्त साधन नहीं थे। आँवलखेड़ा से मथुरा आने-जाने में ही तीन-चार दिन लग जाते। फिर बारह वर्ष की अबोध उम्र। एक बार तो मन हुआ कि मना कर दें, लेकिन बेटे का मन टूट जायेगा। ताईजी ने किसी को साथ ले जाने के लिए कहा, लेकिन श्रीराम अकेले जाना चाहते थे। उन्होंने वैसा ही व्यक्त किया और अनुमति मिल गई। अगले दिन तीन-चार जोड़ी कपड़े और ओढ़ने-बिछाने के लिए दरी, चादर के अलावा आने-जाने, रहने आदि के लिए खर्च का इंतजाम कर दिया।

गाड़ी, घोड़े और रेल से यात्रा करते हुए श्रीराम दूसरे दिन मथुरा पहुँचे। वहाँ कुछ रिश्तेदार रहते थे, लेकिन उनके घर न जाकर श्याम जी की बगीची में पड़ाव डाला। द्वारकाधीश के दर्शन कर विश्राम घाट आदि जगह होते हुए वे वृंदावन मार्ग पर स्थित एक बगीची में आ गए। छोटा सा कुआँ जिसे वहाँ कुइया कहा जाता था, नहाने और विश्राम करने की सुविधा के साथ पास ही बने दो-चार खुले-खुले से कमरे वाली बगीचियाँ मथुरा वृंदावन के रास्ते में थीं। ब्रज क्षेत्र में इस तरह की बगीचियों की भरमार रही है। संपन्न लोग यहाँ शाम का समय बिताया करते थे। इन जगहों पर कुछ पेड़ और फूलों के पौधे भी लगे होते थे। सब मिल कर मनोरम वातावरण बना देते। कुइया के पास किसी देवी-देवता

अंकुर आने लगे

की मूर्ति भी होती है। मूर्ति प्रायः हनुमान की हुआ करती, लेकिन कहीं-कहीं राधा-कृष्ण, दुर्गा या किन्हीं संत-महात्माओं की भी होती। श्रीराम जिस बगीची में ठहरे वहाँ कोई देवी प्रतिमा लगी थी। पूछा कि किस देवी की है, तो नियमित आने-जाने वाले भी स्पष्ट जवाब नहीं दे पाए। कोई दुर्गा की तो कई लक्ष्मी या राधा और सीता की बता कर रह गए, लेकिन वह प्रतिमा श्रीराम को बहुत भाई।

करीब एक सप्ताह तक श्रीराम वहीं रहे। सुबह नहा-धोकर निकल जाते और तीसरे प्रहर लौटते। मथुरा वृंदावन में जगह-जगह भंडारे चलते। कुछ नहीं करते हुए भी वहाँ आराम से गुजर हो सकती है। आज इस आश्रम में, तो कल उस आश्रम में। भंडारा खाकर आज भी कई लोग गुजारा चला लेते हैं। श्रीराम इन आश्रमों में तो जाते थे, लेकिन भोजन-प्रसाद में उन्होंने कभी रुचि नहीं ली। घर से चलते हुए माँ ने जो सत्तू और भुना हुआ दलिया बाँधा था, उसी का आहार करते। बदलाव के लिए द्वारकाधीश मंदिर के पास बनी फूलचंद पेड़ वाले की दूकान या चौक से कुछ हल्का-फुल्का खाद्य खरीद लेते थे। बाकी समय भ्रमण में व्यतीत करते।

भ्रमण में मंदिर आदि स्थानों पर तो एकाध बार ही गए। कुंज, आश्रम और यमुना के किनारे ही उनका समय ज्यादा बीता। लग रहा था जैसे कुछ खोज रहे हैं। बगीची में जितनी देर रहते, देवी-प्रतिमा पर बार-बार ध्यान देते। उठकर उसे देखने जाते। जो भी आता उससे पूछते, यह किनकी प्रतिमा है? एक दिन विलक्षण ढंग से उनके प्रश्न का उत्तर मिला। हुआ वह कि कोई संत बगीची में आए। नाम था उनका बाबा रामदास। लेकिन लोग उन्हें काठिया बाबा कहते थे। उन्होंने कौपीन की जगह लकड़ी का बनाया लंगोट जैसा आवरण पहन रखा था। बाबा ने उसे खास ढंग से तैयार कराया था कि वह कमर में अटका रहता था और जरूरत पड़ने पर उतारा या ढीला भी किया जा सकता था। काठ का कौपीन पहनने के कारण ही लोग उन्हें काठिया बाबा कहते थे।

काठिया बाबा वृंदावन में रहते थे, लेकिन उन्होंने अपना कोई आश्रम नहीं बनाया था। उस दिन सुबह पाँच बजे वे बगीची में आ गए और 'जय अंबे' का उद्घोष किया। कुड़िया पर स्नान कर वे पास ही स्थित भगवती के दर्शन के लिए गए। देर तक बैठे रहे। पूजा-पाठ कुछ करते दिखाई नहीं दिए। स्पष्ट वे ध्यान कर रहे थे। श्रीराम उन्हें कौतूहल से देख रहे थे। ध्यान करके उठे तो लपक कर उनके चरण छूने लगे। काठिया बाबा 'ना बाबा ना' कहते हुए दस

कदम पीछे हट गए। फिर सहज हो कर बोले, 'कहां से आए हो।' श्रीराम ने अपना सामान्य परिचय दिया। बाबा ने पूछा, कहाँ जाना है? श्रीराम ने उत्तर दिया-गंतव्य तो सभी का एक है, लेकिन जाना कैसे है? यह पता नहीं है। सुनकर काठिया बाबा के चेहरे पर प्रसन्नता फूट पड़ी। कहने लगे, लेकिन तुम तो अपनी दिशा में ठीक जा रहे हो। कैसे कहते हो मार्ग नहीं मालूम?

दोनों में चर्चा छिड़ गई। देर तक बात-चीत चलती रही। काठिया बाबा ने अपनी साधना और अब तक की यात्रा के बारे में विस्तार से बताया। उन्हीं बाबा से यह समाधान हुआ कि देवी प्रतिमा गायत्री की है। यहाँ कभी एक आश्रम हुआ करता था। तीन-चार सौ साल पहले एक संन्यासी के सान्निध्य में बीस-पच्चीस साधक हमेशा रहते थे। वे गायत्री जप करते और वेद शास्त्रों के अध्ययन में निरत रहते। बाबा ने ही बताया कि सैकड़ों साल पहले इस स्थान पर भागवत प्रवचन भी हुआ करते थे। अपने बारे में बाबा ने जो बताया उसके अनुसार बचपन में सहज ही प्रेरणा उठी कि गायत्री मंत्र का जप किया जाए। यज्ञोपवीत के समय मंत्र दीक्षा ले ही रखी थी, साधना शुरू हुई।

बाबा का जन्म कहाँ हुआ या उनके परिवार में कौन है? इस बारे में कुछ नहीं बताया। संन्यासी के लिए अपने पूर्व आश्रम का परिचय देना वर्जित है। साधक जब संन्यास लेता है, तो प्रतीकात्मक रूप से उसकी अंत्येष्टि भी कर दी जाती है। विधिवत उसकी अर्थाँ सजाई जाती है, उसे चिता पर लिटाया जाता है और आग लगाने के बाद वापस उतार लिया जाता है। इन क्रियाओं का उद्देश्य यह बोध जगाना है कि अब नया जन्म हो रहा है। पिछले या अब तक के लौकिक जीवन को भूल जाना ही श्रेयस्कर है। वह जीवन समाप्त हुआ। मृत्यु जिस तरह समूचा व्यक्तित्व, पहचान और उपलब्धियाँ छीन लेती है, उसी तरह अब तक का जीवन भी तिरोहित हुआ।

गायत्री का विग्रह मिला

काठिया बाबा ने इतना ही बताया कि विद्या पढ़ते थे। बाद में घर वापस आये तो इच्छा क्षण-प्रतिक्षण बलवती होने लगी कि गायत्री अनुष्ठान किया जाए। घर के पास ही एक बगीचा था। बगीचे में एक बड़ा वटवृक्ष था। उसके नीचे आसन जमाने की ठानी और कवच आदि विधि-विधान के साथ अनुष्ठान

अंकुर आने लगे

आरंभ कर दिया। विधि-विधान गुरु के घर में भलीभाँति सीखा हुआ था। कोई कठिनाई नहीं हुई।

अनुष्ठान का एक भाग पूरा होते-होते प्रेरणा उठी कि शेष जप ज्वालामुखी जाकर पूरा किया जाए। प्रेरणा का स्वरूप ऐसा था जैसे कोई सामने खड़ा होकर कह रहा हो या वटवृक्ष से आवाज आ रही हो। पूर्व आश्रम में बाबा का जहाँ निवास था, वहाँ से ज्वालामुखी लगभग सत्तर किलोमीटर दूर था। वटवृक्ष के नीचे से उठकर बाबाजी घर नहीं गए। सीधे ज्वालामुखी की ओर रवाना हो गए। बाबा के साथ उनका एक भतीजा भी जप-तप किया करता था। वह भी पीछे-पीछे चल दिया। दोनों अविराम चलते रहे। रास्ते में एक महात्मा के दर्शन हुए। किसी भूमिका या परिचय का आदान-प्रदान किए बिना उन्होंने पूछा वैराग्य लोगे? काठिया बाबा ने भी आगा-पीछा नहीं सोचा और कह दिया हँ। वैराग्य की तैयारी चलने लगी, भतीजे ने रोका। रोया और हठ भी किया कि संन्यासी मत बनो। कोई असर नहीं हुआ। वह उलटे पाँव दौड़ा गया और अपने दादाजी को बुला लाया।

काठिया बाबा के पिताजी आए, तब तक देर हो गई थी। उनके हस्तक्षेप जैसी स्थिति नहीं रह पाई थी। पिताजी ने आकर देखा तो बेटा संन्यासी हो चुका था। वे दुःखी हुए। पुत्र को मनाने लगे। घर वापस चलने के लिए कहा। बेटे ने कहा कि अब वैराग्य धारण किया जा चुका है। इस आश्रम से वापसी नहीं होती। पिता ने समझाया कि किसने देखा? मुंडन ही तो हुआ है। गाँव चलकर कोई दूसरी वजह बता देंगे। किसने देखा है कि तुम संन्यासी हो गए। काठिया बाबा पर जरा भी असर नहीं हुआ। नए आश्रम के अनुसार उन्होंने पिता को पहचानने से भी मना कर दिया। थक-हारकर वे वापस चले गए।

जहाँ संन्यास लिया था, वहीं वटवृक्ष के नीचे काठिया बाबा ने आसन लगाया। देर रात तक ध्यान करते रहे। आधी रात बीत गई। कुछ देर सो गए और सुबह उठकर फिर जप ध्यान में लग गए। ध्यान समाधि के इसी क्रम में भगवती का साक्षात्कार हुआ। काठिया बाबा ने बताया कि माँ ने वरदान माँगने के लिए कहा। अपनी कोई कामना शेष नहीं रह गई थी। कह दिया कि वैराग्य ले चुका हूँ। अब कोई कामना नहीं रही। इसका उदय ही न हो, ऐसा आशीर्वाद दीजिए। काठिया बाबा को कई तरह की सिद्धियाँ प्राप्त थीं। वे जो कह देते, वही हो जाता था। आर्तभाव से उनकी शरण गए लोगों को उन्होंने कई बार कष्टों से छुटकारा दिलाया।

काठिया बाबा ने बगीची में ठहरे श्रीराम को उस स्थान के संबंध में विलक्षण बातें बताईं। उनमें एक तो यही थी कि त्रेता युग में इस जगह दुर्वासा मुनि ने गायत्री साधना की थी। कंस का वध करने के लिए जाते हुए श्रीकृष्ण और बलराम ने यहाँ संध्या-वंदन किया था। समय-समय पर हुए यज्ञ अनुष्ठानों के बारे में भी बताया और अपने साथ चलने के लिए कहा। श्रीराम उनके साथ चल दिए। बगीची से करीब तीन किलोमीटर दूर एक टीले के पास जाकर वे रुक गए। टीले के पास इन दिनों मथुरा में एक कॉलेज चल रहा है। वयोवृद्ध लोग उस टीले को गायत्री टीले के नाम से जानते हैं।

बाबा श्रीराम को टीले के ऊपर ले गए। वहाँ एक कुटिया में वयोवृद्ध संत लेटे हुए थे। दोनों ने उन्हें प्रणाम किया। इन संत का नाम बूटी सिद्ध महाराज था। तीस-चालीस वर्ष से उन्होंने मौन व्रत लिया हुआ था। किसी से बोलते नहीं थे। जरूरत होती तो इशारों से बात कर लेते। कभी कभार लिखकर भी अपनी बात कह देते। वे अलवर के रहने वाले थे और दसियों साल से यहाँ आकर रहते थे। काठिया बाबा ने ही बूटी सिद्ध महाराज के बारे में बताया कि उन्होंने एक करोड़ जप किया है। निष्ठापूर्वक किए गए जप से उन्हें गायत्री का अनुग्रह मिला और आत्म साक्षात्कार हो गया।

सिद्धि के बाद उन्होंने टीले पर गायत्री की एक प्रतिमा स्थापित की और मथुरा के चतुर्वेदी ब्राह्मणों का भंडारा किया। कुटिया में गायत्री की स्थापना के बाद वह अपने ढंग का भव्य और अद्वितीय आयोजन था। इसके लिए आवश्यक साधनों की व्यवस्था कहाँ से हुई? इस बारे में बूटी सिद्ध बाबा के अलावा किसी को कुछ नहीं मालूम। लोगों का मानना है कि बूटी सिद्ध बाबा के पास कोई विलक्षण यंत्र है। उसकी आराधना करते ही साधन अपने आप प्रकट हो जाते हैं। बाबा के पास दुःखी, संतप्त और रोगी लोग भी आया करते थे। वे कुछ कहते तो नहीं थे, हाथ उठाकर सिर्फ आशीर्वाद देते थे। उनके हाथ का उठना ही संकट का निवारण होना मान लिया जाता था और कई लोगों के संकट सचमुच दूर हो भी जाते थे।

धौलपुर और अलवर रियासत के राजा उनके पास आया करते थे। बूटी बाबा स्वयं कहीं नहीं जाते थे। एकांत सेवन के लिए जाना होता, तो कुटिया के पास बनी गुफा में चले जाते थे। काठिया बाबा ने बूटी सिद्ध महाराज से श्रीराम का परिचय कराया। उनकी साधना और निष्ठा से बूटी सिद्ध बाबा अभिभूत हो

अंकुर आने लगे

उठे। दोनों हाथ उठाकर आशीष दिया और फिर गले से भी लगा लिया। काठिया बाबा इसके बाद अपनी राह चले गए और श्रीराम वापस बगीची में आ गए। इस भेंट के कुछ दिन बाद बूटी सिद्ध बाबा ने अपना शरीर छोड़ दिया।

इस बगीची में ही किसी श्रद्धालु से सुना था कि वृंदावन में यमुना के पार एक संत आए हैं। वे यमुना और गंगा का किनारा छोड़कर कहीं नहीं जाते। किनारे पर एक मंचान बनाकर रहते हैं। वहीं बैठकर लोगों से बात करते हैं। कभी कभार मंचान के पास जमीन पर बनी झोंपड़ी में भी रहते हैं। साधना-उपासना के बाद थोड़ा-बहुत समय बचता है, वह जनसंपर्क में लगाते हैं। उन सब के बारे में और लोगों से तरह-तरह की बातें सुनी। उन्हें भूख-प्यास नहीं लगती। कभी किसी से कुछ आहार लेते नहीं देखा। उन्हें शौच आदि के लिए भी नहीं जाना पड़ता। भूख-प्यास पर विजय प्राप्त कर लेने से काफी समय बच जाता है। उस समय का उपयोग ध्यान-धारणा में करते हैं।

उन संत की आयु के बारे में भी विचित्र बातें कहीं जाती थी। कोई कहता है कि वे दो सौ वर्ष के हैं, किसी के अनुसार छह-सात सौ साल के हैं। हमारे बाबा या परबाबा ने भी उन्हें इसी अवस्था में देखा था। शरीर और स्वास्थ्य के अनुसार वे तीस-पैंतीस साल से ज्यादा के नहीं लगते थे। लोगों का कहना था कि योग की सिद्धियों के आधार पर वे अपने आपको इस योग्य बनाए रखते हैं। यह भी कि वे जब चाहे अपना कायाकल्प कर लेते हैं। उसी शरीर को नया कर लेते हैं या चाहें तो पुराने शरीर का त्याग कर वैसे ही रूप-रंग का नया शरीर रच लेते हैं। श्रीराम इन बातों को कौतूहल के साथ सुनते। सुनकर कोई प्रतिक्रिया नहीं करते। उनके मन में सिर्फ उत्सुकता जगी और वृंदावन की राह पकड़ी। गर्मी का मौसम था, यमुना तब आज की तरह सूखी नहीं थी। काफी पानी बहता था। इन दिनों मई, जून के महीनों में इतनी सूख जाती है कि उसे पैदल चल कर पार किया जा सकता है, लेकिन तब बहुत पानी बहा करता था।

प्रणाम है बच्चा

यमुना पार करने के लिए नाव चलती थीं। श्रीराम उन संत का पता पूछते तलाशते किनारे तक पहुँचे। नाव से नदी पार की और संत के मंचान तक पहुँचे। दोपहर का समय था। संत मंचान पर बैठे थे। नीचे चार-पाँच लोग खड़े थे। उन्होंने दो सौ मीटर से ही श्रीराम को देख लिया और स्नेह से पुकारा, 'आओ

ऋषि कुमार। तुम्हारा इंतजार था बच्चा।' बाबा की पुकार सुन श्रीराम ने पीछे मुड़कर देखा। उन्हें लगा कि शायद किसी और को बुला रहे हैं। फिर वही पुकार। 'हम तुम्हें ही कह रहे बालक श्रीराम।' नाम सुन कर संशय दूर हो गया। आगे बढ़ने में अभी तक जो झिझक थी, वह दूर हो गई। वे स्वाभाविक गति से कदम बढ़ाते हुए सीधे मंचान के पास पहुँचे और बाबा को प्रणाम किया।

उन्होंने दोनों हाथ उठाए और कहा, 'तुम्हें भी प्रणाम है बच्चा।' यह सुनकर वहाँ खड़े दूसरे लोग चौंक कर देखने लगे। वहाँ आने वाले श्रद्धालुओं को बाबा प्रणाम का उत्तर 'आशीर्वाद है बच्चा' या 'सुखी रहो बच्चा' कहकर देते थे। यहाँ बारह-तेरह साल के किशोर को प्रणाम का उत्तर प्रणाम से दे रहे हैं।

बाबा ने कुछ समय के बाद जो कहा, उससे उन लोगों का विस्मय थोड़ा छटा। बाबा ने कहा, 'तुम्हारे आने की खबर लग गई थी बच्चा। उन दैवी आत्माओं से ही आभास हुआ कि तुम आ रहे हो। बहुत प्रसन्नता हुई।'

श्रीराम चुपचाप सुनते रहे, 'गायत्री मंत्र का पाठ करो बच्चा।' कहकर बाबा खुद गायत्री मंत्र पढ़ने लगे। वे वैष्णव संत थे और सभी श्रद्धालुओं से द्वादश अक्षर मंत्र 'ॐ नमः भगवते वासुदेवाय' मंत्र का उच्चारण कराते थे। बाबा ने गायत्री मंत्र का पाठ करने के बाद कहा 'तुम सावित्री सिद्ध हो बच्चा। तुम्हें बड़े काम करने हैं। हिमालय की आत्माएँ हैं न बच्चा, वहाँ बड़े योगी-मुनि रहते हैं। वहाँ की गुफाओं में वास करते हैं। पता नहीं कितने सौ सालों से वहाँ तप कर रहे हैं। उनका आशीर्वाद तुम्हें मिला है। वे आत्माएँ तुम्हारा बहुत सहयोग करेंगी।' बाबा इससे आगे बहुत कुछ कहते रहे। उनके प्रवचन में हिमालय के रहस्य और सिद्ध लोक की सांकेतिक जानकारी थी। बाबा का भाषा ज्ञान कमजोर था। वे सधुक्ड़ी हिंदी बोलते थे। शब्दों के अनुसार अर्थ से उनका मंतव्य समझने में कोशिश करें तो शायद भ्रमित हो जाए। उनके भाव को ही समझा जा सकता था।

श्रीराम ने पूछा, 'बाबा आपके बारे में कई बातें सुनने को मिलती हैं। उनका क्या रहस्य है?' बाबा ने कहा भगवान् की इस दुनिया से बड़ा कोई चमत्कार नहीं है। हम नहीं जानते बच्चा कि लोग हमारे बारे में क्या कहते हैं? यहाँ आने वाले सभी भक्तों के लिए हम दुआ मनाते हैं। फलवती हो जाए तो ईश्वर की कृपा है, नहीं हो तो उसकी मर्जी। उसकी मर्जी के बिना कुछ नहीं होता बच्चा। फिर उन्होंने अपनी आयु के बारे में कहा, 'शरीर मरणधर्मा है। इसकी

अंकुर आने लगे

उम्र क्या पूछना। गंगा-यमुना के बीच जिस गाँव में इस शरीर का जनम हुआ, वहाँ लोग तिथि तारीख लिखकर नहीं रखते थे। वहाँ के लोग पढ़े-लिखे नहीं हैं बच्चा। इसीलिए पता नहीं शरीर कितने बरस का हुआ।'

स्पष्ट हुआ कि इस उत्तर के कारण ही लोग बाबा की आयु के संबंध में अनुमान लगाते थे। वह अनुमान स्वाभाविक से ज्यादा ही रहता होगा। फिर कहने लगे, 'तुम्हारी उम्र के थे तभी घर छोड़ दिया। नर्मदा के किनारे काफी समय रहे। द्वारका, रामेश्वर, पुरी और बद्रीनाथ जी गए और तीर्थों में भी गए। फिर गंगा मइया का किनारा चुन लिया। माँ ने कहा तो कभी यमुना मइया के तट पर चले आए। अब घूमना-फिरना बंद।' बाबा इसके बाद थोड़ा रुके, 'लेकिन तुम्हारे लिए विधि ने और ही विधान रचा है। तुम्हारे गुरुदेव समय पर तुम्हें सब-कुछ बतायेंगे।' श्रीराम ने यह पूछना जरूरी नहीं समझा कि गुरुदेव से हमारी भेंट कब होगी? वे बाबा के उपदेश या संकेत सुनकर उसी शाम लौट आए।

रात वृंदावन में रुके। वहाँ की एक बगीची के बारे में सुन रखा था कि राधा और कृष्ण वहाँ नित्य रास करते हैं। रास के समय वे सशरीर विश्राम भी करते हैं। उस समय बगीची में कोई नहीं जाता। अगर कोई चला जाए तो अनर्थ हो जाता है। श्रीराम को राधा और कृष्ण के नित्य रास की चर्चा पर कोई आपत्ति नहीं थी। मन में रह-रहकर शंका उठती कि बगीची में कोई रह जाए और राधा-कृष्ण के दर्शन कर ले तो अनर्थ क्यों हो जाता है? भगवान् के दर्शन जिसे हो जाए, उसका तो कल्याण हो जाना चाहिए। किशोर मन ने इस शंका का निवारण करने की ठानी। बगीची की ओर जाते हुए एक वैष्णव साधु गोपालदास मिले। उनसे राधा-कृष्ण के नित्य विहार की बात पूछी। साधु गोपालदास ने कहा, नित्य विहार तो चल ही रहा है। यह जगत् उसका ही तो है। वृंदावन के कण-कण में वही नाच रहा है। पूरा विश्व उसी का नर्तन है यहाँ वह ज्यादा प्रत्यक्ष है क्योंकि साधकों का चित्त यहाँ ज्यादा ग्रहणशील हो जाता है। साधु की बातें अटपटी लग रहीं थी। श्रीराम ने बीच में ही रोककर पूछा, 'बगीची में रात को राधा-कृष्ण सशरीर आते हैं। क्या सचमुच?'

रास की पड़ताल

साधु हँसा। श्रीराम ने फिर पूछा 'अगर वे भगवान् हैं, तो उनके दर्शन से अनर्थ क्यों हो जाता है?' इतना कहते ही साधु ने मंदिर की सीढ़ियों की ओर

इशारा किया और कहा श्रीकृष्ण वह जा रहे हैं, देखो! उनके साथ राधा रानी भी हैं। श्रीराम ने सीढ़ियों की तरफ देखा। श्याम वर्ण श्रीकृष्ण और गौरांग श्री राधा मंदिर की सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे। वे पलट कर साधु तथा उनकी और भी देख रहे थे। कुछ क्षण के लिए आस-पास के लोग, दुकानें, मकान, गलियाँ और वहाँ से हो रही चहल-पहल आदि सभी कुछ का लोप हो गया। राधा और कृष्ण के विग्रह ही रह गए। कुछ क्षण के लिए सुधबुध जाती रही। भाव समाधि की अवस्था आ गई। फिर सब कुछ सामान्य था। सामने साधु गोपालदास ने कहा, 'इस तरह के दृश्य अपने भीतर बैठे भगवान् के ही बाहर आने वाले रूप हैं। साधना के प्रगाढ़ होते ही इस तरह की अनुभूति होने लगती है, लेकिन यहाँ नहीं ठहरना है। साधना निरंतर जारी रहनी चाहिए।'

साधु ने ही स्पष्ट किया। भगवान् का दर्शन किसी भी प्रकार अनिष्टकारी नहीं होता। जिस बगीची में राधा-कृष्ण के आने और रास रचने की बात कही जाती है, उसमें सत्य कम, प्रमाद ज्यादा है। इस तरह बगीची की महिमा गायी जाती है। उस बहाने लोगों से पैसा ऐंठा जाता है। अनिष्ट की आशंका फैलाने से लोग आतंकित होते हैं और दिन में वहाँ जाकर चढ़ावा चढ़ाते हैं। 'सच्चाई परखना हो तो एक रात उस बगीची में घुस कर देखो।' साधु गोपालदास ने रहस्य खोल दिया। स्वयं ही अनुभव करने के लिए भी कहा। श्रीराम उस बगीची की तरफ बढ़ गए।

शाम ढलने के लिए थोड़ी देर पहले बगीची में गए। द्वार बंद होने से पहले पंडों से बगीची की छान-बीन की, तो एक झाड़ी की ओट में छुप गए। लगा कि अब कोई नहीं है। झाड़ी की ओट से निकलकर उस मंदिरनुमा कमरे के पास तक गए जहाँ राधा-कृष्ण के विश्राम करने की बात प्रचारित थी। उस कमरे से करीब बीस फीट दूर एक झाड़ी के सहारे बैठ गए। कमरे का द्वार खुला हुआ था। शाम ढलने लगी। रात का दूसरा पहर शुरू हुआ। वातावरण बहुत शांत था। झाड़ियों में छुपे पक्षियों और जीवों की आवाजें आना बंद होने लगी थी। इक्का-दुक्का किसी बंदर की चिंचियाहट सुनाई देती थी। उसके अलावा झिंगुरों की झायं-झायं और कोई आवाज नहीं आती थी। रात धीरे-धीरे गहराने लगी। आधी रात से ज्यादा वक्त बीत गया। श्रीराम टकटकी बाँधे उस कमरे की ओर देख रहे थे। कब कोई आए। इंतजार करते हुए वे थकने से लगे। आँखों में नींद भरने लगी। उसे दूर भगाने के लिए बगीची में ही बनी कुइयाँ के पास गए और

अंकुर आने लगे

जगत पर पड़ी बाल्टी से थोड़ा पानी खींचा। हाथ-मुँह धोए। वापस उसी झाड़ी के पास आकर बैठ गए।

पानी खींचने और हाथ-मुँह धोने में थोड़ी आवाज हुई। इसके तुरंत बाद बगीची के बाहर कीर्तन की आवाज सुनाई देने लगी। थोड़ी देर में कीर्तन थमा। बगीचे के भीतर इस बीच घुंघरुओं की आवाज आई। छमछम की गूँज ऐसी लहराई जैसे कोई नाच रहा हो। कुछ देर यह आवाज गूँजती रही फिर अपने आप थम गई। इसके बाद बगीची के बाहर एक बार फिर कीर्तन होने लगा। थोड़ी देर चलते रहने के बाद कीर्तन फिर थम गया। सुबह पाँच बजे तक बगीची में कभी वंशी की धुन गूँजती, कभी तबले और हारमोनियम का संगीत सुनाई देता। तीन बार उस कमरे के पास रोशनी भी दिखाई दी। वह रोशनी किसी दीपक के जलने से हो रही थी। दीपक जलाता हुआ व्यक्ति भी दिखाई दिया। पांच-सात मिनट जल कर दीपक इस तरह बुझ गया जैसे किसी ने फूँक मार दी हो।

तड़के पाँच बजे दो व्यक्ति कमरे के पास दिखाई दिए। वे अंदर गए और थोड़ी देर बाद वापस चले गए। इसके कुछ देर बाद ही बगीची के बाहर आरती वंदना सुनाई देने लगी। आरती पूरी होने के बाद लोग आने लगे। आठ-दस लोगों के जत्थे में श्रीराम भी शामिल हो गए और उस कमरे तक गए। उस जत्थे के लोग कमरे में जाकर गद्गद थे। बिस्तर की चादर पर सलवटें पड़ी हुई थीं, जैसे कोई वहाँ सोया हो। तेल की शीशी उठाकर देखा। ढक्कन खुला हुआ था।

एक ने कहा शाम को जितना तेल रखा था, उससे कम हो गया है। दूसरे ने कहा और देखो सिंदूर की डिबिया भी खुली है। राधा रानी ने अपना सिंगार किया होगा। तीसरे ने कहा अरे भगवान् अपना पीतांबर भूल गए। इस तरह आश्चर्य बढ़ा। ये लोग पिछली शाम को ही उस कमरे में हो कर गए थे। तब सब कुछ ठीक था। चादर साफ थी, सिंदूर की डिबिया ठीक से लगी हुई थी, तेल की शीशी पूरी भरी हुई थी। अब की हालत देखकर स्पष्ट लग रहा था कि किसी ने अपने केश संवारे हैं। पिछली शाम दर्शन करने के बाद ये लोग बगीची के बाहर ही ठहरे थे। इस वक्त सुबह के पहले यात्री थे।

श्रीराम ने उनका आश्चर्य और इस बीच हुई घटनाओं को देखकर अच्छी तरह अनुभव कर लिया कि बगीची में राधा-कृष्ण का विहार एक आयोजित नाटक था। बीच-बीच में गूँजने वाला संगीत, आवाजें, रोशनी और

उस कमरे के आस-पास दिखाई दिए लोग, यह प्रभाव उत्पन्न करने के लिए ही थे कि बगीची में राधा और कृष्ण आए हैं। सुबह पाँच बजे उन्हीं लोगों ने कमरे का नक्शा बदला और बाहर ठहरे यजमानों को जताया कि भगवान् सचमुच आए थे। यजमानों ने मंदिर में चाँदी के सिक्के चढ़ाए और पेड़ों के भोग। भंडारे के लिए अलग से दक्षिणा दी।

साधु गोपालदास की बात याद आई कि भगवान् सब जगह हैं। जहाँ याद करो, तन्मयता से पुकारो, वहीं प्रकट हो जाते हैं। नहीं पुकारो तो सामने आ जाने पर भी पहचान में नहीं आते। पूरे घटनाक्रम को श्रीराम ने शांतिपूर्वक देखा और कोई प्रतिक्रिया व्यक्त किए बिना बगीची से बाहर आ गए। पंडों ने समझा कि यह बालक भी यजमानों के साथ ही आए होंगे। उन्हें क्या पता कि उनकी आयोजित नाटकीय दिव्य लीला का सच अपनी आँखों से देख लिया है।

वृंदावन की यात्रा पूरी हुई। मथुरा में एक दिन के लिए उस बगीची में रुके, जहाँ काठिया बाबा से भेंट हुई थी। उस विग्रह के सामने कुछ देर पालथी लगा कर बैठे, जिसे गायत्री का बताया गया था। मन में हिलोरें आने लगीं। लगा जैसे कुछ संकेत मिल रहे हैं, निर्देश आ रहे हैं। समय भागा जा रहा है। वे बड़े हो रहे हैं। बीस-पचीस-तीस-चालीस साल की उम्र पार कर गए। अपने आपको चालीस की अवस्था का अनुभव करते हुए लग रहा है कि इसी स्थान पर है। यहाँ बहुत से लोग साधना कर रहे हैं, आरती हो रही है, यज्ञ हवन हो रहा है। लोग आ रहे हैं। जा रहे हैं। यह प्रतीति कुछ देर बनी रही फिर तिरोहित हो गई। (इसी स्थान पर १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना हुई।) संध्या संपन्न कर अगली सुबह द्वारिकाधीश के दर्शन करते हुए आगरा के लिए रवाना हो गए। चलते समय ताई जी के लिए प्रसाद लेने की बात भी याद रही। आँवलखेड़ा वापस लौटे, तो माँ को जैसे आभास हो गया था कि बेटा आने वाला है। वह दरवाजे पर खड़ी मिली। चिरंजीव ने आकर पाँव छुए और माँ ने आशीर्वाद दिया। कहा कि मेरा लाल अब होशियार हो गया। अब बच्चा नहीं रहा। जिम्मेदारी उठाने लायक हो गया। मेरी अपनी चिंता ठाकुर जी ने दूर कर दी।

आँवलखेड़ा लौट आने के बाद जीवन का क्रम सामान्य ढंग से चलने लगा। खेती-बाड़ी, पुश्तैनी व्यवसाय और यजमानों का आना-जाना पहले की तरह फिर शुरू हो गया। पिताश्री का अभाव सभी को खलता था। घर के लोगों ने सलाह दी कि श्रीराम को भी उसी काम से लगाया जाए, उठती उम्र है, किशोर

अंकुर आने लगे

कंठ से मधुर आवाज निकलेगी। अभी से शुरू करें तो युवावस्था तक सिद्ध हो जायेंगे। मुँह से अमृतवाणी रूप में कथा होने लगेगी। जो भी स्वजन संबंधी आते यही सलाह देते। माँ की भी मूक सहमति होती, लेकिन श्रीराम का मन व्यासपीठ पर बैठने के लिए कभी राजी नहीं हुआ। वहाँ पर सुझाव टिकता नहीं था।

श्रीराम में जागा रोष

१९१९-२० के बाद का वह दौर शुरू हो चुका था जब महात्मा गांधी के नेतृत्व में देश असहयोग आंदोलन छेड़ चुका था। आंदोलन का उद्देश्य तब भारत की संपूर्ण आजादी तो नहीं था। वह कुछ संवैधानिक सुधारों के लिए था ताकि भारत के कुछ लोग भी राजकाज में हिस्सा ले सकें। महात्मा गाँधी भारत की आत्मा की आवाज बन चुके थे और उनकी प्रतिष्ठा निर्द्वन्द्व नेता के रूप में हो गई थी। १९१९ में जलियां वाला बाग हत्याकांड के बाद उन्होंने भारत में ब्रिटिश राज को 'शैतान' की संज्ञा दी थी और लोगों से अपील की कि वे अदालतों, स्कूलों, कॉलेजों का बहिष्कार करें। सरकारी नौकरी कर रहे लोग अपने पदों से इस्तीफा दें और सरकार से पूरी तरह असहयोग करें। उसी वर्ष ३० मार्च और १६ अप्रैल को देशभर में हड़ताल हुई। हड़ताल के दिन सभी शहरों का जीवन ठप हो गया, व्यापार बंद रहा और अंग्रेज अफसर असहाय से देखते रहे। इस हड़ताल ने 'असहयोग' के हथियार की शक्ति पूरी तरह प्रकट कर दी थी।

असहयोग का दौर आगे बढ़ा और उग्र रूप धारण करने लगा। असहयोगियों के प्रति सरकार ने भी कड़ा रूख अपनाया। हजारों लोगों को पकड़ कर जेल में ठूस दिया। दमन चक्र निष्ठुरता पूर्वक चला। उस निष्ठुरता के आगे लोग भी चुप नहीं रह सके और कई जगह हिंसा भड़क उठी। हिंसा का यह विस्फोट महात्मा गाँधी को अच्छा नहीं लगा। वे आंदोलनकारियों से अंत तक अहिंसक रहने की अपेक्षा करते थे। उनका विश्वास था कि हिंसा को अपनाते ही परमात्मा हमारा साथ छोड़ देगा। अहिंसा का हर कीमत पर पालन किया तो जनता में जनार्दन जाग उठेगा। असहयोग आंदोलन उनकी आशा अपेक्षा के अनुरूप नहीं चला तो उन्होंने अपनी भूल स्वीकार की। कहा कि लोगों को अहिंसा के लिए तैयार किए बिना असहयोग आंदोलन छेड़ना हिमालय जैसी भूल थी। इस भूल को सुधारने के लिए उन्होंने आंदोलन वापस ले लिया।



जिस आंदोलन के द्वारा महात्मा गाँधी ने एक वर्ष में 'स्वराज' लाने का वायदा किया था, वह पूरा नहीं हो सका। वह स्वराज १९४२ के पूर्ण स्वतंत्रता या अंग्रेजों को भारत से बाहर जाने की माँग करने जैसी भावना तक नहीं पहुँचा था। 'स्वराज' की माँग तब चलाने में भारत के लोगों की भागीदारी स्वीकार करना था। गाँधी जी ने भले ही आंदोलन वापस ले लिया, लेकिन लोग उसे विफल मानते थे। कुछ हद तक यह सही भी था। उसने लोगों के मन से सरकारी दमन, ब्रिटिश तोपों और संगीनों का, अंग्रेजी हुकूमत की जेलों का डर निकाल दिया। यह भय निकलने के बाद अंग्रेजों को भी शायद लगने लगा कि भारत से उन्हें एक दिन जाना होगा। लोगों की भावनाओं को कुचलने के लिए उनका दमन चक्र तेज होने लगा। लोगों में प्रतिकार की भावनाएँ भी बलवती हो गईं।

अंग्रेजों के विरुद्ध बढ़ते जा रहे रोष ने युवाओं, किशोरों और स्त्रियों को भी प्रभावित किया। आँवलखेड़ा गाँव के किशोरों में यह रोष श्रीराम के मन में सबसे पहले दिखाई दिया। मथुरा वृंदावन की यात्रा से लौटते हुए उन्हें पता चला कि गाँधी जी को गिरफ्तार कर लिया गया है। गाँधीजी की गिरफ्तारी के खिलाफ रैलियाँ निकलने लगीं। श्रीराम मथुरा वृंदावन की मधुर और पवित्र यादों को कुछ देर के लिए स्थगित कर प्रभात फेरियों की व्यवस्था में हाथ बटाने लगे। रैली में शामिल होने के लिए गाँव के बड़े बुजुर्गों ने रोका कि बच्चे हो। पता नहीं कब कोई पुलिस कार्रवाई हो जाए और तुम धर लिए जाओ, पर श्रीराम ने कहा कि देश के प्रति हम बच्चों का भी कुछ कर्तव्य है। आप हमें आशीर्वाद दीजिए कि हम अपना कर्तव्य भलीभाँति पूरा कर सकें।

कुछ दिन बाद खबर आई कि गाँधीजी को छः माह की सजा सुनाई गई है। उन पर राजद्रोह का मुकदमा चला था। जिस सभा में यह खबर दी गई उसमें श्रीराम भी मौजूद थे। उनके मुँह से निकला हम लोगों पर भी मुकदमा चलाया जाए। पापियों के शासन का नाश हो। दस ग्यारह वर्ष के किशोर की इन भावनाओं ने वहाँ उपस्थित बड़े बुजुर्गों को अभिभूत कर दिया। उन्होंने सहमति जताई। उसी सभा में श्रीराम ने घोषित किया कि वे बालसेना बनाएँगे और अंग्रेजी राज के खिलाफ कुछ न कुछ करते रहेंगे।

अपने हम उम्र आठ-दस बच्चों को उन्होंने एक महीने में तैयार कर लिया और बच्चों की रैली निकालने लगे। प्रभात फेरी के बाद सभी बच्चे गाँव के बाहर बने हनुमान मंदिर में चले जाते। बजरंग बली की प्रतिमा को प्रणाम कर

अंकुर आने लगे

व्यायाम में लग जाते। गाँव के युवा स्वराजी चरण भैया की नसीहतें बच्चों ने पकड़ ली थी कि स्वराज की लड़ाई जीतने के लिए शरीर मजबूत होना चाहिए। शरीर कच्चा रहा तो अंग्रेजों या उसके पुलिसियों का एक डंडा भी सहन नहीं होगा। मार पड़ते ही बिछ जायेंगे इसलिए जरूरी है कि शरीर में शक्ति पैदा हो। बच्चों को 'स्वराज' की लड़ाई के लिए तैयारी करते देख चरण भैया और गाँव के कुछ और लोगों ने मंदिर के प्रांगण में ही दूध, नाश्ते का इंतजाम किया। नाश्ते में भिगोए हुए चने और गुड़ दिए जाते।

छोटे स्वराजियों के इस दल ने समय-समय पर कई करतब दिखाए। बालसेना ने उन मोर्चों पर हल्ला बोलना शुरू किया, जहाँ किसी पर ज्यादाती होती थी। आगरा में छावनी थी, अंग्रेजी फौजें पड़ी रहती थीं। शासकों से ज्यादा सैनिकों को गुमान था। वे जब तब लोगों पर अत्याचार करते। उन्हें अपनी मनमर्जी के अनुसार चलाते और बेगार लेते थे। मनोरंजन के लिए लोगों से उल्टी सीधी हरकते भी कराते थे। सामान्य लोग इन ज्यादातियों के डर से छावनी के पास भी नहीं फटकते। फौजी सड़क के किनारे खासकर गोरी चमड़ी वाले फौजी अफसर हों तो लोग उन्हें देखते ही छिप जाते थे। इन अफसरों की ज्यादातियों के किस्से आस-पास के गाँवों में भी पहुँचते। आँवलखेड़ा में भी भूत-प्रेत की कहानियों की तरह फौजियों से संबंधित घटनाएँ कही-सुनी जाती। श्रीराम की बनाई बालसेना में भी इन घटनाओं की चर्चा होती। हर चर्चा प्रसंग के बाद संकल्प लिया जाता कि किसी फिरंगी या काले फौजी को अत्याचार करते देखा, तो सहन नहीं करेंगे। उसे रोकेंगे। नहीं रोक पाए तो जवाबी हमला या बदला लेने अथवा रोष जताने जैसी कार्रवाई करेंगे। चुपचाप तो नहीं बैठेंगे।

फिरंगी फौजियों से मुकाबला

बाल सैनिकों के संकल्प की परीक्षा की घड़ी भी जल्दी आ गई। फौजी लोग गाँव-गंवई में कम ही जाते थे। उस दिन एक अंग्रेज अफसर पाँच-सात सिपाहियों के साथ आँवलखेड़ा की तरफ निकल आया। अफसर और सिपाहियों के आने की खबर पहले आ गई। बालसेना के सदस्य तुरंत मिले और आनन-फानन में योजना बना ली कि फौजियों ने कोई ज्यादाती की तो मुकाबला कैसे किया जाए? इस संकल्प के साथ गाँव की सीमा पर जा कर बैठ गए। वे तैयारी

के साथ गाँव के बाहर पहुँचे थे। फौजी लोग कब आएँगे? इसकी पक्की सूचना नहीं थी, इसीलिए सुबह से ही मोर्चा संभाल लिया।

साढ़े बारह-एक बजे के आस-पास दूर धूल उठती-उड़ती दिखाई दी। इस तरह की धूल घोड़ों की टाप पड़ने से ही उठती है। श्रीराम ने साथियों को इशारा किया। फौजी हैं तो पिछले गाँव में जरूर उपद्रव मचा कर आ रहे होंगे। उन्हें गाँव में घुसने नहीं देना है। बाल सैनिकों ने एक-दूसरे को देखते और इशारे करते हुए संकल्प दोहराया। थैली में रखे हुए पत्थर और गुलैल संभाली। दूसरे साथियों ने जेब में रखी पीसी हुई मिर्च की पुड़िया पर हाथ रखा। यह सब करते हुए उनका आत्मविश्वास दृढ़ हो रहा था। फौजियों की टुकड़ी पास आई, तो श्रीराम निकल कर सड़क पर आए।

टुकड़ी में शामिल हिंदुस्तानी सिपाही ने रास्ते में खड़े श्रीराम से पूछा, 'यहाँ क्या कर रहे हो?' उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया। दोबारा कड़क कर पूछा। फिर भी कुछ नहीं बोले। यह ढीठता सिपाही को पसंद नहीं आई। वह घोड़े से नीचे उतरा और श्रीराम की तरफ थप्पड़ उठाकर बढ़ने लगा। पास पहुँचकर मारने की मुद्रा में आता कि श्रीराम ने दन्न से जेब में रखी पुड़िया खोली और फौजी की तरफ उठाकर जोर से फूँक मार दी। सिपाही ने सपने में भी नहीं सोचा होगा कि इस तरह की हरकत हो जाएगी। आँखों में मिर्च घुस जाने से वह बिलबिला उठा। इस आक्रमण के अगले ही पल पेड़ों की ओट से गुलैल चलने लगीं। पत्थरों के कुछ टुकड़े भी उछले और सिपाहियों पर पड़े। अंग्रेज अफसर कुछ समझे इससे पहले उसकी टोप पर भी लकड़ी का एक बड़ा टुकड़ा आकर लगा। आघात झेल न पाने के कारण टोप नीचे गिर पड़ा। वह गालियाँ बकने लगा। समझ में किसी को नहीं आ रहा था कि हमला कहाँ से हो रहा है।

आठ-दस मिनट तक यह हमला चलता रहा और फिर जैसे सब शांत हो गया। इस हमले से सिपाहियों का पारा चढ़ गया। उन्होंने इसे गाँव वालों की कारस्तानी माना और सभी को सबक सिखाने की गरज से बस्ती में घुसे। उन्हें देखकर बस्ती के लोग घरों में छुपने लगे कि फिरंगी अफसर दहाड़ा, 'जिन लोगों ने शरारत की है, वे बाहर आ जाए, वरना पूरे गाँव को सजा मिलेगी।' घरों में छुपे लोगों को कंपकंपी छूट गई। शरारती लोगों को बाहर निकालो। फौजी अफसर ने फिर चेतावनी दी।

इस बार चरण भैया बाहर निकल आए। उन्होंने पूछा, 'क्या हुआ है कर्नल साहब? आपके साथ क्या शरारत की।' कर्नल ने कहा, 'उस लड़के को सामने लाओ जिसने सिपाही की आँखों में मिर्च झोंकी और वे लोग भी हाजिर हों, जिन्होंने पत्थर दन-दनाए। कौन सुराजी लोग थे। हम भी तो देखें।' चन्ना भैया ने कहा, 'गाँव में तो किसी की हिम्मत नहीं पड़ती। जरूर डकैत सुराजी होगा। उसी के दल में एक लड़का है। मिर्च झोंकने और पत्थरों से हमला करने का तरीका वही अपनाता है।'।

'कहाँ रहता है, डकैत सुराजी?' उसी अफसर ने टूटी-फूटी हिंदी में फिर पूछा। तो चरण भैया का टका सा जवाब था, 'दस्यु का कोई पता ठिकाना होता है साहब! अच्छा हुआ आप लोग सामने पड़ गए, वरना वह गाँव में घुस आता और यहाँ तबाही मचाता, लेकिन उसने आपको भी तो हैरान कर दिया।' यहाँ अपनी हेटी होते देख अफसर ने बात का रुख मोड़ा, 'नहीं हम लोगों को खास परेशान नहीं किया। दोबारा वह डकैत इधर आए, तो छावनी में खबर भेजना। हम उसे ठीक कर देंगे।'।

सिपाहियों की वह टुकड़ी इसके बाद गाँव में बिना रुके वापस चली गई। चरण भैया को पता था कि किसने पत्थर बरसाये हैं और मिर्च का पाउडर किन-किन की जेब में था। बालसेना के हमले की योजना उन्हीं की देख-रेख में बनी थी। इसमें जोखिम था, लेकिन योजना पर अमल नहीं होता, तो भी गाँव में कहर बरपा होता ही। इस कामयाब हमले या प्रतिकार से बालसेना का हौसला बढ़ा। फिरंगी सिपाहियों की टुकड़ी वापस जाने के बाद बालसेना के सदस्य देर तक खो-खो करते हँसते रहे। यद्यपि कुछ लोगों को उनकी शरारत का पता चला, तो पहले उन्होंने थोड़ी नाराजगी जताई फिर बच्चों की हिम्मत और निष्ठा को समझते हुए धीरे से खुद भी हँस दिए।

बालसेना के इन सदस्यों ने खेतों में काम करने वाले मजदूरों पर देसी मालिकों की ज्यादाती के खिलाफ भी मोर्चा खोला। मुख्य उद्देश्य स्वराज की लड़ाई में हाथ बँटाना था। स्वराज के मायने क्या होते हैं या फिरंगी राज का क्या मतलब है? इन सवालियों की गहराई में जाने की किसी ने जरूरत नहीं समझी। जिस बात ने बालसेना के सदस्यों को आवेश से भर दिया वह गाँधी जी की गिरफ्तारी थी। गाँधी उनके लिए सत्य और न्याय के पक्ष में खड़े हुए एक व्यक्ति का नाम था। एक ऐसा नाम जो न किसी का मुकाबला करता था और न ही

बदले की बात सोचता था। उस ज्यादाती के सामने नहीं झुकने या ज्यादाती करने वालों से हर संभव असहयोग करने का नाम ही गाँधी था।

श्रीराम के नेतृत्व में बालसेना ने उन मालिकों के साथ असहयोग का एक विलक्षण प्रयोग किया। वे उन मालिकों के डंडे छुपा देते और बैल खोल देते थे जो अपने मजदूरों पर अत्याचार करते थे। उनका मानना था कि जो काम बंधुआ मजदूरों को करना चाहिए, वे हम लोग करें, क्योंकि बंधुआ इस तरह की हिम्मत जुटा नहीं पाते थे। श्रीराम, उनकी टुकड़ी के चरण भैया, सोराजी और मोहनलाल मजदूरों को सिखाने की कोशिश करते। उनसे संपर्क साधते, बातचीत छेड़ते और समझाते कि उनकी भलाई मार खाने में नहीं, अत्याचार का मुकाबला करने में है। इसी तरह उनकी आत्मा मजबूत होगी। कुछ मजदूर तो इन शिक्षाओं से प्रेरित होकर काम भी छोड़ गए। उन लोगों ने नए बसेरों में नई जिंदगी शुरू की।



बलिहारी गुरु आपुनो

पूर्व दिशा में तारों की चमक हलकी-सी फीकी होने लगी थी। अंधेरा कुछ उठता दिखाई दिया और अपने घोंसले में सोए पक्षियों का कलरव सुनाई देने लगा। तभी श्रीराम अपनी पूजा कोठरी में आसन बिछाने लगे। बैठकर 'अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा.....' मंत्र पढ़ते हुए प्रातःकालीन संध्या का उपक्रम कर रहे थे। गाँव में वैसे भी लोग जल्दी उठते हैं। गायों का रंभाना सुनकर लोगों को अनुमान हो जाता है कि रात का चौथा पहर ढलने लगा है। सूर्य देवता का रथ प्राची में उतरने को ही है। उसके आगमन की सूचना दूर क्षितिज में हलकी-सी आभा के रूप में मिलने लगती। लोग उठकर कुल्ला करते, खाली पेट पानी पीते और दिन में किए जाने वाले कार्यों के बारे में सोचते। सामान्य लोग जिस समय उठ कर अंगड़ाई लेते हुए यह सब करते थे, उस समय श्रीराम ऋषियुग से चले आ रहे संध्या का क्रम शुरू कर चुके होते थे। छह-सात साल की उम्र से ही सुबह जल्दी उठते और ध्यान-धारणा के अभ्यास में लग जाते। मंत्र दीक्षा के बाद इसमें और भी क्रियाएँ जुड़ीं।

महामना मालवीय जी ने मंत्र दीक्षा के समय विधि-विधान समझाया था। यह भी कि संध्यावंदन दोनों समय होना चाहिए। उस मार्गदर्शन में संध्या के उपक्रम, स्थान और समय का निर्देश भी था। उनके कहे हुए शब्द स्मृति में हमेशा रहते थे और कुछ महीनों के अभ्यास से तो स्वभाव में ही घुलमिल गए थे। शास्त्रों में संध्या के लिए जिन स्थानों को उत्तम बताया गया है, उनमें पुण्य क्षेत्र, नदी तट, पवित्र जलाशय, पर्वत की गुहा या शिखर, एकान्त बगीचा, देव मंदिर या अपना घर प्रमुख है। श्रीराम पहले तो गाँव से बाहर देवमंदिर में बैठकर संध्यावंदन करते थे। पिता का स्वर्गवास होने के बाद घर में ही बैठने लगे। विशाल हवेली के एक कमरे में पूजा स्थान बना लिया। कमरे का दरवाजा पूर्व दिशा में खुलता था। दरवाजे के बाहर तुलसी का बिरवा था। संध्या के लिए बैठते समय मुँह पूर्व दिशा की ओर होता था। अर्घ्य देना होता तो वे बाहर आ

जाते और बिरवे के पास खड़े होकर सूर्य नमस्कार करके इस तरह जल चढ़ाते कि वह जमीन पर न गिर कर तुलसी की क्यारी में गिरे।

मंदिर में संध्या वंदन करते हुए अर्घ्य के लिए उठकर कहीं जाना नहीं पड़ता था। जिस जगह बैठते, वहीं सामने एक पात्र रख लेते और खड़े होकर जल चढ़ा देते। माँ के कहने पर घर में ही उपासना शुरू की तो अर्घ्य के लिए बाहर जाना जरूरी हो गया। जिस सावधानी से स्थान का चुनाव किया, वैसी ही सावधानी समय के निर्धारण में भी बरती। उसे पूरी तरह निभाने का प्रयत्न किया। प्रातः संध्या सुनहरा सूर्य उदय होने से पहले आरंभ हो जानी चाहिए और सायंकाल की संध्या सूर्यास्त से पहले।

श्री राम सुबह चार बजे उठ जाते। स्नान आदि से निवृत्त होने और संध्या-वंदन के लिए बैठने में एक घंटा समय लगता। हवेली परिसर में बने कुँए से वे अपने हाथ से पानी खींचते। बाहर कंदील की रोशनी फैली रहती। उससे कोई कठिनाई नहीं होती। हवेली के लोग हाँलाकि जग जाते थे, फिर भी श्रीराम इस बात की पूरी सावधानी बरतते थे कि बालटी रखने या पानी गिराने की आवाज नहीं हो। चुपचाप स्नान से निपट जाते। किसी को आहट तक नहीं होती थी।

संध्या आरंभ करने के बाद श्रीराम जप और ध्यान में पूरी तरह तन्मय हो जाते थे। अवधि की दृष्टि से उनकी संध्या चालीस मिनट में संपन्न हो जाती थी। लेकिन इस अवधि में भी उनकी तन्मयता पूरी होती थी। गायत्री मंत्र की एक माला और सूर्योदय के स्वर्णिम प्रकाश का ध्यान करने में छः मिनट का समय लगता है। सध जाने पर चार मिनट ही लगते हैं। इस स्थिति में गणना में थोड़ी चूक की संभावना रहती है। गायत्री दीक्षा लेने के बाद श्रीराम पाँच माला सुबह और दो माला शाम के समय जपते थे। तन्मयता इतनी रहती थी कि भूलचूक की गुजांइश ही नहीं बचती। प्रातः-सायं की संध्या में कुल मिलाकर एक घंटा समय लग जाता। ध्यान धारणा का क्रम जप के बाद भी यथासमय चलता रहता।

संवत् १९८३ की वसंत पंचमी थी। अंग्रेजी तारीख के अनुसार १८ जनवरी १९२६ का दिन। श्रीराम की आयु लगभग पंद्रह वर्ष हुई होगी। वे संध्यावंदन कर रहे थे। गायत्री जप करते हुए तन्मय अवस्था थी। सुखासन से बैठे श्रीराम के सिर्फ होठ हिल रहे थे। मुँह से कोई ध्वनि नहीं हो रही थी। जप की उपांशु अवस्था थी, जिसमें होठ तो हिलते हैं, मुँह के भीतर स्वर यंत्रों में भी

बलिहारी गुरु आपुनो

स्फुरण होता रहता है, लेकिन ध्वनि नहीं होती। मुँह बंद कर मानस जप में अधिक समय लगता है और विस्मरण की आशंका भी रहती है। मालवीय जी ने इसीलिए उपांशु जप को वरीयता दी थी। इस जप के साथ पूर्व दिशा में उग रहे सविता देवता का ध्यान। बंद नेत्रों से भृकुटि में जो क्षितिज दिखाई दे रहा है, वही जैसे उदयाचल है। भूमध्य की आकृति भी ऐसी ही बनती है, जैसे पर्वतों के दो गोलार्ध मिल रहे हों और उनके संधि स्थल पर नए आलोक का उदय होता हो।

उदित हो रहे आलोक के समय चेतना जगत् में स्वर्णिम आभा फैलने लगी। प्रकाश की चादर बिछती चली जा रही है। अपना अस्तित्व निसर्ग के इस विस्तार से अभिभूत हो रहा है। शरीर, मन, बुद्धि, चित्त और उससे आगे सत्ता के जितने भी लोक हो सकते हैं, सबमें उस प्रकाश से जीवन चेतना व्यापती जा रही है। भोर होते ही रात की नींद जैसे अपने आप उचटने लगती है, वैसे ही चेतना में छाई क्लान्ति दूर हो रही है और नया उत्साह आ रहा है। सुबह की ताजगी अस्तित्व के रोम-रोम में फैलती जा रही है। स्वर्णिम प्रकाश का ध्यान करते हुए यह अनुभूति भी प्रगाढ़ होती जाती थी।

जिस क्षण की घटना का उल्लेख आगे की पंक्तियों में किया जा रहा है, उस क्षण में जप और ध्यान की क्या अवस्था चल रही थी, कहना कठिन है। जिस तरह के उल्लेख मिलते हैं, उनमें वह अवस्था मनोमय की ही कही जा सकती है। इस अवस्था में चित्त संकल्प-विकल्प से मुक्त हो जाता है। योगशास्त्रों में 'निर्वात निष्कम्प दीपशिखा' कहते हुए ही ऐसे चित्त का वर्णन किया गया है। वायु रहित स्थान में जलते हुए दीपक की लौ जिस तरह नहीं काँपती, उसी तरह हमेशा काँपते और डोलते रहने वाला चित्त भी संकल्प-विकल्प के वेगों का अभाव हो जाने से स्थिर हो जाता है। कुछ योगियों के अनुसार यह ध्यान में गहरे उतरने और समाधि के समीप पहुँच जाने की अवस्था है।

प्रकाश शरीर का अवतरण

श्रीराम अपने आसन पर बैठ मनोलय अथवा समाधि की भूमिका में हैं। उस भूमिका से गुजरते हुए जप के अंतिम चरण तक पहुँचते हैं। जप पूरा होता है, सविता देवता के चरणों में जप निवेदन करते हुए हाथ जोड़कर बैठे ही थे कि कोठरी में अचानक बिजली-सी कौंधी। चकाचौंध करने वाला प्रकाश भर गया। बिजली चमकने के तत्क्षण ही प्रकाश लुप्त हो जाता है, लेकिन कोठरी

में वह स्थिर रहा। प्रकाश चमकता हुआ था; लेकिन उसकी प्रखरता शांत-शीतल हो गई। सूर्य की स्वर्णिम आभा और चंद्रमा की चाँदनी जैसा शीतल और शांत।

जिस समय प्रकाश कौंधा था, उस समय कोठरी में जैसे हजार सूर्य एक साथ चमक उठे थे। उस समय हुई चकाचौंध जब धीरे-धीरे स्थिर हो गई, तो कोठरी में एक सौम्य आकृति प्रकट हुई। लम्बी जटाएँ, शरीर अत्यंत कृश, लेकिन देदीप्यमान। वह क्षीण जरूर दिखाई देता था, लेकिन स्वरूप में तेजस्विता और बल का पूर्ण समावेश। वह कृश काया फौलाद से बनी प्रतीत होती थी। आकृति दिगंबर थी। आसपास आभा मंडल छाया हुआ था और शरीर कहीं-कहीं बर्फ की चादर से ढंका हुआ सा लगता था। साधक श्रीराम उस सौम्य आकृति को देखकर हर्षित हुए। मन में आश्चर्य का भाव आया। क्षण भर पहले जो भय व्याप रहा था, वह तिरोहित हो गया। उस आकृति को देखकर मन में उल्लास उमगने लगा। इच्छा हुई कि उठकर प्रणाम कर लें। संध्याकर्म में प्रदक्षिणा कर्म अभी बाकी था। उस दिव्यमूर्ति ने श्रीराम के भावों को पढ़ लिया और बैठे रहने का संकेत किया। श्रीराम बैठे उस आकृति को निहारते रहे, जैसे सविता देव ऋषि रूप में प्रकट हुए हों।

आकृति करीब आई। ऐसा प्रतीत नहीं होता था कि वे कुछ कदम आगे बढ़ कर आए हों। यह प्रतीत हो रहा था कि जैसे दूरी अपने आप घट गई हो। समीपता इतनी बनी की बैठे-बैठे ही हाथ आगे बढ़ा कर चरण छू लें। चरण स्पर्श की आवश्यकता नहीं पड़ी, सिर अपने आप चरणों में झुक गया। उस दिव्य आकृति ने अपना हाथ श्रीराम के सिर पर रख दिया। वह स्पर्श व्यक्तित्व में जो झंकार जगा गया, उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। मनीषियों ने उस तरह की अनुभूतियों को हजार तरह से कहने की कोशिश की है और कोशिश कर चुकने के बाद थक कर चुप हो गये हैं। उपनिषदों ने उसे इन भावों में व्यक्त किया है कि जो सुनते हैं (कान) वे बोलते नहीं और जो बोलता है (मुँह), वह सुनता नहीं। कबीर ने इसे 'गूँगे केरी सरकरा' कह कर गाया है। स्वाद तो आता है लेकिन कहना कठिन है।

समय ठहर गया

स्पर्श ने श्रीराम के सामने एक अलग ही संसार खोल दिया। उस संसार में वाणी की आवश्यकता नहीं हुई, समय भी ठहर गया और स्थान तो जैसे

अपनी सीमाएँ ही भूल गया। देशकाल से परे उस अनुभूति में मार्गदर्शक सत्ता ने पिछले कई जन्मों की यात्रा करा दी। यह यात्रा स्मृतियों में उतरकर नहीं, शुद्ध चेतना के जगत् में प्रवेश कर संपन्न हुई थी। उस जगत् में प्रवेश करते ही श्रीराम अपने आपको वाराणसी में उपस्थित अनुभव करते हैं। उस क्षण को अनुभव कहना भी शायद गलत हो। वे वाराणसी में ही थे। पूजा की कोठरी में जिस रूप, अवस्था और वेश में थे, उससे सर्वथा भिन्न। अपने आपको एक अनजाने रूप में पाया, लेकिन ऐसा नहीं लगा कि किसी आश्चर्य लोक में हों। अपरिचित होते हुए भी वह समय, स्थिति और स्वरूप सहज लग रहा था, जैसे अपनी चेतना में ही घट रहा हो या स्वयं उस स्थिति के नायक हों।

एक दृश्य में स्वामी रामानंद काशी के घाट पर स्नान करने जा रहे हैं। सीढ़ियों पर कोई लेटा हुआ, रामानंद से राम नाम की दीक्षा लेने की आस लिए हुए। पहले प्रयत्न कर देखा था, लेकिन गुरु के सहयोगियों ने यह कह कर मना कर दिया कि अंत्यजों को रामनाम की दीक्षा नहीं दी जाती। वे अपने आप चाहे जप लिया करें, गुरु मुख से सुनने की योग्यता उनमें नहीं है। वह 'कोई' संत कबीर थे और पूजा की कोठरी में सिर पर हाथ का स्पर्श पाकर जो श्रीराम यह सब अनुभव कर रहे थे। वह अपने आपको सीढ़ियों पर लेटा हुआ भी देख रहे थे। ब्राह्ममुहूर्त में स्वामी रामानंद गंगा स्नान के लिए आए। सीढ़ियों पर कबीर ने अपने आपको इस तरह समेट लिया कि दिखाई न दें। घाट की सीढ़ियाँ उतरते ही उनका दाहिना पाँव कबीर के शरीर पर पड़ा और बोध हुआ कि किसी को चोट लगी है। इस बोध के साथ स्वामी जी के मुँह से 'राम-राम' की ध्वनि निकल आई। कबीर ने तत्क्षण उठ कर स्वामी जी के पाँव पकड़ लिए और कहा मैं धन्य हुआ पूज्यवर। मुझे गुरुमंत्र मिल गया।

इस घटना के बाद स्वामी रामानंद ने कबीर को विधिवत् अपना शिष्य स्वीकार किया। काशी के विद्वानों, आचार्यों, साधुओं और महामण्डलेश्वरों ने इसका घोर विरोध किया। उन्हें धर्मद्रोही तक करार दिया। रूढ़ियों और परंपरा के प्रति अतिशय आग्रह रखने वाले स्वामी रामानंद पर इसका जरा भी असर नहीं हुआ।

कबीर कपड़ा बुन कर अपना निर्वाह चलाते थे। काम करते हुए ही वे साधकों और जिज्ञासुओं को धर्मोपदेश देते थे। दिखाई दे रहा है कि दसियों लोग उन्हें घेरे बैठे हैं। चर्चा के विषय अध्यात्म तक ही सीमित नहीं हैं, घर, परिवार,

समाज और समकालीन घटनाओं पर भी बातचीत होती है। निर्वाह होने योग्य कपड़ा तैयार हो जाने के बाद कबीर खुद उसे बेचने जाते। कोई मोलभाव नहीं, जिसने जो मूल्य आँका और देना चाहा, वह ले लिया। फिर घर आ गए। इस तरह के सौदे में कभी घाटा नहीं हुआ। ज्यादा होशियारी बरतने वालों ने एकाध बार चालाकी की होगी, लेकिन आमतौर पर सभी ग्राहक ईमानदारी ही बरतते हैं। सत्संग में आने वालों ने कभी पूछा तो कहा हमारे मन में फायदा उठाने की बात ही नहीं आती। हमें क्या नुकसान होगा? नुकसान तो उसे ही है जो लाभ कमाने निकला हो।

एक सत्संग में किसी ने पूछा कबीर साहब आपका परिवार बड़ा खुश है। सुखी दाम्पत्य का क्या रहस्य है? सुनकर कबीर कुछ क्षण तक चुप रहे। फिर पत्नी को पुकारा, 'लोई बड़ा अंधेरा है दीपक जलाकर लाना'। (लोई उनकी पत्नी का नाम था) सुनने वालों को भारी असमंजस हुआ। भरी दोपहरी का समय था बीच आसमान में सूरज चमक रहा था। जिस जगह कबीर सत्संगियों के साथ बैठे थे, वहाँ भी पर्याप्त रोशनी थी। अबूझ स्थिति में पड़े लोगों को तब और आश्चर्य हुआ जब लोई दीपक जलाकर लायी और कबीर के पास रखी एक चौकी पर रख कर चली गई। कबीर ने कहा पति-पत्नी में इस तरह का विश्वास हो, तो दाम्पत्य बड़े मजे से चलता है। लोई भी जानती है कि भरी दोपहरी है और दीपक की जरूरत नहीं है, फिर भी कहा तो उसने संदेह नहीं जताया। वह कहे अनुसार चुपचाप अपना काम कर चली गई।

परिवार की आमदनी सीमित थी और आगंतुकों का ताँता लगा रहता था। आने वालों की आवभगत भी होती। घर में हमेशा तंगी बनी रहती। पुत्र कमाल बड़ा हुआ। परिवार में बनी रहने वाली तंगी का अच्छी तरह ख्याल था। उसने व्यापार-व्यवसाय में ध्यान दिया। कबीर का जोर वहाँ भी शुद्धता और न्याय की कमाई पर रहता था। पुत्र को व्यावहारिक अध्यात्म की दीक्षा दी। वैसे ही संस्कार भी दिये।

कबीर की काया पर विवाद

एक अन्य दृश्य में कबीर हिन्दू और मूसलमान दोनों को फटकारते दिखाई दिए। सब धर्मों की एकता पर नहीं उनके अनुयायियों में सामंजस्य पर उनका जोर था। बाहरी स्वरूप, कर्मकाण्ड, प्रतीक और आचरण आदि में जमीन-

आसमान का अंतर होते हुए भी सब धर्म एक ही सत्य का उद्घोष करते हैं। वह सत्य अपने भीतर बैठा परमात्मा और बाहर उसी की अभिव्यक्ति का उद्घोष है। कबीर का निधन मगहर में हुआ या काशी में इस पर इतिहास के जानकारों में मतभेद है। कहते हैं उनका निधन हुआ तो हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनों ने अपने रिवाज के अनुसार अंतिम संस्कार करना चाहा। इस पर विवाद भी हुआ। हिन्दू शव का दाह संस्कार करना चाहते थे और मुसलमान दफनाना। यह कहानी ही होगी कि दोनों पक्ष के लोगों ने शव पर पड़ा कफन हटाया, तो वह मृत काया के स्थान पर फूलों का ढेर था। आधे फूल हिन्दुओं ने लिए और आधे मुसलमानों ने। दोनों संप्रदाय के लोगों ने अपने-अपने विधान के अनुसार दाह और दफन किया। पंच तत्वों से बना शरीर अलग-अलग प्रक्रिया से अपने मूल रूप में पहुँच गया। कथा इस सत्य की घोषणा करती है।

एक वर्ग की मान्यता है कि अंतिम समय निकट जानकर वे स्वेच्छा से काशी छोड़कर मगहर चले गये। उद्देश्य इस अंधी धारणा को तोड़ना था कि काशी मोक्षनगरी है, वहाँ जो भी कोई मरता है, वह मुक्ति प्राप्त कर लेता है। इस अंध विश्वास के कारण ही लोग काशी में आत्महत्या तक कर लेते थे। मगहर में मरने वालों को नरकगामी बनना पड़ता है। इस अंधविश्वास को तोड़ने के लिए कबीर ने अपना अंतिम समय वहीं बिताया। मगहर में ही शरीर छोड़ा। कौन कहता है कि मगहर में मरने से कबीर को कर्मबंधनों ने जकड़े रखा होगा।

कबीर का जीवन ऐतिहासिक वर्णनों की अपेक्षा मिथकों और किंवदन्तियों में ज्यादा झलकता है। मुसलमान जुलाहे ने उनका पालन-पोषण किया। कहते हैं वे किसी ब्राह्मण कन्या से जन्मे थे। उनके जन्म और लालन-पालन में हिंदू तथा मुस्लिम दोनों ही धर्मों की छाया थी। हिन्दू और इस्लाम दोनों ही धर्मों में छाने पाखण्डों और अंधविश्वासों का जैसा कड़ा विरोध उन्होंने किया, वह सभी जानते हैं। इन प्रयासों की प्रतिक्रिया भी कम नहीं हुई। कुछ संप्रदाय वालों ने उन्हें जान से मरवाने की कोशिश की, तो कुछ ने उन्हें काशी से निष्कासित करा दिया।

कबीर के जीवन से संबंधित अनेक घटनाएँ श्रीराम के मानस पटल पर उमड़ आईं। वे आती-जाती रहीं। शरीर छूटने के दृश्य के साथ समाप्त हुई और यह अंतर्दृष्टि जगा गई कि विद्या, विवेक का स्रोत अपना अंतस् है। शास्त्र कितने ही पढ़ लिए जाएँ, अपने भीतर प्रज्ञा का जागरण न हो, तो सब व्यर्थ है। इसके विपरीत अंतश्चेतना जाग्रत हो जाए, तो कुछ पढ़ा-लिखा है या नहीं, अंतर्दृष्टि



अपने आप सब कुछ जानने, समझने में समर्थ हो जाती है, समझ ही लेती है। कबीर की स्मृतियाँ पूरी हईं। उनका जीवन क्रम चलचित्र की भाँति घूम गया।

कुछ अंतराल के बाद इतिहास की दृष्टि से सौ साल बाद का समय शुरू होता है। देश के हिसाब से महाराष्ट्र में और काल के हिसाब से औरंगजेब के आततायी शासन का युग। उस समय किसी भी व्यक्ति या समूह को अपनी आस्था के अनुसार जीने की सुविधा नहीं थी। अपने विश्वासों के लिए कीमत चुकाना पड़ता था। वह कीमत धन के रूप में भी हो सकती थी और दंड के रूप में भी। विभिन्न धर्म संप्रदाय, खासकर साधना और विद्या की भारतीय धाराएँ इतनी दुर्बल और कुंठित हो गई थीं कि आपस में ही लड़ने-भिड़ने लगी थीं। आत्मनाश करने में जुटी हुई थी।

तमिस्रा और निराशा से भरे उस युग में महाराष्ट्र में एक संन्यासी का उदय हुआ। पूजा की कोठरी में श्रीराम के सामने उस साधु की जीवन लीला के विभिन्न दृश्य उभरते हैं। विवाह मंडप में युवा रामदास बैठे हैं, पास ही वधू, सप्तपदी शुरू होने से पहले पुरोहित कर्मकांड के लिए तैयार रहने के उद्देश्य से कहा-‘वर-वधू सावधान’ अर्थात् आगे की क्रियाएँ होश के साथ, उनका अर्थ समझते हुए संपन्न करो। ‘सावधान’ के उद्घोष ने रामदास की चेतना को अलग ही तरह से झकझोर दिया। अंतरात्मा ने कचोटा था, देश और धर्म इन भीषण स्थितियों से गुजर रहा है, तुम्हें घर-गृहस्थी बसाने की पड़ी हुई है। रामदास विवाह मंडप छोड़कर भाग निकले। सावधान हो गए। संन्यास जीवन अपनाया। परशुराम की तरह शास्त्र और शस्त्र दोनों की शिक्षा का प्रचार किया।

सावधान हुए रामदास

समर्थ गुरु रामदास (सन् १६०८ से १६९२) के रूप में विख्यात हुई इस विभूति ने पंचवटी में बारह वर्ष तक गायत्री साधना की। साधना के बाद वे तीर्थाटन के लिए निकल गए। देश समाज की समस्याओं और उस समय की परिस्थितियों को समझा और महाराष्ट्र वापस लौट आए। वहाँ उन्होंने शरीर, मन और आत्मा तीनों दृष्टि से बलवान युवकों को संगठित करने की योजना बनाई। उसे कार्यान्वित किया। जहाँ भी जाते हनुमान मंदिर की स्थापना और मंदिर के साथ अखाड़े खोलते। इनमें किशोर और युवकों को व्यायाम करने, कुश्ती लड़ने, मल्ल

बलिहारी गुरु आपुनो

युद्ध करने और हथियार चलाने का अभ्यास कराया जाता। उन अखाड़ों की परंपरा देश में आज भी अवशिष्ट है। लोग उन्हें रामदासी अखाड़ों के रूप में जानते हैं।

एक दृश्य में समर्थ रामदास संन्यास वेश में अपनी माँ से मिलने जाते हैं। विवाह मंडप से उठकर भागे थे तब से माँ ने रो-रोकर अपना बुरा हाल कर लिया था। आँखों की रोशनी जाती रही। कोई भी प्रसंग उठता, तो अपने लाड़ले को याद करती। साधना और तीर्थाटन से लौटने के तुरंत बाद समर्थ रामदास ने माँ को ढूँढ़ा, उनके चरणों में प्रणाम किया। माँ ने आहट से ही पहचान लिया कि बेटा आया है। समर्थ पुत्र के सिर पर स्नेह से हाथ फेरा और माँ देखने लगी। बेटा दिखाई देने लगा। पुलकित होकर माँ ने 'कहा लगता है बेटा तूने कोई भूत सिद्ध कर लिया है। उसी के जोर से तुमने मेरी आँखों की ज्योति वापस ला दी। बता तो सही कौन है वह भूत।'।

समर्थ रामदास माँ का आशीर्वाद पाकर निकल पड़े। साधु संन्यासियों और गृहस्थों को संगठित करने में लगे। उनके मार्गदर्शन में जिन शूरवीरों ने स्वतंत्रता और राष्ट्र के गौरव की पुनर्स्थापना के लिए संघर्ष छेड़ा था, उनमें छत्रपति शिवाजी का नाम सबसे ऊपर है। शिवाजी को दीक्षित करने, राष्ट्र के उद्धार में लगाने, अधर्म को नष्ट करने के लिए सभी संभव उपाय करने की प्रेरणा देने वाले अनेक दृश्य मानस पटल पर उभर आए। एक दृश्य में वे शिवाजी के पास भिक्षा माँगने गये। छत्रपति उस समय साम्राज्य की स्थापना कर चुके थे। गुरु ने अलख जगाई। 'जय-जय रघुवीर समर्थ,' पुकार सुनकर शिवाजी दौड़े आए। क्षण भर के लिए सोचने लगे कि गुरु की झोली में क्या अर्पित किया जाय। क्षण भर में ही तय कर लिया। कागज कलम उठाकर संकल्प पत्र लिखा और कहा कि पूरा राज्य आज से आपका। आप ही शासन कीजिए। यह कह कर संकल्प ग्रहण कर लिया।

गुरु ने कहा, 'हाँ आज से ये राज्य मेरा ही है, तुम इसे मेरी धरोहर मानकर संभालो। इसे बढ़ाओ, समृद्ध करो और राष्ट्र के जागरण में अपनी आहुति दो।' इसके बाद धर्म के अनुसार राज्य किस प्रकार चलाया जाय? प्रत्येक बिन्दु को स्पष्ट करता हुआ एक प्रवचन। वह प्रवचन शिवाजी ही नहीं, लोकरंजन और लोकमंगल का दायित्व निभाने वाले सभी शासकों के लिए धर्मविधान है। समर्थ गुरु इसके बाद शिष्य को एक प्रार्थना सिखाने लगे। इस प्रार्थना में सभी देवों को नमस्कार किया गया है और उनमें निहित अद्वैत तत्त्व का स्मरण भी। यह प्रार्थना

समर्थ रामदास की कृति 'दासबोध' में भी है। प्रार्थना के स्वर उस दृश्य में गूँज रहे थे, जैसे श्रीराम स्वयं ही गा रहे हैं।

'हे गजवदन तुम्हें प्रणाम है। तुम्हारी महिमा का कोई पार नहीं है। तुम्हीं सबको विद्या और बुद्धि देते हो। भगवती सरस्वती को प्रणाम है। तुम्हीं से वाणी की स्फुरणा होती है। गिने-चुने लोग ही तुम्हारे स्वरूप को आंशिक रूप में समझ पाते हैं। चतुरानन तुम धन्य हो। तुम्हीं ने सृष्टि की रचना की और समस्त शास्त्र प्रकट किए। हे विष्णु! तुम धन्य हो। तुम सबका पालन करते हो। शिव को प्रणाम है, जो निरंतर रामनाम का जप करते हैं। तुम्हारी देन का अंत नहीं है।'

'हे इंद्रदेव! तुम धन्य हो। तुम धर्म-अधर्म सब जानते हो। मुझे भी उसे मानने-समझने की शक्ति दो। हे परम बलवान हनुमान! तुम धन्य हो। हमें भी बल के उपासक बनाओ। क्षेत्रपाल तुमने बहुत से लोगों को मुक्ति मार्ग पर प्रेरित किया है। हे पांडुरंग! तुम्हारे यहाँ सदा भगवत्कथा की धूम मची रहती है। राम-कृष्ण आदि अवतारों की महिमा अपार ही है। उन्हीं के कारण बहुत से लोग उपासना में तत्पर हुए हैं। पर इन सब देवताओं का मूल यह अंतरात्मा है। भूमण्डल के सब लोग इसी को प्राप्त होते हैं। यही अनेक शक्तियों के रूप में प्रकट हुआ और सब वैभवों का भोग करने वाला है।'

प्रार्थना लम्बी है। उसमें अपने भीतर निहित और बाहर जगत् में व्याप्त विविध शक्ति रूपों के आध्यात्मिक पक्ष को संबोधित किया गया है। प्रार्थना संपन्न होने के बाद समर्थ रामदास अपनी लीला का संवरण करते हैं। उनके अवतरण का उद्देश्य ही दिव्य जीवन के आंतरिक सत्य को उजागर करना था। अपने कर्तव्य कर्मों के पालन, धर्म सेवन और लोक कल्याण की विभिन्न गतिविधियों के दृश्य दिखाई दिये। लीला संवरण का संदेश जगत् में धर्म की प्रतिष्ठा है, सशक्त धर्म की, सशक्त प्रतिष्ठा की।

स्मृति की परतें पलटती हैं। नया दृश्य कलकत्ता के आसपास का है। समय उन्नीसवीं शताब्दी के ठीक पूर्वार्ध का था। श्रीराम इन अनुभूतियों के समय जिस वयस् में थे, वही उम्र तब रही होगी। दक्षिणेश्वर मंदिर में अपने बड़े भाई के साथ आकर ठहरा एक किशोर। नाम रामकृष्ण। मंदिर काली का था और रानी रासमणि ने बनाया था जो जाति से कैवर्त थी। यह जाति निम्न कोटि की समझी जाती थी। श्रद्धा-भक्ति से सराबोर हृदय होते हुए भी रानी को अपने समय के श्रेष्ठ वर्ग की प्रताड़ना सहना पड़ी थी।

लोगों ने उनके मंदिर का विरोध किया। कहा कि इस मंदिर में न काली की प्रतिष्ठा हो सकती है और न ही पूजा। विद्वानों और पंडितों के विरोध के कारण किसी ने पूजा का दायित्व स्वीकार नहीं किया। रानी रासमणि ने कई आश्रमों, गुरुकुलों विद्यापीठों के द्वार खटखटाए, पंडितों के निहारे किए, लेकिन किसी का हृदय नहीं पसीजा। कलकत्ता के पास कामारपुकुर गाँव में एक युवा ब्राह्मण पंडित रामकुमार, ने रानी रासमणि को पूजा के लिए हाँ कह दी। इसके लिए उन्हें अपने बंधु बांधवों का भारी विरोध सहना पड़ा।

माँ काली से जीवंत संपर्क

रामकृष्ण भी अपने अग्रज के पास आकर रहने लगे। बैठे-बैठे काली की प्रतिमा को निहारते रहते। उनकी भक्ति और श्रद्धा से अभिभूत होकर बड़े भाई ने अपनी संस्कृत पाठशाला का काम संभाला और पूजा-पाठ का दायित्व रामकृष्ण को ही सौंप दिया। नए पुजारी का पूजा-विधान विचित्र था। वे प्रतिमा को सजीव विग्रह मान कर व्यवहार करते थे, जैसे किसी देवी की नहीं, जाग्रत् और जीवंत माता की सेवा कर रहे हों। संवाद इस तरह चलते थे, जैसे प्रतिमा जवाब भी दे रही हो।

काली पूजा और साधना करते हुए रामकृष्ण को इहलोक का लगभग विस्मरण हो गया। दूर-दूर तक उनकी साधना और समाधि की चर्चा फैल गई। लोग उनका दर्शन करने आने लगे। मंदिर में भक्तों की भीड़ बढ़ने लगी। भक्त और सिद्ध सन्त के रूप में बढ़ती हुई ख्याति के दिनों में ही रामकृष्ण का विवाह हो गया। पत्नी उम्र में सोलह वर्ष छोटी थी, लेकिन उम्र के अंतर का इससे कोई संबंध नहीं था। विवाह सामान्य गृहस्थ जीवन बिताने के लिए नहीं हुआ था। आगे बढ़कर रामकृष्ण के आसपास शिष्य और साधकों का एक बड़ा समुदाय इकट्ठा हुआ। उनकी देखभाल और स्नेह देने के लिए ही जैसे यह परिणय हुआ था।

स्वयं रामकृष्ण की स्थिति ऐसी नहीं थी कि वे साधकों की भी छोटी-मोटी जरूरतों का ध्यान रख सकें। प्रारंभिक दिनों में ही उनकी भाव समाधि लग जाया करती थी। भावसमाधि की अवस्था में उनका शरीर पूर्ण तरह बेसुध हो जाता। कोई हलचल नहीं होती। देखने वालों को स्थिति का भान न हो, तो वह भावसमाधि की अवस्था में रामकृष्ण के शरीर को मृतकाया ही समझ बैठें। उस अवस्था में माँ शारदामणि ही रामकृष्ण की देखभाल करतीं।



एक हाथ में रुपया और दूसरे हाथ में मिट्टी का ढेला लेकर दोनों को गंगा में फेंकने की विचित्र लीला भी इन्हीं दिनों हुई। रानी रासमणि ने उन्हें अपना गुरु चुनना चाहा। चुनने से पहले परीक्षा की। उनके सामने कामिनी और कांचन के आकर्षण प्रस्तुत किये। जिन सुंदरियों को उन्हें लुभाने भेजा था, उन्हें रामकृष्ण ने पिता की तरह स्नेहभरी दृष्टि से देखा। वे सुंदरियाँ 'क्षमा करें' ठाकुर कहती हुई रानी के पास आ गईं।

एक अवसर पर रानी ने उनके मार्ग में स्वर्णमुद्रा बिखेर दी और साथ चलने लगीं। ठाकुर उन मुद्राओं को देखा अनदेखा कर आगे बढ़ गए। रानी ने उधर संकेत भी किया लेकिन ठाकुर यह कहते हुए आगे बढ़ गए कि वह भी माँ का प्रसाद है। मिट्टी की तरह ही जमीन पर पड़ा है। एक अन्य अवसर पर कपड़ों में छुपाकर स्वर्णमुद्रा दी गई। वस्त्र छूते ही रामकृष्ण तिलमिला से गये? जैसे दहकता हुआ लोहा पकड़ लिया हो। आगे उनकी किसी ने परीक्षा नहीं ली और रानी ने उन्हें अपना गुरु स्वीकार कर लिया।

विभिन्न साधना परंपराओं का अभ्यास और उनके शिखर तक पहुँचना रामकृष्ण देव का अनूठा प्रयोग था। राम की उपासना शुरू की तो हनुमान की तरह व्यवहार करने लगे। राम रघुवीर कहते हुए वे वृक्षों पर चढ़ जाते फल तोड़ते दांत से काटते और चखकर फेक देते। प्राणी मात्र में और कण-कण में राम के दर्शन की अवस्था में पहुँच जाने के बाद साधना को विराम दिया। एक बार सखीभाव से श्रीकृष्ण की आराधना करने लगे। इस भाव से साधना करने वाले साधक अपने आपको श्रीकृष्ण की सहेलियाँ, गोपियाँ मानते हैं और स्त्रियों की तरह ही रहते हैं। रामकृष्ण भी उसी तरह साधना करने लगे। सखी रूप धारण करने के लिए उन्होंने केश रखवाए। वेणी गूँथने लगे। नाक में बेसर, आँखों में अंजन, माथे पर सिंदूर, बिन्दी और होठों पर लाली लगाने लगे। साधना की प्रगाढ़ अवस्था में वे पुकारने लगते कहाँ है ललिता, कहाँ है विशाखा? मुझ पर दया करो! मैं अति दीन-हीन हूँ। तुम्हारी दया के बिना मैं राधिका जी का दर्शन नहीं कर सकूँगी और राधिका जी के बिना श्रीकृष्ण तक नहीं पहुँच पाऊँगी।

सखी संप्रदाय की साधना करते हुए रामकृष्ण देव के शरीर में स्त्रियोचित परिवर्तन होने लगे थे। उनकी आवाज मधुर और कोमल होने लगी। आवाज सुनकर उन्हें कोई भी पहचान नहीं सकता था। कुछ दिन बाद उनकी चाल भी

बलिहारी गुरु आपुनो

बदल गई। वक्ष पर स्त्री जैसे उभार दिखाई देने लगे और पाँव किसी तन्वंगी नारी की तरह सम्हल-सम्हल कर उठते थे। साधना की यह स्थिति प्रमाण है कि तन्मय होकर आराधना करने पर व्यक्तित्व में आमूलचूल परिवर्तन आने लगता है। यहाँ तक कि शरीर भी उसी के अनुसार ढलने और बदलने लगता है। सखीभाव की साधना को विराम देने के महीनों बाद ठाकुर सहज स्थिति में पहुँचे।

साधनाओं की प्रयोगशाला

भक्ति मार्ग के बाद वेदांत की साधना शुरू की। उस क्षेत्र में 'सोऽहम्' और 'अहं ब्रह्मास्मि' रूप की सिद्धि तक पहुँचे। तांत्रिक, बंगला, बाउल, वैष्णव और शाक्त आदि सम्प्रदायों का मार्ग भी अपनाया। विभिन्न संप्रदायों, पंथों की साधना के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि स्वरूप से मार्ग भले ही अलग हों, तात्त्विक दृष्टि से किसी में कोई अंतर नहीं है। खालसा पंथ की दीक्षा लेकर उसका मर्म समझा। एक दिन विचार आया कि हिन्दू, मुसलमान में क्या भेद है यह भी मालूम किया जाय। अपनी इष्ट-आराध्य भवानी से अनुमति माँगी, माँ ने अनुमति दे दी। टमटमा गाँव में एक सूफी साधक रहता था, उससे दीक्षा ली और साधना की विधि सीखी। तीन दिन साधना के बाद ही भाव बदल गये। उनके अंतःकरण से हिन्दू का भाव विलुप्त हो गया। उन्होंने मंदिर में जाना बंद कर काली का प्रसाद नहीं खाया। साधना के दिनों में किसी ने कहा कि इस्लाम के अनुसार जो काफिरों का वध करेगा, वही स्वर्ग में सुख से रहेगा। तुम भी क्या काफिरों का वध करोगे?

रामकृष्ण परमहंस ने कहा- 'काफिर बाहर नहीं रहते। वे हमारे भीतर ही हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद मत्सर आदि ही हमारे भीतर रहने वाले विजातीय तत्त्व हैं। उनका विनाश करने से ही अल्लाह की मेहरबानी होती है। विद्या और शक्ति ही मनुष्य को सुख देती है। उसके सिवा कोई सुंदरी या अप्सरा नहीं है, जो मनुष्य को निरंतर अगाध सुख देती हों।'

ईसाई धर्म की साधना उपासना का मार्ग भी अपनाया। सब धर्मों और साधना परंपराओं का मर्म ज्ञान समझ लेने के बाद वे अपने स्वभाव में स्थिर हो गए। मुक्त और सिद्ध आत्माओं का वैसे अपना कोई स्वतंत्र स्वभाव नहीं होता। वे परमात्म चेतना से इस तरह ओत-प्रोत हो जाते हैं कि उनकी अपनी स्वतंत्र सत्ता कहीं दिखाई ही नहीं देती। जिस स्थिति और स्तर का साधक आता है, उसी के अनुरूप वे

दिखाई देने लगते हैं। दर्पण की तरह, स्फटिक से बने विग्रह की भाँति हो जाते हैं, जो सामने उपस्थित दृश्य या वर्ण को ही अपने स्वरूप में प्रतिबिंबित करने लगता है।

रामकृष्ण देव तब विविध साधना धाराओं को ही परख रहे थे। पूजा की कोठरी में बैठे श्रीराम को ये दृश्य जीवंत घटनाओं की तरह दिखाई देते हैं। दक्षिणेश्वर मंदिर में भिन्न-भिन्न संप्रदायों के साधक संन्यासी, फकीर, पादरी, आदि आ रहे हैं। किसी दिन सात सौ नागा साधुओं के प्रमुख तोतापुरी नामक संन्यासी आते हैं। चारों ओर उनकी बड़ी ख्याति है। पौष महीने में गंगा सागर से स्नान कर लौटते हुए वे दक्षिणेश्वर में ठहरते हैं और रामकृष्ण देव को देखकर पूछते हैं- 'तुम कुछ साधना करोगे।'

'माँ कहेगी, तो जरूर करेंगे' रामकृष्ण ने बाल सुलभ सरलता से कहा। तोतापुरी ने समझा कि वे अपनी जननी माता की अनुमति चाहते हैं, शायद। कह दिया, जाओ पूछ आओ, रामकृष्ण माँ काली के सामने बैठकर पूछने लगे तो उधर से उत्तर आया कर लो। फिर पूछा- 'कौन सिखाएगा साधना।'

माँ ने उत्तर दिया, 'जो तुझे वेदांत सिखाने आया है, वही साधना भी सिखाएगा, स्वामी रामकृष्ण ने महंत तोतापुरी से सारा संवाद ज्यों का त्यों कह सुनाया। वे हँसे, फिर कहा 'हमसे उपदेश ग्रहण करना है, तो संन्यासी बनना पड़ेगा।'

रामकृष्ण उसी सहजता से पूछते हैं, 'संन्यासी होने के लिए क्या करना पड़ेगा।' कोठरी में अपनी मार्गदर्शक सत्ता के दिव्य सान्निध्य में बैठे श्रीराम अनुभव कर रहे थे, जैसे रामकृष्ण के रूप में वे स्वयं ही यह संवाद कर रहे हों। तोतापुरीजी संन्यास के बारे में समझाते हैं, उसके लिए श्राद्ध होम तर्पण आदि करना पड़ेगा। भगवा वस्त्र पहनना होगा और निरंतर विचरण करते रहना पड़ेगा। रामकृष्ण ने कहा- 'सब स्वीकार है, लेकिन भगवा पहने बिना संन्यासी हुआ जाए, ऐसा कुछ कीजिए। मैं यह स्थान छोड़ कर अन्यत्र नहीं जा सकता। मेरी माँ जीवित है। अब उनका और कोई पुत्र नहीं। इसलिए उन्हें छोड़ा नहीं जा सकता।'

तोतापुरी ने स्वीकार कर लिया। संन्यास की तैयारी होने लगी। शिखा सूत्र, कंठी, माला आदि चिह्नों का विसर्जन हो गया। चिता आरोहण और श्राद्ध तर्पण की क्रियाएँ भी संपन्न कर ली गयी, सर्वस्व त्याग का व्रत ग्रहण कर लिया। दीक्षा के बाद तोतापुरी अपने शिष्य को उपदेश देते हैं और समाधि में ले जाने का प्रयत्न करते हैं। स्फटिक की माला से एक मनका अलग निकाला और रामकृष्ण देव को पद्मासन लगाकर बैठ जाने के लिए कहा। शिष्य ने पद्मासन

लगा लिया। तोतापुरी ने रामकृष्ण की आँखों के बीच भौंहों के मध्य स्फटिक का स्पर्श किया। उसे कुछ जोर से दबाया, थोड़ा सा दबाव पड़ना था कि रामकृष्ण देव की समाधि लग गई। वे अचेत से हो गये। नाड़ी की गति और हृदय की धड़कन यथावत् चल रही थी, लेकिन उन्हें कोई बोध नहीं था।

यह अवस्था देखकर तोतापुरी थोड़े डरे। उन्हें लगा कि रामकृष्ण कहीं शरीर न छोड़ दें। बड़ी सावधानी से उन्होंने साधक की देखभाल की। एक दिन बीत गया, दूसरे दिन की शाम भी ढल गयी और तीसरे दिन की सुबह हुई, तब भी रामकृष्ण की स्थिति में कोई अंतर नहीं आया। उन्होंने अपने प्रमुख शिष्यों से कहा तीन दिन तक यदि साधक अपनी सहज अवस्था में नहीं आता तो कठिन हो जाता है। शरीर उस आत्म चेतना को वापस धारण करने योग्य नहीं रह जाता।

बहुत आगे हो ठाकुर

‘लेकिन गुरुदेव रामकृष्ण के शरीर में तो कोई विकार नहीं है।’ तोतापुरी के उन्हीं शिष्य ने कहा-‘श्वास-प्रश्वास उसी तरह चल रहे हैं। नाड़ी की गति भी ठीक है। शरीर में कोई विकार नहीं दिखाई देता।’ तोतापुरी को चिंता नहीं थी। लेकिन वे विस्मय विमुग्ध थे। कुछ सूझ नहीं रहा था कि क्या करें? सिद्ध गुरु अपने शिष्यों को समाधि से वापस लाने के जो भी उपाय कर सकते, कर लिए। कोई अंतर नहीं आया। थक हारकर वे शांत बैठ गये। यकायक उन्हें कुछ सूझा और अपना मुँह ठाकुर के कान तक ले गये और कहा- ‘वह आ गया है रे, जिसकी तुम्हें प्रतीक्षा है।’

सुनना था कि रामकृष्ण इस तरह उठकर बैठ गये जैसे किसी ने झकझोर दिया। वे आतुर-व्याकुल हो उठे और पूछने लगे, ‘कहाँ है वह? कहाँ है?’ तोतापुरी ने कहा -‘पहुँच ही रहा होगा।’ इसके बाद वे बोले-‘तुम तो मुझसे बहुत आगे हो ठाकुर। तुम महापुरुष हो। चालीस वर्ष तक कठोर साधना करके भी मैं जो स्थिति प्राप्त नहीं कर सका, एक ही दिन में तुमने उसे उपलब्ध कर लिया। तुम धन्य हो।’ तोतापुरी वेदान्ती थे। वे मूर्ति पूजा को नहीं मानते थे। अपने शिष्य की सिद्ध अवस्था से चमत्कृत हो कर उन्होंने दक्षिणेश्वर मंदिर में स्थित माँ काली की प्रतिमा को प्रणाम किया।

जो संदेश देकर तोतापुरी ने रामकृष्ण को समाधि से जगाया था वह नरेन्द्र के बारे में था। ‘नरेन्द्र नाथ दत्त’ जो बाद में स्वामी विवेकानन्द हुए। जिस

दिन वे संसर्ग में आए, उसी दिन रामकृष्ण ने उन्हें सीने से लगा लिया था। फूट-फूट कर रोए थे, जैसे वर्षों से गुम हुई संतान को पाकर माता-पिता विह्वल हो उठते हैं। नरेन्द्रनाथ तब रोजगार की तलाश में था। मुमुक्षा का आवेग अपने चरम पर था। वह क्षुधा से भी ज्यादा प्रचंड हो उठता था। तृप्ति के लिए वे साधु संतों के यहाँ भटकते रहते। रामकृष्ण के यहाँ पहुँचे और गुरु ने उन्हें देखते ही अंक में भर लिया, तो लगा कि खोज पूरी हुई।

नरेन्द्र ने पूछा-‘आपने ईश्वर को देखा है क्या?’ जिस वेग से सवाल आया था, उससे भी प्रचंड वेग से उत्तर मिला, ‘तुम देखना चाहते हो क्या?’ नरेन्द्र ने अब तक कितने ही संन्यासियों और योगियों से यही प्रश्न पूछा था। इतने विश्वास और वेग के साथ किसी ने जवाब नहीं दिया। कोई कहता- हाँ देखा है, लेकिन उस हाँ में विश्वास का बल नहीं होता था। कोई कहता, अगर कहें कि देखा है, तो यह अपनी स्थिति का ढिंढोरा पीटना हुआ। यदि मना करते हैं, तो उत्तर गलत हो जाएगा। इसलिए कुछ नहीं कहना ही ठीक है। तुम अपनी जिज्ञासा बताओ हम समाधान देने का प्रयास करेंगे।

कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर से भी उन्होंने यही प्रश्न पूछा था। महर्षि देवेन्द्रनाथ नदी की धारा में बजरे पर विश्राम कर रहे थे। नरेन्द्र नाथ तैर कर बजरे पर आ गए और धम्म से भीतर कूदे। कूदते ही उन्होंने महर्षि से ईश्वर के बारे में पूछा। नरेन्द्रनाथ के प्रश्न से वे हड़बड़ा गये थे। उन्हें लगा था जैसे कोई कालर पकड़ कर पूछ रहा हो। नरेन्द्र ने अपनी उत्कंठा को पूरी तरह व्यक्त करते हुए ही पूछा था। उसमें डराने जैसा कोई रंग नहीं था, लेकिन उनकी उत्कंठा ने ही योगी को अचकचा दिया था। वह कहने लगे, ‘पहले बैठो तो सही। शांत हो कर बैठो।’ मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देता हूँ।’ इस व्यवहार ने नरेन्द्रनाथ को आभास कग दिया कि प्रश्न का उत्तर वहाँ नहीं है। वे यह कह कर वापस चले आए कि अब आपको कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। मुझे उत्तर मिल गया है।

सिद्ध योगियों के व्यवहार और रुख से ही अपने प्रश्न का भविष्य समझ लेने वाले नरेन्द्र नाथ की यात्रा रामकृष्ण परमहंस के सान्निध्य में पहुँचकर पूरी हुई। उन्होंने नरेन्द्र से कहा, ‘जो माँगना है, अपनी माँ से ही माँग लेना। मुझसे कुछ मत कहना।’ रामकृष्ण ने जब यह बात कही थी, तब नरेन्द्र के मन में अपने परिवार के निर्वाह की चिंता घुमड़ रही थी। गुरु के कहने पर वे मंदिर में माँ की



बलिहारी गुरु आपुनो

प्रतिमा के पास गये, तो सही लेकिन कुछ माँगते नहीं बना। माँ के मनोहारी रूप ने उन्हें इतना विभोर कर दिया कि वे माँगने की बात ही भूल गये। बिना कुछ कहे वापस चले आए। रामकृष्ण ने उन्हें दो बार और मंदिर में भेजा। दोनों बार वे फिर वापस आ गये। इसके बाद गुरु ने कहा- 'माँ का काम कर।' माँ तेरी चिंता अपने आप रखेगी। परिवार के लिए मोटे-झोटे की कमी कभी नहीं रहेगी।

नरेन्द्र के मिलने के पाँच वर्ष बाद ठाकुर ने शरीर छोड़ दिया। शरीर छोड़ना भी जैसे किसी दैवी योजना का हिस्सा था। एक दिन उन्होंने शिष्य से कहा- 'सुनो अब लोगों के साथ ज्यादा बात नहीं कर सकूँगा। इसलिए माँ से निवेदन किया है कि नरेन्द्र, राजा (राखाल महाराज), तारक, बाबू (बाबूराम), योगीन, शशि आदि शिष्यों को शक्ति दे। अब आगे से यही लोग भक्तों को उपदेश दिया करें। इस घोषणा के कुछ दिन बाद गले में पीड़ा उठने लगी। पीड़ा बढ़ी। भोजन करने में कठिनाई होने लगी। रोग बढ़ता गया। भक्तों ने उपचार के लिए कहा। रामकृष्ण कहने लगे माँ की इच्छा है, वह चाहेगी, तो रोग ठीक होगा, वरना कितना ही उपचार करो, कुछ नहीं होने वाला।'

उपचार नहीं कराने के पीछे औषधियों के निर्माण में बरती जाने वाली क्रूरता मुख्य कारण था। भक्तों ने दबाव डाला कि जिन औषधियों में पशु हिंसा नहीं हुई हो, उनका उपयोग किया जाय। होम्योपैथी और आयुर्वेदिक चिकित्सा शुरू हुई। उनसे भी कुछ लाभ नहीं हुआ। हालत ज्यादा बिगड़ने लगी। एक दिन ठाकुर ने कहा कि जब रोग मिटता नहीं, तो इसके लिए कष्ट सहने की क्या आवश्यकता? माँ को कष्ट क्यों दिया जाय। उस दिन ठाकुर ने भोजन भी नहीं किया। माँ शारदामणि की लाई हुई भोजन की थाली वापस कर दी। माँ ने भक्तों को ढाढ़स बँधाया और कहा ठाकुर ने शरीर छोड़ने का निश्चय कर लिया है। उस दिन १६ अगस्त की तारीख थी। दिन भर सहज दिखाई दिए। शाम को भरपेट भोजन किया। आधी रात बीत जाने के बाद एक बजे के करीब रामकृष्ण परमहंस ने अपनी लीला का संवरण कर लिया। उनके शिष्यों ने ठाकुर का सौंपा हुआ दायित्व निभाने का संकल्प करते हुए गुरु के पार्थिव अवशेषों को श्रद्धा-भक्ति से प्रणाम किया, उन्हें समाधि दी गयी।

पूजा की कोठरी में बैठे श्रीराम इन दृश्यों की यात्रा करते हुए चुपचाप बैठे रहे। स्मृतियों से वे बाहर आए और सामने प्रसन्न मुद्रा में खड़ी मार्गदर्शक सत्ता को निहारा। स्मृतियों से वापस लौटते हुए चेतना क्लान्त सी हो रही थी। जैसे बहुत दूर

की यात्रा कर ली हो। अन्यत्र और निरंतर यात्रा करने के बाद शरीर और मन जैसे थक जाता है, वैसी ही बल्कि उससे कई गुना ज्यादा थकान अनुभव होने लगी। कुछ ही पलों में छह सौ वर्षों का जीवन जी लिया, इस अवधि में लिखे गये शब्द या अंकित किये गये दृश्यों का अवलोकन करने में जितना समय और श्रम लग सकता है, उसका दबाव चित्त पर अनुभव हो रहा था। प्रकट तौर पर यों कुछ ही क्षण बीते थे।

पांच सात मिनट की नींद में कभी जन्म-जन्मांतर की यात्रा कराने वाले दृश्य भी चेतना में उभर आते हैं। समय का जो विस्तार वर्तमान स्थिति में अनुभव होता है, वह स्वप्न, समाधि भाव और अंतर्यात्रा के समय प्रतीत होने वाले विस्तार से सर्वथा भिन्न है। श्रीराम की अंतर्यात्रा भी सूक्ष्म और दिव्य विस्तार में प्रवेश की यात्रा थी, लेकिन जब वे वर्तमान में लौटे तो थकान ने घेर लिया। मार्गदर्शक सत्ता ने दाँया हाथ आगे बढ़ाया, उसका अंगूठा भ्रूमध्य में रखा और चारों उँगलियाँ सिर के उस भाग पर जिसे योगीजन सहस्रार या ब्रह्मरंध कहते हैं। इस स्पर्श ने श्रीराम की कलांति को दूर कर दिया। चेतना में स्फूर्ति लहराने लगी। एक नया जगत सामने प्रस्तुत हो गया। उस जगत् में आलोक से भरा हुआ पूजा कक्ष गुरुदेव और अपने सिवा वातावरण में दिव्य गंध की व्याप्ति अनुभव हो रही थी।

मार्गदर्शक सत्ता का आदेश

‘जो कबीर था, जो रामदास था और जो रामकृष्ण था, वही तुम हो। यह अंतर्दर्शन थकाने या चमत्कृत करने के लिए नहीं है।’ प्रकाश की भांति ही दिखाई दे रही उस मार्गदर्शक सत्ता के होंठ हिले। उस कंपन से जो निर्देश प्रस्फुटित हो रहे थे, उनमें कोई ध्वनि नहीं थी। परावाणी भी नहीं कह सकते, क्योंकि उसके लिए होंठों के कंपन भी आवश्यक नहीं। नाभि या हृदय से उद्भूत पश्यंती स्तर की यह वाणी केवल उसी व्यक्ति को सुनाई देती है, जिसके लिए वह निःसृत होती है। गुरुदेव कह रहे थे, ‘अभी तुम्हारे लिए एक ही प्रेरणा है, इसे निर्देश भी मानें। यह प्रेरणा है- साधना।’

सहज और सामान्य भाव से बैठे श्रीराम के मन में जिज्ञासा उठी। उसे कौतूहल भी कह सकते हैं। मार्गदर्शक सत्ता से प्रथम दृष्टि में ही परिचय इतना प्रगाढ़ हो गया भी मान सकते हैं कि अटपटा प्रश्न पूछने में भी कोई संकोच न हो। साधना में बैठे श्रीराम ने अपनी मार्गदर्शक सत्ता से पूछा- ‘हम तो आपको खोजते

हुए नहीं आए थे। आपने हमें क्यों ढूँढ़ा और अचानक साधना का आदेश क्यों दे रहे हैं? किस तरह की साधना? कहते-कहते श्रीराम के अधरों पर एक मुस्कान खिल उठी।

मार्गदर्शक सत्ता भी मुसकराई। घनी और लंबी मूछों के पीछे छुपे ओठों पर वह मुस्कान साफ दिखाई देती थी। उन्होंने कहा, 'गुरु ही शिष्य को खोजता है। शिष्य गुरु को नहीं। पिछले कई जन्मों की यात्रा तुमने इस शरीर के साथ सम्पन्न की है। इसके साथ अंगुली पकड़ कर चले हो। अब होश सँभाला और यात्रा करने की स्थिति में आए, तो हमने तुम्हें पकड़ लिया।' उस दिव्य आभा मंडल से जब यह शरीर संबोधन सुनाई देता था, तो संकेत उस आभामंडल की ओर ही होता था।

'यह तुम्हारा दिव्य जन्म है। इस जन्म में भी हम तुम्हारा मार्गदर्शन करेंगे, सहायक रहेंगे। तुमसे वह सब कराएँगे, जो युग धर्म की स्थापना के लिए आवश्यक है। उस दिव्य आत्मा ने श्रीराम के इस जीवन का क्रम निर्धारण जैसे पहले ही कर रखा था। कहने लगे ईश्वर को जिनसे जो काम लेना होता है, उसके लिए आवश्यक बल और साधन भी पहले से ही तैयार रहते हैं, लेकिन वे अनायास ही नहीं मिल जाते। उनके लिए साधना का पुरुषार्थ करना ही पड़ता है।'

'आज से और अभी से अपने आपको विशिष्ट साधना में सन्नद्ध करो। साधना का एक चरण चौबीस वर्ष तक महापुरश्चरण की श्रृंखला चलाने के रूप में है। एक वर्ष में गायत्री महामंत्र के चौबीस लाख जप का एक महापुरश्चरण संपन्न करना है। आहार विहार में संयम ही पर्याप्त नहीं है। उसके लिए तपश्चर्या का अनुशासन भी अपनाया जाना चाहिए। वह अनुशासन नियत कर दिया गया है। जौ के आटे से बनी हुई रोटी और गाय के दूध से बना मठा। शरीर चल जाए इतना ही आहार लेना है। स्वाद और गंध के साथ आहार में पौष्टिकता पर भी ध्यान नहीं देना है। सौंपे गये कार्यों के लिए जितना स्वास्थ्य और ओज चाहिए, उसकी पूर्ति दिव्य शक्तियाँ करती रहेंगी।'

उपासना का जो क्रम निर्धारित हुआ, वह कम से कम छह घंटे चलने वाला था। मार्गदर्शक सत्ता ने जिस दिन साधना में नियोजित किया, उस दिन वसंत पंचमी थी। निर्धारित उपासना संपन्न हो चुकी थी। जप निवेदन के बाद विसर्जन और समर्पण का विधान ही शेष रह गया था। श्रीराम ने उस उपचार को स्थगित किया और निर्दिष्ट क्रम के अनुसार आगे का जप आरंभ किया। एक वर्ष में २४ लाख जप का अनुष्ठान सम्पन्न करने के लिए छियासठ मालाओं का जप



(लगभग सात हजार बार गायत्री मंत्र का उच्चारण) आवश्यक है। उस दिन सूर्योदय के बाद करीब पाँच घण्टे तक और बैठे रहे, साधना करते रहे।

जप कब पूरा हो गया, कुछ पता ही नहीं चला। जप और सविता देवता के ध्यान के समय साधना के संबंध में तरह-तरह की जिज्ञासाएँ उठीं। उन्हें पूछने के लिए शब्द नहीं तलाशने पड़े। बिना पूछे ही प्रश्न संप्रेषित हो गए और उस दिव्य आत्मा के सान्निध्य में समाधान भी अपने आप होते गये। एक जिज्ञासा थी गुरुदेव कहाँ रहते हैं? उत्तर आया हिमालय के हृदय देश में। वहाँ सामान्य शरीर से किसी का भी पहुँच पाना संभव नहीं है। स्थूल शरीर की सीमा है। वह सामान्य दुर्गम प्रदेशों में भी नहीं जा सकता। हिमालय का हृदय प्रदेश कहे जाने वाला क्षेत्र में तो असम्भव ही है। सामान्य सूक्ष्म शरीर से पहुँचना भी मुश्किल है। उस क्षेत्र में व्यास तेजस् और वर्चस् का प्रभाव साधारण स्थिति के अस्तित्वों को दूर से ही ठेल देता है। कारण यह है कि उस क्षेत्र में आत्म चेतना के प्रयोग परीक्षण चलते रहते हैं।

समाधान के अगले चरण में यह भी स्पष्ट हुआ कि गुरुदेव का स्थूल स्वरूप सैंकड़ों वर्ष पुराना है। उसका परिचय और इतिहास लगभग अविज्ञात है। उस शरीर से किए गये काम ही आज उनका परिचय बने हुए हैं। इतिहास की खोज बीन की जा रही है, लेकिन वह अब भी अधूरी है। कुछ प्रमाणों के अनुसार उनका दैहिक स्वरूप साढ़े छह सौ या सात सौ वर्ष पुराना है। कुछ के अनुसार ढाई हजार साल से भी ज्यादा प्राचीन है। अनुष्ठान के पहले दिन, प्रारंभ में ही उत्कंठा जगी कि उस स्वरूप का परिचय प्राप्त किया जाए, लेकिन उत्तर में एक सन्नाटा ही सुनाई दिया। उस सन्नाटे में सिर्फ एक बोध तैर रहा था कि सर्व के अधिपति ईश्वर की सत्ता का जो निर्विकार आनंद है, वही गुरुदेव के परिचय का प्रतीक है। हृदय प्रदेश के जिन साधकों या सिद्धों ने अपनी सूक्ष्म उपस्थिति के प्रमाण दिये थे, उन्होंने गुरुदेव का नाम स्वामी सर्वेश्वरानंद बताया था।

स्थूल की सीमा और आवश्यकता

गुरुदेव जैसे कह रहे थे, स्थूल से एक सीमा तक ही काम किया जा सकता है। वे कितने ही महान् और विराट् हों, उनसे दिव्य प्रयोजन सिद्ध नहीं होते। दिव्य प्रयोजनों के लिए शरीर को सूक्ष्म स्तर तक ले जाना और सिद्ध करना पड़ता है। कठोर तपश्चर्या का उद्देश्य शरीर को सूक्ष्म स्तर तक ले जाना ही है।

अव्यक्त रूप से ही प्रश्न उठा, स्थूल शरीर की विशेष उपयोगिता नहीं हैं तो इस शरीर को बचाए क्यों रखा जाए? सीधे सूक्ष्म में ही विलय क्यों नहीं कर दिया जाए, इस प्रश्न का समाधान भी जैसे हृदय प्रदेश से ही आया, स्थूल शरीर का भी अपना महत्त्व है। यह ठीक है कि स्थूल शरीर की बहुत सी शक्ति तो शरीर की आवश्यकताएँ जुटाने में ही लग जाती है। रोग, बीमारी, दुर्बलता और एक अवस्था के बाद आने वाली 'जरा' शरीर को ज्यादा काम नहीं करने देती। शरीर की अधिकांश ऊर्जा इसे संभालने और चलाने में ही खर्च हो जाती है। फिर भी उसका उपयोग है। दिखाई देने वाले काम इस स्थूल शरीर से ही पूरे होते हैं। लोगों से मिलना-जुलना, अभीष्ट बदलाव लाना, और इस संसार में आदान-प्रदान को गति देना स्थूल शरीर से ही संभव है। भगवान् को भी जब अपनी लीलाओं का आनंद लेना होता है, तो वे तन्मात्राओं से ही अपने स्थूल शरीर की रचना करते हैं। ये तन्मात्राएँ क्या हैं? जिन पंचतत्त्वों से हम लोगों का शरीर बना हुआ है, उन्हीं का सारभूत अंश। स्थूल शरीर इसलिए आवश्यक भी है और उपयोगी भी।

जिस क्षेत्र में गुरुदेव का-मार्गदर्शक सत्ता का निवास है, क्या वहाँ जाया जा सकता है? मन में यह प्रश्न उठा ही था कि तत्क्षण उत्तर आया। तत्क्षण कहना भी गलत होगा, प्रश्न के साथ ही समाधान भी आ गया। चेतना में समय और सीमा तो रह नहीं गई थी। इसलिए यह भी कहा जा सकता है प्रश्न और उत्तर में पहले शायद उत्तर ही आया हो। कहा गया अथवा प्रतीत हुआ, आश्चर्य किया गया कि उचित समय आने पर तुम्हारा परिचय देवात्मा हिमालय से भी कराया जाएगा। इस शरीर और स्वरूप की कठिनाई है, अन्यथा तुम्हें स्मरण होना चाहिए कि वस्तुतः तुम उसी क्षेत्र के निवासी हो। एक विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए यहाँ भेजे गये। लौकिक कार्य संपन्न करने हैं, इसलिए शरीर पर थोड़ा आवरण डाल दिया गया है।

हिमालय का यह हृदय प्रदेश कैलास के पास स्थित है। वह कैलास नहीं, जिसे लोग नक्शे पर चिह्नित करते हैं। सिद्ध जनों का कैलास सर्वथा भिन्न और विलक्षण है। संत-महापुरुष गोमुख के आस-पास निवास करते हैं। केदार क्षेत्र में भी उनके लिए उपयुक्त स्थान है। वहाँ रहकर वे सूक्ष्म लोक में जाने की तैयारी करते हैं। सभी लोग नहीं पहुँच पाते। इक्का-दुक्का ही जा पाते हैं। गीता के इस वचन की तरह कि हजारों मनुष्यों में कोई एक ही उसकी प्राप्ति के लिए यत्न करता है। उन यत्न करने वालों में भी कोई एक ही उपलब्ध हो पाता है।



‘हिमालय का हृदय अध्यात्म चेतना के ध्रुव केन्द्र तक पहुँचने के बारे में भी यही समझना चाहिए। दिया गया साधना क्रम ठीक से चलने के बाद तुम्हें वहाँ बुलाया जाएगा। चार-चार दिन की अवधि के लिए वहाँ रहना होगा। हम ‘मार्ग दर्शक सत्ता’ के रूप में साथ रहेंगे। सूक्ष्म शरीर धारण करने और उससे कहीं भी गति करने, प्रवेश पाने में कोई कठिनाई नहीं होगी। वैसी सुविधा व्यवस्था बना दी जाएगी। प्रथम प्रयास के बाद तुम्हें अनुभव होगा कि अस्तित्व का सूक्ष्म रूप कितना समर्थ और सक्षम है। दोनों शरीरों का, सत्ता में दोनों रूपों का अनुभव करने के बाद तुम्हें आसानी रहेगी। समझ सकोगे कि ऋषिगण अपने संकल्पों को कैसे पूरा करते हैं। सौंपे गये महत्कार्य को संपन्न करने की क्षमता भी तुम उन ऋषिसत्ताओं के सान्निध्य में जा जाग्रत् कर सकोगे।’

पुरुश्चरण साधना में नियुक्त किए जाने के दिन दो काम और सौंपे गए। ये थे तो महानुष्ठान के ही क्रम में लेकिन उनका स्वरूप लौकिक ज्यादा था। प्रकाशपुंज से प्रेरणा आ रही थी, गाँव समाज में जो भी गलत होता दिखाई दे, उसका विरोध करना है। उसे नहीं होने देना है। और ऐसी तैयारी जुटाना है कि आगे भी नहीं हो सके। इसके लिए लोगों को समझा-सिखा कर तैयार करना है।

भगवान् भारत को विदेशी दासता से मुक्त कराना चाहते हैं, त्रिगुणमयी माया से तमस् पक्ष को अब पार्श्व में जाना है। भगवान् की इच्छा से विश्व में भारत को नई भूमिका निभानी है। आने वाली शताब्दियाँ भारत के गौरव को फिर से प्रतिष्ठित करेंगी। इसके लिए भारत का स्वतंत्र होना आवश्यक है। उन्हीं की प्रेरणा से जनमानस में स्वतंत्रता का उभार आ रहा है। उभार को समर्थ बनाने में तुम भी सहयोगी बनो।

जहाँ आवश्यक हो, वहाँ सक्रिय-विरोध किया जाए। साधारण स्थितियों में लोगों को तैयार करने के लिए वाणी और लेखनी का सहारा लिया जाए। भगवान् का संदेश पहुँचाने के लिए और भी उपाय हो सकते हैं। उन सबको अपनाया जाए। यह प्रेरणा उभरते समय मन में अन्यथा विचार भी सिर उठाते थे। देश में तीस-बत्तीस करोड़ लोग रहते हैं, उन सबको समझाने-सिखाने में कितना समय लगेगा। हम अकेले के बूते संभव होगा क्या? अकेले क्या कर सकेंगे? कितने ही समर्थ और शक्तिशाली हो जाएँ, लेकिन करोड़ों लोगों को जगाने का काम अकेले ही करना है और भगवान् की ही इच्छा है तो वे लोगों के मन में वैसी प्रेरणा अपने आप क्यों नहीं जगाते?

विचार प्रवाह आगे बढ़ता कि दिव्य प्रेरणा ने उसे रोका। प्रति विचार आने लगे, सांस लेने और चलने की तरह भगवान् बंधन-मुक्ति की प्रेरणा भी अपने आप उभार सकते हैं, लेकिन उनकी योजना मनुष्य को पुरुषार्थी बनाने की है। जो धर्म युद्ध अगले दिनों लड़ा जाना है, उसमें सभी को भागीदार बनना है। जरूरी नहीं कि सभी लोग महायोद्धा हों। रीछ-वानरों और गिलहरी जैसे क्षुद्र कहे जाने वाले प्राणियों को भी हिस्सा लेना है। छोटी बड़ी, अच्छी-बुरी, और पक्ष विपक्ष की सभी भूमिकाएँ निश्चित की जा चुकी हैं। जय-पराजय भी निश्चित हो गई। तुम्हें लोगों तक सिर्फ संदेश पहुँचाना है। यह मत सोचो की अकेले क्या कर पाओगे? संगी-साथियों का एक विशाल समुदाय तुम्हारी प्रतीक्षा करता हुआ दिखाई देगा। समय के साथ वह फैलता जाएगा, तुम्हें उनका मार्गदर्शन करना है।

स्वतंत्रता आंदोलन में भागीदारी और लोक शिक्षण की योजना ने जैसे अंतिम रूप ग्रहण कर लिया। विचार और संकल्प-विकल्प के साथ ध्यान और सन्निधि का प्रवाह पूरी अवधि में ही बहता रहा। चित्त कभी सविता देवता के ध्यान में डूब जाता, कभी लगता कि उनके तेज में अपना आपा खो गया है, सब कुछ जल कर भस्म हो गया है। कुछ पल बाद अपनी स्वतंत्र चेतना का फिर भान होने लगता, लेकिन वह ज्यादा परिपक्व और समर्थ अनुभव होती। पहले की तुलना में सुदृढ़। जैसे चेतना का रसायन बदल रहा हो, वह कुछ की कुछ होती जा रही हो। इस प्रक्रिया में अपनी मार्गदर्शक सत्ता भी सामने ही उपस्थित अनुभव होती। रस-रसायन की यह प्रक्रिया उन्हीं की देख रेख में सम्पन्न होती लगने लगती। इस तरह की प्रतीतियों में कई बार दृश्य बदलते। पुस्तकों के पन्ने बदलने और उलटने-पुलटने जैसी अनुभूति होती। कभी यह तो कभी वह दृश्य दिखाई देता।

इस बीच माँ ने पूजा की कोठरी में कई बार झाँका। और दिन तो सूरज का सिंदूरी वर्ण बदलते ही श्रीराम अपनी संध्या पूरी कर उठ आते हैं। आज क्या हो गया? संध्या अभी तक संपन्न क्यों नहीं हुई? कहीं पिछले दिनों लगी समाधि जैसी अवस्था में तो नहीं पहुँच गया? उस समय तो श्रीराम के पिता जीवित थे, सब विधि-विधान जानते थे। समाधि से वापस ले आये थे। अब फिर वैसी ही समाधि लगाई तो कौन वापस लाएगा? माँ को तरह-तरह की चिंताएँ उठती जा रही थीं। इधर नए साधना क्रम का आरंभ करते हुए श्रीराम अपनी मार्गदर्शक



सत्ता को सामने ही अनुभव कर रहे थे। उनकी उपस्थिति मन, प्राण और चेतना में रमती जा रही थी।

माँ ने उलाहना दिया

‘आज क्या पूरे दिन ही कोठरी में बैठे रहोगे। जगन्माता को तो विश्राम करने दो श्रीराम।’ गुरुसत्ता के सानिध्य का वह अध्याय पूरा होने के बाद यथार्थ जगत् का पहला अनुभव माँ की यह पुकार थी। कोठरी में कई बार झाँक जाने के बाद उनसे रहा नहीं गया। अपनी समझ से उन्होंने लाड़ले को जगाने की चेष्टा की और श्रीराम ने उठने का उपक्रम किया। माँ अपने दुलारे को उठने की तैयारी करते देख वापस चली गई। वेदी पर रखे दीपक में श्रीराम ने कुछ घी और डाला। अब तर्क का क्रम था कि पूजा संपन्न होने के बाद दीपक को जलते रहने दिया जाता। घी समाप्त होने के बाद बत्ती पूरी जल जाती और दीपक की लौ हवा में लीन हो जाती। नए सिरे से घी डालने का अर्थ था ज्योति प्रज्वलित रहेगी। गुरुदेव का बताया हुआ विधान व्यवहार में उतर आया था। महापुरश्चरण साधना के साथ अखण्ड ज्योति का भी अवतरण उसी दिन वसंत पंचमी पर संपन्न हुआ। तभी से यह अखण्ड दीपक प्रज्वलित है। क्रमशः आगरा, मथुरा होकर ७५ वर्ष की यात्रा कर चुका है। सन् १९७१ से यह शांतिकुञ्ज (हरिद्वार) में स्थापित है।

श्रीराम ने सामने विराजमान जगन्माता को प्रणाम किया, उस दिन विसर्जन नहीं किया। संध्या गायत्री के सामान्य जप में आवाहन के बाद विसर्जन की प्रक्रिया भी सम्पन्न की जाती है। महापुरश्चरण में विसर्जन नहीं किया जाता; क्योंकि वह सतत चलते रहना वाला अनुष्ठान है। दैनिक उपासना एक ही दिन में पूरा हो जाने वाला अध्याय है, तो महापुरश्चरण एक विराट् ग्रंथ के अखंड पाठ की तरह है, जिसमें कितने ही अध्याय होते हैं। उन सबके अवगाहन में लम्बा समय चाहिए। जब तक पूरा नहीं हो जाता, देवशक्तियों की अर्चना-अभ्यर्थना चलती ही रहती है। उनकी उपस्थिति का सम्मान किया जाता है। अपना आचरण, चिंतन और स्तर उनकी गरिमा के अनुरूप रखने की सावधानी रखी जाती है। प्राणपण से उनका निर्वाह किया जाता है। अखण्ड दीपक की स्थापना और निरंतरता उस उपस्थिति के स्थूल प्रमाण के रूप में था।

पूजा गृह से बाहर आए, तो माँ ने फिर वही उलाहना सा दिया ‘गायत्री माता से इतनी देर क्या कहता रहा? उन्हें भी चैन लेने देगा या नहीं?’ कहते-

कहते ताईजी के चेहरे पर इठलाता हुआ दुलार छलक आया। उसमें कहीं न कहीं यह गर्व और संतोष भी छलक रहा था कि पुत्र अपने पितृ पुरुषों की राह पर चलने की तैयारी कर रहा है। उनके हिसाब से पूजा-पाठ की अगली कड़ी पुरोहिताई और कथा वार्ता ही होनी चाहिए। श्रीराम ने कोई उत्तर नहीं दिया। चुपचाप कुछ सोचते रहे। माँ ने फिर पूछा 'क्या कहा गायत्री माता ने? तुमने उनसे इतनी लम्बी पूजा करके क्या माँगा?'

'कुछ नहीं माँगा,' श्रीराम ने कहा, 'संध्या करते समय हमारे गुरुदेव प्रकट हो गए थे। उन्होंने आगे का रास्ता बताया कि क्या करना है? उनके बताए रास्ते पर चलना है?'

'क्या रास्ता बताया उन्होंने? कहीं तू मुझे दिया वचन तो तोड़ने नहीं जा रहा। तेरे गुरुदेव ने क्या संन्यासी बनने के लिए कहा है?' ताई जी अधीर हो उठीं। श्री राम ने उन्हें धीरज बँधाया, 'नहीं माँ नहीं। गुरुदेव ने आपके पास रह कर ही साधना करने के लिए कहा है। पाँच छः घंटे रोज प्रतिदिन जप-ध्यान करूँगा। गुरुदेव ने कहा है कि चौबीस साल तक साधना करनी है। गाय के दूध से बनी छाछ और जौ की रोटी का आहार लेना है। पूजा की कोठरी में वह जो दीपक जल रहा है न, उसे अखंड ही रखना है। दीपक में घी हमेशा भरा रहे।'

'चौबीस साल क्या पूरे जीवन साधना करता रह। मुझे क्या फर्क पड़ता है? मैं तो सिर्फ इतना चाहती हूँ कि तुम मेरे पास बने रहो। मुझसे दूर कभी न जाना।' ताई जी ने आश्चस्त होते हुए कहा। फिर कुछ देर सोचती रहीं। अपने आप में डूबे रह कर ही वे अचानक पुलक उठी। मन में कोई स्फुरणा जगी थी शायद। श्रीराम को पुकारा और उसी पुलक के साथ कहने लगीं, 'दीपक अखण्ड रखना है। उसका घी कब तक चलता है, कब नया घी भरना है। यह ध्यान रखने के लिए पूरे समय की निगरानी चाहिए। मैं नहीं कर सकूँगी, यह निगरानी।'

श्रीराम ताई जी की बात गौर से सुन रहे थे और उनके चेहरे पर छाई पुलक भी निहार रहे थे। ताई जी कुछ पल रुकीं, 'अब तुम शादी लायक भी हो गये हो। ब्याह कर लो। घर में बहू आ जाएगी, तो वह अखण्ड दीपक का भी ध्यान रखेगी। मुझे भी सहारा होगा।'

श्रीराम ने कुछ नहीं कहा। उनके मौन को माँ ने स्वीकृति माना। वे कुछ कहते तो अपने अधिकार का उपयोग करने की बात भी मन ही मन तय कर

रखी थी। लेकिन वह स्थिति नहीं आई। उसी दिन ताईजी ने अपने सगे सम्बन्धियों को उपयुक्त कन्या बताने के लिए कहना शुरू कर दिया। ताई जी क्या कर ही हैं, इस बात से सर्वथा असंपृक्त रहते हुए श्रीराम आगे की व्यवस्थाओं के बारे में सोचने लगे। माँ से बातचीत के बाद वे बाड़े में गये और एक कपिला गाय को सेवा के लिए चुन लिया। इस चुनाव में कपिला गाय के दूध से बने घी और मठे का ही उपयोग कराने का निश्चय भी था।

कपिला गाय का गोबर इकट्ठा किया। उससे पूजा कक्ष को लीपा। माँ ने देखा तो कुछ नहीं कहा। और दिनों में श्रीराम कोई काम अपने हाथ से करते तो रोक लेती थीं। आज चार-पाँच घण्टे की पूजा के बाद गुरुदेव के मिलने और चौबीस वर्षों की साधना का व्रत लेने की बात ने कोई हस्तक्षेप करने से रोक दिया। जानती थी कि श्रीराम के हाथ से लेकर पूजा कक्ष को सँभालने की कोशिश करेंगी, तो वह पुत्र राजी नहीं होगा। दो तीन बार रुक कर देखा, किसी तरह के सहयोग की माँग उठने की आस में ठिठकी भी रहीं। लेकिन श्रीराम पूजा कक्ष की व्यवस्था में इस तन्मयता से जुटे रहे, जैसे समाधि लग गई हो। कौन आ रहा है और कौन जा रहा है, क्या कर रहा है? उन्हें कोई सुध नहीं थी।

दीपक को अखण्ड रखने का संकल्प करने के बाद बाती की प्रतिष्ठा एक बड़ें दीये में कर दी गई थी। उस दिन पूरे समय ध्यान रखा। अभ्यास के बाद बहुत ज्यादा चिंता नहीं करना पड़ी। वसंत की उस शाम भी श्रीराम ने और दिन की अपेक्षा संध्या-पूजा में ज्यादा समय लगाया। करीब दो घंटे तक जप में बैठे रहे। वह सुबह और शाम उनके अपने जीवन में ही नहीं जगत् के इतिहास में भी एक नया पन्ना लिख गई।



सिद्धि के मार्ग पर संकल्प

१९२५-२६ और आसपास के वे वर्ष भारतीय समाज में मंथन के वर्ष थे। विदेशी दासता से मुक्ति की आकांक्षा तो समाज में जन्म ले ही रही थी, अपनी ओढ़ी हुई गुलामियों और विकृतियों से छुटकारे के लिए भी सामूहिक चेतना कसमसा रही थी। पिछड़ी और दलित जातियों को न मंदिर जाने का अधिकार था, न पढ़ने लिखने का। वे सार्वजनिक कुँओं से पानी नहीं भर सकते थे। अपने से ऊँची जाति वालों के साथ बैठ नहीं सकते थे, उनके सामने सिर उठा कर चलना दण्डनीय अपराध था। भारतीय समाज की दुर्दशा के कारणों की मीमांसा करते हुए महामना मदन मोहन मालवीय, स्वामी श्रद्धानन्द, राजेन्द्र प्रसाद आदि कहने लगे थे कि अछूतों और दलितों को गले लगाएँगे, तभी हिन्दू समाज मजबूत होगा। अलग-अलग खानों में बैठा समाज स्वतंत्र नहीं हो सकता। स्वतंत्र हो जाए, तो देर तक उसकी रक्षा नहीं कर सकता। महात्मा गाँधी तो इस मुद्दे को व्यापक स्तर पर उठा ही रहे थे। उनकी प्रतिष्ठा निर्विवाद जननेता के रूप में बढ़ती जा रही थी। उनकी कही हुई बातों का महत्त्व था। लेकिन मालवीय जी कुछ अलग तरह से इस सवाल को उठा रहे थे। वे सुधार की आकांक्षा जगाकर समाज में परिवर्तन लाने की पहल कर रहे थे। पंडितों, विद्वानों और आचार्यों में उन्हें आदर की दृष्टि से देखा जाता था। मालवीयजी स्वयं भी शास्त्र और विद्या की प्राचीन परंपरा से संबद्ध थे। गाँधी जी की बातों में सामाजिक नेता और व्यापक परिप्रेक्ष्य से देखने वाले महापुरुष की चिंता दिखाई देती थी, मालवीय जी की बातों में इन विशेषताओं के अलावा परंपरा का बल भी था।

सन् १९२३ में काशी में हिन्दू महासभा का अधिवेशन हुआ। तब यह संगठन भारतीय धर्म की सभी धाराओं और वर्गों का संयुक्त मंच था। मालवीय जी ने इस अधिवेशन की अध्यक्षता की। अपने भाषण में उन्होंने हिन्दूधर्म के विराट् रूप, उसकी प्राचीनता, विशिष्टता गौरव और आंतरिक शक्ति का उल्लेख



किया। लोकमान्य तिलक भी उस अवसर पर उपस्थित थे। उन्होंने शोध संधान से प्राप्त अपने निष्कर्षों को विद्वज्जनों के सामने रखा। इसी अधिवेशन में छुआछूत का विचार भी उठा। मालवीय जी और उनके सहयोगी विद्वानों का कहना था कि यह विकृति है। इसे दूर किये बिना समाज ऊँचा नहीं उठेगा। कट्टरपंथी सनातनी इसे शास्त्र सम्मत मानते थे। उनके अनुसार अस्पृश्यता धर्म का ही अंग है। इसे मिटाने का अर्थ धर्म को मिटाना होगा। मालवीय जी ने अपने पांडित्य, तर्क और प्रतिपादनों से अंततः मनवा ही लिया कि अस्पृश्यता धर्म का अंग नहीं है। वह बीमारी की तरह समाज में घुसी और वहाँ घर कर गयी। उसके कारण समाज का शरीर निरंतर छीजता जा रहा है। अब बीमारी का उपचार किया जाना चाहिए।

मालवीय जी के प्रयत्नों से उसी अधिवेशन में निर्णय लिया गया कि सवर्ण हिन्दुओं के समान दलित जातियों को सरकारी और गैरसरकारी स्कूलों में पढ़ने, कुँओं से पानी खींचने, तालाबों में नहाने, सभा-सम्मेलनों में दूसरे लोगों के साथ बैठने, सड़कों पर चलने और देव दर्शन करने का अधिकार है। उनके अधिकार का सम्मान किया जाना चाहिए। प्रस्ताव तो पास हो गया, उसे लागू करना इतना आसान नहीं था। इसके लिए समाज में उपयुक्त वातावरण बनाना जरूरी था, वह एक अलग लड़ाई थी; लेकिन काशी में सैकड़ों पंडितों, पुरोहितों की उपस्थिति में उनकी सहमति से इस तरह का प्रस्ताव पास करा लेना बड़ी उपलब्धि थी।

सन् १९२५ में हुए हिन्दू महासभा के अधिवेशन की अध्यक्षता लाला लाजपत राय ने की। यह अधिवेशन बुद्धिजीवियों और काशी की ही तरह कट्टर पंथियों की आधुनिक नगरी कलकत्ता में हुआ। लाला रामप्रसाद ने इस अवसर पर अछूतों और शूद्रों को वेदपाठ करने का अधिकार देने का प्रश्न उठाया। वहाँ बैठे लोगों में इस विषय के उठते ही खलबली मच गई। तनातनी की स्थिति आ गयी। मालवीय जी भी वहीं उपस्थित थे। उन्होंने स्थिति को सँभाला और कहा कि ईश्वर का दिया हुआ प्रसाद सबके लिए सुलभ है। वेदों का अध्ययन किसी के लिए निषिद्ध नहीं है। पर उसके लिए कठोर तपस्या की आवश्यकता है। यह हर किसी के लिए प्रथम प्रयास में ही संभव नहीं है। गीता भूमंडल में सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। उसका अध्ययन मनन सबके लिए सुलभ है। उसके द्वारा अल्प प्रयास से ही वेदों का मुख्य तत्त्व प्राप्त किया जा सकता है।



सिद्धि के मार्ग पर संकल्प

मालवीय जी ने उस समय उत्पन्न हुई कटुता को किसी तरह शांत किया। मन से वे भी अस्पृश्यों को दूसरे वर्णों के समाज के अधिकार देने के पक्ष में थे। उनके अनुसार साधना, स्वाध्याय के क्षेत्र में भी छा गये ऊँच-नीच ने हिन्दू समाज को बुरी तरह खोखला किया था। कलकत्ता अधिवेशन में उपजी कटुता को शांत करने के बाद वे राष्ट्रीय भावनाओं का प्रचार करते हुए जगह-जगह घूमे। राष्ट्रीय आन्दोलन को गति देते हुए वे समाज सुधार संबंधी कार्यक्रमों को भी गति देते रहे। व्याख्यानों में अछूतोद्धार, स्त्रियों की दशा सुधारने और सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन करने की प्रेरणा रहती। शूद्रों के शास्त्र अधिकार का मुद्दा भी इन व्याख्यानों का विषय होता। सन् १९२७ में उन्होंने एक साहसिक कदम उठाया और प्रयाग में जाति-पाँति का विचार किये बिना सभी वर्ण के लोगों को मंत्र दीक्षा दी। उसकी आलोचना हुई, प्रबल विरोध भी हुआ, लेकिन मालवीयजी ने इसकी कोई चिंता नहीं की। वे शांत अविचल और दृढ़ता से अपने काम में जुटे रहे। कलकत्ता, नासिक, पुणे, काशी आदि स्थानों पर भी सामूहिक मंत्र दीक्षा के कार्यक्रम हुए। विरोध और समर्थन-सराहना की मिली-जुली प्रतिक्रिया होती रहती थी।

प्रयाग में सामूहिक दीक्षा देने से कुछ माह पहले मालवीय जी आगरा आए थे। मार्गदर्शक सत्ता से साक्षात्कार और महापुश्चरण साधना आरंभ करने के बाद श्रीराम सामाजिक गतिविधियों में भी पहले की तरह ही रुचि लेते थे। मालवीय जी के बारे में उन्हें जब भी कोई सूचना मिलती, तो ध्यान से सुनते। पूरी जानकारी जुटाते और सोचने लगते कि उनके समाज अनुष्ठान में किस तरह सहयोग किया जा सकता है? सन् १९२६ के वसंत पर्व के बाद उन्होंने अपने दीक्षा की पिछली गतिविधियों का अवलोकन किया। समाज संस्कार के क्षेत्र में पिछले तीन वर्षों में उनके आसपास जो कुछ भी घटा था, उसके प्रकाश में अपने लिए भी कुछ दायित्व चुना।

पता चला कि मालवीय जी आगरा आए हैं, तो श्रीराम ने तुरंत वहाँ जाने की ठान ली। दो-तीन दिन में लौट आने की बात कह कर वे चल दिये। मालवीय जी आगरा में हिन्दू सभा के भवन में ठहरे थे। वस्तुतः वह सेठ गिरधर दास का मकान था, जो उन्होंने हिन्दू सभा की गतिविधियों को चलाने के लिए दे दिया था। सामाजिक उपयोग में आने के कारण ही उसका नाम भवन हो गया था। मालवीय जी ने सभा भवन में ही कार्यकर्ताओं को सम्बोधित किया। कहा



कि बौद्ध, जैन और सिक्ख सभी बृहद् हिन्दू जाति के अंग हैं। गाँव-गाँव में सभाएँ स्थापित की जाएँ। अपनी गिरी हुई दशा को उठाने का प्रयत्न करें। जिन्हें हम अछूत कहते हैं, वे हमारे ही भाई हैं। उनसे प्रेम का व्यवहार करें। उनकी अवस्था सुधारने पर ध्यान दें। उन्हें अपनाएँ। संबोधन में जहाँ-तहाँ पाठशालाएँ और अखाड़े खोलने की प्रेरणा भी दी गयी थी। कहा था कि शरीर से भी हमें मजबूत बनना चाहिए। अपने भीतर शक्ति होगी, तो बाहरी और भीतरी दोनों ही तरह के शत्रुओं से लड़ सकेंगे। बलवान शरीर में ही बलवान आत्मा का निवास होता है। मन को बलवान बनाने के लिए पूजा-पाठ, ध्यान, जप और शास्त्रों का अध्ययन-मनन करें।

समाज का नया गठन

मालवीय जी के प्रवचनों में टूटे-फूटे जीर्ण-शीर्ण हिन्दू समाज को फिर से गठित करने पर जोर रहता था। निजी चर्चाओं में भी वे अछूतोद्धार की बात करते थे। सभा भवन में व्याख्यान पूरा होने के बाद वे कार्यकर्ताओं से बात करने लगे। किसी ने पूछा, अछूतोद्धार का आपका विचार क्या राष्ट्रीय आंदोलन से अलग नहीं है। इस कार्यक्रम पर जोर देंगे, तो राष्ट्रीय आन्दोलन से लोगों का ध्यान बँटने लगेगा। फिर हम अपने मूल उद्देश्य को भूल जायेंगे।

मालवीय जी ने कहा मूल उद्देश्य क्या है? प्रश्नकर्ता ने उत्तर दिया-स्वतंत्रता। उन्होंने फिर पूछा-स्वतंत्रता किसलिए? प्रश्नकर्ता भी जैसे पूरी तैयारी से आया था, ताकि हम दुनिया में सिर ऊँचा उठा कर चल सकें। अपने सम्मान की, गौरव की रक्षा करें। उसे बढ़ाएँ। मालवीय जी ने इस उत्तर से प्रश्नकर्ता का मानस समझ लिया। उन्होंने बात वहीं से आगे बढ़ाई, सम्मान और गौरव किसी एक व्यक्ति का नहीं, पूरे देश और समाज का आत्म सम्मान। हमें स्वतंत्रता इसीलिए चाहिए। हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए। अपने ही लाखों-करोड़ों भाइयों की गरिमा रौंदते रहने से अपना आत्म-सम्मान प्राप्त नहीं हो जाएगा। उनके सम्मान और गरिमा की प्रतिष्ठा करते हुए ही हम पूरे राष्ट्र का गौरव लौटा सकेंगे।

समन्वय का सूत्र भी उन्होंने ही दिया। कहा कि रोग की अवस्था में सबका विचार रोग को दूर करने का होना चाहिए। औषधि भोजन नहीं है। स्थाई सुधार सामयिक नहीं है। उनका प्रभाव हमेशा दिखाई देना चाहिए। हम ऐसा

कोई भी काम नहीं करें, जिससे राष्ट्रीय आंदोलन में विरोध पैदा होता हो। अछूतों की दशा सुधारने पर ध्यान नहीं देंगे, तो उन्हें अपने साथ नहीं जोड़ सकेंगे।

सभा में मालवीय जी व्याख्यान का सुनने के बाद श्रीराम इस चर्चा में भी आ गये थे, उन्होंने मालवीय जी को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गये। चर्चा में और लोग भी बैठे थे। ज्यादातर युवा कार्यकर्ता थे। हर किसी ने अपना परिचय दिया। श्रीराम अपना परिचय देने लगे तो एकाध पंक्ति सुनने के बाद ही मालवीय जी को जैसे कुछ याद आया। पंडित रूपकिशोर के साथ वर्षों पहले काशी आए उस बालक और उससे संबंधित घटनाएँ स्मृति में उभर आईं। यह भी याद आ गया कि बालक के होनहार होने का आभास तभी हो गया था और आशा भी बँधी थी कि यह आगे चल कर देश-समाज की कुछ विशिष्ट सेवा करेगा।

वहाँ मौजूद किसी कार्यकर्ता ने जिक्र छेड़ दिया कि गाँव के एक बीमार अछूत स्त्री की सेवा करने और इस कारण कुछ समय तक प्रताड़ित रहने का दंड भी यह बालक भुगत चुका है। मालवीय जी ने वह घटना स्वयं श्रीराम के मुँह से सुनी। सेवा के समय मन में क्या भाव उठते रहे, यह भी पूछा। और सब कुछ सुनने के बाद श्रीराम की पीठ थपथपाई। कहा आगे तुम्हें और भी चुनौतियों का सामना करना है। इस भेंट में मालवीय जी से सामान्य विषयों के अलावा कोई उल्लेखनीय चर्चा नहीं हुई। समाज सुधार और राष्ट्रीय आंदोलनों पर चर्चा में ही समय बीत गया। प्रत्यक्ष रूप से कोई महत्वपूर्ण चर्चा नहीं हो सकी। वहाँ उपस्थित लोगों, स्वतंत्रता सेनानियों और सामाजिक कार्यकर्ताओं में जो बातचीत हुई, उसे सुनने का मौका मिला। उस बातचीत से श्रीराम को अपना पक्ष निर्धारित करने में सहायता मिली। उधर लोगों की बातचीत चल रही थी, इधर वे निश्चित कर रहे थे कि आँवलखेड़ा पहुँच कर क्या करना है?

आँवलखेड़ा पहुँचे तो बालसेना की बैठक बुलाई। अपनी आगरा यात्रा के बारे में बताया। सभी साथियों को घटनाओं के हवाले से बताया कि आगरा में छावनी होते हुए भी लोग कैसी हिम्मत और निडरता से लड़ रहे हैं। छावनी में फौजी रहते हैं। सामान्य स्थिति के लोग फौज वालों से डरते तो हैं, लेकिन युवकों में जोश है। वे मुकाबला करने के लिए तत्पर रहते हैं। रामप्रसाद नामक किशोर ने उत्साह में भर कर कहा- हम भी तैयार रहते हैं श्रीराम। हम ही किससे डरते हैं। देखा नहीं कि उस मोटे अफसर और काले फौजियों को कैसा खदेड़ा था।



वह गाँव की बात थी। छावनी में मुकाबला करना ज्यादा बड़ी बात है। श्रीराम ने कहा। हमें उन लोगों से सीखना चाहिए। रामप्रसाद ने इस उलाहने का प्रतिवाद किया। उसे लगा कि आगरा के युवकों की तुलना में अपने आपको जैसे कम आँका जा रहा है। उसने कहा- कैसे कहते हैं? आगरा में आपने ही एक मोटे अफसर का सिर नहीं फोड़ दिया था और सभी रामप्रसाद की भावनाओं से सहमत हुए। घटना सन् १९२३ की है। तब श्रीराम बारह वर्ष के थे। आगरा गए हुए थे। वहाँ एक अँगरेज फौजी अफसर को किसी युवती से छेड़छाड़ करते देखा। उस अँगरेज ने युवती को रौब से अपने पास बुलाया। वह समझदार थी। उसे अंदाजा हो गया कि अँगरेज अफसर की मंशा क्या है? वह अफसर के पास जाने के बजाय तेजी से पग उठाते हुए आगे बढ़ने लगी।

आततायी का सिर फोड़ा

अफसर उसकी तरफ झपटा तो युवती के साथ जा रहे युवक ने पूछा- क्या बात है? यह पूछना अफसर की निगाह में अपराध था, जिसका दण्ड दिया ही जाना चाहिए। युवक की पीठ पर उसने बंदूक का कुंदा मारा और नीचे गिरा दिया। उसे गिरा पड़ा छोड़कर अँगरेज युवती के पीछे दौड़ा। वह डरकर भागी। गोरा उसके पीछे लपका। श्रीराम किसी दूकान पर खड़े देख रहे थे। उनके मन में जबर्दस्त आक्रोश उबल रहा था। गोरे अफसर के साथ उन लोगों के प्रति भी जो यह सब चुपचाप देख रहे थे। देखते-देखते कुछ ही पलों में तय कर लिया कि क्या करना है? दुकान पर दरवाजा रोकने वाला पत्थर उठाया और युवती का पीछा कर रहे अँगरेज अफसर पर ऐसा निशाना साधकर मारा कि चोट से वह लड़खड़ा कर गिर गया। विलाप करता हुआ वह उठा लेकिन उसके पाँवों में जान नहीं थी। वह लड़खड़ाता चल रहा था। चीखता-चिल्लाता रहा। लोग अब भी मूक दर्शक बने देखते रहे। किसी ने नहीं बताया कि पत्थर किसने फेंका था। वह लोगों को डराता-धमकाता रहा, लेकिन कोई कुछ नहीं बोला। युवती इस बीच किसी सुरक्षित स्थान पर छुप चुकी थी। अंग्रेज अधिकारी वापस लौट गया था। बाल सेना के सदस्यों को यह घटना इसलिए भी याद थी कि इसके बाद ही उन्होंने किशोरों को संगठित करने का विचार किया था।

मालवीय जी से मिलकर लौटने के बाद श्रीराम और सक्रिय होने की योजना बनाने लगे। कुछ कार्यक्रम तय किये। साधना का क्रम अपने ढंग से चल

रहा था। उसके लिए चार पाँच घंटे का अतिरिक्त समय चाहिए था। नौद में कटौती कर समय की पूर्ति की। गोघृत, मठा और जौ की रोटी आदि का प्रबंध माँ कर देती थी। दीपक में घी भरा रहने के लिए भी वही ध्यान देती थी। श्रीराम का विवाह कर देने की उनकी रट जारी रही। वह रट जोर भी पकड़ती रही। गाँव के लड़कों को इकट्ठा कर गोष्ठियाँ करने लगे, घर से बाहर रहने और पर्चे-पोस्टर बाँटने छिपकाने लगे, तो माँ की लगन और तेज हुई। सगे-संबंधियों में जहाँ-जहाँ भी रिश्ता ढूँढ़ने के लिए कहा था, वहाँ कुछ जगहों से खबरें आने लगीं। माँ ने कहा कि कोई एक जगह चुन कर बता दो। श्री राम कुछ देर विचार कर बोले, अभी जल्दी क्या है? इस उम्र में विवाह करना धर्म विरुद्ध होगा।

‘गाँव के सभी लड़के चौदह-पन्द्रह साल की उम्र तक ब्याह जाते हैं। तुम्हारे संग-साथ के कई लड़कों की शादी हो गई है। तुम भी करो।’ माँ ने समझाया श्रीराम सुन कर चुप रहे। माँ ने फिर दोहराया और जोर देकर दोहराया। श्रीराम ने कुछ सोच कर उत्तर दिया-‘अभी कुछ समय ठहर जाओ माँ।’

कितने समय? माँ ने पूछा, पुत्र ने कहा, ‘यही कोई साल भर।’

माँ ने कारण पूछा तो कहने लगे मालवीय जी महाराज कहते हैं कि लड़कों की शादी सोलह वर्ष की उम्र से पहले नहीं होनी चाहिए। अच्छा तो यही है कि बीस-बाईस साल की उम्र से पहले न हो लेकिन सोलह की मर्यादा तो निभानी ही चाहिए।

मालवीय जी महाराज का सन्दर्भ सुन कर ताई जी चुप रह गईं। फिर पूछा, और कन्या की उम्र कितनी हो? श्रीराम ने उत्तर दिया, कम से कम बारह वर्ष। हम जानते हैं कि अखण्ड दीपक की देखभाल और गो सेवा के लिए आपको बहू की जरूरत है। पर शास्त्र मर्यादा का पालन भी तो होना चाहिए।

ताई जी को इसके आगे कोई तर्क नहीं सूझा। कुछ सोच कर फिर पूछा-‘लड़की तो देखी जा सकती है न।’ श्रीराम ने कहा, ‘सो आप जानो। बहू आपको चाहिए। आप देखें और तय करें।’ श्रीराम ने विवाह के लिए सोलह वर्ष की उम्र तक ठहरने की बात कही, तो इसका कारण था। उन दिनों लड़की की उम्र आठ-दस वर्ष की हो जाती, तो मान लिया जाता था कि वह पर्याप्त सयानी हो गई है। कुछ घरों, जातियों या गाँवों में तो इतनी उम्र तक लड़की की शादी नहीं होना चिंता का विषय भी समझा जाता था। फिर जिस उम्र का भी लड़का मिल जाए उसके साथ विवाह कर दिया जाता। लड़के की उम्र दस-बारह साल



से बीस-बाईस साल तक कुछ भी हो सकती थी। लड़कों की उम्र भी दस-ग्यारह साल होना काफी था।

बाल विवाह के इस प्रचलन ने लड़के लड़कियों को जवान होने से पहले ही बूढ़ा बना देने की स्थितियाँ बना रखी थीं। मालवीय जी ने हिन्दू समाज को शक्ति शाली और संगठित बनाने का अभियान छेड़ा तो बाल विवाहों पर भी ध्यान दिया। अछूतोद्धार, शुद्धि प्रथा और स्त्रियों के सम्मान का तीन सूत्रीय कार्यक्रम चलाते हुए वे बाल विवाह को हतोत्साहित करने के लिए भी कहने-सुनने लगे। अगस्त सन् १९२३ में काशी और जनवरी १९२५ में प्रयाग में हुए अधिवेशनों के समय मालवीय जी ने विद्वत् परिषदें बुलाकर समाज सुधार पर विद्वानों आचार्यों की राय ली। इस बात पर आम सहमति बनी कि लड़की का बारह वर्ष और लड़के का सोलह वर्ष की उम्र से पहले विवाह न किया जाए। यदि कन्या की आयु सोलह और लड़के की आयु बीस वर्ष हो तो और अच्छा।

उस समय के प्रचलन में वर-वधू के लिए न्यूनतम आयु का यह निर्धारण भी बड़ा कदम था। समाज में इससे बवाल मच सकता था। पंडितों ने विरोध किया भी सही। यद्यपि न्यूनतम आयु का यह निर्धारण तुरंत अपना नहीं लिया गया। इक्का दुक्का लोग ही मालवीय जी के निर्देशों का पालन करते। आँवलखेड़ा में इस मर्यादा का सबसे पहले निर्वाह करने वाले श्रीराम थे। उन्होंने माँ से साफ कह दिया कि कन्या जो भी चुनी जाए, उसकी आयु बारह वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए। वे यद्यपि चार वर्ष और ठहरना चाहते थे। लेकिन पूजागृह में अखण्ड दीपक की देखभाल माँ ही कर सकती थी या पत्नी। माँ को दिन में और काम भी होते थे। भरे-पूरे परिवार को संभालने में ही सारा समय बीत जाता था। यह दायित्व पत्नी के जिम्मे सौंपना उचित लगा। गो सेवा करने और दूध से घी-मठा आदि तैयार कर पूजा प्रयोजनों के लिए रखने का काम भी उन्हीं के हाथों अच्छी तरह सम्पन्न हो सकता था। श्री राम ने विवाह की अनुमति इसलिए दी कि धर्मपत्नी साधना सहचरी बने। इसलिए नहीं कि गृहस्थी बसाना या सामान्य लोगों की तरह वंश चलाना है।

साधना सहचरी का आगमन

सितम्बर १९२७ में श्रीराम ने सोलह वर्ष पूरे कर लिए। ननिहाल पक्ष ने बरसौली (अलीगढ़) में पंडित रूपराम शर्मा की कन्या का सुझाव दिया। नाम



सिद्धि के मार्ग पर संकल्प

था सरस्वती देवी। ताई जी अपने भाई के साथ भावी वधू को देखने तुरंत चल पड़ीं। बरसौली पहुँच कर सरस्वती देवी को देखते ही उन्होंने पूछा, गो माता की सेवा कर लेती हो बेटी। कन्या ने कुछ जवाब नहीं दिया। शील और लज्जा से वह नीचे देखने लगी। रूपराम जी ने जवाब दिया, खूब पूछा बहिन जी, सरस्वती को गो सेवा के अलावा कुछ और अच्छा नहीं लगता। घर परिवार सम्भालने और स्वभाव आदि के बारे में ताई जी ने ज्यादा बात नहीं की। उनका मानना था कि कन्याओं को किसी भी वातावरण में ढाला जा सकता है। स्वभाव से वे बुरी नहीं होतीं। उनमें दोष-दुर्गुण और विकार आदि भी नहीं होता। बहुओं को ससुराल के लोग ही परायापन अपनाकर बिगाड़ते हैं।

पं० रूपराम और गाँव के दो तीन रिश्तेदार आँवलखेड़ा भी आए। उन्होंने श्रीराम को देखा। पैतृक संपदा इतनी ज्यादा थी कि खाने कमाने की चिंता ही नहीं करनी थी। पूजा-पाठ में श्रीराम की प्रवृत्ति और निष्ठा तो उन सबको बहुत पसंद आई। रूपरामजी को पूजा कक्ष के मंदिर जैसा वातावरण बहुत भाया। कहने लगे, हमारी बिटिया को भी पूजा-पाठ बहुत भाता है। शिव-पार्वती की आराधना प्रतिदिन करती है। पाँच वर्ष की थी तभी से शुरू कर दिया था। इतना कहकर पंडित रूपराम रुके। श्रीराम और उनकी बालसेना के सदस्यों का सुराजी कार्यक्रमों में हिस्सा लेना उन्हें पसंद नहीं था। आपत्ति की, 'कांग्रेसियों के साथ रहना और आन्दोलन चलाना थोड़ा जोखिम का काम है, कल को कुछ भी हो सकता है। बच्ची क्या करेगी?'

इस आपत्ति की काट निकालते हुए ताई जी ने कहा, 'होने को तो कहीं भी, किसी को भी, कुछ भी हो सकता है। उस हालत में क्या करेंगे? स्वराज आन्दोलन में मालवीय जी महाराज तक और गाँधी जी सभी शामिल हैं। आगरा-मथुरा के बड़े ठिकानेदार लोग भी आन्दोलन में शामिल हैं। यह तो गर्व करने लायक बात है।' ताई जी की बात सुनकर रूपराम जी का समाधान हुआ। वे समझ रहे थे कि श्रीराम घर वालों की सहमति के बिना ही आन्दोलन में हिस्सा ले रहा है। उनका राष्ट्रीय आन्दोलन में हिस्सा लेना माता-पिता को पसंद नहीं था। जुलूसों और धरनों आदि में वे छुप कर जाया करते थे। रूपराम जी इस तरह की भागीदारी को अच्छा नहीं समझते थे। उनकी राय में यह उद्दण्डता थी। ताई जी ने स्पष्ट कर दिया, तो उन्होंने अपनी आपत्ति वापस ले ली और श्रीराम को अपना जामाता बनाने का फैसला कर लिया।



वाग्दान आदि की रस्म तुरंत सम्पन्न हो गई। विवाह की तिथि भी उसी समय निश्चित कर ली गई। कार्तिक पूर्णिमा के दिन आँवलखेड़ा से बारह व्यक्ति बारात लेकर गये। वहाँ सादगी से विवाह संस्कार संपन्न हुआ। शास्त्रों में जिसे ब्राह्म विवाह कहा जाता है, उस श्रेणी का दहेज में दो गायें और वर-वधू के लिए दो-दो जोड़े कपड़े दिए गये। बारातियों की आवभगत अच्छी की गई, लेकिन कोई धूम-धड़ाका नहीं हुआ। कोई बड़ा सहभोज भी नहीं हुआ। गाँव में अपने वर्ग-समुदाय के बीस-पच्चीस परिवार थे। उन्हें ही भोजन पर आमंत्रित किया गया। रूपराम जी की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी। वे कई गाँवों को एक साथ भोजन करा सकते थे। शान-शौकत में कोई कमी नहीं रहने देते। लेकिन विवाह तय होते समय ताईजी ने साफ शब्दों में कह दिया था कि इस शुभ अवसर पर फिजूलखर्ची न की जाए। विवाह सादगी से सम्पन्न हो।

आँवलखेड़ा लौटते ही श्रीराम की दिनचर्या पहले की तरह सहज हो गई। विवाह संस्कार और दूसरे रस्म-रिवाज पूरे करने में चार दिन लग गये थे। इस अवधि में निर्धारित जप पूरा नहीं हुआ। चार दिन तक तीन साढ़े तीन घंटा ही बैठ पाए। छूटा हुआ जप पूरा करने के लिए श्रीराम ने तीन दिन कोई ओर काम नहीं किया। सिर्फ जप ही करते रहे। स्नानादि के अलावा किसी ओर काम के लिए पूजागृह से भी बाहर नहीं निकले। चौथे दिन जप पूरा हो गया, तो निश्चित होकर बैठे। पत्नी ने आकर चरण स्पर्श किए। सहधर्मिणी की ओर देखा। वधू बनकर घर आने के शुरू दिन से सरस्वती देवी प्रणाम करती थीं। चरण नहीं छू पाती थीं, क्योंकि श्रीराम स्नान, पूजा और बाहर आकर आहार लेकर तुरंत पूजा गृह में लौट जाते थे। नववधू उन्हें दूर से ही देखती और प्रणाम कर लेती थी। चौथे दिन उन्हें चरण स्पर्श का अवसर मिला था।

ताईजी भीतर किसी और कक्ष में थीं। श्रीराम ने अपनी सहधर्मिणी से बैठने के लिए कहा। वे नीचे जमीन पर बैठ गई। जमीन पर मत बैठिए कहते हुए श्रीराम उठे और पास ही रखा दूसरा आसन बिछा दिया। कहा 'आसन पर बैठिए।' पत्नी संकोच करती हुई आसन पर बैठीं। यहाँ ठीक लग रहा है? कोई असुविधा तो नहीं जैसी बातें पूछने के बाद उन्होंने कहना शुरू किया, 'तुम विवाह कर आ गई हो, विधि ने हमारे भाग्य में दंपति होना लिखा था; हो गए। लेकिन तुम्हें आगे चल कर बहुत कष्ट उठाने पड़ सकते हैं। हमारे जिम्मे भगवान् ने कुछ ऐसे काम सौंपे हैं कि हम घर-गृहस्थी को शायद ठीक से



सिद्धि के मार्ग पर संकल्प

संभाल न पाएँ। तुम पर भी ध्यान देने से चूक हो जाए। उस स्थिति के लिए अपने मन को तैयार रखना।'

सरस्वती देवी ने कहा - 'ये सब बातें विवाह से पहले तय करनी थीं। अब क्या?' इस वाक्य से लगा कि जैसे उलाहना दिया जा रहा हो, लेकिन वैसी बात नहीं थी। उन्होंने कहा - 'पिताश्री ने आपके साथ हमें विदा कर दिया, तो यह भगवान् की ही इच्छा है। भोले नाथ ने आपके साथ धर्म निभाने का ही आदेश दिया, हम नहीं जानते कि आगे क्या कष्ट या सुख मिलने वाले हैं। अपना धर्म निभाएँ यही सबसे बड़ी प्रसन्नता है।'

श्रीराम ने पूछा, 'क्या है आपका धर्म?' उधर से उत्तर आया, 'स्त्री होने के नाते आपके चरणों की सेवा। आप तपस्वी हैं, भगवान् के प्रिय हैं यह मेरा बड़ा सौभाग्य है कि आपके रूप में हमें अपने आराध्य (शिव) ही मिल गए।' पत्नी का मन या आश्वासन पाकर श्रीराम के मन से एक बोझ कम हुआ। वह समझ रहे थे कि पत्नी को यहाँ के परिवेश और मुझ जैसे पति को निभाने में बड़ी भारी अड़चन होगी। वैसा कुछ नहीं था।

ताई जी को आता देख नववधू अपने आसन से उठ गई। भीतर जाकर वे अपना काम देखने लगी। ताई जी ने कहा, 'मायके वाले बहू को लिवाने आ रहे हैं, एक बार तो बिटिया कुछ समय के लिए अपने यहाँ जाती ही है।' श्रीराम ने सुनकर कोई जवाब नहीं दिया। वे चुपचाप उठ कर बाहर आ गए अपनी बाल सेना के सदस्यों को ढूँढ़ने लगे। कुछ दिन तक संपर्क नहीं रखने से वे सभी यहाँ-वहाँ हो गए थे। कोई नया कार्यक्रम नहीं छेड़ा था। पहले तैयार किए पोस्टर ही आसपास के गाँवों में चिपका रहे थे। एक दूसरे को बताने के क्रम से शाम तक सभी सदस्यों के पास सूचना पहुँच गई।

हर बीमार सेवा का अधिकारी

अगले दिन सब लोग इकट्ठा हुए इस बीच कहाँ क्या विशेष हुआ है? इस बारे में जानकारी का आदान-प्रदान हुआ। आठ-दस दिन में कुछ खास नहीं घटा था। श्रीराम को अचानक ख्याल आया, हुब्ब चाचा के क्या हाल हैं? पिछली खबर उनके बीमार होने की थी। हुब्बा चाचा यानी पटवारी हुब्बलाल। गाँव के लोग उसे पटवारी जी कहकर पुकारते थे। उन दिनों यह पद पुश्तैनी हुआ करता था। पिता अपने पुत्र को पटवारी बनाकर कार्यमुक्त हो जाता था। हुब्बलाल भी

विरासत से ही पटवारी बना था; लेकिन आगे इस पद को संभालने के लिए कोई वारिस नहीं था।

अपने सक्रिय रहने के दिनों में हुब्बलाल ने गाँव वालों का जीना मुश्किल कर दिया था। लालच और उत्पीड़न दोनों अवगुण उसकी रग-रग में समाए हुए थे। संभालने वाला कोई नहीं था फिर भी लालच में आकर उसने गाँव में किसी भी किसान को चैन से नहीं रहने दिया। आये दिन लोगों को नोटिस भिजवाता, आतंक के लिए जमीन की अनावश्यक रूप से माप-जोख करना और माँग पूरी नहीं होने पर तहसील में मनमानी रिपोर्ट भेज कर पुलिस बुलवा लेने जैसे तौर तरीके अपना रखे थे। कुछ किसान तो उसकी ज्यादतियों के चलते अपनी संपत्ति से हाथ धो बैठे थे। अच्छी संपन्न स्थिति से हाथ धोकर सड़क पर आ जाने वालों की भी कमी नहीं थी। हुब्बलाल बीमार हुआ तो लोगों ने कहा- भगवान् ने उसके कर्मों की सजा दी है। पटवारी जी को फालिज हो गया था। कुछ दिन तक तो उनके बीमार होने का ही पता नहीं चला। जब पता चला तो लोगों ने कर्मफल की बात कह कर पल्ला झाड़ लिया।

श्रीराम की बाल सेना ने इस तरह की टिप्पणी नहीं की। सेना का प्रत्येक सदस्य जानता था कि हुब्बलाल ने अपने भरे पूरे दिनों में लोगों को सताने के सिवा कुछ नहीं किया है, लेकिन सेना नायक का कहना था कि गाँव में कोई दुःखी बीमार है। उसकी देखभाल करने वाला कोई नहीं है, तो गाँववालों का जिम्मा बनता है कि उसे संभाले। परिवार में कोई कितना ही बिगड़ैल हो तब भी बीमार पड़ने पर घर के लोग उसे संभालते हैं या नहीं। यह तर्क लेकर वे गाँववालों को समझाने नहीं गए; बल्कि अपने स्वयं सेवकों की ही बारी बाँध दी। मीटिंग में हुब्ब चाचा के बारे में पूछा तो आशय उनकी सेवा सुश्रुषा की जानकारी लेना ही था।

संयोग ही था कि आठ-दस दिन से उधर कोई देखने नहीं गया था। पूछा तो ध्यान आया कि अरे उधर तो किसी ने ध्यान ही नहीं दिया। मीटिंग में इससे आगे चर्चा नहीं हो सकी। श्रीराम ने तुरंत उठकर कहा, 'पहले उन्हें देखकर आते हैं, बाकी बातें बाद में करेंगे।' वहाँ जाकर देखा, हुब्बलाल अपनी चारपाई पर पड़ा कातर दृष्टि से दरवाजे की ओर देख रहा था, कि कोई आए कुशल क्षेम पूछे। अपने कर्मों की याद आते ही किसी से अपेक्षा करने का विचार तुरंत हवा हो जाता, फिर भी न जाने क्यों आशा बँधती कि शायद कोई

देखने आ ही जाए, दरवाजा खुला ही था। श्रीराम और उनके साथियों को दस्तक देने की जरूरत नहीं पड़ी। हुब्बलाल चारपाई पर पड़ा जैसे इन्हीं लोगों का इंतजार कर रहा था। देखकर आँखों में चमक आ गई। चमक थोड़ी देर ही कायम रही और आँखें भर आई। कहने लगा मुझे अपने पापों की सजा मिल रही है बच्चो, मैंने न जाने कितने लोगों के घर उजाड़े हैं।

श्रीराम ने कहा, 'घबराइये मत लालाजी सब ठीक हो जाएगा।' लालाजी को समझाकर वे तुरंत देखभाल में जुट गए। घर में सार सम्हाल करने वाला कोई नहीं होने से हालत बहुत बुरी हो गई थी। शरीर गंदगी से सना पड़ा था। मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। फालिज के कारण हाथ उठ नहीं रहा था। इसलिए वह उन्हें भगा भी नहीं पा रहा था। बच्चों ने नाक पर हाथ रखकर संभालना चाहा। श्रीराम ने उनसे कहा, जी को थोड़ा कड़ा करो। एक हाथ से कोई काम होगा क्या? बच्चों ने बाल्टी ढूँढी। घर के बाहर जाकर कुँए से पानी खींचा और पटवारी जी को नहलाया। उनके कपड़े, बिस्तर, कमरा साफ किया। आगरा से कुछ लोगों ने गरीबों और अपाहिजों के लिए बिस्तर व कपड़े आदि भिजवाए थे। श्रीराम सामान लेकर आई टोली के पास गए और हुब्बलाल के लिए भी कपड़े लिए। पटवारी जी की सेवा टहल की। जब तक वह जीवित रहा, इसी तरह देखभाल चलती रही। हालत ज्यादा बिगड़ने के बाद तो सेवादल का कोई न कोई सदस्य वहाँ बना ही रहता था।

हुब्बलाल ज्यादा दिन जीवित नहीं रहा। जितने दिन भी जीवित रहा बच्चों की सेवा सुश्रुषा से यह संस्कार लेता रहा कि स्वार्थ के लिए जानबूझकर किसी का अहित कभी नहीं करना चाहिए। जहाँ तक हो सके दूसरों की सेवा करनी चाहिए। मरने से पहले पश्चाताप और ग्लानि में डूबे जा रहे हुब्बलाल ने श्रीराम को अपने पास बुलाया। बुदबुदाते हुए कहा कि 'अगला जन्म मिला तो भले ही पशुयोनि में जाऊँ, लेकिन मैं पशु होकर भी सेवा करना चाहूँगा, भगवान् भले ही मुझे गधा बना दे।'।

'नहीं दीवानजी,' श्रीराम ने कहा, 'ऐसा क्यों कहते हैं। आप मनुष्य योनि में ही आएँगे। उस जन्म में अपनी सारी गलतियाँ सुधार लेंगे और भगवान् का ही काम करेंगे। हुब्बलाल की आँखें भर आई। गला रूँध गया। अटक-अटक कर कहने लगा आशीर्वाद देने लायक पुण्य तो नहीं हैं मेरे पास। भूले भटके कोई



पुण्य किया हो तो तुम्हें मिल जाए। भगवान से तुम्हारे लिए यही मांगता हूँ कि तुम्हारा यश अमर कर दे। इसके बाद उसकी आवाज चली गई।

लोकमान्य तिलक का दिया स्वराज्य का नारा गाँव-गाँव गूँजने लगा था। जहाँ भी दस-पंद्रह उत्साही लोग इकट्ठे होते, इसी के बारे में चर्चा करते। आँवलखेड़ा में किशोरों की टोली पहले ही सक्रिय थी। राष्ट्रीय आंदोलन के तेज होने और अंग्रेजों द्वारा उसका दमन करने वाली दोनों तरह की खबरें गाँव में पहुँचती थीं। आंदोलन कारियों का उत्साह लोगों को ज्यादा गद्गद नहीं करता था। अंग्रेजों द्वारा दमन की खबरें उनका उल्लास रौंदती हुई उन्हें बुरी तरह डरा देती थीं। जिन परिवारों के बच्चे आंदोलन में छिटपुट हिस्सा ले रहे थे, वे चिंतित थे।

किशोर सुराजियों के लिए चिंता

एक दिन सभी लोग मिलकर बैठे, विचार किया और इस नतीजे पर पहुँचे कि उनके लाड़ले अपने आप कुछ नहीं कर रहे। श्रीराम के कहने-सुनने में आकर या देखादेखी ही जुलूस, धरना आदि में शामिल होते हैं। जहाँ-तहाँ पर्व पोस्टर चिपकाते हैं। श्रीराम की गतिविधियों पर अंकुश लगाया जाए, बाकी बच्चे अपने आप विभाजित हो जायेंगे। सहमति बनाकर चार-पाँच लोग ताईजी के पास गए। कुशलक्षेम पूछने की औपचारिकता के तुरंत बाद अपने विषय पर आए, 'ताईजी फिरंगियों के घोड़े दौड़ रहे हैं। सुराजियों को देखते ही पकड़ लेते हैं और बंद कर देते हैं। कई गाँवों से खबर है कि पकड़े हुए लोगों का पता नहीं चलता।'।

यह भयावह चित्रण ताईजी को डराने के लिए नहीं था। उनके पास आए लोग पूरी ईमानदारी से कह रहे थे। 'अपने श्रीराम को थोड़ा संभाल कर रखें तो अपने बच्चों की हिफाजत होगी। वरना पता नहीं कब फिरंगी अपने गाँव में धावा बोल दें।'।

ताईजी चिंतित हुई। उन्होंने श्रीराम की गतिविधियों पर निगरानी रखने का वचन दिया। गाँव के लोग भी कुछ निश्चित होकर चले गए। इसके बाद श्रीराम जब भी घर से बाहर निकलते, ताईजी पूछतीं कहाँ जा रहे हो? कब तक वापस लौटोगे? बताए गए समय पर वापस नहीं लौटते, तो पूछताछ करतीं। स्पष्टीकरण माँगीं। आगे इस तरह से देरी नहीं होगी यह चेतावनी देतीं। ताईजी की निगरानी बढ़ जाने से श्रीराम को कोई अंतर नहीं पड़ा; क्योंकि वे जो भी उत्तर



स्वतंत्रता संग्राम के साथ ही जुटे श्रीराम ज्ञान यज्ञ में।



पं० महामना मदन मोहन मालवीय जी, श्री रफी अहमद किदवई एवं
माता स्वरूपा रानी नेहरू के साथ श्रीराम 'मत' आसनसोल जेल में रहे।

(V)



आँवलाखेड़ा की हवेली का मुख्य कक्ष,
वहाँ स्वातंत्रता संग्राम की योजनाएँ बनायी गयीं।



मुख्यकक्ष के अंदर जीर्णोद्धार के
पूर्व पायी गयी गुरुसत्ता द्वारा
प्रयुक्त वस्तुएँ।



वह कुआँ, जिसे श्रीराम ने अपने हाथों
से 1925 में खोदा। पूरे गाँव में एक
मीठे पानी का कुआँ।

(VI)



माता सरस्वती देवी
श्रीराम शर्मा आचार्य जी की प्रथम सहधर्मिणी
(1918-1943)

(VII)



तपःपूत हिमालय की प्राण ऊर्जा से ओतप्रोत आचार्य श्री
(24 लक्ष के अनुष्ठानों के समय)

(VIII)

सिद्धि के मार्ग पर संकल्प

देते, उससे ताईजी का समाधान हो जाता। वे कहते कि प्रदर्शन में गया था तो भी ताईजी नहीं डाँटती और कहते कि सेवा में गया था, तो भी कुछ नहीं कहती। उनके लिए उत्तर ही समाधान होता।

एक बार श्रीराम ने कुछ दिन के लिए आगरा कांग्रेस कार्यालय जाने की बात कही। माँ ने मना कर दिया। सोचते रहे कि माँ की अवज्ञा कैसे की जाए? करें या न करें? अंतरात्मा ने समाधान सुझाया माँ यदि मोहवश मना कर रही हो, तो भी राष्ट्र की सेवा से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता। इस प्रतिबंध की अवहेलना क्षम्य है। इसके बाद उपयुक्त अवसर की ताक में रहे। एक दिन रात को दो बजे उठे। पानी का लोटा भरा और दरबान से कहा कि बाहर जाना है। उसने सोचा दिशा मैदान जाना होगा। हवेली से बाहर जाने का मन हो रहा होगा। यह सोचकर दरवाजा खोल दिया। बाहर आते ही श्रीराम ने लोटा रखा और आगरा की ओर चल दिए। रात भर चलते रहे। सीधा रास्ता न पकड़कर यहाँ-वहाँ छिपते-छिपाते आगरा पहुँचे। पूछताछ की। पता चला कि कांग्रेस कार्यालय में स्वयं सेवकों की भरती हो रही है। उन्हें आंदोलन का प्रशिक्षण दिया जाएगा। शिविर भी लगे हाथों शुरू होने वाले हैं। श्रीराम भरती हो गए। उनके साथ शिविर में शामिल हुए आंदोलनकारियों में जगन प्रसाद, गंगासिंह, ददू और ऊधमसिंह आदि के नाम भी हैं। इन लोगों ने बड़ चढ़कर आंदोलन में हिस्सा लिया। पंडित नत्थीलाल शर्मा, रामनारायण शिवहरे और वासुदेव गुप्त भी उसी शिविर में थे।

स्वयं सेवकों के इस शिविर में अनुभवी आंदोलनकारी युवकों को जनसंपर्क करना सिखाते थे। पॅम्पलेट तैयार करना, पोस्टर बनाना, सभायें करना और आंदोलन का माहौल बनाना शिविर के विषय होते। श्रीराम ने एक सप्ताह के शिविर में ये बातें अच्छी तरह सीखीं। इस बीच आँवलखेड़ा में अपनी माँ के पास उन्होंने सूचना भी भिजवाई कि वे कुशल हैं। प्रशिक्षण लेकर तुरंत वापस आ जायेंगे। यह सूचना शिविर में भरती होते ही व्यवस्था देख रहे एक वरिष्ठ कार्यकर्ता से कहकर तुरंत भिजवा दी थी। उधर ताईजी ने खाना-पीना सब छोड़ दिया था। सूचना पाकर वे निश्चिंत हुईं।

सैनिक के लिए हुंकार

शिविर के संयोजकों में एक नाम श्रीकृष्णदत्त पालीवाल का भी था। आगरा ही नहीं उत्तर प्रदेश के आंदोलन में उनका बड़ा नाम था। उम्र में वे श्रीराम

से काफी बड़े थे। शिविरार्थी उन्हें भाई साहब और नेताजी कहकर पुकारते थे। आंदोलन को नेतृत्व देने के साथ पत्रकारिता और क्रान्तिकारी साहित्य तैयार करने में भी वे सिद्धहस्त थे। श्रीराम को देखकर न जाने क्यों उन्हें लगा कि यह स्वयं सेवक और युवकों से भिन्न और विलक्षण है। श्रीराम तब अपनी लिखी हुई कविता साथियों को सुना रहे थे। देशभक्ति से ओतप्रोत उस कविता के बोल कुछ इस तरह थे-

कोई भी हो तेरा दुश्मन, निश्चय ही मिट जाएगा,
त्रिंश कोटि हुंकारों से नभ मण्डल फट जाएगा ॥

पालीवाल जी ने कविता सुनी और पीठ थपथपाई। कहा, 'यह कविता सैनिक में छाप लें। जो भी पढ़ेगा गाएगा, गुनगुनाएगा।' श्रीराम ने हामी भरने के साथ उत्साह भी दिखाया कि इस तरह की रचनाएँ और भी तैयार की जा सकती हैं। पालीवाल जी तब सैनिक पत्र का संपादन व प्रकाशन कर रहे थे। देशभक्ति और क्रान्ति की भावनाओं से भरपूर यह पत्र पिछले तीन साल से छप रहा था। पालीवाल जी के कंधों पर संगठन और सेवा की और भी जिम्मेदारियाँ थीं। उन्हें अपने लिए एक सहयोगी की तलाश थी। श्रीराम के रूप में वह तलाश पूरी होती दिखाई दे रही थी। उन्होंने बढ़ावा दिया, लिखा करो। खूब लिखा करो। तुम्हारी कविताएँ लोगों में देशप्रेम जगायेंगी। श्रीराम ने इस भेंट के दौरान अपने पिछले साहित्यिक या आंदोलनकारी लेखन का परिचय भी दिया। वह साहित्य या प्रचार पत्र जो उन्होंने लिख-लिख कर गाँवों में बाँटे थे।

पालीवाल जी ने कहा, आगरा आकर अपने पत्र में हाथ बटा सको तो अच्छा रहेगा। श्रीराम ने हामी भरी और व्यवस्था बनने पर आने की बात कही। व्यवस्था बनने का अर्थ अनुमति मिलना था। शिविर पूरा हुआ। लौटकर आँवलखेड़ा आए और वहाँ अपने साथ के किशोरों को फिर इकट्ठा किया। उनके अभिभावकों की लगाई पाबंदियाँ तब काम नहीं आईं। स्वतंत्रता आंदोलन का प्रभाव इस तरह फैल रहा था कि उससे अलग रहना पिछड़ेपन और दम्बूपन की निशानी समझा जाता था। लोग भले ही सक्रिय हिस्सा न लें, इस तरह की टिप्पणीयाँ कर ही देते थे। श्रीराम के थोड़े से संपर्क ने किशोरों में नया उत्साह फूँक दिया। अभिभावकों की परवाह किए बिना वे प्रभातफेरियों में शामिल होने लगे। फेरियों में श्रीराम के लिखे गीत गाए जाते। गीत गाते-गाते वे इतने तन्मय हो जाते थे कि उन्हें अपनी सुध-बुध ही नहीं रहती। कुछ कविताएँ एकांत में

बैठकर लिखते, उनकी धुन बनाते और अभ्यास करते। कुछ पद काम करते हुए भी स्वतः स्फूर्त रच जाते थे।

१९२९-३० के दिन स्वतंत्रता आंदोलन के उफान के दिन थे। दिसम्बर १९२९ में कांग्रेस ने लाहौर अधिवेशन के समय पूर्ण स्वतंत्रता को अपना लक्ष्य घोषित कर दिया। विधान मंडलों से प्रतिनिधि वापस बुला लिए गए। सरकार के साथ हर तरह की बातचीत बंद कर दी गई। अधिवेशन के दौरान ३१ दिसम्बर की रात को घड़ी ने जैसे ही बारह का घंटा बजाया और नए साल का पहला दिन शुरू हुआ, जवाहरलाल नेहरू ने लाहौर में राष्ट्रीय ध्वज फहरा दिया। उस समय झंडा तिरंगा ही था; लेकिन चक्र की जगह चर्खे का निशान अंकित था। झंडा फहराते ही जैसे देश ने अपने आपको स्वतंत्र घोषित कर दिया। जगह-जगह जलसे हुए, बैठकें हुईं। २६ जनवरी को देश भर में स्वतंत्रता दिवस मनाया गया। उस दिन जगह-जगह तिरंगा फहराया गया। आँवलखेड़ा में श्रीराम शर्मा ने भी ध्वजारोहण किया। अखबार में कविताएँ और लेख आदि में वे अपना पूरा नाम लिखने लगे थे। हवेली के बाहर आँगन में झंडा फहराने से पहले पंडित गेंदाराम ने उन्हें पहली बार पूरे नाम से संबोधित किया। नाम के आगे पंडित लगाते हुए वे बोले अब पंडित श्रीराम शर्मा समारोह के बारे में कुछ कहेंगे।

पंडित श्रीराम शर्मा ने उपस्थित युवकों को संबोधित करते हुए जो कहा उसका रिकार्ड नहीं है। बहरहाल वह कार्यक्रम पंडित श्रीराम शर्मा के नेतृत्व में आंदोलन की व्यवस्थित और संगठित शुरुआत जरूर थी। २६ जनवरी को पहला स्वाधीनता दिवस मनाने के बाद पंडित श्रीराम जी ने गुड़ का प्रसाद बाँटा था। उस समय यह घोषणा भी की गई कि स्वतंत्रता दिवस हर साल मनाया जाएगा। दल के लोग जहाँ भी इकट्ठे होंगे, बैठक करेंगे या कोई कार्यक्रम चलायेंगे तो झंडा भी फहराया जाएगा। पूरे देश में २६ जनवरी का वह दिन इतिहास का एक नया शीर्षक बन गया। आँवलखेड़ा में श्रीराम शर्मा के नए अवतार की उसी दिन प्रतिष्ठा भी हुई।

अप्रैल १९३० में अवज्ञा आंदोलन शुरू हुआ। यह आंदोलन लाहौर अधिवेशन में पास हुए प्रस्ताव को जनमानस में रचा बसा देने वाली रणनीति का हिस्सा था। ६ अप्रैल को महात्मा गांधी ने अपने साबरमती आश्रम से कूच किया। उनके साथ हजारों सत्याग्रही थे। समुद्र तट पर स्थित दांडी नामक स्थान पर पहुँचे और वहाँ नमक बनाया। अंग्रेज सरकार की नमक पर लगाई पाबंदियों को तोड़ते हुए यह आंदोलन उस पूरी व्यवस्था के लिए ही बड़ी भारी चुनौती था। अंग्रेजों ने भी इसे भाँपा और किसी बड़े विस्फोट का सूचक माना।



सचमुच इसके बाद बहुत बड़ा आंदोलन फूट पड़ा। लोग घरों से बाहर निकल आए। जगह-जगह हड़तालें हुईं, ब्रिटेन से लाकर यहाँ बेचे जा रहे सामान का बहिष्कार किया गया। चटगाँव में लोगों ने सरकारी हथियार लूट लिए। जगह-जगह भड़क रही चिनगारी को दबाने के लिए सरकार ने दमन की कार्यवाही तेज कर दी। सरकारी आंकड़ों के अनुसार ही नमक आंदोलन के बाद वाले वर्ष में साठ हजार लोग जेल भेजे गए। युवकों को ही नहीं बूढ़ों और स्त्रियों को भी पुलिस ने निष्ठुरता से मारा-पीटा। लेकिन इससे लोगों का उत्साह ठंडा पड़ने के बजाय और बढ़ा ही।

दमन और गिरफ्तारी के इस दौर में कुछ युवक ऐसे भी थे जो पुलिस की पकड़ में नहीं आए। पंडित श्रीराम शर्मा उनमें एक थे। गाँव के बाहर उन्होंने एक स्थान पर गड्ढा खोदा। वहाँ नमकीन पानी भरा और उससे नमक बनाने की कोशिश की। नमक बनाने का न अनुभव था और न ही प्रशिक्षण लिया था। सत्याग्रहियों ने जगह-जगह प्रशिक्षण कैंप लगाए तो थे लेकिन सभी लोग उनमें शामिल नहीं हो सके थे। प्रतीकात्मक रूप से पंडित जी ने नमक बनाया। वह कार्यवाही पूरी होती, इससे पहले ही पुलिस दल आ गया। युवकों को तितर-बितर करने के लिए पुलिस ने डंडे चलाये। जिस गड्ढे में नमक का पानी भरा गया था, उसमें श्रीराम के साथ तीन चार युवक और उतरे हुए थे। नमक बनाने की कोशिश कर रहे थे।

पुलिस वालों ने उन्हें बाहर निकलने के लिए कहा। पानी के बाहर खड़े लड़के तो लहराते हुए डंडों के डर से भाग खड़े हुए थे, पानी में उतरे लड़के भी खिसकने लगे। लेकिन श्रीराम ने जैसे कुछ सुना ही नहीं। पुलिस वालों ने तीन चार बार हांक लगाई। उन्होंने हर बार अनसुना कर दिया। अवज्ञा उपेक्षा होते देख दो पुलिस वाले पानी में उतरे और श्रीराम पर तड़ातड़ बेंतें बरसा दीं। पीठ, हाथ, कंधे और सिर पर चोट आई। इस मार से वे पानी में गिर पड़े। पुलिस वाले उन्हें पानी में ही गिरा पड़ा छोड़कर चले गए। शाम हो गई। पुलिस के डर से श्रीराम की सुध लेने कोई नहीं आया। वे रात भर नमक के धोल में पड़े रहे। सुबह उन्हें बाहर निकाला गया। ताई जी रात भर यह समझे बैठी रहीं कि श्रीराम को पुलिस पकड़ कर ले गई होगी।

महापुरश्चरण और समाज सेवा साधना

महापुरश्चरण के लिए छह घंटे प्रतिदिन लगते थे। श्रीराम यह साधना सुबह छः बजे से पहले और शाम को सूर्यास्त होने तक पूरी कर लेते थे। जप का अभ्यास होने पर बाद में पाँच घंटे समय ही पर्याप्त होता। साधना में ज्यादा समय लगने के दिनों राष्ट्रीय और सामाजिक मोर्चों पर सक्रियता बढ़ी। तिथिक्रम निश्चित नहीं है, लेकिन घटनाएँ उस समय की हैं, जब श्रीराम अठारह-उन्नीस वर्ष के थे। लूली-लंगड़ी गायों को बेच देने और दूध नहीं देने वाली गायों को यों ही सड़क पर छोड़ देने की प्रवृत्ति तब भी थी। गाँव में किसी ने दो गायें कसाई को बेच दीं। उनके पाँव खराब थे। कसाई उन गायों को लेकर चले।

श्रीराम को पता चला। उन्होंने अपनी बालसेना के सदस्यों की आपात बैठक बुलाई और तुरंत निश्चित कर लिया कि क्या करना है। अपने एक साथी को लेकर श्रीराम दौड़े गए। कसाइयों से मिले और बातचीत की। गायों को नहीं काटने का अनुरोध किया। उन लोगों ने कहा कि जो कीमत अदा की है, वह वापस मिल जाए तो गायें वापस कर देंगे। श्रीराम थोड़ी देर के लिए असमंजस में पड़े। दोनों गायों की कीमत अठारह रुपए बताई गई थी। ताईजी से इतनी रकम माँगी जा सकती थी, लेकिन यह करना नहीं चाहते थे। कुछ सोचकर श्रीराम ने हाँ कर दिया। कुछ समय माँगा और गाँव के साहूकार गुलजारी के पास आए। उससे पैंतीस रुपए उधार लिए। गुलजारी इस युवक के स्वभाव और निष्ठा से अच्छी तरह परिचित था। ब्याज तय नहीं किया, न ही कोई सामान गिरवी रखने को कहा। कुछ दिन के लिए बिना ब्याज और बिना जमानत के ही रुपए उधार दे दिए। उन रुपयों से गाय की कीमत अलग रखकर एक बैलगाड़ी किराये पर ली। कसाई को पैसे देकर गायें छुड़ाई और उन्हें बैलगाड़ी में बिठाया। कुछ दूर चलने पर एक बैल अड़ने लगा। पता चला कि वह बीमार है। श्रीराम ने उसे जुए से बाहर निकाला। उसकी जगह खुद अपना कंधा लगाया। एक ओर बैल और जुए के दूसरे सिरे पर श्रीराम। इस तरह गायों को लादकर गाड़ी आगे खिसकती रही तीन दिन तक बैलगाड़ी खिसकती रही। श्रीराम गायों को लेकर हाथरस पहुँचे। वहाँ की गोशाला में गायों को रखवाया। चौथे दिन वापस आ गए। साहूकार का कर्ज उतारने के लिए बालसेना के सदस्यों का सहयोग लिया। थोड़ी-थोड़ी राशि सभी ने इकट्ठी की और गुलजारी का कर्ज उतारा।

उन्हीं दिनों की घटना है। गाँव में एक मात्र परचून की दूकान चलाने वाले सुलेखचंद के घर में आग लगी। दूकान और घर साथ-साथ ही थे। मकान ईंट-गारे का बना हुआ था; लेकिन छत बाँस-बल्लियों से बनी थी। खपरैलों से छाई हुई थी। देखते ही देखते छत ने आग पकड़ ली। सुलेखचंद अपने बच्चों को बचाने से ज्यादा दूकान में फँसे सामान के लिए चिंतित था। बच्चे होशियार थे। लाँघते-फलाँगते लपटों से बाहर निकल आए और बाहर आकर हल्ला मचाने लगे कि भाभी भीतर ही रह गई हैं। भाभी अर्थात् साहू की पुत्रवधू। वह गर्भवती थी। आग की धू-धू करती लपटों से बाहर आने का साहस नहीं जुटा पाई। घर के लोग भी अपने को बाहर पाकर निश्चिंत हो गए। हल्ला मचाने के सिवा कुछ नहीं कर रहे थे।

श्रीराम वहाँ पहुँचे और हाय-पुकार सुनकर मामला समझा। संकट को समझते ही उन्होंने आसपास झाँका। पास के घर में गए और वहाँ से नसेनी निकालकर लाए। दरवाजे के पास आग इस बुरी तरह फैल गई थी कि अंदर जाना कठिन था। नसेनी लगाकर वे छत की तरफ से भीतर कूदे। कुछ ही मिनटों में बहू को कंधे पर लादे बाहर आ गए। वह थोड़ी बहुत झुलस गई थी। उसकी प्राथमिक चिकित्सा का प्रबंध किया साहू का परिवार धन्यवाद देता रह गया और वे अपना काम कर आगे बढ़ गए।

अग्रिकांड में फँसी बहू को अपनी जान जोखिम में डालकर बचाने के कुछ दिन बात की घटना है। एक विधवा युवती किसी विजातीय युवक से गर्भवती हो गई। शादी के कुछ दिन बाद ही विधवा हो जाने के कारण ससुराल वालों ने उसे मायके वापस भेज दिया था। वह अपने माँ-बाप के साथ रहती थी। विधवा का घर में होना ही उन दिनों गाँव बस्ती की लानत ढोने के लिए काफी था। फिर वह गर्भवती और हो गई। माता-पिता के लिए गाँव में रहना मुश्किल हो गया। जितने मुँह उतनी बातें। कोई गर्भपात की सलाह देता, तो कोई जहर देकर मार डालने की। कुछ लोगों ने उस युवती को ही आत्महत्या करने की सलाह दे डाली। इसके लिए उकसाया भी।

श्रीराम ने इस संकट में हस्तक्षेप किया और उस युवती के पुनर्विवाह की सलाह दी। लोगों ने शुरू में इस सुझाव का मजाक उड़ाया। घर वालों ने भी कहा कि हम पर तरस खाओ। वैसे ही कठिनाई में फँसे हैं। नई मुसीबत क्यों मोल ली जाए। श्रीराम ने समझाया कि इसमें कोई पाप नहीं है। पुराने जमाने में



ऐसा होता रहा है। शास्त्रों में इसकी व्यवस्था दी गई है। कुछ रुक कर उन्होंने कहा, 'सरकार भी कहती है कि विधवा लड़कियाँ चाहें तो फिर शादी कर सकती हैं। उन्हें घर-गृहस्थी बसाने का अधिकार है।' बाद में महामना मालवीय और महात्मा गाँधी का हवाला भी दिया। उस युवती के माता-पिता मना तो करते थे लेकिन उस मनाही में संकोच और समाज का भय छिपा हुआ था। मन से तो वे भी चाहते कि लड़की की घर गृहस्थी बस जाए तो अच्छा। इस मंशा के अतिरिक्त युवती का गर्भवती होना उनके मन को ज्यादा तोड़ रहा था। श्रीराम ने शास्त्र परंपरा, सरकार और महापुरुषों का हवाला दिया तो वे राजी हो गए। उनके मन में एक ही बाधा रह गई कि गर्भ में स्थित बच्चे का क्या किया जाए? माता-पिता को तैयार हुआ देख श्रीराम ने कहा उसे भी दुनिया में आने दीजिए। भगवान् उसकी भी देखभाल करेगा।

अभिभावकों के राजी हो जाने पर श्रीराम युवती के पिता को लेकर मथुरा गए। वहाँ आर्य समाज की चौक शाखा के प्रधान पंडित वेदव्रत से मिले। उन्हें सारी स्थिति समझाई। तीन-चार महीने की खोजबीन और बातचीत के बाद उपयुक्त वर मिल गया। जीवन प्रसाद शर्मा नामक वह युवक भी विधुर था। उसकी एक संतान थी। युवती और परिवार की स्थिति उसे स्पष्ट रूप से बता दी गई और रिश्ता तय हो गया। उस युवती से जन्मी संतान उत्तर प्रदेश के एक औद्योगिक नगर में इस समय जीवन की संध्यावेला व्यतीत कर रही है। उसका वंश खूब फल-फूल रहा है।

गिरवर के घर कथा

किशोर वय पार कर वे युवावस्था में पहुँचे ही थे, तब का एक और प्रसंग है। आँबलखेड़ा में हवेली के बाहर की सफाई करने और ताऊजी की घोड़ी पर खरहरा करने के लिए गिरवर नामक एक सफाई कर्मचारी आता था। उसका मन हुआ कि घर पर सत्य नारायण की कथा की जाए; लेकिन कोई पंडित इसके लिए तैयार नहीं हो रहा था। चार-पाँच जगह कहा, पर्याप्त दान-दक्षिणा देने की बात भी कही, लेकिन निम्नजाति के लोगों के यहाँ कथा करने में हर किसी ने संकोच ही किया। कथा आयोजन नहीं हो पाने से गिरवर का मन उखड़ा रहने लगा। एक दिन श्रीराम के सामने मुँह से निकल गया, 'भैया जी हम अपने यहाँ कथा कराना चाहते हैं; लेकिन हमारे भाग्य ही खराब हैं।'।



‘क्यों? क्या हुआ भाग्य को?’ श्रीराम ने पूछ लिया। उनके प्रश्न में आत्मीयता के साथ आक्रोश का स्वर भी था। आक्रोश गिरवर की दिखाई गई निराशा पर था। उसने कहा, ‘हम लोग अछूत हैं न। इसलिए हमारे यहाँ कोई कथा नहीं करता।’ श्रीराम ने कुछ पल रुक कर कहा, ‘कल नहा धोकर तैयार रहना। घर के सब लोग साफ स्वच्छ रहें। हम तुम्हारे यहाँ कथा करने आएँगे।’ गिरवर का चेहरा यह आश्वासन पाकर खिल उठा; लेकिन अगले ही क्षण वह फिर उदास हो गया। कहने लगा, ‘जब दूसरे पंडित लोग नहीं आ रहे तो आप ही को कौन आने देगा। आपकी ताईजी और दूसरे लोग आपको नहीं आने देंगे।’

श्रीराम ने इस तरफ से निश्चित रहने के लिए कहा। गिरवर संशय और विश्वास की मिली जुली अनुभूति से गद्गद होता घर लौटा। घर के सब लोगों को बताया। बताने के बाद ही तैयारी भी शुरू हो गई। घर की सफाई, कपड़े बिस्तर आदि की धुलाई और बर्तनों की मंजाई के साथ मकान के फर्श पर लीपना-पोतना चालू हुआ। देर रात तक लगे रहने पर गिरवर का घर चमक उठा। अगले दिन अठारह-उन्नीस साल के युवा पंडित पोथी, हवन कुंड, सामग्री, शंख, तस्वीर, झालर आदि लेकर पहुँच गए। गिरवर ने अपनी जात-बिरादरी के लोगों को भी आमंत्रित किया था। वे लोग भी आ पहुँचे। आठ-दस परिवार के छोटे बड़े मिलाकर पच्चीस-तीस लोग इकट्ठे हो गए।

विधिवत कथा आरंभ हुई। एक अध्याय पूरा होने के बाद शंख बजता और जयकार भी होता। कथा पूरी होने के बाद घंटी-घड़ियाल बजाकर आरती होने लगी। वहाँ इकट्ठे लोगों में उल्लास और उत्साह फूट पड़ रहा था। ‘ॐ जय जगदीश हरे’ पूरी आवाज से उन लोगों ने आरती गाई। शंखनाद और जयकार की गूँज गाँव में दूसरे घरों तक पहुँची। तत्काल कुछ समझ नहीं आया। जब समझ आया तो ब्राह्मण और ठाकुर टोले के लोगों का कोप जाग उठा। वे हरिजन टोले के लोगों को और उनसे भी ज्यादा कथा करने वाले व्यक्ति को सबक सिखाने का मन बनाकर भागे। किसी के हाथ में लाठी थी और किसी ने डंडा पकड़ रखा था।

पंद्रह-बीस लोगों का दल गालियाँ बकता हुआ हरिजन टोले की तरफ दौड़ा। दूर से ही शोर-शराबा सुनाई दिया। गिरवर ने कहा, ‘लोग मारने आ रहे हैं बाबू साहब। आप बच कर निकल जाइये।’ श्रीराम ने कहा, ‘नहीं भागेंगे नहीं। आप लोगों को उनका शिकार नहीं बनने देंगे।’ गिरवर और परिवार के लोगों ने

चीखचिल्ला कर कहा-समझाया, दबाव बनाने की कोशिश की। श्रीराम ने भी शर्त रखी कि अपने आपको दोषी मत मानना। वे लोग कुछ कहें इसके पहले ही स्पष्ट कर देना कि श्रीराम ने ही कथा की जिद की थी। हम लोग तो इसके लिए तैयार नहीं थे। यह शर्त मान ली और कसम खाई तभी श्रीराम भागने के लिए राजी हुए।

ब्राह्मण-ठाकुर टोले के लठैत घर के पास पहुँचे इससे पहले ही श्रीराम ने पोथी पत्रा और कथा का सामान समेटा। अपने साथ लाई चादर में सामान बाँधा। कंधे पर रखा और खेतों में से होते हुए निकल गए। लोगों से छिपते-छिपाते हवेली पहुँचे। उधर गिरवर और साथ के लोगों ने लठैतों को वही सफाई दी, जिसकी कसम खाई थी। श्रीराम के जिद्दी स्वभाव से सभी परिचित थे। इसलिए मान लिया कि उन्होंने कथा कहने के लिए हठ किया होगा। फिर भी उन लोगों ने टोले वालों को दुत्कारा फटकारा। आगे कभी इस तरह की जिद नहीं मानने की चेतावनी दी और चले गए। हवेली में आकर ताईजी से शिकायत की। ताईजी ने श्रीराम को थोड़ा सा डाँटा-डपटा और बात वहीं खत्म हो गई।

समाज में नए संस्कार जगाने के लिए श्रीराम ने अपनी बातों को लिखकर और बोलकर भी कहना शुरू किया। उन दिनों स्वतंत्रता आंदोलन के पक्ष में या अंग्रेजों के खिलाफ लिखना आसान नहीं था। लिखा जाता तो वह छपना मुश्किल था। श्रीराम ज्यादातर कविताएँ लिखते। उन्हें छपने के लिए आगरा के सैनिक, कानपुर के विद्यार्थी और कलकत्ता के विश्वामित्र आदि पत्रों में भेज देते। 'शिरकत', 'मस्ताना' आदि पत्रिकाओं में भी उनकी रचनाएँ छपतीं। जहाँ दुःख देखा वहीं जाकर खड़े हो जाने और काम आने के स्वभाव ने उन्हें लोकप्रिय भी बनाया। समाज सुधार के लिए उठाए कदम गाँव वालों को खिन्न करते थे। विधवा विवाह, हरिजन टोले में कथा और उससे भी पहले छपको की सेवा इसी तरह के प्रसंग थे। लोगों ने इन कार्यों का विरोध ही नहीं किया, बहस भी की। श्रीराम बहस में उलझने के बजाय लेखों के द्वारा अपना पक्ष रखने लगे। ये लेख पत्र-पत्रिकाओं में भी छपते और हाथ से लिखकर भी बाँटते। लेखों की कई प्रतियाँ तैयार करने के लिए वे खुद नकल करते और बालसेना के सदस्यों को भी इस काम में लगा देते।

स्वतंत्रता आंदोलन के लिए बैठक करने के अलावा सामाजिक कार्यों के लिए भी विचार विमर्श की जरूरत होती। बैठकें यहाँ-वहाँ हो जातीं। कथा आयोजन का प्रसंग बीतने पर श्रीराम ने अपने साथियों से कहा कि बैठक के लिए कोई स्थान नियत होना चाहिए। वह स्थान किसी का घर नहीं हो सकता।

घर में दूसरे लोग भी रहते हैं, बड़े-बुजुर्गों का प्रभाव भी रहता है और आने-जाने वालों का ताँता भी लगा रहता है। वहाँ एकांत नहीं मिलता।

भोला पंडित ने सुझाव दिया कि शिवालय वाला वह बगीचा ठीक रहेगा जहाँ कभी श्रीराम ध्यान किया करते थे। दूसरे साथियों ने भी हामी भरी। श्रीराम के लिए माँ का लगाया प्रतिबंध एक संकोच था। समाधि वाली घटना के बाद माँ ने कसम दे दी थी कि वहाँ नहीं जाओगे। कोई उत्तर नहीं देते देख दूसरे साथियों ने पूछा कि कोई हर्ज है क्या? श्रीराम ने कहा कि माँ से कसम उतरवाना पड़ेगी बस और कोई बात नहीं है। बाल सेना के सभी सदस्य ताईजी के पास गए। उनके सामने अपनी इच्छा जताई और कहा कि हम लोगों को मिलते रहने, बातचीत करने और बैठने के लिए वहाँ से अच्छी जगह और कोई नहीं है।

ताईजी ने हवेली का एक हिस्सा बताया। सैनिकों ने अपनी बैठकें घर से दूर करने का निश्चय बताया। ताईजी ने कहा- तुम लोगों को वहाँ कोई छेड़ने नहीं आएगा। चौबीसों घंटे बैठे रहोगे तो भी नहीं पुकारूँगी। बाल सेना के युवा सदस्य फिर भी नहीं माने। ताईजी ने अपनी मनोबाधा रखी। असल में वहाँ श्रीराम के लिए खतरा देखती हूँ। वह हमारे हाथ से निकलकर शिवजी के हाथ में चला जाएगा।

ताईजी का यह उत्तर ब्रह्मास्त्र सिद्ध हुआ। उनके संकोच का सम्मान करते हुए सबने हवेली के एक हिस्से को अपने लिए मान लिया। यह वचन जरूर लिया कि उनकी बैठकों व कार्यों के बारे में किसी को भनक तक नहीं लगने दी जाएगी। ताईजी ने खुद जाकर वह कमरा दिखाया। बीस पच्चीस लोगों के आराम से बैठने लायक जगह वहाँ थी। जब आवश्यकता लगे तब भोजन पानी माँगने, नाश्ते की व्यवस्था होने का आश्वासन भी मिल गया और आँवलखेड़ा की उस कोठरी में एक क्रांतिकारी कार्यालय आरंभ हुआ।



हिमालय से आमंत्रण

संवत् १९८५ का चैत्रमास। संवत्सर आरंभ हुआ ही था। वासंती नवरात्र पर पूरे गांव में शक्तिपूजा और मानस पारायण के आयोजन शुरू हो गए थे। चार पाँच दिन बीत गए थे। श्रीराम की साधना अपने ढंग से चल रही थी। उनसे चैत्र नवरात्र में विशेष कुछ नहीं किया। जो साधना क्रम चल रहा था। वही अद्भुत और अलौकिक था। इन नौ दिनों में फिर भी उन्होंने पूरी तरह निराहार रहने का व्रत लिया। सिर्फ जल और दूध पर ही निर्भर रहे। संभवतः वह पंचमी का दिन था। सुबह ढाई-तीन बजे उठे और नित्य के उपासना अनुष्ठान में प्रवृत्त हुए। उठने और स्नानादि के समय से ही मन में उत्साह हिलोरें ले रहा था। वस्तुतः पूर्व संध्या से ही मन में संकल्प-विकल्प आ रहे थे। लग रहा था कि सुबह कुछ नया आरंभ करना है। क्या आरंभ करना है, यह आभास नहीं हो रहा था। किसी अगले पड़ाव के लिए रवाना होना है, यह जरूर लग रहा था।

महापुरश्चरण के लिए नियत जप और ध्यान पूरा हुआ। सविता देवता के लिए जप का समर्पण करने के बाद प्रदक्षिणा करते हुए बैठे ही थे कि भीतर से पुकार उठी। वाणी अपनी उसी मार्गदर्शक सत्ता के कंठ से प्रकट हुई प्रतीत हो रही थी, जिसने दो वर्ष पहले वसंत पंचमी पर हिमालय यात्रा का निर्देश दिया था। उस दिन पूजा की कोठरी में साक्षात्कार के दिन जैसी पवित्र गंध व्याप्त हो गई थी और चेतना में पिछली वसंत पंचमी जैसा उल्लास छा गया था। वह सत्ता प्रकट तो नहीं हुई थी। वाणी भी ऐसी नहीं थी कि दूसरों को सुनाई दे। आंतरिक क्षेत्र में ही वह गुंजन हुआ था। कहा गया था कि पिछली बार प्रत्यक्ष सान्निध्य के लिए बुलाने की बात कही थी। वह समय आ गया है। नया संवत्सर आरंभ होने पर हिमालय की ओर प्रयाण कर देना है। वहीं भेंट होगी।

पाँचवे नवरात्र पर पिछले वसंत के उसी निर्देश का स्मरण कराया जा रहा था। अभी उत्तराखण्ड के रास्तों में बर्फ जमी हुई है। बद्री केदार के कपाट



भी बंद हैं। महीने भर के भीतर वहाँ के द्वार खुलने वाले हैं। यात्रा की तैयारी और वहाँ तक पहुँचने में इतना समय लग ही जाएगा। इन स्थानों की यात्रा करते हुए आगे तक पहुँचना है। निर्देश कहीं बाहर से नहीं, अपने भीतर से ही आ रहे थे। लग रहा था कि अपने भीतर बैठ कर कोई बोल-बता रहा है। उस प्रेरणा या निर्देश से सोच-विचार की जरा भी गुंजाइश नहीं थी। स्फुरणा ही संकल्प बन गई कि अब चलने की तैयारी करनी है। संध्या जप से निवृत्त होने के तुरंत बाद मां से कहा गुरुदेव का आदेश हुआ है।

‘क्या आदेश हुआ है?’ ताई जी ने पूछा ‘कुछ समय के लिए उनके सान्निध्य में रहना है’ श्रीराम ने कहा। ताई जी को अपने चिरंजीव के बारे में यह आशंका नहीं रह गई थी कि वह हिमालय चला जाएगा या कहीं और चला जाएगा और फिर वापस नहीं लौटेगा या साधु-संन्यासी बन जाएगा। उन्होंने पूछा, ‘कितने दिन के लिए जाना है?’

श्रीराम ने कहा, ‘यह तो नहीं पता। लेकिन लगता है, वे तीन-चार दिन अपने पास रखेंगे। आने जाने में दस बारह दिन समझो।’

सुनकर ताई जी के चेहरे पर स्वीकृति का भाव आया। फिर बोलीं, ‘ठीक है। दो सप्ताह लगेँगे। इतने दिन के लिए पूरे इंतजाम से जाना।’ कुछ रुक कर वे बोलीं, ‘इधर मौसम बदल गया है, लेकिन जिस तरफ तुम्हें जाना है, वहाँ हमेशा सर्दी रहती है। ओढ़ने-पहनने में किसी तरह की ढीलपोल मत रखना। सर्दी के कपड़े अपने साथ ही रखना।’

वे बिना रुके कहे जा रही थीं, ‘तू क्या ले जाएगा। सारा सामान मैं ही अपने हाथों से जमा दूंगी और सुन, पंडित जी से पूछ लेना। वे हरिद्वार-ऋषिकेश आते-जाते रहते हैं। आगे गंगोत्री तक भी गए हैं। उन्हें रास्तों के बारे में ठीक से पता होगा। वे सही सलाह देंगे।’

श्रीराम ने अपने हिमालयवासी गुरु के बारे में उनसे साक्षात्कार और भावी निर्देशों के बारे में ताईजी से ज्यादा चर्चा नहीं की थी। दो-चार बार ही छुटपुट रूप से बताया था कि गुरुदेव हिमालय में कहीं रहते हैं। वे कहीं भी आ जा सकते हैं। अपने आपको अंतर्धान कर सकते हैं, प्रकट हो सकते हैं आदि। जब उन्होंने कहा कि गुरुदेव का बुलावा आया है, तो ताईजी को समझने में देर नहीं लगी कि श्रीराम अपने उन्हीं सिद्धगुरु के बारे में कह रहे हैं। यह विश्वास अविचल था कि वे श्रीराम को उनसे दूर नहीं करेंगे और न ही बाबा-जोगी बनाएंगे। विश्वास का

हिमालय से आमंत्रण

कोई स्पष्ट कारण समझ नहीं आ रहा था। वे समझना भी नहीं चाहती थीं। उन्होंने अपने चिरंजीव को हिमालय की ओर जाने की अनुमति दी, तो रिश्ते में चाचा लगने वाले पंडित धर्मदीन ने उनसे कहा, 'भाभी, अकेले कहां जाने दे रही हो? वहां साधु- संन्यासी वैराग की पुड़िया खिला देंगे।'

ताईजी इस सलाह पर विनोदपूर्ण हँसी हँस कर रह गई थीं। सिर्फ इतना ही कहा कि रास्ता सुगमता से कट जाए, ऐसी कोई सीख दे सको तो दे दो। श्रीराम जिस तरह जा रहा है, उसी तरह वापस भी आ जाएगा और लोगों ने भी अकेले नहीं जाने देने या हिमालय से बचने की सलाह दी थी। उन सबको ताईजी ने अनदेखा- अनसुना कर दिया।

उन्हें लग रहा था कि वैशाख में भी बद्री-केदार के आसपास ठिठुरा देने वाली सर्दी होती है। इधर पौष-माघ में जैसा जाड़ा होता है, उधर वैशाख, जेठ में उससे भी ज्यादा सर्दी होती है। वे कभी उस क्षेत्र में गई नहीं थीं लेकिन साधु-संतों और बद्री-केदार की यात्रा कर आने वालों से सुना था। इसलिए उन्होंने श्रीराम को सर्दी के समय दिया जाने वाला आहार जारी रखा। इस आहार को वे चैत्र नवरात्र में बंद कर देती थीं। आहार कोई विशेष नहीं था। ताई जी ने शहद, अदरक, तिल आदि गरम चीजें देना जारी रखा।

हिमालय यात्रा का अर्थ उनके लिए बद्रीनाथ, केदारनाथ तक सीमित था। बहुत हुआ तो गंगोत्री और यमुनोत्री भी जाया जा सकता था; लेकिन वह बहुत आगे की बात थी। श्रीराम ने जब कहा कि हिमालय जाना है, तो वे केदारनाथ तक ही समझी थीं। न उन्होंने ज्यादा कुछ पूछने की जरूरत समझी और न ही श्रीराम ने बताया। उन्हें स्वयं नहीं मालूम था कि हिमालय यात्रा का आमंत्रण किस क्षेत्र तक पहुँचने के लिए है।

लोगों से पूछताछ कर ताई जी ने सूती और ऊनी कपड़ों के अलावा मोजे, रबर के मोटे तले वाले जूते, कंबल, लाठी, मोमबत्ती, टार्च आदि का इंतजाम किया। सब सामान कपड़े के बने दो बड़े थैलों में बाँध दिए। किसी ने कहा कि ट्रंक में रखना, ज्यादा ठीक रहेगा। बारिश आदि से भीगेगा नहीं। ताई जी ने जवाब दिया, लेकिन ट्रंक कितना भारी होगा। उसे उठाए-उठाए ही लड़का थक जाएगा। रही बारिश की बात तो लड़का खुद को जहाँ छुपाएगा, वहीं थैले भी सुरक्षित हो जाएंगे। यात्रा पर खाना करने से पहले ताईजी को छाते की और याद आई। हवेली से ढूँढ़-खोज कर निकाला और थमा दिया। श्रीराम अब हिमालय की यात्रा के लिए पूरी तरह तैयार थे।



कम से कम सामान

ताई जी ने स्नेह और दुलार से जो सामान बाँधा था, वह बहुत ज्यादा नहीं था। भार की दृष्टि से वह आधा मन (करीब बीस किलोग्राम) भी नहीं था। ऋषिकेश पहुँच कर लगा कि वह भी ज्यादा है। श्रीराम २३ अप्रैल को ऋषिकेश पहुँचे थे। उसी शाम को गंगा तट पर बैठे ध्यान कर रहे थे। सायंकाल का समय था। अप्रैल के अंत तक ऋषिकेश का मौसम सुहाना हो जाता है। सर्दी बिल्कुल नहीं रहती और गर्मी पूरी तरह आई नहीं होती है। यात्रियों का आना-जाना शुरू हो जाता है। यों अब तो सभी ऋतुओं में यात्रियों का रेला लगा रहता है। सर्दी-गर्मी से बचाव के सस्ते-मंहगे सभी साधन आसानी से मिल जाते हैं। १९२७-२८ के दिनों में ऐसी स्थिति नहीं थी। तब गरम कपड़े लेकर चलना भी अच्छी आर्थिक स्थिति का द्योतक समझा जाता था। मध्यम और मध्यम से कुछ अच्छी आर्थिक स्थिति के लोग भी धूप सेंकने या आग तापने को ही सर्दी से बचाव का तरीका मानते थे। दोनों उपाय नहीं हो सकने की स्थिति में तीन चार-कपड़े एक साथ पहन लेते थे।

गंगा तट पर बैठे-बैठे श्रीराम की निगाहें कुछ संन्यासियों पर पड़ीं। वे गंगा स्नान कर निकल रहे थे। धारा से बाहर आ कर सीढ़ियों पर बैठ गए। शरीर पोंछने के बाद उन्होंने अपनी थैली में से भभूत निकाली और मलने लगे। भभूत रमाए साधु संन्यासी इससे पहले भी कई बार देखे थे। तब ध्यान नहीं गया था। उन संन्यासियों को देखकर ध्यान आया कि सर्दी से बचाव का एक तरीका यह भी हो सकता है। साधुओं का वह दल सायंकालीन नित्यकर्मों से निपट कर जाने लगा, तो श्रीराम भी अपने आसन से उठे। दल में सबसे बुजुर्ग संन्यासी के पास गए। उन्हें प्रणाम किया। संन्यासी ने आशीर्वाद की मुद्रा में हाथ उठा दिया। श्रीराम ने पूछा, 'महाराज आप किधर यात्रा करेंगे।'

संन्यासी ने बताया कि बद्रीनाथ जाएंगे। फिर वह बोला, 'तुम्हें चलना हो तो चलो। अकेले ही जान पड़ते हो। यात्रा अच्छी कट जाएगी। कुछ ज्ञान-ध्यान की बातें भी होती रहेंगी।'

श्रीराम को लगा कि महाराज कुछ ज्यादा ही बोलने वाले हैं। साथ जाने के लिए उनका गंतव्य नहीं पूछा था। उद्देश्य यात्रा की तैयारी के बारे में कुछ समझना था। उन्होंने कहा, 'नहीं-नहीं हमें बद्रीनाथ नहीं जाना?'

‘तो कहाँ जाना है? संन्यासी चलते-चलते रुक गए, घर से भाग कर आए हो क्या? वैराग्य लेना है? यहाँ क्या कर रहे हो? कहाँ के रहने वाले हो.....?’ मंडलेश्वर लगने वाले उन साधु ने एक साथ ढेरों सवाल कर दिए। श्रीराम उन सवालों के कारण अचकचा गए। लगा कि किसे छेड़ दिया। वे बोले ‘क्षमा करें महाराज हमसे गलती हो गई। हमने आपका समय नष्ट किया?’

‘व्यर्थ ग्लानि में मत जाओ बच्चा। हम जानते हैं तुम क्या पूछना चाहते हो?’ उस संन्यासी ने कहा। श्रीराम कोई उत्तर दिए बिना महात्मा की ओर देखते रहे, ‘जिसकी पुकार पर यहाँ आए हो न, उसी का विश्वास रखो, वही तुम्हें जहाँ ले जाना होगा ले जाएगा। किसी संगत में जाने के बजाय अकेले जाना ही श्रेयस्कर है।’

संन्यासी ने ये बातें क्या सोचकर कहीं थीं? श्रीराम को कुछ समझ नहीं आया। उन्होंने अर्थ निकालने के लिए माथापच्ची भी नहीं की। संवाद से सिर्फ यह भाव जगा कि मार्ग की चिंता, सर्दी से बचाव और कठिनाइयों के बारे में सोचना व्यर्थ है। जिस मार्गदर्शक सत्ता ने हिमालय के लिए बुलाया है, वही आगे का प्रबंध भी करेगी। उन्हीं भाव-धाराओं में बहते हुए कुछ सामान ऋषिकेश में छोड़ दिया। जो सामान छोड़ा, उसमें छाता, कुछ वस्त्र और एक कंबल था। थैली में एक कंबल रखा तो प्रथम साक्षात्कार के समय मार्गदर्शक सत्ता का दिगंबर रूप स्मरण हो आया। विचार आया कि सफेद बर्फ से घिरे वातावरण में बिना वस्त्रों के रहा जा सकता है, तो सर्दी से बचाव के तामझाम लेकर चलने का क्या औचित्य है?

संतों की वह मंडली बद्रीनाथ जा रही थी। उनसे कुछ दूरी बनाकर श्रीराम भी चल दिए। यह निर्धारित नहीं किया था कि बद्रीनाथ जाना है। कहाँ जाना है यह भी निर्धारित नहीं था। आंतरिक स्फुरणा का अनुसरण करते हुए चलते रहे। रुद्रप्रयाग, देवप्रयाग, कर्ण प्रयाग, नंद प्रयाग और विष्णु प्रयाग होते हुए बद्रीनाथ तक पहुँचा जाता है। उन दिनों भी सामान्य वाहन और पैदल पथ थे, लेकिन संन्यासियों ने अलग ही रास्ता चुना। परिचित मार्गों से जाने पर ऋषिकेश से बद्रीनाथ लगभग तीन सौ किलोमीटर दूर पड़ता है। साधु मंडली ने जो रास्ता चुना वह मुश्किल से सात किलोमीटर लंबा था। अज्ञात पहाड़ी मार्गों से गुजरते हुए वे लोग अगली शाम तक ही जोशीमठ पहुँच गए।

नृसिंह मंदिर के सामने पहुँच कर विश्राम किया। प्रातःकाल संध्या-पूजा के बाद श्रीराम नृसिंह मंदिर गए। शालग्राम शिला में तराशी गई यह मूर्ति अद्भुत है। प्रतिमा की एक भुजा बहुत पतली है। पहली बार देखने पर लगता

है कि थोड़ा भी छुआ या दबाया तो भुजा टूट सकती है, लेकिन यह भय निराधार है। शताब्दियों से विग्रह इसी स्थिति में है। किंवदंती है और लोगों का विश्वास भी कि जिस दिन यह भुजा अलग हो जाएगी, उस दिन नर-नारायण पर्वत मिल जाएंगे। दोनों पर्वत जोशीमठ से थोड़े ही फासले पर हैं। उनके बीच से रास्ता निकलता है और बद्रीनाथ तक जाता है। लोगों का मानना है कि नर नारायण पर्वत के मिलते ही बद्रीनाथ जाना असंभव हो जाएगा। फिर बद्री विशाल की पूजा आराधना भविष्य बद्री में होगी। यह भी कि उस दिन कलियुग का अंत हो जाएगा। अथवा सृष्टि में प्रलय भी हो जाएगा।

मंदिर परिसर में ही श्रीराम ने इस तरह की चर्चाएं सुनी लेकिन उन पर कोई ध्यान नहीं दिया। वे नृसिंह भगवान के दर्शन करते ही जोशीमठ आ गए। मठ की स्थापना आदि शंकराचार्य ने की थी। यहाँ उन्होंने त्रोटकाचार्य को अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया था। जोशीमठ की प्रतिष्ठा इस पीठ के कारण ही है। शीतकाल में बद्रीनाथ की पूजा-आरती का प्रचलन शंकराचार्य ने ही कराया था। प्रमाण तो यह भी मिलते हैं कि बद्रीनाथ का मंदिर हिमालय के दरों से आने वाले आततायी विदेशियों ने ध्वस्त कर दिया था। वहाँ की प्रतिमा भी खंडित कर कुंड में फेंक दी थी। बद्रीनाथ की पुनर्प्रतिष्ठा आदि शंकर ने ही की थी। उन्हीं विभूति ने जोशीमठ में शांकरमठ की स्थापना की। सभी जानते हैं कि इस तरह के चार मठ देश के चारों कोनों में स्थापित किए गए।

शांकर मठ का विवाद

ज्योतिर्मठ में शंकराचार्य और उनके शिष्य तथा इस पीठ के प्रथम आचार्य त्रोटक की मूर्तियाँ हैं। मंदिर में तब कोई पीठाधीश नहीं था। दक्षिण भारत से नियुक्त पुजारी रावल ही मठ में पूजा-अर्चना करते थे। लगभग डेढ़ सौ वर्ष से वहाँ की आचार्य परंपरा विच्छिन्न थी। जिन विभूति या शंकर के अवतार कहे जाने वाले महापुरुष ने इस मठ की स्थापना की थी, उन्हीं की आरंभ की हुई परंपरा की दुर्गति के बारे में सुनने को मिला तो श्रीराम का हृदय दुखी हो उठा। वृत्तांत वहाँ के रावल पुरोहितों से सुनने को मिला। सुनकर श्रीराम देर तक शंकराचार्य की प्रतिमा के सामने बैठे रहे। उठकर मठ में स्थापित स्फटिक शिवलिंग के समीप आए। वहाँ अभिषेक किया। शांकर गुफा में स्थापित

हिमालय से आमंत्रण

शिवलिंग के बारे में कहते हैं कि यह कैलाश से लाया गया था। स्वयं आदि शंकराचार्य ने ही इसकी स्थापना की थी। इन उल्लेखों को ध्यान से सुनने के बाद श्रीराम किसी गहरे विचार मंथन में चले गए। कुछ कदम चलने के बाद वे खीझे हुए से दिखाई दिए। संभवतः भीतर आए उतार चढ़ावों ने उन्हें खिन्न किया हो। भावों और विचारों के वे उभार अपनी संस्कृति और प्राचीन गौरव गरिमा के क्षत-विक्षत हो जाने से ही आ रहे थे।

श्रीराम मंदिर से बाहर निकलकर कुछ दूर स्थित एक वृक्ष की छाया में बैठ गए। वे सोचने लगे कि अब किस दिशा में जाना है। इस ऊहापोह के साथ बद्रीनाथ के खंडित गौरव और नर-नारायण पर्वत मिलने के बाद होने वाले विनाश की किवदंतियों पर भी ध्यान जा रहा था। दस-पंद्रह मिनट अपने अंतस् में डूबते-उतराते कब आँख लग गई, पता ही नहीं चला। पेड़ के सहारे बैठे-बैठे जैसे नींद आ गई। पहाड़ी यात्रा ने बुरी तरह थका दिया था। ऊबड़-खाबड़ रास्तों से आने के कारण शरीर पर बेहद दबाव पड़ा था। रात में अच्छी नींद आई थी, लेकिन थकान अभी बाकी थी शायद। आधा घंटे बाद नींद खुली। ज्योतिष्पीठ के सामने ही एक झरना बहता है। उसे दंडधारा कहते हैं। श्रीराम ने झरने के पानी से हाथ-मुँह धोए और आचमन किया।

आचमन के बाद क्षण भर के लिए ही मन में प्रश्न आया कि अब किधर चलना है? प्रश्न के तत्क्षण बाद या उससे मिलता हुआ ही समाधान भी आया। भविष्य बद्री होते हुए मानसरोवर की ओर निकलना चाहिए। समाधान अपने भीतर ही आंतरिक प्रेरणा की तरह उभरा था। इसे मार्गदर्शक सत्ता का प्रेषित निर्देश भी मान सकते हैं। गंतव्य और मार्ग स्पष्ट होते ही श्रीराम नीतिघाटी की ओर चल दिए। लगभग दस किलोमीटर का पहाड़ी रास्ता तय करने के बाद तपोवन पहुँचे। वहाँ के तप्तकुंड में गुनगुने पानी से स्नान और कुछ देर विश्राम कर भविष्य बद्री पहुँचे। चारों तरफ सन्नाटा था। इक्का-दुक्का लोग ही दिखाई दिए। विष्णु मंदिर अभी खुला नहीं था। पुजारी यद्यपि पास ही रहता था, लेकिन लोगों की आवाजाही खास नहीं थी, इसलिए पूजा-आरती का क्रम नियमित नहीं बन पाया था। मंदिर पूजा-आराधना के लिए कहाँ होते हैं, उनकी व्यवस्था और अनुशासन में दर्शकों की भीड़भाड़ ही मुख्य आधार होती है। मथुरा, वृंदावन और ऋषिकेश में श्रीराम ने यह तथ्य अच्छी तरह अनुभव कर लिया था। मंदिर के पट बंद देखकर उन्हें कोई आश्चर्य नहीं हुआ।

मंदिर के पास पीपल का एक वृक्ष था। उसके नीचे एक शिला रखी दिखाई दी। श्रीराम उसे निहारने लगे। शिला पर किसी समय चढ़ाए हुए फूल और पूजा सामग्री दिखाई दी। सूखे पत्ते, तिनके और हवा में उड़कर आया गर्द-गुबार शिला पर फैले हुए थे। पिछले तीन-चार दिन से जैसे किसी ने सफाई नहीं की थी। श्रीराम को लगा कि यह शिला सामान्य नहीं है। पूजा सामग्री चढ़ाई हुई दिखाई दे रही है। इसका अर्थ है कि यह कोई देव प्रतिमा है। शिला को साफ कर गौर से देखा तो स्पष्ट प्रतीत हुआ कि प्रतिमा ही है। प्रतिमा है लेकिन अधबनी है। जिस किसी भी देवता की हो, आकृति आधी ही बनी दिखाई देती है। धड़ के ऊपर का भाग पहचाना जा सकता है। वह भी बहुत स्पष्ट नहीं है। बहुत कोशिश करने पर अनुमान लगाया जा सकता है कि यह विष्णु की प्रतिमा हो सकती है।

असमंजस हुआ कि विष्णु मंदिर पास ही है। प्रतिमा उसमें स्थित नहीं होकर बाहर क्यों रखी हुई है। कोई कारण समझ नहीं आने के बाद श्रीराम ने उस सवाल को अनुत्तरित छोड़ दिया और वृक्ष के पास ही बैठ गए। वे देखना चाहते थे कि भविष्य के बद्रीनाथ कैसे हैं? इसलिए पुजारी का इंतजार कर रहे थे। दोपहर का सूरज पश्चिम की ओर खिसकना शुरू हुआ। तब पुजारी आता दिखाई दिया। उसने मंदिर के पट खोले। उससे पहले दरवाजे पर चढ़ाई हुई सामग्री बटोरी। वह बुदबुदाता जा रहा था। सामग्री कम देखकर शायद आगंतुकों के लिए कुछ कह रहा था।

पट खुलने पर श्रीराम दर्शन के लिए आगे बढ़े। विष्णु मंदिर में गर्भगृह के भीतर नहीं जाया जाता। श्रीराम ने बाहर खड़े होकर ही हाथ जोड़े। पुजारी ने कहा, 'भीतर आना है। पास से दर्शन करना चाहो, तो कर सकते हो। सवा रुपया लगेगा।'

सुनकर श्रीराम स्तब्ध रह गए। इस जंगल में भी भगवान के दर्शन से कमाई। वे चुप रहे। पुजारी ने फिर टोका, 'सोच लो। कोई है नहीं, इसलिए मौका है, वरना विष्णु मंदिर में अंदर किसी को नहीं आने दिया जाता।' श्रीराम ने पुजारी की पेशकश पर कहा, 'नहीं महाराज। मैं मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता। यहीं से ठीक हूँ।'

पुजारी फिर कुछ बुदबुदाया। श्रीराम को यह तो नहीं सुनाई दिया कि वह क्या कह रहा है, लेकिन उसके भाव जरूर समझ आ गए। श्रीरामने कहा, 'परेशान मत होइए महाराज। मैं अभीष्ट दक्षिणा चढ़ाऊँगा।' यह कहते हुए उन्होंने थैली में से सवा रुपया निकाला और गर्भगृह की चौखट पर रख दिया।

‘किसी कुलीन परिवार के लगते हो,’ पुजारी ने प्रसन्नता व्यक्त की। थोड़ा खुलने की दृष्टि से कहा, ‘अकेले ही आए हो क्या? इस छोटी सी उम्र में तीर्थयात्रा की क्या सूझी? क्या साधु-संन्यासी होने का मन है? यहाँ किसी बाबा-जोगी को अपना गुरु मत बनाना। ज्यादातर लोग कपट मुनि होंगे।’

पुजारी ने एक ही सांस में कई सवाल कर दिए और सलाह भी दे दी। वह सवा रुपया मिलने की खुशी में आत्मीयता जता रहा था। जिस किसी भी कारण जी खोल रहा हो, श्रीराम ने उसका आदर ही किया। पूछने लगे, ‘बाहर जो प्रतिमा है, वह किनकी है।’

‘वह प्रतिमा अधूरी है। किसी ने गढ़ी नहीं है, समय अपने आप गढ़ रहा है। जब पूरी हो जाएगी, तो बंदी विशाल यहीं पूजे जाएंगे।’ पुजारी ने कहना जारी रखा, ‘तब नर और नारायण पर्वत भी मिल जाएंगे। लाता देवी के मंदिर में अभी तो चौबीस वर्ष में मेला लगता है। बंदी विशाल के यहाँ प्रकट होने पर हर वर्ष मेला लगेगा।’

विवरण देते हुए पुजारी अचानक गंभीर हो गया। ‘तब मुझे भी गर्भगृह के भीतर बुलाने का पाप नहीं करना पड़ेगा। मेले में ही बहुत लोग आएँगे और हाँ, बंदीनाथ जी का दर्शन करने वाले भी तो यहीं आएँगे। उनके चढ़ाए पैसों से मैं मालामाल हो जाऊंगा। पुजारी कहे जा रहा था। श्रीराम उसकी बातें विनोद की तरह सुन रहे थे। थोड़ी देर पहले सवा रुपया माँगने पर जो गुस्सा आ रहा था, वह तरस में बदल गया था। गरीबी है, इसीलिए ये लोग उम्मीद लगाते हैं। पुजारी कहे जा रहा था, लेकिन वह दिन देखने के लिए मैं कहाँ बचूँगा। पता नहीं कब नर और नारायण मिलेंगे और कब बंदी विशाल यहाँ पधारेंगे। कोई बात नहीं आने वाली पीढ़ियाँ ही वह सुख देखेंगी।’

पुजारी सवा रुपए की दक्षिणा से मगन था। उसे अपने ढंग से उल्लास व्यक्त करता छोड़कर श्रीराम मंदिर से बाहर आ गए। नीतिघाटी होते हुए वह अज्ञात स्थान गंतव्य था, जिसके लिए भीतर से प्रेरणा उमग रही थी। यों कहें कि वह जगह मंजिल थी, जिसके बारे में पता नहीं था कि कहां है? लेकिन वह खींच रही थी। जिस रास्ते वे जा रहे थे, वह दुरूह चढ़ाई वाला था। सकरी पगडंडी और कांटे-कंकरो से-अटे पड़े उस मार्ग पर कुछ दूर चलते हुए ही थकान आ जाती थी। जोशीमठ में दंडधारा में स्नान करने के बाद श्रीराम पर थकान ने दोबारा हमला नहीं किया। दोनों कंधों पर दो थैलियाँ, हाथ में लाठी और पांव में मोटे तले वाले रबर के जूते पहने वे सम गति से आगे बढ़ रहे थे

करीब पचीस किलोमीटर दूरी तय करने के बाद श्रीराम एक झील के किनारे रुके। झील सभी दिशाओं से पहाड़ियों से घिरी थी। उनका प्रतिबिंब पानी में दिखाई देता था। तट पर जगह-जगह पत्थर की चौकियाँ बनी हुई थीं। लगता था किसी समय लोग इनका उपयोग बैठने, वहाँ के नैसर्गिक सौंदर्य का आनंद लेने या ध्यान-धारणा के अभ्यास में करते होंगे। एक चौकी पर बैठ कर श्रीराम ने झील के पानी में झाँका। लगा अभी बर्फ पिघल कर आई है और द्रवीभूत हिम पहाड़ियों की गोद में जमा हो गयी है। स्वच्छ पारदर्शी जल शीशे की तरह साफ था। उसमें निरभ्र आकाश, पहाड़ियों की चोटी और देखने वाले के प्रतिबिंब के साथ जल की गहराई के अलावा कुछ नहीं दिखाई दे रहा था।

जहाँ बैठे थे, वहीं से सब दिशाओं में नजरें दौड़ाकर श्रीराम ने गणना की। सात पहाड़ियाँ झील को घेरे हुए थीं। उन्हें देखकर श्रीराम चौकियों की गिनती करने लगे। जहाँ बैठे थे, वहीं से गणना की। पाया कि चौबीस आसन बने हुए हैं। क्या यह स्थान किसी समय तपस्थली रहा होगा? मन में विचार आया। हिमालय ऋषि मुनियों का निवास है, किसी समय क्या? अब भी यहाँ ऋषि सत्ताएँ आती होंगी।

सात पहाड़ियों से उस झील के बारे में बाद में पता चला कि खालसा पंथ के संस्थापक गुरु गोविंदसिंह ने अपने पूर्व जन्म में यहाँ तप किया था। तब उनका नाम मेधस मुनि था। यह पता चलने के बाद १९३६ में वहाँ सिक्खों के तीर्थों की स्थापना हुई। वही स्थान अब हेमकुंड साहब के नाम से विख्यात है। यहाँ गुरुद्वारा भी बना हुआ है और आने-जाने-ठहरने की उत्तम व्यवस्था हो गई है। श्रीराम उस स्थान पर देर तक बैठे रहे। उनके बैठने से लग रहा था, जैसे किसी की प्रतीक्षा कर रहे हों। झील के किनारे बैठे-बैठे उन्हें प्रतीत हुआ कि कोई उनसे संवाद की कोशिश कर रहा है। अस्फुट ध्वनि सुनाई दे रही थी। आसपास देखा, कोई नहीं था। आवाज फिर भी आ रही थी।

चित्त को बहुत शांत और निश्चल करने के बाद ध्वनि स्पष्ट हुई। यह आवाज इतनी क्षीण थी कि लगता था वर्षों से चुप रहे कंठ से आ रही हो। ऐसे कंठ से, जो बोलना ही भूल चुका हो। ध्वनि की दिशा का अनुमान किया। पाँच आसन दूर एक कृष्णवर्ण आकृति दिखाई दी। वह श्रीराम को संबोधित करती हुई अपने पास बुला रही थी। चौकी से उठकर श्रीराम उस आकृति के पास गए। उसे प्रणाम किया, तो आकृति से आवाज हुई, मुझे किसी भी नाम से पुकार

हिमालय से आमंत्रण

सकते हो। मेरा कोई नाम नहीं है। मुझे सिर्फ यह कहने का निर्देश हुआ है कि तुम गोमुख के पास पहुँचो। गोमुख से आगे नंदनवन है, वहाँ तुम्हारी प्रतीक्षा हो रही है।

आकृति ने जो कुछ कहा, उसे श्रीराम ने मन में ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया। इतना ही कहा कि मार्ग का पता नहीं है। आकृति ने कहा, कठिन नहीं है। यहाँ से जोशीमठ वापस जाओ। चमोली, गोपेश्वर, गुप्तकाशी आदि स्थानों पर जाने की आवश्यकता नहीं है। रास्ता बहुत लंबा पड़ेगा। जोशीमठ में कुछ लोग मिलेंगे। उनका साथ पकड़ लेना। छोटे रास्ते पर चलते हुए कल शाम तक गोमुख पहुँच जाओगे। श्रीराम ने इस निर्देश को भी मार्गदर्शक सत्ता के किसी प्रतिनिधि का संकेत माना और मान लेने के अर्थ में सिर हिलाया। उसी आकृति ने कहा, 'कहीं रुकने अटकने की जरूरत नहीं है। सीधे गोमुख पहुँचकर ही दम लेना है, समझे।'।

श्रीराम ने जी कहा और उस आकृति को प्रणाम करने के लिए सिर झुकाया। उनके प्रणाम पर ध्यान दिए बिना ही वह आकृति झील में उतर चुकी थी और घुटनों-घुटनों पानी में जाकर अर्घ्य चढ़ाने लगी थी। श्रीराम ने झील में स्नान किया और कुछ देर जप करने के बाद ध्यान लगाया। उस आकृति ने निस्पृहता दिखाई थी। घुटनों तक पानी में उतरने के बाद पीछे मुड़कर भी नहीं देखा था। साधना मार्ग के पथिकों को वैसा ही निस्संग होना चाहिए। श्रीराम भी अपने साधन-भजन में तत्पर हो गए। उस आकृति से विरत होने या क्षण भर पहले हुई भेंट को भुला देने के लिए उन्हें कुछ नहीं करना पड़ा था। पानी में खींची लकीर की तरह वह स्मृति अपने आप तिरोहित हो गई। झील के तट पर कुछ देर और बैठकर श्रीराम जोशीमठ के लिए वापस मुड़ गए।

तपोवन में पहला दिन

जोशीमठ वापस आने में जितना समय लगा, वही थोड़ा अनुभव हुआ। शायद इसलिए भी कि यात्रा वापसी की थी। रास्ता एक बार देख लिया था, इसलिए कौतूहल और रोमांच नहीं हो रहा था। उसके बाद तो समय जैसे हवा की तरह उड़ने लगा। जोशीमठ में शंकर गुफा के पास दो बुजुर्ग संन्यासी मिले। दोनों की आयु में दस-पंद्रह वर्ष का अंतर था। लगभग साठ वर्ष की अवस्था वाले स्वामी निर्मलानंद और उनसे उम्र में छोटे स्वामी गंभीरानंद। दोनों गुरु

शिष्य थे। उनसे बड़ी सहजता और शीघ्रता से परिचय हो गया। साथ बनने में भी देर नहीं लगी। करीब दस मिनट में ही गोमुख तक साथ चलने की बात तय हो गई। निर्धारण इस तरह हुआ जैसे पहले से सब कुछ तय था।

जिस ऋतु में यह यात्रा हो रही थी, उसमें मौसम ठंडा ही रहता है। मौसम से ज्यादा रास्ते की कठिनाइयाँ विकट थीं। भविष्य बद्री से आगे झील पर जिस तपस्वी ने गोमुख का संदेश दिया था, उसकी बातें मन में गूँज रही थीं। उस तपस्वी को देखकर श्रीराम के मन में यह आशा भी जगी थी कि रास्ते में सिद्ध-योगियों से भेंट होगी। पहाड़ियों और गाँवों से होते हुए संन्यासियों के साथ जिस रास्ते पर चल रहे थे, उसमें जगह-जगह गुफाएँ थीं। लगता था कि अब इस गुफा से कोई सिद्ध महात्मा निकल आएँगे। वह गुफा पीछे छूट जाती, तो थोड़ी निराशा होती। वे फिर आगे बढ़ते और अगली गुफा आने तक प्रतीक्षा करते, लेकिन अगली गुफा आने पर फिर वही निराशा।

एक स्थिति ऐसी आई कि सिद्ध-योगियों के मिलने की आशा ही छोड़ दी। दोनों साथियों के साथ बातचीत करते हुए आराम से रास्ता कट गया। बीच में चट्टियों पर छोटी-मोटी दूकानें मिल जातीं। तीनों लोग वहाँ कुछ देर सुस्ता लेते। दूकानों पर बैठे पहाड़ी लोगों से कुछ देर गपशप भी हो जाती। वे आटा, दाल, चावल जैसी उपयोग की चीजों के साथ चना, गुड़, सत्तू, आलू, माचिस आदि भी रखते थे। लोग अपनी आवश्यकता के अनुसार ये चीजें खरीदते। वहीं बनाने खाने की व्यवस्था भी दूकानों पर होती थी। सामान खरीदने पर खाना बनाने, पकाने और खाने के बरतन बिना किराया लिए ही ये लोग दे देते।

चट्टियों से ज्यादा वास्ता नहीं पड़ा। रास्ते में कुछ गाँव पड़े। उनमें आबादी बहुत कम थी। जो थोड़ी बहुत थी, उसमें भी महिलाओं का प्रतिशत ज्यादा था। पुरुष रोजी रोटी कमाने के लिए मैदान में उतर गए थे। यद्यपि साथ था, फिर भी सुनसान रास्ते पर डर लगता था, जहाँ-तहाँ जंगली जानवर और हिंस्र पशु दिखाई दे जाते। बीस-बाइस घंटे के रास्ते में पंद्रह बार शेर, तेदुंग, चीते और भालू से आमना सामना हुआ। कुछ मोड़ों पर छोटे आकार के शेर भी दिखाई दिए। आजकल तो इलाके में उस प्रकार के शेर नहीं मिलते। जंगली जानवरों की खाल का व्यापार करने वाले लोगों ने उनका खात्मा कर दिया, लेकिन १९२६-२७ में इस तरह के शेर बड़ी संख्या में थे।

गोमुख तक का जो रास्ता तीन दिन में तय होता है, वह एक दिन में ही पार कर लिया। गोमुख-गंगोत्री से लगभग बीस किलोमीटर दूर है, लेकिन वहाँ भी अनजाने, पथरीले रास्तों से होकर जाना हुआ। दोनों संन्यासी गोमुख पहुँच कर अलग हो गए। पिछले पच्चीस साल से इसी क्षेत्र में रहते थे। उन्हें सीधे, आसान और लंबे रास्तों के साथ कम समय में तय हो जाने वाले छोटे रास्तों की भी अच्छी जानकारी थी। उत्तराखंड के इस क्षेत्र का चप्पा-चप्पा उनका देखा हुआ था। छोटे रास्ते बेहद कठिन हैं, लेकिन पैदल यात्रा करने वाले लोग उन्हें ही चुनते हैं। जिनके शरीर में सामर्थ्य है, वे तो हर हाल में इन रास्तों से मंजिल तक पहुँचना चाहते हैं।

गोमुख से आगे सिर्फ बर्फ की वादियाँ ही हैं। चारों तरफ धवल तुषार से आच्छादित हैं। बर्फीले पठार वाले इस क्षेत्र में पग-पग पर चुनौतियाँ हैं। इतने ज्यादा खाई-खड्ड हैं कि थोड़ा भी फिसले तो उनमें गिर जाने का खतरा है। गोमुख से आगे का यह रास्ता मात्र चार किलोमीटर है, लेकिन पग-पग पर इतने जोखिम हैं कि प्रतिक्षण सजग सतर्क रहना पड़ता है। बर्फ की चादर उलट कर प्रकृति जगह-जगह पत्थर और मिट्टी भूर-भूर कर गिराती रहती है।

चार-पाँच किलोमीटर का यह रास्ता तय करते हुए श्रीराम को कई बार पिछले दो दिन याद आए। वे रास्ते भी कम खतरनाक नहीं थे; लेकिन बर्फीली, उसके नीचे छिपे मौत के खड्ड और कुएँ जहाँ-तहाँ नहीं थे। मुख्य खतरा हिंस्र पशुओं से ही था। उनसे आमना-सामना होने पर मौत सामने खड़ी दिखाई देती थी; लेकिन वे जानवर भी मनुष्यों से डरते थे। जहाँ रात बिताना पड़ी, वहाँ आसपास काले सांप रेंगते और मोटे अजगर फुफकार मारते दिखाई दिए थे। गोह, रीछ, तेदुंग और हाथी आदि जानवरों से भी सामना हुआ था। तपोवन के बर्फीले पठार में उन मुकाबलों की याद आ गई; लेकिन यह पठार ज्यादा कँपा देने वाला था। इक्का-दुक्का संन्यासी वहाँ दिखाई दिए। उन्होंने मार्ग के कुछ किस्से सुनाए, अगर उन पर ध्यान लगाया जाए तो वे और रोंगटे खड़े करने वाले थे।

इन रोमांचक स्मृतियों और विवरणों से बाहर निकल कर श्रीराम ने जहाँ तहाँ दिखाई देने वाले रंगीन पत्थरों और पहाड़ी फूलों को निहारना शुरू किया। चारों ओर फैले उज्ज्वल धवल तुषार में ये रंगीन पत्थर और फूल प्रकृति का इन्द्रधनुषी शृंगार कर रहे थे। तभी श्रीराम को वहाँ फैले खाई-खड्डों की याद आई। दोनों अनुभूतियों के संगम ने बोध जगाया कि जीवन का आनंद मृत्यु के

स्मरण से ही है। उसकी विभीषिका याद रहे, तो हम वर्तमान को ही समग्रता से जीने लगते हैं। जो क्षण सामने प्रस्तुत है, उसे भलीभांति साधने लगते हैं और वह सत्य के साथ आनंद की अनुभूति भी करा देता है। इस अनुभूति के साथ यह भी स्मरण आया कि पिछले तीन-चार दिनों में किसी भी समय गरम कपड़े पहनने की आवश्यकता नहीं हुई। जोशीमठ, नीतिघाटी रास्ते से ही वापसी और उपत्यिका में होते हुए हर जगह मौसम प्रतिकूल था; लेकिन ठंड ने कहीं भी नहीं सताया।

सर्दी ने नहीं सताया यह स्मरण आते ही मन ने कहा, मुँह, आँख, कान, नाक आदि खुले रहते हैं। उन्हें सर्दी नहीं लगती, तो बाकी देह को सर्दी क्यों लगनी चाहिए। पहाड़ों में लोग बिना गरम कपड़ों के ही रह लेते हैं। उन्हें ठंड नहीं लगती। जोशीमठ से गोमुख तक आते हुए स्वामी निर्मलानंद की बातें याद हो आईं। उन्होंने कहा था पहाड़ ऊपर ठंडे रहते हैं, लेकिन उनमें जो गुफाएँ होती हैं वे गरम रहती हैं। लांगड़ा, मार्चा आदि शाकों की पत्तियाँ कच्ची भी खाई जा सकती हैं। उनसे गरमी मिलती है। भोजपत्र के तने पर उठी हुई गांठों को उबाल लिया जाए तो ऐसा पेय बन जाता है कि फिर जाड़ा नहीं लगता। पेट में घुटने और सिर लगाकर उकड़ूँ बैठ जाने पर भी ठंड नहीं लगती। अकेले विषम परिस्थितियों और जंगली जानवरों, प्राकृतिक खतरों का सामना करते संपन्न हुई यात्रा कुछ भिन्न परिस्थितियों में और भी रोमांच भर रही थी।

उस पठार में एक संन्यासी स्वामी तत्वबोधानंद से भेंट हुई। उन्होंने एक छोटी सी कुटिया बना रखी थी, लेकिन उसमें कम ही रहते थे। ज्यादा समय तुषार आच्छादित तपोवन में ही रहते। खुले में शरीर पर एक वस्त्र लिपटा होता। कुटिया का उपयोग यदाकदा आने वालों के लिए होता। कभी कोई आ जाता और सर्दी से ठिठुरने लगता, तो उसे ठहरा देते। यात्री एकाध दिन रुककर वापस हो जाता। इस एक उपयोग के अलावा कुटिया खाली ही पड़ी रहती। तपोवन जहाँ से आरंभ होता, वहाँ कोई आश्रम, आवास, मंदिर या तीर्थ नहीं है।

नंदनवन में मिला सान्निध्य

तपोवन से कुछ आगे बढ़ने पर नंदनवन आरंभ होता है। यात्री यहाँ तक नहीं आते। बर्फ और कभी किसी टुकड़े पर एकाध वनस्पति के अलावा दूर-दूर तक कुछ नहीं दिखाई देता। यात्रा अथवा दर्शन का वहाँ कोई आकर्षण

हिमालय से आमंत्रण

नहीं है, इसलिए लोग तपोवन से ही वापस लौट जाते हैं। निन्यानवे प्रतिशत यात्री तो यहाँ तक भी नहीं आते। उनकी यात्रा गोमुख पर ही समाप्त हो जाती है। नंदनवन इस अर्थ में सर्वथा विजन, नीरस और आकर्षण से रहित है। श्रीराम को यहां आने का आदेश नहीं हुआ होता, तो वे भी इस ओर मुँह नहीं करते। यह नंदनवन पठार से कुछ किलोमीटर आगे है। वहाँ और भी विकट स्थितियाँ हैं। बर्फ की इतनी पतली चादर जगह-जगह बिछी होती है कि संभल-संभल कर धीरे-धीरे कदम रखना होते हैं। स्वामी तत्त्वबोधानंद ने बता दिया था, एक पग आगे बढ़ाओ तो बर्फीली सतह पर धीरे से कदम रखना। इतनी धीरे कि जैसे फूल रख रहे हो। पाँव टिकाने से पहले भी यही सावधानी रखना। छड़ी का उपयोग भी कर सकते हो; लेकिन अकेले छड़ी के भरोसे ही मत रहना। शरीर का पूरा वजन उठाते हुए पाँव ठीक से टिक न जाए, तब तक अगला कदम न उठाना। जगह-जगह पानी के गड्ढों से इसी तरह बचा जा सकता है।

एक नंदन वन जोशीमठ से आगे धांधरिया के पास भूइंदर उपत्यिका में भी है। इसे नंदन कानन कहा जाता है। एक प्रसिद्ध नाम फूलों की घाटी भी है। त्रेतायुग में लक्ष्मण ने यहीं तपस्या की थी। लोगों का मानना है कि फूलों की घाटी परशुराम ने तैयार की थी। सीता स्वयंवर के समय भगवान राम की आज्ञा मिलने पर वे इसी क्षेत्र में आ बसे थे और ब्राह्मण धर्म त्याग कर क्षत्रियों के संहार का प्रायश्चित्त कर रहे थे। उद्धत क्षत्रियों का संहार करने के लिए उन्होंने शस्त्र उठाया था, लेकिन उन्हें लगा कि यह ब्राह्मणत्व की मर्यादा का उल्लंघन हुआ है। मन में हो रही ग्लानि या पापबोध से छुटकारा पाने के लिए उन्होंने भगवान से मार्ग पूछा। भगवान ने उन्हें हिमालय क्षेत्र को पुष्प-पादपों से आच्छादित करने का मार्ग बताया। विष्णु के अंशावतार भगवान परशुराम ने इसी क्षेत्र में तप किया और सैकड़ों प्रकार के फूल-पौधे लगाए। पाँच किलोमीटर लंबे और दो किलोमीटर चौड़े उस क्षेत्र में आज भी सात सौ प्रकार के पुष्प पादप हैं। दुनिया के किसी कोने में इतने-विविध फूल-पौधे और वनस्पतियाँ नहीं हैं।

श्रीराम जिस नंदनवन में पहुँचे वह फूलों की घाटी के नाम से प्रसिद्ध इस क्षेत्र से अलग है। वहाँ किसी का आसानी से प्रवेश नहीं हो सकता। आसानी क्या बहुत कष्ट उठाकर, दुस्साहस से भी नहीं जाया जा सकता। स्वामी तत्त्वबोधानंद ने जो सावधानी बताई थी श्रीराम ने उसका पूरा ध्यान रखा। फिर

भी कुछ स्थानों पर कठिनाई आई। पाँव ठीक से जमाने पर भी गहराई से धँसता प्रतीत हुआ। फिर अगले ही क्षण लगा कि जैसे कोई बाँह पकड़ कर सँभाल रहा है।

संभलते-संभलते दो ढाई किलोमीटर आगे निकले होंगे कि एक टीला दिखाई दिया। उस पर बर्फ का आवरण वेध कर कुछ वनस्पतियाँ उगी हुई थीं। देखकर आश्चर्य हुआ। बर्फानी माहौल में हरियाली कहाँ से प्रगट हुई। फिर अपने आप समाधान भी आया कि प्रकृति का चमत्कार होगा। हो सकता है, सब सहज स्वाभाविक हो, प्रक्रिया विधि समझ नहीं आती है, इसलिए चमत्कार लग रहा हो। उन वनस्पतियों की ओर ध्यान लगा ही था कि ठंडी बयार का एक झोंका आया। उस झोंके में भीनी-भीनी महक भी व्याप्त थी। गंध को पहचानने की कोशिश की। ठीक वैसी ही महक थी जैसी आंवलखेड़ा में वसंत पंचमी पर पूजा की कोठरी में अनुभव की थी।

सुगंध की पहचान होते ही वनस्पतियों की ओर से निगाह फेरी। उस दिशा में देखा जहाँ से सुगंध आ रही थी। कुछ कदम दूर अपने उसी परिचित रूप में दिगंबर अवस्था में गुरुदेव खड़े थे। उन्हें देखकर हर्ष का स्रोत फूट पड़ा। मुखमंडल पुलकित हो उठा। उन्हें प्रणाम करने के लिए झुके। दिगंबर योगी के हाथ भी आशीर्वाद की मुद्रा में ऊपर उठे। बर्फ की तरह श्वेत धवल दाढ़ी और मूछों के पीछे छिपे होठों पर मुस्कान उभर आई। आँखों में दीप्त दिखाई दे रही चमक श्रीराम का अभिवादन करती प्रतीत हो रही थी। उन्होंने मुँह से कुछ नहीं कहा। रास्ते में हुई कठिनाइयों के बारे में भी कुछ नहीं पूछा। कुशल-क्षेम की कोई औपचारिकता नहीं बरती। अपने पीछे आने का संकेत भर किया और चल दिए।

श्रीराम अपनी मार्गदर्शक सत्ता का अनुगमन करते हुए कदम बढ़ाने लगे। उनके चित्त में अब सावधानी से चलने का विचार नहीं रहा था। वे निश्चित भाव से अपनी मार्गदर्शक सत्ता के पीछे चल रहे थे। गुरुदेव उस टीले की ओर ही जा रहे थे, जिसे देखकर श्रीराम के मन में विस्मय का भाव आया था। लेकिन वे उस टीले के ऊपर नहीं चढ़े। बर्फ के भीतर बनी एक खोह में घुस गए। गुरुदेव के पीछे खोह में जाते हुए क्षण भर के लिए विचार आया कि ऊपर छाई हुई बर्फ धसक कर गिर जाए तो क्या होगा? यहीं जीवित समाधि लग जाएगी। अपने ही इस विचार पर तत्क्षण हँसी भी आई। वे हँसे ही थे कि गुरुदेव ने कहा जीवित समाधि लगने का लाभ भी तो है। तुम भी सूक्ष्म देहधारी हो जाओगे और सिद्धों के इस कानन में वास करोगे।

यह विनोद करते हुए गुरुदेव भी हँस दिए। श्रीराम को इस आभास की पुनरावृत्ति ही हुई कि उनका कोई भी भाव, विचार, संकोच गुरुदेव देख-समझ लेते हैं। उनसे कुछ छुपा हुआ नहीं है। खोह में भीतर प्रवेश करने पर देखा, कुछ शिलाएँ रखी हुई हैं। गुरुदेव ने उन शिलाओं में एक की ओर संकेत किया और कहा वहाँ बैठ जाओ।

श्रीराम उस शिला पर बैठ गए। साथ में लाए वस्त्र आदि नीचे ही रख दिए और गुरुदेव की ओर निहारने लगे। वे अपनी धूनी के पास रखे पात्र में कुछ देख रहे थे। पात्र लेकर उठे और पीछे की दीवार तक गए। गुफा में पर्याप्त प्रकाश नहीं था। सब कुछ धुँधला प्रतीत हो रहा था। श्रीराम ने इतना ही देखा कि गुरुदेव दीवार के पास कुछ देर खड़े रहे और उनके पास आ गए। पात्र को सौंपते हुए उन्होंने कहा इसे पी लो और सो जाओ।

यह पूछने की इच्छा नहीं हुई कि पात्र में क्या है? चखा तो गरम लगा और स्वाद में नमकीन-मीठा। उन्हें पीता देख गुरुदेव ने कहा, यह संजीवनी रस है। पीकर तुम्हारी भूख प्यास मिट जाएगी। शरीर को आवश्यक पोषण मिलेगा। सचमुच संजीवनी रस पीते ही लगा कि तृप्ति हो गई है। नींद आने लगी। गुरुदेव अपनी धूनी पर बैठे थे। कुछ ईंधन डाल देने से वह जलने लगी थी और वातावरण में गरमाहट आ रही थी। सोने से पहले श्रीराम ने गुरुदेव को प्रणाम किया और बाँया हाथ अपने सिर के नीचे रखकर लेट गए।

नींद जब खुली तो गुफा में कोई नहीं था। गुरुदेव भी नहीं। उनका कोई संकेत या निर्देश भी नहीं। नींद खुलने के तुरंत बाद श्रीराम तनकर बैठ गए थे। नींद टूटने पर महसूस होने वाली खुमारी भी नहीं थी। बैठते ही उन्होंने अपने आसपास देखा। शिला के पास एक टोकरी में दो फल रखे हुए थे। टोकरी किसी जंगली फल के कड़े छिलके को काटकर बनाई हुई थी। फल नारियल से बड़े आकार का रहा होगा, तभी टोकरी भी बड़ी थी। इच्छा हुई कि उन फलों को खा लिया जाए; लेकिन मन-बुद्धि ने उस पर अंकुश लगाया। पता नहीं सोते हुए कितना समय बीत गया। संध्या-पूजा के बाद ही कोई आहार लेना चाहिए।

शिला से उठकर श्रीराम गुफा के द्वार की ओर चले। वह बहुत करीने से संवारी हुई नहीं थी, लेकिन साफ-सुथरी थी। धूल-मिट्टी तो उस क्षेत्र में होती ही नहीं है कि हवा से उड़कर आने और उसके छा जाने की स्थिति बने। बाहर आते हुए लगा कि गुफा का रास्ता ऊँचा-नीचा है और सँभल कर चलना



चाहिए। गुरुदेव के साथ भीतर आना हुआ था, तब इस तरह की चिंता नहीं हुई थी। उस समय तो प्रतीत हो रहा था कि जैसे कोई गोद में उठाकर चल रहा हो। अब बाहर की ओर जाते हुए सँभल कर कदम रखे।

गुफा के बाहर निकल कर देखा, दूर-दूर तक बर्फ फैली हुई थी। बीच-बीच में रंग-बिरंगे फूल और झाड़ियाँ थीं। आकाश में सूरज चमक रहा था। जब इधर आना हुआ था, तो अलग ही दृश्य था। समय का अब भी अनुमान नहीं लग रहा था कि गुफा के भीतर कितनी देर रहे; लेकिन अंदर आने और बाहर निकलने के बीच बाहर का दृश्य जिस तरह बदला दिखाई दिया, उससे लगा कि काफी समय बीत गया है। कम से कम पंद्रह बीस घंटे तो कहे ही जा सकते हैं। क्योंकि इस अवधि में पठार की बर्फ पिघल गई थी। बर्फ पिघल जाने के कारण उसके नीचे जमी वनस्पतियाँ दिखाई देने लगी थीं।

कुछ देर प्रकृति की सुषमा निहारते रहने पर श्रीराम ने गुफा के आसपास दृष्टि दौड़ाई। थोड़ी दूर पर एक झरना बह रहा था। इच्छा हुई कि उसके पास जाया जाए। तट पर पहुँचे और पानी का स्पर्श किया, तो अच्छा लगा। वह न ठंडा था न गरम। मैदानी इलाकों में मार्च-अप्रैल की गरमी में झरनों और नदियों के पानी जैसा ही तापमान था। घाटी में क्योंकि ठंड थी, इसलिए वह और भी सुहाना लग रहा था। जल का स्पर्श करते ही याद आया कि संध्यावंदन करना है। श्रीराम ने तुरंत स्नान किया और वहीं बैठकर संध्या करने लगे। सूर्य को अर्घ्य दिया, प्रदक्षिणा की और नियमित जप करने लगे। जप निवेदन संपन्न हुआ और उठने लगे, तो देखा सामने एक युवा संन्यासी खड़े हुए हैं। उम्र रही होगी पचीस-छब्बीस वर्ष। शरीर कृशकाय था, लेकिन अस्थियाँ मजबूत लगती थीं। उठे हुए कंधे और खड़े रहने के हावभाव से वे पुष्ट और समर्थ शरीर के प्रतीत होते थे। उनके हाथ में कोई कंद था। श्रीराम उठे तो वह कंद आगे बढ़ाते हुए कहा, 'इसे ग्रहण कर लीजिए।'

श्रीराम ने कहा, 'क्षमा करें मैं अपनी मार्गदर्शक सत्ता के पास आया हूँ। उनकी अनुमति के बिना कुछ भी नहीं ले सकता।' कहने के बाद लगा कि मना करना ही पर्याप्त था। गुरुदेव के पास आने की सफाई क्यों दी? उस युवा संन्यासी ने कहा, 'मुझे आपके गुरुदेव ने ही यह लेकर आपके पास पहुँचने का आदेश दिया है।'

मन में प्रश्न उठा कि गुरुदेव को यहाँ अपना प्रतिनिधि भेजने की क्या आवश्यकता थी। वे सीधे भी निर्देश दे सकते थे, जैसे कि अब तक देते आये

हिमालय से आमंत्रण

हैं। यह शंका उठते ही युवा संन्यासी ने कहा, 'मैं आपका गुरुभाई ही हूँ। उनका निर्देश मिलते ही मैं आपके पास चला आया। यह कंद साधकों के लिए बहुत उपयोगी है। भूख-प्यास तो मिटाता ही है, शीत से बचाता और शरीर की पेशियों को योग साधना के अनुरूप लचीला भी बनाता है।'

श्रीराम को अपने मन में उठी शंकाओं पर थोड़ी ग्लानि हुई। मन के दूसरे कोने से आवाज आई, लज्जित होने की कोई आवश्यकता नहीं है। सावधानी तो बरतनी ही चाहिए। फिर एक और संदेश आया, जिनके आश्रय से यहाँ तक आना हुआ है, उन पर विश्वास करना चाहिए। उस युवा तपस्वी का दिया कंद खाने में सिंघाड़े जैसा स्वाद लगता था, लेकिन उससे तृप्ति हो रही थी। एक टुकड़ा खाने से ही पेट भर सा गया। श्रीराम ने युवा तपस्वी से पूछा, 'गुरुदेव इसी गुफा में रहते हैं क्या?'

तपस्वी ने कहा, 'नहीं। वे यहाँ भी रहते हैं। उनके विभिन्न आवासों में एक यह भी है। वे किसी भी समय आ जाते हैं और जहाँ आवश्यकता होती है, चले जाते हैं।'

'आप उनके सान्निध्य में कितने समय से हैं?' श्रीराम का प्रश्न था। तपस्वी ने कहा, 'यहाँ दिन-मास और वर्षों की गणना का कोई हिसाब नहीं है। कोई ध्यान भी नहीं रखता। सूर्योदय और सूर्यास्त का ही भान होता है। उसी से प्रयोजन पूरा होता है।'

'फिर किसी की अवस्था का पता कैसे चलता है?' श्रीराम ने पूछा। उस युवा तपस्वी ने कहा, 'इसकी आवश्यकता नहीं पड़ती। एक विशिष्ट आत्मिक स्थिति तक पहुँचे साधक ही यहाँ आ पाते हैं। हर कोई नहीं आ सकता। यह सिद्धभूमि का प्रवेश द्वार है। इस स्थिति के साधकों का शरीर समय और स्थान के प्रभाव से प्रायः मुक्त रहता है।'

उसी युवा संन्यासी से पता चला कि यहाँ से आगे सिद्धलोक में पहुँचने के लिए कम से कम तीन दिन नंदनवन में रहना आवश्यक है। यात्रा के उद्देश्य से जाने वाले सामान्य लोग नंदनवन में ही रुक जाते हैं। यहाँ घंटे-दो घंटे ठहर कर उन्हें वापस जाना पड़ता है। शरीर ज्यादा देर तक वातावरण का दबाव सहन नहीं कर सकता। घंटे दो घंटे का समय भी आक्सीजन की सहायता से ही व्यतीत किया जा सकता है। श्रीराम यहाँ आक्सीजन का प्रबंध या प्राणायाम का विशेष अभ्यास किये बिना ही आ गये थे। युवा संन्यासी के अनुसार उन्हें यहाँ

तक आने की अनुमति मिली थी और तीन दिन इसी क्षेत्र में रहकर मार्गदर्शक सत्ता के साथ आगे की यात्रा पर निकलना था।

युवा संन्यासी ने श्रीराम को कुछ अभ्यास सिखाए और देवकंद के सिवा कुछ भी नहीं खाने के लिए कहा। गुरुदेव का साक्षात्कार हो जाए और वे प्रसाद स्वरूप कुछ दें या संकेत करें, तो ही ग्रहण किया जा सकता है। कुछ आवश्यक निर्देश देकर वह साधक वापस चला गया। श्रीराम कुछ देर उस क्षेत्र में घूमते रहे। पठार में तरह-तरह के फूल खिले हुए थे। घूमते-घामते एक झील के किनारे पहुँचे। उसमें कमल खिले हुए थे। कमल के फूलों से विचित्र सुगंध आ रही थी। कमल तो पहले भी कई जगह देखे थे, लेकिन ऐसी गंध पहली बार अनुभव की थी। नासापुट में उस गंध के जाते ही तंद्रा सी आने लगी। तंद्रा में आनंद था। मन-मस्तिष्क में अनोखी मस्ती छाने लगी। श्रीराम को शंका हुई कि कुछ अनहोनी न घट जाए। वे उलटे पाँव गुफा में लौट आए। उस शिला पर हाथ टेक कर बैठ गए, जहाँ गुरुदेव ने विश्राम के लिए कहा था। कमल की सुगंध से आई मस्ती मन को अब भी आनंद से भरे जा रही थी। हाथ टिकाकर, पाँव नीचे लटका कर बैठे रहना मुश्किल हो गया। वे शिला पर पालथी मारकर बैठ गए। दोनों हाथ गोद में रख लिए। आँखें बंद हो गईं। परिवेश का बोध जाग्रत था, लेकिन यह भी नहीं कह सकते की पूरी तरह सचेत हों।

पता नहीं चला कि इस अवस्था में कितनी देर बैठे रहे। जितनी भी देर बैठे, आनंद की अनुभूति होती रही। यह आनंद पहले कभी अनुभव नहीं किया था। झील में जो कमल देखे थे, उन्हीं की छवि मानस पटल पर उभर रही है। उन फूलों में एक कमल सामान्य पुष्पों से बड़ा था। उसके इर्दगिर्द आभामंडल व्याप्त दिखाई दे रहा था। गौर से देखने पर आभामंडल में एक आकृति भी दिखाई देती प्रतीत हो रही थी। आकृति आदि शक्ति गायत्री के स्वरूप की तरह थी। वह आकृति आदिशक्ति ही थी। छवि निहारते हुए समय का बोध लुप्त हो गया था। कब तक निहारते रहे कुछ पता ही नहीं चला।

संप्रज्ञात समाधि की यह अवस्था बनी ही रहती। एक पुकार इस अवस्था के बाहर लाई। वह पुकार गुरुदेव की थी और जागने के लिए कहा जा रहा था। उन्होंने सिर्फ श्रीराम कह कर पुकारा था और सुनते ही श्रीराम इस तरह उठ खड़े हुए थे जैसे किसी ने गहरी नींद में झिंझोड़ दिया हो। सामने गुरुदेव को खड़ा देख अनायास ही प्रणाम के लिए हाथ उठ गए। उन्होंने कहा यहाँ से आगे

हिमालय से आमंत्रण

बढ़ने का समय आ गया है। जिस गंध ने तुम्हें समाधि तक पहुँचने के लिए प्रेरित किया, वह ब्रह्मकमल से आई थी।

सुनते ही श्रीराम के मन में विचार आया कि इस तरह के कमल काश सभी तीर्थों में खिल सकें। लोग सहज ही ध्यान-धारणा का आनंद लेने लगेंगे। उनके मन में यह विचार आया ही था कि गुरुदेव ने कहा, 'कमल हर कहीं खिलाये जा सकते हैं। यह दुर्लभ प्रकार के हैं, लेकिन प्रयत्न करें तो और झीलों-सरोवरों में भी उगाए जा सकते हैं। उनकी गंध हर किसी को ध्यान की गहरी अवस्था में नहीं ले जाएगी। वह गंध सहायक हो सकती है, लेकिन यात्रा तो स्वयं ही संपन्न करना पड़ेगी। ब्रह्मकमल का सूक्ष्म प्रभाव ग्रहण करने योग्य स्थिति साधना-आराधना से ही आती है।'।

इतना कह कर गुरुदेव ने अपने पीछे चलने का संकेत किया। यह संबोधन वैखरी वाणी से उद्भूत हुआ था या परावाणी से, कुछ स्पष्ट नहीं हो रहा था। ज्यादा संभव यही लग रहा था कि कि उद्बोधन सीधे अंतश्चेतना में संप्रेषित हो गया हो। उसके लिए स्वर और कंठ की आवश्यकता नहीं पड़ी हो। गुरुदेव का संकेत देखकर श्रीराम जैसी अवस्था में थे, उसी में पीछे-पीछे चल दिए। आँवलखेड़ा से साथ लाये वस्त्र और थैलों की सुध भी नहीं आई। गुरुदेव तेजी से कदम बढ़ाते जा रहे थे। जिस सहज भाव से वे जमीन पर चल रहे थे, वह चलना कम प्रतीत हो रहा था। लगता था जैसे गुरुत्वाकर्षण का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा था। पाँव इस तरह उठ रहे थे जैसे हवा में तैर रहे हों। रुई के फोहों या धुएँ से बनी आकृति की तरह वे आगे बढ़ रहे थे। उनके पीछे चलने में श्रीराम को श्रम नहीं करना पड़ रहा था। झील के किनारे पहुँच कर दोनों रुके।

गुरुदेव ने झील में प्रवेश किया। वे पानी पर भी धरती की तरह चल रहे थे। उनके चलने से न झील के पानी में विक्षेप आ रहा था और यह भी नहीं लग रहा था कि गुरुदेव के पाँव पानी में धंस रहे हैं या भीग रहे हैं। श्रीराम किनारे पर खड़े रहे। स्तब्ध होकर वे देखते रहे। गुरुदेव एक ब्रह्मकमल के पास रुके। उन्होंने उसे छुआ और हाथ ऊपर उठाया। फूल उनके हाथ में उठता चला आया। वह सामान्य पुष्पों से काफी छोटा था। लगभग कली के आकार का। ब्रह्मकमल उठाकर वे तट पर आ गए और उसे श्रीराम के हाथों में थमा दिया।

ब्रह्मकमल का स्पर्श करते ही उन्हें लगा कि शरीर बहुत हलका हो गया है। सर्दी का अनुभव भी नहीं हो रहा है। चारों ओर फैली बर्फ और सर्द हवाओं

के बावजूद कैपकैपी पहले भी नहीं छूट रही थी। गुरुदेव की उपस्थिति काया के चारों ओर ऊष्मा का घेरा पहले ही बना चुकी थी। ब्रह्मकमल हाथ में लेने के बाद एक नई स्फूर्ति का अनुभव हुआ। तेज कदमों से चलने के कारण थोड़ी बहुत थकान जो प्रतीत हो रही थी, वह तिरोहित हो गई।

मार्गदर्शक दिव्य सत्ता आगे बढ़ी। श्रीराम पीछे-पीछे चल दिए। पाँव जमीन से ऊपर उठते प्रतीत हो रहे थे। लगता था जैसे चलने में कोई श्रम नहीं करना पड़ रहा था। मन में यह बोध जाग्रत हुआ कि सिद्धियों की आवश्यकता क्यों होती है? ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर चलते हुए शरीर इतना न थक जाए कि बैठकर आसन-ध्यान लगाना भी कठिन हो जाए। आज की अच्छी परिस्थितियों में उन सिद्धियों की आवश्यकता भले ही न हो, पर उन दिनों हिमालय जैसे क्षेत्रों में आने-जाने की कठिनाई समझने वालों के लिए इन सिद्धियों का महत्त्व समझा जा सकता है।

आगे-आगे चल रहे गुरुदेव थोड़ा ठिठके। वे कहने लगे, 'इतना ही कारण नहीं है। सिद्धियाँ साधक की यात्रा में सूचना की तरह भी हैं। वे मिलती हैं तो समझा जा सकता है कि साधना सही चल रही है, लेकिन यहीं पर मत अटक जाना। आवश्यक नहीं है कि सिद्धियों को देखकर ही साधना की स्थिति समझी जाए। उनके बिना भी यात्रा चल सकती है।'।

वायु तत्त्व से बने शरीर की तरह हलके-फुलके हो कर श्रीराम गुरुदेव का अनुगमन करते चले जा रहे थे। मीलों की यात्रा कर ली होगी। उस दुर्गम क्षेत्र के चप्पे चप्पे से परिचय होने लगा। सौ मील के घेरे में घूमते हुए समय का आभास नहीं रहा। लगा घंटे-आधा घंटे में यात्रा संपन्न कर ली हो। वह क्षेत्र पूर्णतया विजन था। कहीं किसी की उपस्थिति के चिह्न नहीं थे। फिर भी लग रहा था कि लोग यहाँ रहते हैं। कहीं गए हुए हैं। उनके श्वासों की गरमाहट और कुछ देर पहले गुजरने के झोकों की अनुभूति होती थी। वातावरण में भाँति-भाँति की गंध व्याप्त थी। वहाँ दिखाई दे रहे फूलों में कोई भी उस तरह की गंध का स्रोत नहीं हो सकता। केसर, चंदन, कमल, चंपा, केवड़ा और रजनीगंधा की मिली-जुली गंध आती थी। इनमें एक भी स्रोत उस क्षेत्र में नहीं थे, जहाँ सुगंध फैली हुई था। श्रीराम ने कुछ स्थानों पर फूलों को छूकर और सूँघकर भी देखा।

सूक्ष्म देहधारी सत्ताएँ यहाँ यज्ञ-अग्निहोत्र करती रहती हैं। जैसी सूक्ष्म उनकी सत्ता होती है, वैसे ही आयोजन। श्रीराम के मन में यह बोध अनायास

हिमालय से आमंत्रण

जाग्रत हुआ, फिर उन्होंने अपने प्रश्न को दोहराया नहीं। पूरा क्षेत्र घूम लेने या जितनी परिक्रमा करनी थी, कर लेने के बाद गुरुदेव ने एक स्थान पर रुकने का संकेत किया। वे स्वयं एक शिला पर बैठ गए। श्रीराम उनके सामने करबद्ध खड़े रहे। बैठे हुए गुरुदेव पार्थिव शरीर धारण किए हुए थे। उन्हें देखकर और छूकर अनुभव किया जा सकता था। श्रीराम की ओर देखकर उन्होंने सामने इशारा किया। कह रहे थे कि उधर दृष्टि घुमाओ।

श्रीराम ने इंगित दिशा में नजरें घुमाईं। निगाह पड़ते ही कानों में वेदमंत्रों की ध्वनियाँ गूँजने लगीं। सामने घाटी में चौबीस संन्यासी अलग-अलग कुण्डों पर बैठे यज्ञ कर रहे थे। उन संन्यासियों में सभी उम्र और देह स्थिति के लोग थे। शरीर की अवस्था देखकर वे तीस से अस्सी की उम्र के बीच के लोग लगते थे। उनके स्वर और मंत्रोच्चार की शैली बहुत पुराने युग की लगती थी। आहुतियाँ दे रहे तपस्वियों की काया हृष्ट पुष्ट और स्वस्थ थी। दूर से देखने पर भी नहीं लगता था कि उन्होंने कोई लम्बे समय का उपवास किया हो अथवा शरीर को किसी तरह का कष्ट दिया हो।

अग्रिहोत्र देखकर श्रीराम अपनी सुधबुध भूल गए। शिला पर बैठे गुरुदेव ने कहा, 'ये ऋषि सत्ताएँ हैं। विश्व में सद्धर्म का पोषण करने के लिए तप-अनुष्ठान में निरत रहते हैं। इन्हें अपने मोक्ष और पुण्य के लिए साधना की आवश्यकता नहीं है। उस स्थिति को प्राप्त कर चुके हैं। करुणावश ही यहाँ जप-तप कर रहे हैं। आगे संसार का संतुलन साधने के लिए तप और यज्ञ अनुष्ठानों की आवश्यकता होगी। यह दायित्व तुम्हें पूरा करना होगा।'

श्रीराम ने गुरुदेव की बात सुनकर सिर झुका लिया। यह उनकी आज्ञा शिरोधार्य करने का संकेत था। गुरुदेव फिर कहने लगे, 'सूक्ष्म वातावरण का शोधन करने के लिए कर्मकाण्ड ही पर्याप्त नहीं हैं। उनमें प्राण भी होना चाहिए। यज्ञ, अनुष्ठानों और धार्मिक आयोजनों में ऊर्जा उत्पन्न करने की सामर्थ्य तपःपूत आत्माओं में ही होती है। वह महान तप तुम आरंभ कर ही चुके हो। सूक्ष्म जगत् के परिष्कार और सोई हुई आत्माओं में चेतना भरने के लिए भी तुम्हें विशेष प्रयास करने होंगे। यथासमय उनका विधि-विधान बताते रहेंगे।'

गुरुदेव ने इन शब्दों के साथ अपनी बात समाप्त की। वे जिस तरह चुप हो गए, उससे लगा कि वैखरी वाणी से इतना कहना ही पर्याप्त है। अब जो कहा या संदेश देना है, वह अंतश्चेतना में अपने आप उद्भूत होगा। मार्गदर्शक सत्ता



अब चलने की तैयारी में थी। श्रीराम ने अनुभव किया कि यज्ञ कर रही सिद्ध आत्माएँ अपना स्थान छोड़कर निकट आ गई हैं। पहले वे संख्या में चौबीस दिखाई दे रही थीं। अब उनकी संख्या बढ़ गई है। जैसे वे विभिन्न दिशाओं से चलकर आई हों। यह कहना ज्यादा सही होगा कि वे प्रकट हुई थीं। गुरुदेव के सामने उन सबको विनय और श्रद्धा से प्रणाम करते देख श्रीराम ने भी उनके चरणों में सिर नवाया।

गुरुदेव ने कहा, 'अब तुम अपने अंतस् का अनुकरण करो। वहाँ जैसी प्रेरणा उठे, उस दिशा में जाओ।' श्रीराम ने उनके निर्देश को सुना। यह आश्वासन भी सुना कि जहाँ भी जाओगे, हमारा संरक्षण और ऋषि सत्ताओं का परिमार्जन तंत्र उपलब्ध रहेगा। प्रेरणा भी उठी कि उसी यात्रा पथ पर चलते हुए गंगोत्री जाना है। कुछ समय वहीं व्यतीत किया जाए। गंगोत्री पहुँचने में ज्यादा समय नहीं लगा। ब्रह्मकमल हाथ में पकड़ने के बाद श्रीराम अपने आपको निरंतर हलका अनुभव कर रहे थे। संकल्प मात्र से वे अपनी गति को बढ़ा या कम कर सकते थे। इस सामर्थ्य का उपयोग हिमालय क्षेत्र की सीमा से बाहर निकलते ही बंद कर देना है। ब्रह्मकमल धारण करते ही यह संकल्प उभरा था। उसका स्मरण हो गया। वायु की गति से चलते हुए श्रीराम गंगोत्री पहुँच गए।

अमृताशन बाबा नाम के एक संन्यासी से गंगोत्री पहुँचने के कुछ ही देर बाद भेंट हुई। वे स्वयं श्रीराम को खोजते हुए गंगा मंदिर तक आये थे। भेंट के दौरान दोनों में विशेष बात भी नहीं हुई। उन बाबा के बारे में बाद में पता चला कि वे कूटे-पीसे अनाज से बना भोजन नहीं करते। गेहूँ, चावल, चने, मूँग आदि को उबाल कर खाते हैं। वर्षों से इस व्रत का पालन कर रहे हैं। आहार को खंडित नहीं करने, जीवंत और अखण्ड अवस्था में ही लेने के कारण उनका नाम अमृताशन बाबा पड़ा था। अमृताशन अर्थात् जिसका अशन (भोजन) अमृत (अखंड-अटूट) है।

उन बाबा ने भागीरथ शिला की ओर संकेत किया। शिला पर पकाए हुए चावलों के पिंड और तुलसी के पत्ते चढ़ाए हुए थे। बाबा ने बताया लोग यहाँ अपने पूर्वजों और ऋषियों का तर्पण करते हैं। इसका महत्त्व वस्तुतः राजा भागीरथ के कारण है। उन्होंने अपने पूर्वजों का उद्धार करने के लिए इसी शिला पर बैठकर तप किया था। उनके तप से अभिभूत होकर भगवती गंगा यहीं से

हिमालय से आमंत्रण

पृथ्वी लोक पर अवतरित हुई। जिन्हें भी जगत् के कल्याण के लिए महत्कार्य करने होते हैं उन्हें भगीरथ की तरह तपना होता है। अमृताशन बाबा इतना कहकर चुप हो गए। शिला के पास एक घड़ी रुकने और आँखें बंद कर बैठने के बाद श्रीराम अपने लिए गंगोत्री में दो-चार दिन रहने का ठौर तलाशने लगे। अवधि समाप्त होते ही अपनी अनुभूतियों और स्मृतियों में डूबते उतराते श्रीराम आँवलखेड़ा लौट आए। अपने चिरंजीव को सकुशल देखकर ताई जी निश्चिंत सी हो गई।



दीक्षा भूमि की यात्रा

अगस्त १९३० की पन्द्रहवीं सुबह थी। संध्या जप से निवृत्त होकर श्रीराम माँ को प्रणाम करने गए। ताईजी उस समय बाहर किसी को कुछ निर्देश दे रही थीं। प्रणाम कर श्रीराम वहीं रुक गए। ताईजी ने समझ लिया कि चिरंजीव कुछ कहना चाह रहा है। आगंतुक से जल्दी-जल्दी बात पूरी की और पुत्र को साथ लेकर अंदर आ गई। पूछा कि क्या कहना है? श्रीराम ने थोड़े संकोच और आग्रह से कहा था, 'अगर मैं वचन दूँ कि ठीक समय पर वापस आ जाऊँगा, तो क्या आप मुझे एक महीने के लिए बनारस जाने देंगी।'

इस शैली और अनुरोध को देख-सुनकर ताईजी मंत्र मुग्ध सी हो गई। ज्यादा सोच-विचार किए बिना उन्होंने अनुमति दे दी। पन्द्रह अगस्त का दिन उस समय इतना महत्त्वपूर्ण नहीं था। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने २६ जनवरी को लाहौर अधिवेशन में तिरंगा फहराया था और वही दिन स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाने की घोषणा हुई थी। लेकिन अध्यात्म क्षेत्र में काम कर रहे लोगों के लिए एक अन्य कारण से यह दिन थोड़ा महत्त्व रखता था। करीब चार वर्ष पहले महायोगी अरविन्द ने २६ नवम्बर को सिद्धि दिवस घोषित किया था। इस तिथि को भागवत् चेतना पृथ्वी पर अवतरित हुई। उस चेतना को विशिष्ट संदर्भ देते हुए श्री अरविन्द ने अतिमानस नाम दिया था। अतिमानस को संक्षेप में एक ऐसे व्यक्तित्व की संभावना कह सकते हैं, जो मन और बुद्धि से भी ऊपर प्राणमयी सत्ता का प्रतिनिधित्व करता है। उसकी विशेषताओं से सम्पन्न है। उसी वर्ष श्रीराम की यह पुरश्चरण साधना आरंभ हुई थी। १५ अगस्त उन महायोगी अरविन्द का जन्मदिन था। सिद्धि दिवस के बाद उन्होंने लोगों से मिलना-जुलना बंद कर दिया था। श्रीराम श्रीअरविन्द के जीवन और भावी योजनाओं से अच्छी तरह परिचित थे। हिन्दी में उपलब्ध उनका साहित्य भी श्रीराम पढ़ चुके थे।

दीक्षा भूमि की यात्रा

बनारस जाने की अनुमति मिलते ही उन्होंने तैयारियाँ शुरू कीं। इतनी लम्बी अवधि के लिए श्रीराम की यह पहली यात्रा थी। तैयारी का उन्हें तो कोई अनुभव नहीं था। उनके पिताश्री भागवत् कथा और सप्ताह आयोजनों के लिए नियमित जाया करते थे। उनकी तैयारी में ताईजी ही लगती थीं। उन्हें अच्छा अनुभव था। महीने भर के हिसाब से कपड़े, बिस्तर, देर तक चलने योग्य आहार और खर्च आदि का प्रबंध उन्होंने कर दिया। चार-पाँच दिन तक श्रीराम अपने संगी-साथियों को आन्दोलन के बारे में बताते रहे। उनके जाने के बाद भी गाँव में सक्रियता बनी रहे इस दृष्टि से समझाया। प्रभातफेरी, जुलूस और सुबह व्यायाम का नियमित अभ्यास चलाते रहने के लिए जोर देकर कहा। कोई नई बात हो, अकल्पनीय स्थितियाँ आएँ, तो अपने कर्तव्य का निर्धारण उसी समय कर लिया जाय। कर्तव्य निश्चित करते समय सिर्फ एक ही कसौटी अपनाई जाए कि भारत माता का सिर गर्व से उन्नत रहना चाहिए।

आगरा के पालीवाल जी ने एक पत्र लिख दिया था। उन्होंने बनारस में 'थियोसोफी' आन्दोलन के कार्यकर्ता गंगा बाबू के नाम लिखे पत्र में श्रीराम के निवास की व्यवस्था करने के लिए कहा था। गंगा बाबू का पूरा नाम गंगा शरण सिंह था। वे थियोसोफी आन्दोलन के साथ कांग्रेस के कार्यक्रमों में भी हिस्सा लेते थे। यह हिस्सेदारी मित्र-परिचितों के कारण थी। अन्यथा उनकी रुचि मुख्य रूप से अध्यात्म तक ही केन्द्रित थी। आँवलखेड़ा से रवाना होने के एक दिन पहले ताईजी ने याद दिलाया, महीने भर बाद यहाँ वापस आ जाना है। आगे नहीं बढ़ जाना। इस चेतावनी से पहले उन्होंने बनारस में ठहरने और दूसरी व्यवस्थाओं के बारे में भी अच्छी जानकारी ले ली थी।

उन्नीस वर्ष के युवा श्रीराम काशी में रेलवे स्टेशन पर उतरे, तो पंडों ने घेर लिया। उनका चक्रव्यूह तोड़ते हुए वे गंगा बाबू का घर ढूँढ़ने के स्थान पर कुछ देर बाद विश्राम घाट की ओर रवाना हो गए। घाट से कुछ पहले ही एक कुटियानुमा मकान था। उसका दरवाजा खुला हुआ था। भीतर कुछ लोग बैठे दिखाई दे रहे थे। श्रीराम का मन अनायास ही घर के भीतर जाने के लिए लालायित हो उठा। वे अन्दर चले गए। वहाँ बैठे लोगों के बीच में एक हृष्ट-पुष्ट संन्यासी पद्मासन लगाए हुए थे। वहाँ बैठे लोगों से इतना ही पता चला कि उनका नाम स्वामी शुद्धानन्द है और कई दशाब्दियों से यहाँ रह रहे हैं। श्रीराम उन्हें प्रणाम कर और लोगों के साथ बैठ गए। बैठते ही स्वामी शुद्धानन्द की दृष्टि पड़ी

और वे बोले-‘आ गए श्रीराम! तुम पहले स्नान कर आओ। तब तक गंगा बाबू भी यहीं मिल जाएँगे। वे आते ही होंगे।’

श्रीराम ने गंगा बाबू या अपने आने के उद्देश्य की चर्चा किसी से नहीं की थी। स्वामीजी के मुँह से गंगा बाबू की बात सुनकर उन्हें आश्चर्य हुआ। उस आश्चर्य को भी स्वामी शुद्धानन्द ने भाँप लिया। वे बोले-‘विस्मय मत करो। वे यहाँ नियमित आते हैं, आने का समय यही नियत है। तुम स्नान करोगे तब तक उन्हें बता दिया जाएगा।’

स्वामीजी के व्यवहार पर आश्चर्य करना छोड़ श्रीराम स्नान के लिए रवाना हो गए। आधे घंटे बाद लौट कर आए, तो देखा स्वामी शुद्धानन्द अपने स्थान पर पहले की तरह ही बैठे हैं। लोग भी उन्हें पहले की तरह ही घेरे बैठे हैं। उनमें कई नए जरूर थे।

स्वामीजी ने श्रीराम को देखकर पास ही बैठे एक अधेड़ व्यक्ति को संकेत किया और कहा, ‘गंगा बाबू तुम्हारे अतिथि आ गए हैं।’ गंगा बाबू ने उनका अभिवादन किया। श्रीराम ने अभिवादन का उत्तर दिया। कौतूहल से पूछा कि ‘आपको मेरे बारे में कैसे पता चला? किस ने बताया कि मैं आपका अतिथि हूँ?’

गंगा बाबू ने कहा, ‘स्वामी जी ने। मैं आज शाम को यहाँ आने वाला था। स्वामी जी ने ही निवास पर आ कर बताया कि आपको पालीवाल जी ने भेजा है। महीने भर के लिए वाराणसी में आपकी व्यवस्था करनी है। अभी आप मेरे यहाँ चलिए। वहाँ मन लगे तो रहना अन्यथा कहीं और व्यवस्था हो जाएगी।’

स्वामी शुद्धानन्द चुपचाप यह वार्तालाप सुन रहे थे। श्रद्धालु उन्हें जिस तरह घेरे बैठे हुए थे, उसमें कदापि संभव नहीं लग रहा था कि वे उठ कर गए होंगे और गंगा बाबू को बताकर यथा स्थान बैठ गए होंगे। गंगा बाबू का निवास स्वामी जी की कुटिया से तीन किलो मीटर दूर था। स्वभाविक गति से चलें तो पहुँचने में ही आधा घंटा लग जाता। गंगा बाबू ने बाद में बताया कि स्वामी शुद्धानन्द एक ही समय में दो या तीन स्थानों पर हो सकते हैं। वे अपने संकल्प से कई शरीर रच लेते हैं और अलग-अलग काम कर सकते हैं। श्रीराम ने कहा, ‘मेरे आने की सूचना देने के लिए इस सिद्धि का उपयोग क्या उस दिव्य ऊर्जा का अपव्यय नहीं है?’

‘स्वामी जी अपनी सिद्धियों का दुरुपयोग नहीं करते। न ही अपव्यय करते हैं। उन्होंने ऐसा किया है तो निश्चित ही कोई प्रयोजन रहा होगा’, गंगा बाबू ने कहा। बाद में हुई भेंट के समय स्वामी शुद्धानन्द ने वह प्रयोजन स्पष्ट किया।

दीक्षा भूमि की यात्रा

मुमुक्षुजनों को अपने साधन और इष्ट में विश्वास दृढ़ करने के लिए इस तरह के प्रमाण देना उपयोगी होता है। उन्होंने कहा, 'श्रीराम, तुम्हारे संबंध में एकाध ही नहीं दसियों सिद्ध पुरुष और इस मार्ग में आगे तक पहुँचे लोग अच्छी तरह परिचित हैं। वाराणसी में ऐसे कई व्यक्तियों से भेंट होगी, जो तुम्हें तुम्हारे अध्यात्म की सामर्थ्य से परिचित कराएँगे। उसका प्रमाण देंगे। वे प्रमाण तुम्हें अपने लक्ष्य पर आगे बढ़ने में सहायक होंगे।'

गंगा बाबू ने जिस जगह ठहरने का प्रबंध किया था उस स्थान से गंगा तक जाने के लिए जो रास्ता तय करना पड़ता था, उसमें कुछ साधक और सत्पुरुष डेरा डाले रहते थे। श्रीराम को वह स्थान अच्छा लगा। इसलिए नहीं कि साधु-सत्पुरुषों से अनायास ही भेंट हो जाया करेगी, बल्कि इसलिए कि वहाँ एकांत था। गंगा बाबू ने पहले अपना निवास दिखाया था। लगे हाथों विकल्प के रूप में कुछ और स्थान भी दिखा डाले थे। उसी क्रम में यह जगह पसंद आ गई थी। बाँस फाटक मोहल्ले के उस ठिकाने में श्रीराम ने डेरा लगाया। अपना नियत क्रम आरंभ करने में एक दिन भी विलम्ब नहीं किया। उसी शाम से साधना स्वाध्याय में जुट गए।

आत्मकमल की गंध चाहिए

श्रीराम जिस जगह ठहरे थे, वहाँ से थोड़ी ही दूर गंगा के किनारे हनुमान घाट मोहल्ले में विशुद्धानन्द कुटीर था। गंध बाबा के नाम से विख्यात और सूर्य विज्ञान के प्रणेता स्वामी विशुद्धानन्द ने काशी आने पर अपना पहला निवास यहीं चुना था। सिद्धों के प्रदेश ज्ञानगंज के प्रसंग और अपनी दिव्य सामर्थ्य के कारण उनकी कीर्ति यहीं रहते हुए काशी भर में फैल गई थी। ब्रह्मालुओं की संख्या ज्यादा बढ़ने लगी तो स्वामी जी मलदहिया मोहल्ले में चले गए। उस जगह आज 'विशुद्धानन्द कानन' है। श्रीराम जिन दिनों काशी गए, उन दिनों स्वामी विशुद्धानन्द नए आश्रम में चले गए थे, लेकिन वे इस कुटीर में आते-जाते रहते थे।

बाँस फाटक के किनारे से निकल कर श्रीराम सुबह स्नान के लिए गए तो गंगा तट पर ही उन्हें स्वामी विशुद्धानन्द के बारे में पता चला। उस दिन की संध्या-पूजा गंगा किनारे ही सम्पन्न की। उपासना से निवृत्त होने के बाद विचार आया कि स्वामी विशुद्धानन्द के दर्शन किए जाएँ। विशुद्धानन्द कुटीर एक अच्छा खासा तिर्मांजिला मकान था। उसमें बाबा के कई शिष्य रहते थे। श्रीराम ने



कुटीर में प्रवेश किया और अपना परिचय दिया। ब्रजक्षेत्र का एक साधक अजर-अमर नगरी में आया है। बाबा के शिष्यों के लिए यह सूचना गद्गद करने वाली थी। उन्होंने तुरन्त अपने गुरु को इसकी सूचना दी। जैसी आशा की गई थी, उसके अनुरूप स्वामी विशुद्धानन्द जी ने तुरन्त बुला भी लिया।

बाबा जिस कक्ष में थे, वहाँ और भी कई लोग थे। वे सब गेरुआ झलक देने वाले पीले रंग की दरी पर बैठे थे। उस दरी पर तेंदुए की खाल बिछी थी। बाबा उस पर विराजमान थे। गहरे श्यामवर्ण के स्वामी विशुद्धानन्द पुष्ट शरीर के स्वामी थे। सम्मोहित सी करती हुई आँखें, उठी हुई नाक और घनी दाढ़ी वाला उनका चेहरा पहली ही दृष्टि में मोह लेता था। प्रणाम कर श्रीराम वहाँ बैठे श्रद्धालुओं के बीच बैठ गए। उनके बैठते ही कोई धीरे से फुसफुसाया, 'बाबा के सामने जो फूल बिखरे पड़े हैं, उनमें गंध नहीं है। बाबा उनमें किसी भी फूल की गंध पैदा कर सकते हैं।'

श्रीराम ने चुपचाप सुन लिया। कुछ कहा नहीं। श्रद्धालुओं से बातचीत करते हुए बाबा की दृष्टि श्रीराम पर पड़ी। देखते ही उनकी आँखें चमक उठीं, जैसे उन्होंने कोई गहन सत्य देख लिया हो। उन्होंने पूछा, 'वत्स! तुम कब आए? क्या चाहते हो? किस फूल की सुगंध चाहते हो?'

श्रीराम ने कहा 'अपने भीतर विद्यमान आत्म कमल की'।

बाबा ने कहा, 'उसके लिए तो स्वयं ही साधना-पुरुषार्थ करना पड़ेगा।' 'मुझे उसके लिए ही आशीर्वाद दीजिए।' श्रीराम ने अपनी माँग रखी। बाबा ताली बजाकर प्रसन्नता व्यक्त करने लगे। कुछ देर इधर-उधर की बातें कीं और फिर अपने विषय पर आते हुए कहा, 'तुम तो सविता देवता के उपासक हो। मैं उसी के स्थूल प्रतीक सूर्य की शक्ति का उपयोग कर लोगों को स्तब्ध करता हूँ। ये चमत्कार लोगों को म्रष्टा की ओर आकर्षित करने के लिए है।' 'मुझे जैसा दिखाई देता है, आगे चलकर तुम स्वयं इस बारे में जान जाओगे। तुम्हारी मार्गदर्शक सत्ता तुम्हें अंगुली पकड़ कर उसी मार्ग पर ले जा रही है।' देर तक बातें करने के बाद बाबा ने कहा, 'यहाँ आते रहना। कानन में भी जब चाहे आ सकते हो।' फिर बोले, 'जरा निकट आओ।' श्रीराम पास गए। बाबा ने पूछा, 'तुम्हें कौन-सी गंध पसंद है।'

'चन्दन' श्रीराम ने कहा। बाबा के मुँह से अनायास निकला-'क्यों?' युवा साधक ने उत्तर दिया, 'इसलिए कि वह जितना घिसता है, उतना ही सुगंध

दीक्षा भूमि की यात्रा

बिखेरता है'। बाबा ने फिर प्रसन्नता व्यक्त की और कहा- 'अपनी हथेली को सूँघो। श्रीराम ने हथेली सूँघी। वहाँ चन्दन की सुगंध महक रही थी'। बाबा ने कहा 'यह सुगंध तुम जब भी चाहो प्रकट कर सकते हो। जिन्हें भी स्पर्श करोगे, वे लोग धन्य होंगे। इसे ज्ञानगंज के योगियों का अनुग्रह समझो'।

धन्यवाद देकर श्रीराम अपने निवास पर आ गए। दोपहर को उन्हें देखने के लिए गंगा बाबू आए। स्वामी विशुद्धानन्द से भेंट का प्रसंग उन्हें सुनाया तो वे कहने लगे कि बाबा के पास अलौकिक सामर्थ्य है। अगर उस सामर्थ्य का उपयोग किया जाय तो दुनिया से भूख और गरीबी समाप्त हो सकती है। गंगा बाबू जिस सामर्थ्य की ओर संकेत कर रहे थे, वह मनचाही वस्तुएँ प्रकट कर लेने की सिद्धि थी। स्वामी विशुद्धानन्द इस सिद्धि को विज्ञान कहते थे। कोई भी वस्तु प्रकट करने की सामर्थ्य के बारे में मालूम होने पर श्रीराम में उत्सुकता जगी। रात तक वे सोचते रहे कि इस बारे में बाबा से बात करेंगे। यह भी कि प्रचुर अनाज और साधन माँगने के स्थान पर अपने देश की स्वतंत्रता क्यों न माँग ली जाए?

भारत माता की प्रतिमा

दिन में गंगातट पर भ्रमण करते और मणिकर्णिका, दशाश्वमेध घाट होते हुए काशी विश्वनाथ के दर्शन किए। इन स्थानों पर घूमते हुए शाम बीत गई। थक कर अपनी कुटिया में आकर सो गए। सुबह उठे। वाराणसी में भी उनके लिए सुबह का अर्थ तड़के दो बजे था। उठकर गंगा स्नान के लिए गए। ध्यान पूजा और अनुष्ठान का जप पूरा होने तक सूर्योदय हो गया। कुछ देर गंगा किनारे सैर की और विशुद्ध कुटीर की ओर चल दिए। लग रहा था कि कोई प्रेरणा उठ रही है जो कुटीर की ओर ले जा रही है।

उस दिन कुटीर में ज्यादा भीड़ नहीं थी। बाबा विशुद्धानन्द के पास चार-पाँच लोग बैठे थे। वे उठकर चले गए तो श्रीराम थोड़ा पास खिसके। बाबा ने 'पूछा' तुम भी सुगंध पैदा करने की विद्या सीखना चाहते हो क्या?' श्रीराम ने नहीं मैं सिर हिलाया। बाबा उनके मुँह की ओर निहारने लगे जैसे पूछ रहे हो कि फिर क्या चाहिए। युवा साधक ने कहा, 'बाबा आप शून्य में से कोई वस्तु भी प्रकट कर सकते हो?'

'मैं कहाँ प्रकट करता हूँ। वह तो राजराजेश्वरी ने पहले ही प्रस्तुत की हुई है। कण-कण में उसकी उत्पत्ति की हुई सभी वस्तुएँ विद्यमान हैं', बाबा ने



उत्तर दिया, 'एक-एक कण में भी सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र-तारे और समूचा ब्रह्माण्ड छिपा हुआ है। विश्वनाथ का अनुग्रह होना चाहिए वह अभी और यहीं व्यक्त किया जा सकता है।'

कुछ रुक कर वे बोले, 'योग की मुख्य वस्तु स्थूल नेत्रों से नहीं दिखाई देती। जो भी महत्त्वपूर्ण और सारभूत है वह स्थूल दृष्टि में नहीं आता। उसे सूक्ष्म और कारण जगत् में चेतना से ही समझा जा सकता है। उसी से ग्रहण भी किया जा सकता है। विज्ञान के चमत्कार प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। उसके अपने नियम हैं और योग विद्या के अपने रहस्य हैं। प्राचीन काल में अपने यहाँ योग विद्या का प्रचार था। गाँव-गाँव में और घर-घर में इसे जानने वाले लोग थे। उसी के प्रभाव से भारत आध्यात्मिक और भौतिक दोनों क्षेत्रों में उन्नति के शिखर पर पहुँचा हुआ था। जिस विज्ञान या विद्या का प्रयोग हम लोग कर रहे हैं, उसमें दोनों का समन्वय है। विज्ञान में आज जिस शक्ति को महत्त्व दिया जा रहा है, उसके मूल में सूर्य ही है।'

'सूर्य की रश्मियों में सभी स्थूल पदार्थ निहित हैं। वे कैसे प्रकट किए जा सकते हैं, यह बताता हूँ।' इतना कहकर बाबा ने अपने एक सेवक को आवाज लगाई उससे भीतर के कक्ष में रखा हुआ लेंस लाने को लिए कहा। श्रीराम बैठे चुपचाप देख रहे थे। बाबा ने कहा, 'तुम क्या देखना चाहते हो?'

'भारत माता की प्रतिमा।' श्रीराम ने कहा। बाबा ने कमरे के एक कोने में रखे अंगूर के डिब्बों में से थोड़ी रुई लाने के लिए कहा। अंगूर की पैकिंग के लिए डिब्बे में लगी रुई में से थोड़ी सी रुई खींच कर श्रीराम ने बाबा को दे दी। उन्होंने रुई का फोहा अपने सामने रखा। लेंस उठाया और खुद खिड़की के पास आकर खड़े हो गए। खिड़की से आ रही रोशनी को लेंस से केन्द्रित कर बाबा ने प्रकाश रुई के फोहे पर डाला। कुछ ही पलों में रुई बदलने लगी। पहले वह सख्त हुई, फिर एक पत्थर के रूप में बदली। पत्थर के विभिन्न कोणों से आकृतियाँ उभरने लगीं। कहीं कम उभार आया और कहीं ज्यादा। देखते ही देखते वहाँ करीब पाँच इंच ऊँची भारत माता की प्रतिमा तैयार हो गई थी। सिंहवाहिनी भारत माता के पार्श्व में ध्वजा थी। दाँया हाथ अभयमुद्रा में उठा हुआ था और बाँया हाथ सिंह की पीठ पर रखा था।

बाबा ने कहा 'इसे छू कर देखो'। छू कर देखा तो वह ठोस ग्रेनाइट पत्थर की बनी प्रतीत हो रही थी। स्वामी जी ने कहा, 'इसे अपने पास रख सकते

दीक्षा भूमि की यात्रा

हो। सदैव इसी रूप में विद्यमान रहेगी। इसमें कभी कोई विकार नहीं आएगा।' इस प्रदर्शन के बाद श्रीराम ने कहा- 'बाबा सूर्य विज्ञान से कुछ भी उत्पन्न किया जा सकता है तो देश में फैली गरीबी, भूख और बीमारियों का समाधान क्यों न कर लिया जाए? लाखों-करोड़ों लोगों के लिए पर्याप्त भोजन और रोगियों के लिए औषधियाँ तैयार की जा सकती है?

बाबा ने उत्तर दिया, 'तुम्हारी भावना पारमार्थिक है; लेकिन अलौकिक शक्तियाँ लौकिक जगत् के परिवर्तन के लिए नहीं हैं। दिव्य शक्तियों का उपयोग यदि लोगों का प्रारब्ध बदलने या कर्मफल का नियम उलटने में किया गया तो उससे संसार की व्यवस्था में गतिरोध आएगा।'

सिद्धियों का उपयोग छोटे-मोटे स्वार्थों या लौकिक समस्याओं के निवारण में क्यों नहीं किया जाना चाहिए? इसका समाधान हो गया था। श्रीराम उस दिन का सत्संग या बाबा का सान्निध्य पूरा कर लौट आए। घर पर पता चला कि वरणासंगम पर महावरुणी मेले की तैयारी चल रही है। जिस जगह मेला लगता है, वहाँ वरणा नामक एक छोटी सी नदी आकर गंगा की असि नामक धारा में मिलती है। इसीलिए तीर्थ का नाम वाराणसी या वरणासंगम है।

सिद्धिमाता से भेंट

श्रीराम उस संगम की यात्रा के लिए रवाना हो गए। संगम से पहले वरणा नदी के किनारे दो शिव मंदिर हैं- एक का नाम वसिष्ठेश्वर और दूसरा ऋतेश्वर मंदिर। इन दिनों संगम के आसपास अच्छी आबादी है, लेकिन उन दिनों वह जगह सुनसान थी। इक्का दुक्का कोई साधु आकर ठहर जाते थे। कोई कुटिया, भवन या आश्रम भी नहीं बने थे। गंगा किनारे अथवा किसी मंदिर के पास ही महात्मागण अपना आसरा बनाते थे। वसिष्ठेश्वर मंदिर के पास स्वामी शंकरानंद नाम के एक संन्यासी से भेंट हुई। बातचीत चल पड़ी। बातों ही बातों में स्वामी विशुद्धानंद का जिक्र छिड़ गया। उसी संदर्भ में स्वामी शंकरानंद ने एक विदुषी का भी उल्लेख किया।

बंगाली टोला के खालिसपुर मुहल्ले में वे एक साधारण से मकान में रहती थीं। लोगों से कम ही मिलती जुलती थीं। अपने साधन-भजन में ही व्यस्त रहतीं। किसी से कोई लेना-देना नहीं। लोग उन्हें सिद्धिमाता के नाम से जानते

थे। विलक्षण बातें सुन कर श्रीराम उनसे मिलने गए। सिद्धिमाता ने पहले तो मिलने में अनिच्छा व्यक्त की। ब्रज क्षेत्र से आये हैं और गायत्री के उपासक हैं। यह पता चलने पर वे मिलने के लिए सहज ही तैयार हो गईं। बातचीत के समय उन्होंने अपना मुँह घूँघट से ढक लिया था। वे श्रीकृष्ण की भक्त थीं और मानती थीं कि अपने आराध्य को देखने के बाद किसी और को नहीं देखना चाहिए। जिन नेत्रों से अपने इष्ट के दर्शन किए हैं, उनसे लौकिक चरित्रों को नहीं देखा जाए। इस भाव निष्ठा को तर्क के आधार पर उचित नहीं ठहराया जा सकता। लेकिन भावना है तो है। श्रीराम को इस प्रतिबंध से बुरा नहीं लगा। वे सिद्धिमाता के बारे में कुछ जानकारीयाँ पा कर अभिभूत ही हुए।

सिद्धिमाता लगभग बीस वर्ष से काशी में रह रहीं थीं। इस बीच उन्होंने किसी साधु-महात्मा का सत्संग नहीं किया। उनमें से किसी का दर्शन करने भी नहीं गईं। उनका जन्म बंगाल में हुआ था। काशी आने के बाद उन्होंने अपने जन्मस्थान की ओर मुड़कर भी नहीं देखा। काशी में भी उनकी दिनचर्या गंगास्नान और देवदर्शन के बाद भजन-पूजन में ही सिमट गई थी। आमतौर पर वे किसी से बातचीत नहीं करती थीं। श्रीराम को न जाने क्यों अपने साधनाकाल के अनुभव सुनाने के लिए उत्साहित हो गईं।

साधना के प्रति उनकी एकांतिक निष्ठा ने श्रीराम को गदगद कर दिया। उन्हें लगा कि लोकरंजन के कारण साधनामार्ग में बाधा आती है। ख्याति, यश और प्रचार से बचना चाहिए। मन में इस तरह के विचार घुमड़ ही रहे थे कि सिद्धिमाता ने कहा, 'भक्तिमार्ग अपनाने वालों को लोगों से मेलजोल बढ़ाने में जरा भी रुचि नहीं लेना चाहिए। लेकिन आपका मार्ग भिन्न है। उसमें भक्ति के साथ ज्ञान और कर्म का भी समन्वय है। आपको तो लोगों का शिक्षण भी करना है, इसलिए आप मेरी तरह प्रतिबंध लगाने की बात मत सोचिए। यह निषेध आपके लिए नहीं है।'

सिद्धिमाता में आशीर्वाद-वरदान देने की क्षमता थी। लेकिन वे इस क्षमता का उपयोग नहीं के बराबर करती थीं। घोड़ा-गाड़ी की चपेट में आए एक व्यक्ति की प्राणरक्षा के लिए उन्होंने एक बार प्रार्थना की थी। यह उनके अपने गाँव की घटना है। वह व्यक्ति तो ठीक हो गया, लेकिन सिद्धिमाता कई दिन तक भोजन नहीं कर सकीं। खालिसपुरा मुहल्ले के लोगों का मानना था कि सिद्धिमाता एक बार किसी को भरपूर दृष्टि से देख लेती थीं तो उसका कल्याण हो जाता था।

दीक्षा भूमि की यात्रा

शाम को वरणासंगम और खलिसपुरा की यात्रा करते हुए ही वह दिन बीत गया। आगे भी यही क्रम चला। दो-तीन दिन छोड़कर वे स्वामी विशुद्धानंद के यहाँ जाते थे। वाराणसी की कई विभूतियों से यहीं साक्षात् हुआ। इन विभूतियों में ख्यातिप्राप्त लोग भी होते थे जिनका वैभव बहुत फैला रहता था। कम प्रसिद्ध और अपने आपको योग-साधना तक सीमित रखने वाले व्यक्ति भी होते थे। श्रीराम का संवाद या मेल-मिलाप सभी तरह के लोगों से हुआ। उनके साथ बातचीत से प्रेरणा हुई कि काशी के दर्शनीय स्थानों की यात्रा करली जाए।

‘दर्शनीय और महत्वपूर्ण स्थानों में अंतर है।’ बाबा के यहाँ उपस्थित एक साधु ने कहा ‘जो देखने योग्य है वह आवश्यक नहीं कि महत्वपूर्ण भी हो। अगर तुम्हारा भाव साधना का है तो अपनी चेतना को खुला रखना। पता चल जाएगा किस जगह कैसी तरंगे व्याप्त है।’

साधु का यह वाक्य एक सूत्र में था। साधना की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान की पहचान के लिए भी यात्रा तो आवश्यक थी। उसके बिना आध्यात्मिक ऊर्जा से संपन्न और दीनहीन स्थान का विवेक कैसे किया जा सकता था। दो तीन सहयोगियों को ले कर पंचकोशी यात्रा की तैयारी कर ली गई। पंचकोशी यात्रा अर्थात् काशी की परिक्रमा। परिक्रमा मार्ग सैंतालीस मील (करीब सत्तर किलोमीटर) लंबा है। यात्रा पाँच दिन में पूरी होती है। वाराणसी के प्रायः सभी मुख्य तीर्थ इस यात्रा में आ जाते हैं। श्रीराम की टोली के सभी सदस्य बाहर से आए हुए थे। उन्हें तैयारी के लिए खास कुछ करना नहीं पड़ा।

उत्सव के रूप में पंचकोशी परिक्रमा मार्गशीर्ष या फाल्गुन के महीने में होती है। कई लोग पुरुषोत्तम मास या शिवरात्रि के दिन भी परिक्रमा करते हैं। वैसे श्रद्धालुजन किसी भी अवसर पर जब भी समय हो परिक्रमा कर सकते हैं। मणिकर्णिका घाट पर स्नान कर ज्ञानवापी और विश्वनाथजी के दर्शन करते हुए श्रीराम और उनके सहयोगियों ने परिक्रमा की। सहयोगियों में एक संन्यासी स्वामी विद्यानंद पुरी, शिवा ब्रह्मचारी और दो गृहस्थ लोग और थे। ज्ञानवापी और विश्वनाथ मंदिर के दर्शन करने के बाद दल ने उन स्थानों का अवलोकन किया। वहाँ की स्थिति देखकर श्रीराम क्षुब्ध हुए। शिवा ब्रह्मचारी ने कहा, ‘उदास क्यों होते हो भइया? किसी समय में यह हमारा गौरव था। आज उपेक्षित और दूसरे लोगों के हाथों में है या खंडहर जैसी हालत है तो हमारी जाति का ही दुर्भाग्य है। भगवान् ने चाहा तो दुर्भाग्य सौभाग्य में भी बदल जाएगा।’

श्रीराम ने कहा, 'इनकी दुर्दशा से ज्यादा दुःखद यह है कि हम इतने दीन-हीन क्यों हो गए कि मुट्ठी भर लोग आए और हमारे जातीय गौरव के प्रतीकों को रौंदकर चले गए।'

विश्वनाथ मंदिर तब भी चारों तरफ भीड़-भाड़ भरी आबादी से घिरा था। दर्शन के लिए जाने वाले श्रद्धालुओं को पंडों के चंगुल में फँसना और अपने आपको लुटाना पड़ता था। वहाँ की व्यवस्था से भी ज्यादा बुरी हालत मंदिर की थी। विश्वनाथ मंदिर के शिखर पर महाराजा रणजीत सिंह के चढ़ाए स्वर्ण के अलावा वहाँ वैभव का कोई चिह्न नहीं था। मंदिर में छोटी सी पिंडी रखी हुई थी। कभी वहाँ विशाल विग्रह हुआ करता था। उस शिवलिंग को तोड़-फोड़कर आततायियों ने पास ही बावड़ी में फेंक दिया था। उस जगह को ज्ञानवापी कहते हैं। उस बावड़ी से सटी हुई, लगभग उसे घेरती हुई एक मस्जिद आज भी स्थित है। ज्ञानवापी के नाम से विख्यात उस मस्जिद को भी बहुत से श्रद्धालु मंदिर समझ कर प्रणाम करते हैं।

मंदिर नष्ट नहीं होते

अन्नपूर्णा मंदिर तक पहुँचते हुए श्रीराम बहुत खिन्न थे। मंदिर की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए उन्हें एक भिखारी दिखाई दिया। वह किसी से कुछ माँग नहीं रहा था। आते-जाते लोगों को सिर्फ गौर से देख रहा था। जब वह देखता और किसी की नजरें मिल जाती तो वह ठगा सा देखता रह जाता। भिखारी की आँखों में विचित्र चमक थी। श्रीराम की दृष्टि भी उससे मिली पर वे न तो चौंके और न ही सकपकाए। भिखारी ने कहा, 'जिन मंदिरों को देख रहे हो, वे जीवन्त नहीं हैं। जीवन्त मंदिरों को कोई ध्वस्त नहीं कर सकता। दुःखी मत होओ। आगे जीवन्त और जाग्रत् मंदिरों का निर्माण करने की बात सोचो। पुराने मंदिरों में स्थापित प्रतिमाओं में उन देवों का आह्वान करो।'

श्रीराम अब चौंके। उनके मन में जो कुछ चल रहा था, उस बारे में भिखारी को कैसे पता चल गया? केवल पता ही नहीं चला उसका समाधान भी दे दिया। उन्हें लगा कि यह सामान्य भिखारी नहीं है। भिखारी के वेश में अपने आपको छुपाए हुए कोई सिद्ध साधक है। पंचकोशी परिक्रमा संपन्न हो जाने के बाद उन्होंने स्वामी विशुद्धानंद के सामने अपने मन की बात रखी। मंदिरों पर आक्रमण, उनके ध्वंस और उनकी फिर से प्रतिष्ठा के बारे में पूछा। स्वामी जी ने

कहा, 'प्राणप्रतिष्ठा के लिए कर्मकाण्ड ही पर्याप्त नहीं हैं। मंदिर का वातावरण चैतन्य और साधना की ऊर्जा से संपन्न होना चाहिए। देवसत्ता का वैभव अक्षुण्ण हो तो उस स्थान पर रहने में भी वह प्रसन्न होती है।'

उन्होंने कहा, 'हिमालय के सिद्ध क्षेत्र में, सिद्धाश्रम और ज्ञानगंज में कोई विजातीय संस्कारों का व्यक्ति पहुँच ही नहीं सकता। उस स्थान की तरंगे विजातीय तत्त्वों को कोसों दूर रखती हैं। परखना हो तो वहाँ तक जाना भी आवश्यक नहीं है। ऋषिकेश कोई दुर्गम क्षेत्र नहीं है। ऊपर नीलकंठ से आगे जाने पर एक गाँव है सिद्धपुरा। वहाँ करीब चालीस-पचास मकान हैं। सब खाली हैं। सामान्य लोग उस गाँव की सीमा भी नहीं लांघ सकते। कोई दुस्साहस कर गाँव के भीतर जाए भी तो शेर और बाघ मिलते हैं। साँप, अजगर और दूसरे हिंस्र पशु आदि जहरीले जानवर दिखाई देंगे। ये प्राणी जैसे गाँव का पहरा देते हैं कि कोई अंदर न आ जाए। संस्कारी और सत्पात्र साधक को ही इन प्राणियों से कोई खतरा नहीं होता। सिद्धपुरा में रहने वाले योगी-यति जिन्हें अनुमति देते हैं वही प्रवेश कर सकते हैं। उन लोगों पर सिद्धजनों का अनुग्रह भी होता है। मंदिर, देवस्थान या तपःस्थली वहाँ रहने वाले साधकों और सिद्धों के कारण ऊर्जावान् रहती है।'

'अन्य स्थानों पर भी इस तरह के सिद्धक्षेत्र हैं। सामान्य दृष्टि से उन्हें पहचाना नहीं जा सकता। उधर जाने की इच्छा ही नहीं उठती। उठती भी है तो ऐसी स्थितियाँ बन जाती हैं कि उस दिशा में जाना ही नहीं हो पाता। विश्वनाथ मंदिर के बारे में स्वामी विशुद्धानंद जी ने कहा कि वह लोकश्रद्धा के लिए है। जो ऊर्जा हजार-बारह सौ साल पहले वहाँ मिलती थी वह धीरे-धीरे लुप्त हो गई। क्योंकि उसे बनाए रखने वाले साधक वहाँ नहीं रहे। अब स्वर्ण मंदिर (काशी विश्वनाथ) में वैसी क्षमता नहीं रही। विश्वनाथ मंदिर के नाम से आगे कई प्रतिष्ठान नगर में खुलने वाले हैं। उनमें कुछ स्वर्ण मंदिर से भव्य भी हो सकते हैं; लेकिन वे सभी देवदर्शन और भजन-पूजन के निमित्त ही होंगे।

पंचकोशी यात्रा में श्रीराम को जिन स्थानों ने आकर्षित किया उनमें अक्षय वट, अन्नपूर्णा मंदिर, काशी करवत, गोरखनाथ मंदिर, तुलसीघाट और कबीर चौरा मुख्य हैं। विश्वनाथ मंदिर का आध्यात्मिक रहस्य सुनकर भी उन्हें संतोष नहीं हुआ। स्वामी विशुद्धानंद की कही हुई बातें अपने स्थान पर सही थीं,

लेकिन मंदिर की दुर्दशा इतिहास और संस्कृति की दृष्टि से तो शोचनीय ही थी। यात्रा के दौरान वाराणसी के छोटे-बड़े सभी धर्मस्थलों से परिचय हो गया।

साधो सहज समाधि भली

कबीर चौरा पहुँच कर श्रीराम को विचित्र अनुभूति हुई। किसी समय संत कबीर यहाँ निवास करते थे। काशी में मरने वालों को मोक्ष मिलता है और यहाँ की सीमा से बाहर जाकर जो लोग मरते हैं उन्हें नरक। इस अंधविश्वास को तोड़ने के लिए कबीर अंतिम समय में काशी छोड़कर चले गए थे। विश्वनाथ की नगरी छोड़ने से पहले तक वे कबीर चौरा में ही रहे थे। उनके आसन का स्थान देवस्थान की तरह सजा सवाँर कर रखा हुआ है, जैसे वहाँ देवप्रतिमा स्थापित हो। जहाँ कबीर बैठते थे उस गद्दी के पास उनकी टोपी रखी थी और पास ही उनके गुरु स्वामी रामानंद की तसवीर थी। श्रीराम वहाँ के वातावरण को देखकर अपने आप में खो गए। उन्हें लगा कि गद्दी पर स्वयं कबीर दास बैठे हुए हैं। सामने कई श्रद्धालु हैं। कबीर उनके सामने कोई पद गाकर सुना रहे हैं। पद संभवतः 'साधो सहज समाधि भली' शीर्षक वाला था, जिसमें अपने हर कृत्य से भगवान की आराधना का संदेश निहित है। कुछ क्षण के लिए लगा कि जैसे यह पद वे स्वयं ही गा रहे हैं।

दशाश्वमेध और मणिकर्णिका घाट अपने पौराणिक और ऐतिहासिक महत्त्व के कारण प्रतिष्ठित वरणा संगम जाते हुए श्रीराम दशाश्वमेध पर कई बार गए। यह घाट वरणा संगम से करीब ढाई किलोमीटर दूर ही तो है। पौराणिक मान्यता के अनुसार यहाँ ब्रह्मा ने दस अश्वमेध यज्ञ किए थे। काशी आकर गंगा स्नान करने वाले लोग सबसे ज्यादा इसी स्थान को चुनते हैं। मणिकर्णिका भी पौराणिक और ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। घाट पर बने भैरव कुंड में हर आठवें दिन पानी निकाला जाता है। निकाले गए पानी के स्थान पर भीतरी स्रोत से स्वच्छ जल अपने आप आ जाता है।

मानस के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास ने जिस जगह शरीर छोड़ा, उस तुलसी घाट पर पहुँच कर भी श्रीराम को दिव्य अनुभूति हुई। घाट पर गोस्वामी जी की स्थापित की हुई हनुमान प्रतिमा है। प्रतिमा के पास जहाँ तुलसीदास के बैठने का स्थान है, वहाँ उनकी चरण पादुकाएँ रखी थीं। कहते हैं इसी स्थान पर मानस के गायक लोगों को रामकथा सुनाया करते थे। जहाँ मारुतिनंदन की

दीक्षा भूमि की यात्रा

प्रतिमा है। लोगों का मानना है कि स्वयं हनुमान किसी न किसी के वेश में गुप्तरूप से बैठते और कथा सुनते थे। किसी लक्षण विशेष से गोस्वामी जी ने उन्हें पहचान लिया। यों भी कह सकते हैं कि संकेत देकर स्वयं हनुमान ने अपना परिचय दे दिया। गोस्वामी जी ने उन्हें प्रणाम किया और पूजा अर्चा दी। उस समय हनुमान जी ने वचन दिया कि जहाँ भी मानस कथा होगी वहाँ वे स्वयं किसी न किसी रूप में उपस्थित रहेंगे और आदि से अंत तक अपने इष्ट का गुणगान सुनेंगे।

तुलसी घाट पर श्रीराम को संतों और विद्वानों से सुना हुआ यह प्रसंग याद आ गया। वे हनुमान के विग्रह को ध्यान से देखने लगे। देखते-देखते इतने तन्मय हो गए कि अपना भान ही नहीं रहा। लगा जैसे सिर्फ हनुमान ही हैं। उस प्रतिमा में स्पंदन हुआ। लगा कि अपने स्थान से विग्रह थोड़ा हिला है और धीरे-धीरे छिटक रहा है; लेकिन नहीं, प्रतिमा अपने स्थान पर ही थी। स्पंदन और विचलन का आभास मात्र था। वस्तुतः प्रतिमा से एक और प्रतिमा निकली थी। फिर उसी क्रम से एक प्रतिमा और निकली। धीरे-धीरे कई प्रतिमाएँ प्रकट हुईं। देखते-देखते प्रतिमाएँ सजीव हो उठीं और हनुमान की सेना अपने गुण-स्वभाव के अनुसार उछलकूद मचाने लगीं।

दृश्य को अनुभव करते हुए ही मन में विचार आया कि तीनों लोकों पर विजय पा लेने और काल को भी बंदी बना लेने वाले रावण का आतंक इन्हीं वानरों ने समाप्त किया। भगवान् चाहते तो संकल्प मात्र से रावण का अंत कर सकते थे; लेकिन उन्होंने क्षुद्र कहे जाने वाले प्राणियों को निमित्त बनाया। इसी प्रेरणा में आसुरी आतंक से संघर्ष का सूत्र भी छिपा हुआ था। कुछ देर तक यह भावभूमि रहने के बाद दृश्य अपने आप विलीन हो गया। सब कुछ सहज और पूर्ववत् था।

ज्ञानवापी के पास एक गली में 'काशी करवत' देखने गए तब भी श्रीराम को विलक्षण अनुभूति हुई। काशी करवत नामक स्थान पर अब एक कुँआ है। कुँए में घनघोर अंधेरा व्याप्त रहता है। ऊपर से कुँआ ढका रहता है। भीतर शिवलिंग स्थापित है। सफाई और पूजा आरती के समय ही वह कुँआ खुलता है और पुजारी सीढ़ियाँ उतर कर अंदर जाते थे। सामान्य समय में लोग पहुँचते तो जगत पर ही अक्षत पुष्प चढ़ा कर संतोष मान लेते हैं। किसी समय कुँए में आरी लगी हुई थी और लोग उस पर कूद कर अपनी बलि चढ़ा देते थे। समझते थे कि इस तरह मृत्यु का वरण करने से सायुज्य मुक्ति मिलती है।

काशी करवत का मर्म

श्रीराम काशी करवत गए तो वहाँ के बारे में प्रचलित कितनी ही किंवदंतियाँ लोगों के मुँह से सुनी। लोगों की सुनाई कहानियों में उन्हें ज्यादा रुचि नहीं थी। मृत्यु के एक प्रकार या आत्महत्या को गरिमा देने वाले इस तीर्थ के बारे में वे विचार कर रहे थे। उन्होंने यहाँ वहाँ घूमकर कुँए को देखा। सोचते रहे कि आत्महत्या करने से मोक्ष मिलने की यह मूढ़-मान्यता कहां से जन्मी होगी? इसका क्या औचित्य रहा होगा? इन प्रश्नों से जूझते हुए उनके चेहरे पर व्यंग्यात्मक मुस्कान आ गई। फिर वे थोड़े गंभीर हुए और सोचने लगे, हो सकता है यह प्रचलन कोई अर्थ रखता हो।

काशी विश्वविद्यालय के एक विद्वान् भी वहाँ आए हुए थे। श्रीराम की गंभीरता उन्हें अलग तरह की लगी। न जाने क्यों वे आकर्षित हुए और श्रीराम से परिचय बढ़ाया। उन्होंने अपना नाम बताया शिवराज गौतम। नाम, परिवार और निवास आदि का परिचय लिया दिया। गौतम भी वृन्दावन के पास ही मोर गाँव के रहने वाले थे। पिछले बीस वर्षों से काशी में थे। काशी हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना के बाद वहाँ से सम्बद्ध हो गए। उन्होंने श्रीराम की उदासी का कारण पूछा। श्रीराम ने कहा 'हमारे समाज में भी कैसी-कैसी मूढ़ताएँ प्रचलित रही हैं। मुक्ति या स्वर्ग के लोभ में लोग अपने इस जीवन का परित्याग कर दिया करते थे। इसमें क्या समझदारी है?'

'एक अलग तरह से देखो तो काशी करवत जीवन के प्रति अनासक्ति और उसे विविध रूपों में स्वीकार करने का प्रतीक भी है।' गौतम ने बिना भूमिका बनाए कहा। उनके उत्तर से लगता था जैसे उन्हें प्रश्न का पहले से ही आभास था और वे समाधान के लिए तैयारी किए हुए बैठे थे। उन्होंने कहा 'हमारे देश में जीवन को विविध रूपों में स्वीकार किया है। मृत्यु भी उसी का एक रूप है। जो भी जातियाँ आंतरिक स्तर पर किसी ऊँचाई को छू सकी है, उन्होंने मृत्यु को नकारा नहीं है। लेकिन अपने यहाँ विविधता की कोई सीमा नहीं है। काशी करवत अपने उत्सर्ग का ही एक प्रकार है। यों कहें कि मृत्यु के पारगमन का साहस है।'

'आरंभ किसी मनस्वी और उत्कृष्ट स्तर के साधक ने किया होगा। इसमें मृत्यु का इतना सरलीकरण नहीं हो गया था कि हर किसी को मरने के

दीक्षा भूमि की यात्रा

लिए प्रेरित किया गया हो। बाद में जो हुआ, वह निश्चित ही आत्मघात कहा जाएगा।' गौतम काशी करवत के आरंभ का बचाव कर रहे थे। लेकिन वे भी मानते थे कि बाद में पलायन और कायरता के साथ आत्महत्या जैसे अपराध भी कुँए के साथ जुड़ गए।

श्रीराम ने गौतम के दृष्टिकोण को स्वीकार किया। कोई प्रचलन विकृत हो जाता है तो उसमें संशोधन के लिए भी उपयुक्त प्रयास होते हैं। इन प्रयासों की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा, 'मध्यकाल में संत कबीर जैसी विभूति का अवतरण इन्हीं विकृतियों को दूर करने के लिए हुआ मानना चाहिए।'

गौतम ने हामी भरी। फिर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय और नगर में चल रही अन्यान्य धार्मिक-सामाजिक गतिविधियों पर देर तक बातचीत हुई। गौतम से बातचीत में श्रीराम ने वाराणसी का वर्तमान अच्छी तरह जान लिया।

जिन दिनों श्रीराम वाराणसी में थे, उन दिनों महामना मालवीय कारावास में थे। यह संयोग ही था कि जिस दिन वे काशी के लिए रवाना हुए उसी दिन २० अगस्त को दिल्ली में मालवीयजी और कांग्रेस कार्यसमिति के दूसरे छह सदस्य गिरफ्तार कर लिए गए थे। अपराध यह था कि इन लोगों ने प्रतिबंधित कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक में हिस्सा लिया था। उससे भी पहले विश्वविद्यालय के कुछ अध्यापक, कर्मचारी और विद्यार्थी सविनय अवज्ञा आंदोलन में सक्रिय हिस्सा ले रहे थे।

विश्वविद्यालय का वातावरण और वहाँ की स्थितियों से अवगत होने के लिए श्रीराम परिसर में गए। यद्यपि वे किसी तरह का हस्तक्षेप या सहयोग करने की स्थिति में नहीं थे। वहाँ की व्यवस्था, स्थिति और लोगों से मिलने-जुलने के अलावा एक भावनात्मक कारण भी था। पाँच साल पहले जिस विभूति से यज्ञोपवीत-दीक्षा ली थी, उसकी यह कर्मस्थली थी। उससे भी पहले पाँच छह साल की उम्र में अपने पिता के साथ यहाँ आने और स्थापना समारोह में भाग लेने की स्मृतियाँ भी मानस पटल पर उभर रही थीं।

मालवीय जी के गिरफ्तार हो जाने से विश्वविद्यालय के वातावरण में व्याकुलता, चिंता और आवेश के भाव घुले हुए थे। आचार्य आनंद शंकर बापू भाई ध्रुव वहाँ के प्रो वाइस चांसलर थे। उन्हें कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। सविनय अवज्ञा आंदोलन को प्रश्रय मिलने और राष्ट्रीय भावनाओं के उभार को देखते हुए सरकार ने विश्वविद्यालय के अनुदान पर तुरंत रोक लगा



दी। आचार्य ध्रुव आने वाले संकट से उबरने के लिए तुरंत लखनऊ गए। वहाँ अधिकारियों ने उनसे सरकार का क्षोभ जताया। अंग्रेज अधिकारी विश्वविद्यालय को राजनीति का केन्द्र मान रहे थे। उनकी समझ से अनुदान रोक कर ही विश्वविद्यालय को मार्ग पर लाया जा सकता था। ध्रुव ने स्पष्ट करने की पुरजोर कोशिश की कि विश्वविद्यालय एक राष्ट्रीय संस्था है। इसका उद्देश्य धर्म और नैतिकता के आधार पर युवकों को आदर्श नागरिक बनाना है। किसी भी तरह की राजनीति से उसका कोई संबंध नहीं है। उन्होंने माना कि सामयिक परिस्थितियों के कारण यहाँ के युवकों में राष्ट्रीय भावनाओं की लहर आ सकती है। लेकिन इस लहर से कोई अछूता नहीं रह सकता। प्रो वाइस चांसलर का यह स्पष्टीकरण अंग्रेज अधिकारियों के गले नहीं उतरा। परिसर में अफरातफरी मची रही।

विश्वविद्यालय में उथल पुथल

श्रीराम ने वहाँ के वातावरण में व्याप्त आवेश और उत्साह को अनुभव किया। यह भी लगा कि अपनी प्रेरणा भूमि के संस्कारों को अपनाना चाहिए। परिसर से बाहर निकल रहे थे तो मन में तरंग उठी कि अवसर मिला तो भारतीय संस्कृति और धर्म के नवोन्मेष को समर्पित ऐसा ही विश्वविद्यालय खड़ा करेंगे। उसे राजनैतिक प्रभाव और हस्तक्षेप से मुक्त ही रखेंगे। तरंग आई और वह उतरी भी कि यह कैसे संभव होगा? फिर एक और हिलोर उठी मार्गदर्शक सत्ता ही इस तरंग को संकल्प में बदलेगी और वही पूरा भी करा लेगी। महामना मालावीय उस समय नैनी (प्रयाग) सेंट्रल जेल में थे। विश्वविद्यालय में यह चर्चा जोरों पर थी कि उन्हें उपकुलपति पद छोड़ने के लिए कहा जा रहा है। प्रशासन से ही नहीं, कांग्रेस के भीतर से भी उन पर दबाव बनाया जा रहा था। यह दबाव स्थानीय कांग्रेस कमेटी की ओर से था।

कुछ विघ्न संतोषी तत्त्व इस बात के लिए प्रयत्नशील थे कि विश्वविद्यालय ही बंद हो जाए। विरोध तो आरंभ से ही हो रहा था, लेकिन विरोधियों को संस्थान के चल निकलने और प्रतिष्ठित हो जाने का भरोसा नहीं था। वे सोचते थे कि साधन नहीं है, लोगों का सहयोग नहीं है, पूंजीपति, उद्योगपति या संपन्न व्यक्तियों का पीठ पर हाथ नहीं है। विश्वविद्यालय का संकल्प कुछ ही दिनों में दम तोड़ देगा। लेकिन उनकी दुराशा पूरी नहीं हुई। छोटे- छोटे अंशदानों से ही इतने साधन जुट गए कि विश्वविद्यालय के स्पन्ददृष्ट अपनी कल्पना को साकार होते

दीक्षा भूमि की यात्रा

देखने लगे। विघ्नसंतोषी लोगों के कलेजे पर इसके बाद साँप लौटने लगा। स्थानीय कांग्रेस कमेटी में ऐसे लोगों की भरमार थी। वे विश्वविद्यालय को बदनाम करने के लिए हर तरह के हथकंडे अपनाने लगे।

दिसम्बर १९२९ में मालवीय जी ने विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में छात्रों को देश के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर करने की प्रेरणा देने वाला भाषण दिया। यह भाषण छात्र-आंदोलन के इतिहास में मील का पत्थर माना जाता है। मालवीय जी ने इसमें छात्रों से कहा था कि 'आप यहाँ से जाकर लोगों में शिक्षा का प्रचार करें, स्वच्छता और स्वास्थ्य रक्षा की बातें समझाएँ। अपने गाँव समाज में सहकारी संस्थाएँ स्थापित करें स्वतंत्रता के लिए जैसा भी त्याग अपेक्षित हो, उसके लिए पीछे न हटें। अपने भीतर स्वातंत्र्य प्रेम और मातृभूमि के लिए त्याग की भावना पुष्ट करें।'।

दीक्षांत समारोह के कुछ दिन बाद ही देश ने गांधीजी के नेतृत्व में स्वतंत्रता संग्राम लड़ने की ठान ली थी। सविनय अवज्ञा आंदोलन आरंभ हुआ। काशी हिंदू विश्वविद्यालय के छात्र भी आंदोलन में कूदे। जो लोग विश्वविद्यालय की जड़ें खोदना चाहते थे, उनके लिए यह अच्छा अवसर था। छात्र आंदोलन में घुसकर उन्होंने गुंडागर्दी और लूटमार मचाने की हरकतें की। स्वाभाविक ही छात्रों पर आरोप लगे। १९३० के शुरुआती महीनों में स्थानीय कांग्रेसियों ने इतना उत्पात मचाया कि मालवीय जी छात्रों को आंदोलन से अलग रहने की सलाह देने के बारे में सोचने लगे। लेकिन सच्चाई देर तक छुपी नहीं रही। कांग्रेस में शामिल अराजक तत्त्वों की करतूतें सामने आ ही गईं। उस समय कांग्रेस अध्यक्ष का काम देख रहे वल्लभ भाई पटेल तक बात पहुँची। सरदार पटेल ने अराजक तत्त्वों को फटकार लगाई और स्थानीय नेतृत्व से उन्हें नियंत्रित रखने के लिए कहा। कांग्रेस अध्यक्ष के निर्देश तब किसी राजाज्ञा से कम नहीं हुआ करते थे। सरदार पटेल ने आदेश दिया कि स्थानीय कमेटी के लोग या तो अनुशासन में रह कर काम करें या चुपचाप बैठ जाएँ। इस आदेश से विश्वविद्यालय को बदनाम करने वालों पर थोड़ा अंकुश लगा।

विश्वविद्यालय परिसर में जहाँ-तहाँ चर्चाएँ चलती थीं। उनमें वर्तमान स्थितियों के अलावा पिछली घटनाओं का उल्लेख भी आता। काशी प्रवास के इस दौर में श्रीराम ने राजनीति और स्वतंत्रता आंदोलन की समसामयिक दिशाधारा को देखा। तीन-चार दिन तक उस क्षेत्र में जाते रहे। वहीं आते-जाते किसी ने



बताया- 'विश्वनाथ की नगरी में एक माताजी आई हैं। वे समाधि अवस्था में रहती हैं। उनके दर्शन करने चाहिए।'

समाधि अवस्था सुनकर श्रीराम की उत्कंठा जगी। उन्होंने माँ का पता पूछा। वे रामपुरा में किसी भक्त के यहाँ ठहरी हुई थी। उनके साथ उनके पतिदेव भी थे। माँ निस्संतान थीं। लोगों का कहना था कि सामान्य गृहस्थ जीवन में उनकी प्रवृत्ति ही नहीं थी। विवाह के समय भी वे भावसमाधि में ही थीं। उनका नाम बहुत कम लोगों को पता था। कुछ श्रद्धालु उन्हें मीरा का अवतार कहते थे। उनके पति भी उन्हें माताजी कह कर ही पुकारते थे।

श्रीराम ने उनसे मिलने का निश्चय किया और रामपुरा में बताए पते पर चल दिए। माँ, जिनका नाम निर्मला देवी था, मकान की दूसरी मंजिल पर ठहरी हुई थीं। उनके दर्शन के लिए पच्चीस-तीस लोग बाहर खड़े हुए थे। जिस समय श्रीराम पहुँचे, माताजी समाधि में थीं। उनके सेवकों ने बताया कि अभी दर्शन नहीं हो सकते। समाधि खुलने पर वे स्वयं बाहर आएँगी और दर्शन देंगी। श्रद्धालु देर तक बैठे रहे। कोई दो घंटे बाद समाधि खुली। वे बाहर आईं। श्रीराम को लगा कि इतनी तेजस्वी महिला पहले कभी नहीं देखी। प्रथम दर्शन में ही आभास हुआ कि निर्मला जी के व्यक्तित्व में दिव्य आभा प्रकट हुई है।

सनातन धर्म के प्रचार में जुटे स्वामी दयानंद भी वहाँ आए हुए थे। स्वामीजी ने अपने उद्देश्य के लिए 'भारत धर्म महामंडल' की स्थापना की थी। काशी के कई विख्यात साधु-महंत इस संगठन के सदस्य थे। स्वामीजी के संगठन से बाद में कितनी ही धार्मिक संस्थाएँ उद्भूत हुईं। विद्वत्परिषद, धर्म प्रचारक मंडल और सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा जैसे संगठन खड़े करने वाले धर्माचार्य स्वामी दयानंद के शिविर से ही निकले थे। सनातन धर्म की धारा को प्रबल वेग देने के लिए विख्यात उन स्वामी दयानंद ने वहाँ उपस्थित श्रद्धालुओं से कहा था कि ये विभूति साक्षात् देवी हैं। संसार को भाव और भक्ति का संदेश देने के लिए आई हैं। स्वामीजी के इस उद्बोधन से उपस्थित लोग बहुत प्रभावित हुए।

माँ आनंदमयी से भेंट

श्रीराम के मन में उन माँ से बातचीत करने की आकांक्षा जगी। उस दिन तो अवसर नहीं मिला। अगले दिन दस-ग्यारह बजे के आसपास वे वापस

दीक्षा भूमि की यात्रा

माँ के निवास पर पहुँचे। संयोग से उस समय ज्यादा लोग नहीं थे। माताजी जाग्रत अवस्था में थीं। आसानी से भेंट हो गई। उपस्थित लोगों के सामने ही उन्होंने चर्चा की अनुमति दे दी। श्रीराम ने पूछा, 'माँ आप कौन हैं'?

उन्होंने कहा, 'मैं क्या कहूँ'? आप लोग जो समझते हैं, वह ठीक ही होगा। अगला प्रश्न था 'लोग कहते हैं कि आप निरंतर समाधि में रहती हैं। यह समाधि सविकल्प है या निर्विकल्प?' इसके उत्तर में माँ ने कहा, 'मैं पढ़ी लिखी तो हूँ नहीं। शास्त्रों में मेरी गति नहीं है। इसलिए जिस भावदशा में रहती हूँ, उस बारे में कुछ नहीं कह सकती।'।

'माँ क्या इस युग में भी सिद्धपुरुष हैं', एक साधक ने पूछा। माँ ने कहा, 'क्यों इस युग में क्या हो गया? सिद्धपुरुष सभी युगों में होते हैं। यह जगत् ब्राह्मीभाव को प्राप्त हुए लोगों के कारण ही स्थिर है। वे न हों तो जगत का तिरोधान हो जाए।'।

उन्हीं सज्जन ने कहा, 'उनके होते हुए भी हमारा देश पराधीन क्यों है'? माँ ने उत्तर दिया, 'प्रभु की इच्छा है। वे अपनी लीला के तमस गुण का आनंद ले रहे हैं। अब रजस जागा है तो स्वतंत्रता की चाह उठी है। कुछ वर्षों में देश स्वतंत्र हो जाएगा'।

'उसके लिए उद्योग नहीं करना पड़ेगा क्या माँ? स्वतंत्रता अपने आप मिल जाएगी?' श्रीराम ने पूछा। इस प्रश्न का उत्तर था, 'प्रयत्न तो करना ही पड़ेंगे। न चाहते हुए भी देशवासी प्रयत्न करेंगे क्योंकि प्रभु अपनी माया का रजस् भाव जाग्रत कर रहे हैं। आलस्य और प्रमाद तमस् के भाव हैं। उसमें जाने के लिए किन्हीं प्रयत्नों की आवश्यकता नहीं होती।'।

'और हमारा देश कभी सत्त्व में भी स्थित होगा या नहीं?' इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए माँ ने कहा, 'होगा और अवश्य होगा। इस अवस्था में चारों ओर दिव्यभाव की प्रतीति होगी। देश अपने गौरव को पुनः प्राप्त कर लेगा। उस गौरव को जिसके लिए भगवान् ने चुना है।'।

चर्चा के इस क्रम में माँ की समाधि लग गई। लोग वहीं बैठे रहे। समाधि अवस्था में वे आँख बंद कर बैठ जाती थीं। उनके मुखमंडल पर अद्भुत शांति छलकने लगती। लगता था जैसे उनका रोम-रोम भगवान् का स्मरण कर रहा हो। आधा घंटे तक वे उसी अवस्था में रहीं। जाग्रत हुई तो उनकी दृष्टि श्रीराम पर पड़ी। हठात कहा, 'आप अपने प्रदेश कब जा रहे हैं श्रीराम?' आगे

हरिद्वार में आपसे भेंट होनी है। तब आप गंगा तट पर दिव्य भाव की स्थापना कर रहे होंगे।'

सुनकर श्रीराम चकित रह गए। माँ यह क्या कह रही हैं? हरिद्वार के संबंध में मन में कोई संकल्प विकल्प या भाव नहीं है। माँ के विस्मय वचन का स्वयं ही समाधान किया, संत महात्माओं की लीला निराली होती है।'

श्रीराम को इस प्रश्न की अपेक्षा नहीं थी। वे सोचने लगे कि क्या उत्तर दें। फिर कहा, 'दो तीन दिन में ही'। उनके काशी में एक माह रहने के संकल्प में अभी आठ दस दिन बाकी थे लेकिन श्रीराम पिछली शाम से ही सोचने लगे थे कि जल्दी लौट जाए। काशी हिंदू विश्वविद्यालय आते-जाते देशकाल की स्थितियों के बारे में जो पता लगा उससे उनका मन आँवलखेड़ा वापस जाने के लिए मचलने लगा था। मन में प्रेरणा उठने लगी थी कि चारों तरफ जब वातावरण गरमा रहा हो, देश में राष्ट्रीय भावनाओं का उभार आ रहा हो तो यहाँ तीर्थ-सेवन करने का कोई औचित्य नहीं है। माँ के सामने उनका निश्चय व्यक्त हो गया।

दो दिन वाराणसी के कुछ और क्षेत्रों की यात्रा की। फिर सारनाथ होते हुए वे वापस आँवलखेड़ा आ गए। समय से पहले ही आ गया देख, ताईजी चकित हुईं। तीन सप्ताह बाद अपने बेटे को देखकर वे हर्षविभोर हो गईं। उन्होंने सिर पर हाथ रखा। पीठ और हाथों को सहलाया और कहा 'कुछ खाता पीता नहीं था क्या? कितना कमजोर हो गया है।' माँ का वात्सल्य थोड़े दिन बाद अपने बच्चे को दुर्बल कमजोर देखने ही लगता है। लेकिन संगी-साथियों ने भी यही कहा। श्रीराम वैसे भी छरहरे शरीर के थे। दुबले-पतले और यदा-कदा उन्हें देखकर कुछ भी कहा जा सकता था कि दुबले हो गए या पहले से ठीक ठाक हालत में हैं। साथियों की टिप्पणी में भी चिंता और आत्मभाव दोनों का समावेश था। स्वयंसेवक दल के जो भी साथी आते गए, उन्हें शाम को ही अपने क्रांतिकक्ष में आने के लिए कहा। एक-एक कर सभी साथी आए। जो नहीं पहुँच पाए, उन्हें दूसरे साथियों ने सूचित कर दिया। संध्या समय हवेली में स्थित कार्यालय या कोठरी में सब एकत्रित हो गए।

साथियों को लग रहा था कि श्रीराम अपनी काशी यात्रा का विवरण सुनायेंगे। ऐसा कुछ नहीं था। बैठक शुरू होते ही उन्होंने यहाँ चल रही आंदोलन की गतिविधियों के बारे में पूछा। युवा साथियों ने श्रीराम की अनुपस्थिति में पर्चे

दीक्षा भूमि की यात्रा

बांटे और पोस्टर चिपकाए थे। आसपास के गाँवों में जाकर लोगों से संपर्क किया। निरक्षर लोगों को अक्षर ज्ञान कराया, उन्हें अपने हस्ताक्षर करना सिखाया। रिपोर्ट लेने के बाद श्रीराम ने कहा, इन रचनात्मक कार्यों के साथ अंग्रेजी शासन के विरोध के लिए भी कदम उठाना चाहिए। कुछ ऐसे प्रदर्शन किए जाएँ, जिनमें लोगों को लगे कि लड़कों में जुझारूपन है। वे अपने आपको होमने के लिए तैयार हैं। उत्सर्ग की तैयारी देखकर लोगों में भी उत्साह आएगा और वे भी कुछ कर गुजरने के लिए कमर कसेंगे।

उन दिनों भगतसिंह के क्रांतिकारी कारनामों की बड़ी चर्चा थी। युवकों के आदर्श बने हुए थे। सांडर्स वध, असेंबली में बम फेंकने और शस्त्रागार लूटने की घटनाओं ने युवकों में उत्साह भर दिया। महात्मा गांधी के नेतृत्व में चल रहा सविनय अवज्ञा आंदोलन इन गतिविधियों से अपने आपको अलग रखे हुए था, फिर भी कई आंदोलनकारी इस तरह के कामों को बढ़ावा देने के पक्ष में थे। आँवलखेड़ा का स्वयंसेवक दल, दोनों ही प्रकार के कार्यक्रमों में रुचि लेने लगा। वह हथियार चलाने से तो दूर रहा, लेकिन टेलीफोन के तार काटने, पुलिस वालों को परेशान करने, उन्हें चकमा देने और अफसरों को बहकाने-फुसलाने में अपनी सूझबूझ का प्रयोग करता रहा। श्रीराम ने देशभक्ति से ओतप्रोत रचनाएँ लिखने की गति बढ़ा दी थी। ये कविताएँ सैनिक पत्र में सबसे ज्यादा छपती थीं। उनके नाम के साथ 'मत्त' भी जुड़ गया। पर क्यों जुड़ा, इसका भी एक रोचक प्रसंग है। जिसकी चर्चा आगे।

देशी अंग्रेजों से संघर्ष

शहरों में जो अत्याचार अंग्रेज अफसर करते थे, गाँवों में उसी तरह की ज्यादाियाँ जागीरदार, ठाकुर और साहूकार आदि करते थे। गुलामी एकतरफा नहीं थी, वह प्रवृत्ति बन गई थी। बेशक इसकी जड़ और स्रोत गोरे अफसर थे। उन्हीं से लोग सीखते थे। आँवलखेड़ा में जरूरतमंद लोगों को ब्याज पर रुपया देने के लिए आगरा से एक साहूकर आया करते थे-बिरदीचंद। गाँव में कमलसिंह नामक एक किसान उसका एजेंट था। बिरदीचंद की ओर से वही लेनदेन किया करता था। ब्याज पर ब्याज इस तरह चलता था कि किसी ने सौ रुपए कर्ज लिया हो, तो लेने वाले की जिंदगी ब्याज चुकाने में ही बीत जाती। मूलधन ज्यों का त्यों रहता। कुछ परिवारों के बच्चे बिरदीचंद के यहाँ बंधुआ हो जाते। उन्हें खाने-

पहनने के लिए आवश्यक रोट्टी-कपड़े और सोने के लिए छत भर दी जाती थी। एक ही कमरे में कई-कई बँधुआ रहते थे। बहुत से बच्चे तो खेतों में ही दिन-रात काट देते। हल और खेती के औजारों में ही जिंदगी कट जाने के कारण उन्हें हाली भी कहा जाता था। आँवलखेड़ा में इस तरह के बँधुआ किशोरों हालियों की संख्या छह थी।

स्वयंसेवक दल ने क्रांतियोजना तैयार की तो ध्यान इन किशोरों की ओर गया, बैठक हुई। उसमें सुझाव आया कि हाली बँधुआ किशोरों को छुड़ा लिया गया तो देशी अंग्रेजों, आकाओं के लिए अच्छा सबक होगा। उनके अंग्रेज प्रभु भी चेतेंगे। मुक्ति योजना तैयार हुई। बंधुआ लड़कों में चार खेतों में रहते थे और दो साहूकार के यहाँ। खेत में रहने वाले हाली भी दो अलग-अलग खेतों में थे। स्वयंसेवकों में जिन युवकों को इनकी मुक्ति की कमान सौंपी गई थी, उनके नाम नत्थू, वृंदावन, गोपीनाथ और रामसरन थे। चारों ने खेतों के कई बार चक्कर काटे। समय और साथी बदल-बदल कर ये लोग खेतों के भीतर तक गए। उन किशोरों से थोड़ी पहचान निकाली। उन्हें टटोला कि यहाँ से छुटकारा चाहते हैं या नहीं। मना किसी ने नहीं किया, पर अपनी निरुपाय स्थिति का रोना भी रोया। नत्थू आदि ने पूरी रिपोर्ट श्रीराम को दी। सोच-विचार से इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि छूटने की चाह पर्याप्त है। वह आकांक्षा अगर हो, तो शेष प्रबंध कोई बड़ी बात नहीं है।

पहले चरण में एक चिट्ठी तैयार की गई। यह चिट्ठी भगतसिंह ब्रिगेड की ओर से लिखी गई थी। सेठ बिरदीचंद को संबोधित इस चिट्ठी में उसकी हवेली पर बँधुआ बनाकर रखे गए लड़कों को तीन दिन के भीतर छोड़ देने के लिए कहा गया था। यह चिट्ठी चेतावनी है। अगर नहीं छोड़ा, तो अगला कदम सामने आएगा। इसी चिट्ठी में 'आज की ही रात आँवलखेड़ा के खेतों पर रखे गए चारों हालियों को छुड़ा लिया जाएगा।' यह भी लिखा गया था।

सेठ बिरदीचंद के पास चिट्ठी पहुँचने में दो दिन लगे। जिस दिन यह लिखी गई, उस दिन रात के वक्त नत्थू और रामसरन एक खेत में गए। वृंदावन और गोपी ने दूसरे लड़कों को लक्ष्य बनाया। चारों को निकालने में कहीं प्रतिरोध की नौबत ही नहीं आई। कमल सिंह या सेठ के दूसरे लोगों को सपने में भी गुमान नहीं था कि उनके बंधक भाग जायेंगे या कोई उन्हें छुड़ा लेगा। नत्थू ने भगतसिंह ब्रिगेड की ओर से एक चिट्ठी और लिखी। उसमें घोषणा की थी कि



ये लड़के भगतसिंह ब्रिगेड में शामिल हो रहे हैं। अभी स्वयं स्वतंत्र हुए हैं, आगे देश को स्वतंत्र कराने के लिए लड़ेंगे। इनके परिवार वालों को तंग नहीं किया जाए। तंग किया गया, तो परिणाम अच्छे नहीं होंगे। सुबह हालियों के छप्पर के नीचे पत्थर से दबाकर रखी गई यह चिट्ठी कमलसिंह ने पढ़ी। पढ़कर हाथ के तोते उड़ गए। वह चिट्ठी लेकर अपने सेठ को बताने के लिए भागा। लेकिन उससे क्या अंतर पड़ता। बंधुआ तो मुक्त हो गए थे।



स्वातंत्र्य यज्ञ में आहुति

दिसम्बर १९३० में भगतसिंह को फाँसी की सजा हुई। उन पर लाहौर में पुलिस अधिकारी सांडर्स की हत्या करने और असेम्बली में बम फेंकने का आरोप था। भगतसिंह ने दोनों ही कार्य किये थे। क्रांतिदल की सहमति से किए गए इन कामों का उद्देश्य लोगों में स्वतंत्रता के लिए जोश फूंक देना था। जब धर-पकड़ शुरु हुई तो भगतसिंह ने छुपने की कोशिश नहीं की। वे आसानी से पकड़ में आ गये। अदालती कार्रवाई चली। पुलिस के पास अपने आरोपों को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त प्रमाण नहीं थे। सरकारी वकील अपना पक्ष प्रभावशाली ढंग से नहीं रख सका। लेकिन मुकदमें का परिणाम सभी जानते थे। वही हुआ, भगतसिंह को फाँसी की सजा सुना दी गई।

उनके क्रांतिकारी साथी और स्वतंत्रता आन्दोलन के नेता चाहते थे कि फाँसी टल जाय। उनकी राय में फाँसी के बाद लोगों में उग्र प्रतिक्रिया हो सकती थी। उस रोष को संभालना उनकी दृष्टि में कठिन हो जाता। फिर भगतसिंह भले ही गरम दल के सेनानी हो, उद्देश्य की दृष्टि से तो सहयात्री ही थे। सब लोग स्वतंत्रता के लिए ही काम कर रहे थे। इस नाते भी आंदोलन की राह चल रहे बड़े नेता भगतसिंह की प्राण रक्षा चाहते थे। पंडित मोतीलाल नेहरू उन दिनों शिमला में थे और बीमार चल रहे थे। उन्होंने क्रांतिकारियों के पास संदेश भिजवाया कि फाँसी की सजा रुकवाने के लिए प्रिवी कौंसिल में अपील की जाय। क्रांतिकारी और यहाँ तक कि भगतसिंह ने भी इस संदेश पर विचार नहीं किया। उन्होंने पंडित मोतीलाल जी की सद्भावना के लिए धन्यवाद दिया और उत्तर भिजवाते हुए यह भावना व्यक्त की कि फाँसी के बाद देश में स्वातंत्र्य चेतना का तूफान उठ जाए।

मुक्त कराने के लिए जो प्रयत्न चल रहे थे, उन्हें देखते हुए भगतसिंह अपने साथियों के साथ में चिंता व्यक्त करने लगते थे। वे कहते थे 'भाई कहीं

स्वातंत्र्य यज्ञ में आहुति

ऐसा न हो कि फाँसी की सजा रुक जाए।' भगतसिंह की कामना पूरी हुई। उनके क्षमादान के लिए किये गये प्रयत्न निष्फल गए और १९३० के आखिरी दिनों में वे अमर शहीदों की श्रेणी में प्रतिष्ठित हो गए। उनकी फाँसी ने देश में सचमुच नया जीवन फूँक दिया। हड़तालों, जुलूसों, विरोध प्रदर्शनों और सभाओं का ताँता लग गया। बच्चे, जवान, बूढ़े सभी उम्र के लोगों के मुँह पर भगतसिंह का नाम चढ़ गया। सन् १९३१ का वर्ष शुरू होने तक जन उत्साह का ज्वार इस तरह उछालें भरने लगा कि मुक्त क्रांतिकारी चार-छः महीने में ही अपना लक्ष्य प्राप्त होने की आशा करने लगे।

देश भर में व्याप्त इस वातावरण का असर आंबलखेड़ा में भी दिखाई देता था। वहाँ की गतिविधियों का नेतृत्व श्रीराम कर रहे थे। विरोध प्रदर्शनों का उनकी दृष्टि में सीमित महत्त्व ही था। वहाँ सप्ताह में एकाध बार प्रदर्शन हो जाए और सभा गोष्ठी चलती रहे, इतना ही पर्याप्त था। गाँव में न पुलिस थाना था, न सरकारी दफ्तर। कभी कभार कोई दरोगा, गिरदावर या कोई फिरंगी वहाँ आता था। भगतसिंह को फाँसी होने के बाद इन लोगों का आना थोड़ा बढ़ गया था, लेकिन इतना नहीं कि उनके लिए हमेशा ही वहाँ टिक कर रहा जाय। श्रीराम और उनके दल के लोग आसपास के गाँवों में भी जाते। दस पाँच दिन में आगरा भी हो आते। वहाँ की गतिविधियों में हिस्सा लेते और देश-दुनिया की नई सूचनाएँ लेकर वापस आ जाते। जब कोई बड़ा प्रदर्शन होता तो श्रीराम उस समय आयोजन स्थल पर अवश्य होते थे।

प्रदर्शनों की भरमार और सरकार विरोधी भावना को जोर पकड़ते देख सरकार ने दमन का रास्ता अपनाया। आए दिन निषेधाज्ञा लगा दी जाती जिसमें पाँच से ज्यादा लोगों के इकट्ठा होने और हथियार लेकर चलने पर प्रतिबंध लग जाता। पूरे देश में दमन का यह एक ही तरीका अपनाया गया। लोग फिर भी नहीं थमते तो बड़े कदम उठाये जाते लेकिन निषेधाज्ञा स्वाभाविक हो चली थी। स्थिति थोड़ी भी असहज होती तो वह लागू कर दी जाती। यह तेजी डेढ़-दो महीने के भीतर ही आई थी। नरमपंथी आंदोलनकारी भी मानने लगे थे कि भगतसिंह के आत्म बलिदान का प्रभाव है।

१४ अप्रैल को श्रीराम आगरा पहुँचे। उस दिन बेलनगंज में सभा होनी थी। यह तय था कि पुलिस सभा नहीं होने देगी। फिर भी नवयुवकों ने एकत्रित होने की ठानी और सभा विफल करने के इंतजाम को चुनौती मानते हुए एक प्रयत्न और करने की ठानी। इस संकल्प के साथ श्रीराम अपने सहयोगी नाथू, गोपी और



रामसरन आदि को लेकर आगरा पहुँचे। बेलनगंज चौराहे पर सभा होनी थी। सुबह छः बजे से ही वहाँ पुलिस बल तैनात हो गया था। आने-जाने वालों की तलाशी लेता। दो लोगों से ज्यादा को उस दिशा में आगे नहीं बढ़ने देता।

सभा नहीं हो सकती, यह जानकर भी लोग पहुँच रहे थे। तीन-तीन के जत्थों में सुबह आठ बजे से ही कई दल पहुँचे। वे सभी पकड़ लिए गये। श्रीराम और उनके साथी आयोजन स्थल से काफी दूर पहले ही अलग-अलग हो गये। यह तय किया गया कि एक-एक कर जायेंगे और सभी सभा स्थल पर मिलेंगे। वहाँ एक साथ मिलना चुनौतीपूर्ण था, इसलिए अलग-अलग जाने का निश्चय किया। पहले श्रीराम गये। धोती-कुर्ता पहने किसान युवक की तरह उन्होंने पुलिस अधिकारी को नमस्कार किया। उस अधिकारी ने रस्म पूरी करने जैसी तलाशी ली। श्रीराम चुपचाप निकल गए। नाथू, गोपी, रामसरन, गोवर्धन आदि भी उसी शैली में निकल गये। उन सबमें पचास साठ कदम की दूरी थी। सभा स्थल तक पहुँच कर पाँचों ने अलग-अलग कोना संभाला। सबसे अंत में गोवर्धन पहुँचा और उसने पहुँचते ही मुँह से कोयल की आवाज निकाली। यह ध्वनि सबके यथा स्थान पहुँच जाने की सूचना थी। अपने-अपने मुकाम पर पहुँच जाने की सूचना मिलने के कुछ ही देर बाद गोवर्धन ने फिर 'कूक' की आवाज निकाली। यह ध्वनि होते ही पाँचों साथियों ने अपनी आवाज बुलंद करते हुए उद्घोष किया 'भारत माता की' इस उद्घोष का उत्तरार्द्ध 'जय' घोष भी कुछ ही क्षणों में संपन्न हो गया।

घोष करते ही पाँचों युवक दौड़ते हुए चौक में आ गए। चौक बहुत बड़ा नहीं था। वांछित पाँचों इतनी जोर से जयघोष कर रहे थे, मानों अपने साथियों को पुकार रहे हों। वे साथी भी जैसे आसपास ही कहीं छुपे हों। 'भारत माता की जय' और 'शहीद भगतसिंह जिंदाबाद' के नारे लगाते दौड़ रहे इन युवकों को देखकर पुलिस बल स्तब्ध रह गया। विसिल बजाते हुए कुछ सिपाही उन युवकों की ओर दौड़े। कुछ ने पोजीशन ली कि और युवक अगर आ रहे हों तो उन्हें रोक सकें। पास दौड़े आ रहे एक सब इंस्पेक्टर को पहचान कर श्रीराम ने कहा, 'मामा प्रणाम।' वह सब इंस्पेक्टर सहपऊ का रहने वाला था। श्रीराम के प्रणाम करते ही पहचान गया और डंडा पटक कर बोला 'यहाँ क्या करने आए हो।' श्रीराम ने विनोदी स्वर में कहा 'मामा वही करने आए हैं, जिसे आप रोकना चाहते हैं।' दोनों के बीच वार्तालाप होते देख बाकी पुलिस वाले ढीले पड़ गए। वे पाँचों को घेर कर खड़े भर हो गए।

गिरफ्तारी का अभिनंदन

‘गिरफ्तारी तो देनी पड़ेगी,’ मामा ने कहा। इस बार जवाब गोपी ने दिया, ‘हमारे शहीदों ने जब प्राण दे दिये हैं तो हम क्या गिरफ्तारी नहीं देंगे।’ पुलिस उन पाँचों को पकड़ कर ले गई। स्वतंत्रता आंदोलन में भागीदारी को लेकर श्रीराम की यह पहली गिरफ्तारी थी। उन्हें केन्द्रीय जेल में रखा गया। उन पर मुकदमा तो नहीं चला, न ही कोई अभियोग पत्र दिया गया। कुछ दिन बाद यों ही चेतावनी देकर छोड़ दिया गया। जेल से छूटकर आये युवक अपने गाँव लौटे तो युद्ध जीतकर आए सैनिकों की तरह उनका स्वागत किया गया। वे लोग भी उनकी अगवानी करने आए जो किसी समय अपने बच्चों को उनकी संगत से बचाते थे। उन्हें रोकते-टोकते थे। पाँचों युवकों को फूल मालाएँ पहनाई गईं। ताईजी ने सबको तिलक लगाया और बलैयाँ ली।

भारत माता की सेवा में जुटने के कारण साधना क्रम में थोड़ा गतिरोध आ गया। जेल में जितने दिन भी रहे छः घंटे प्रतिदिन जप नहीं हो सकता। दिन में किसी भी समय, किसी भी अवधि तक तो साधना हो जाती लेकिन सुबह जल्दी उठने का नियम नहीं सध रहा था। गतिरोध यों पिछले दो साल से था। स्वाधीनता यज्ञ में आहुतियाँ देने के कारण थोड़ी अनियमितता आ गई थी। कभी चार घंटे ही जप चलता और कभी छः घंटे का पूरा समय मिल जाता। जिस दिन चार घंटे का जप होता उस दिन का शेष जप आगे की तिथियों में पूरा कर लेते। मन में उसका अवसाद नहीं रहता था, लेकिन कारावास में नियम बहुत शिथिल हो गया। चित्त में उदासी घिरी रहने लगी। उदासी को वे भीतर ही भीतर पीते रहे। यह उनकी निजी और आंतरिक व्यथा थी। वे किसी को भागीदार नहीं बना सकते थे। इस व्यथा को जीते हुए उन्होंने अगले कार्यक्रमों की रूपरेखा बनाई।

निषेधाज्ञा का व्यापक प्रयोग होने के बाद स्थानीय प्रशासन मामूली प्रदर्शनों के प्रति भी काफी सतर्क हो गया था। किसी घर में कोई तिरंगा दिखाई दे जाता तो पुलिस सक्रिय हो जाती। स्वयंसेवकों ने दमन और उत्पीड़न की चिंता किए बिना झंडा जुलूस निकालने की ठानी। स्थान चुना गया आँवलखेड़ा से कुछ किलोमीटर दूर जारखी गाँव। यह निश्चित हुआ कि जुलूस में गिनती के लोगों से ही संतोष नहीं किया जाए, बल्कि कम से कम सौ युवक शामिल हों। दिखाई देना चाहिए कि तिरंगों के प्रति सचमुच तीव्र अनुराग है।

इधर झंडा जुलूस की तैयारियाँ चल रही थीं, उधर प्रशासन को सूचना मिल गई। वह उसे रोकने के लिए सन्नद्ध हो गया। समझाने-बुझाने का तब चलन नहीं था। एक ही उपाय था कि लोग इकट्ठे हों तो उन्हें तितर-बितर कर दिया जाए। यह संभावना युवकों ने भी आँक़ी हुई थी। वे भी रोकने के प्रयास व्यर्थ कर देने पर तुले हुए थे। जिला प्रशासन को पता चला कि जुलूस निकालने में वही लड़के आगे हैं, जिन्होंने महीने भर पहले आगरा में निषेधाज्ञा तोड़ी थी। यहाँ भी उन्हें रोकने वालों में एक सब इन्स्पेक्टर करीबी निकल आया था। उसने कड़ाई नहीं बरती थी। इसलिए युवक का उत्साह बढ़ गया था। इस बार सावधानी बरती गई। पुलिस टुकड़ी की कमान मेरठ के एक अधिकारी को सौंपी गई।

उस दिन ज्येष्ठ मास की दशमी तिथि थी। महीने का शुक्ल पक्ष। जारखी गाँव की चौपाल के पास यहाँ-वहाँ से निकल कर तीस-पैंतीस लड़के अचानक इकट्ठे हो गए। वहीं पुलिस वाले भी जमा थे। पहुँचे हुए युवकों में सभी ग्रामीण परिवेश के थे। सीधे-सादे लगने वाले इन युवकों में एक भी ऐसा नहीं था जो लड़ने-भिड़ने पर उतारु हो सकता हो। दो-दो, चार-चार की संख्या में कुछ और लड़के इकट्ठे हुए। आधा घंटे के भीतर अच्छी संख्या हो गई। पुलिस वालों ने समझाया, लड़कों क्यों ज़िद पर अड़े हुए हो। जुलूस वगैरह निकालने से कुछ नहीं होता। आजादी ऐसे ही नहीं मिल जाती। बड़ा काम करो, काबिल बनो और यही सरकारी मुलजिम हो जाओ।

‘वह तो आगे की बात है पहले अपनी सरकार तो बने, एक युवक ने कहा।’ उसी पुलिस वाले ने कहा, ‘चोंच लड़ाने के बजाय अच्छा है अपने घर जाओ और हमें भी जाने दो। आराम करो आराम।’ उसी लड़के ने कहा, ‘ताऊ तो आप ही चले जाइये?। हम भी अपना काम करने के बाद चले जायेंगे। कोई बलवा थोड़े ही कर रहे हैं।’

श्रीराम अभी तक चुपचाप सुन रहे थे। वे आगे आए और बोले ‘हम उपद्रव नहीं कर रहे। आज वैसे भी गंगा दशहरा हो गया। गंगा मइया आज के दिन शिवजी की जटा से धरती पर आई थीं। खुशी का दिन है, मना कर चले जाएंगे।’

‘ठीक है,’ मेरठ से आए पुलिस अधिकारी ने कहा ‘शोरगुल मत करना और झंडा वगैरह मत निकालना। गंगा दशहरे की फेरी लगाकर अपने-अपने घर चले जाओ।’

झंडा जुलूस यों निकला

युवकों ने हामी भरी। वहाँ इकट्ठे हुए स्वयंसेवकों में उत्साह की लहर दौड़ गई। तुरंत दो-दो की कतार बनने लगी। इस तेजी से कतार बनी कि जैसे पहले ही सब कुछ निश्चित रहा हो। कतार पूरी हुई। सबसे आगे श्रीराम खड़े हुए। जुलूस आगे बढ़ने ही वाला था कि श्रीराम ने फुर्ती से अपनी टोपी उतारी। उसमें छुपा कर रखा झंडा निकाला और दूसरे हाथ से कमीज में छुपाई हुई छड़ी खींच ली। पलक झपकते ही उस पर झंडा फहरा दिया। इसके बाद नारा लगाया 'भारत माता की जय', 'वंदे मातरम्', 'ऊँचा रहे तिरंगा प्यारा' के उद्घोष होने थे कि पुलिस के जवान टूट पड़े। तड़तड़ डंडे बरसाने लगे। मार पड़ती देख वहाँ आये युवकों में से कई भाग गए, कुछ को पुलिस वालों ने खींच कर अलग धकेल दिया।

श्रीराम अपना झंडा लेकर वहीं अड़े रहे। पुलिस की मार का निशाना भी वही ज्यादा बने। मार खाते हुए वे नीचे गिर पड़े, लेकिन झंडे को नीचे नहीं गिरने दिया। जिस हाथ में उसे धाम रखा था उसे ऊँचा ही उठाये रखा। पुलिस ने पिटाई करते हुए उनके हाथ से झंडा छीनना चाहा। उन्होंने छड़ी को कसकर पकड़ रखा था। एक पुलिस वाले ने छड़ी वाले हाथ पर वार किया। हाथ काँपा तो श्रीराम ने छड़ी को दाँत से पकड़ लिया। पुलिस वाले ने मुँह पर चोट की। लेकिन उसका भी कोई असर नहीं हुआ। मार खाते-खाते वे बेहोश हो गए लेकिन झंडा मुँह में ही फँसा रहा। एक सिपाही ने झटके से तिरंगा खींचा और वह फट कर उसके हाथ आ गया। जिस जगह श्रीराम अचेत होकर गिरे थे, वहाँ पहले किसी ने पानी गिरा रखा था। पास ही गड्ढा था। पानी वहाँ जमा हो गया था और उससे कीचड़ मच गया था। श्रीराम कीचड़ में सन गए। पुलिस झंडा जुलूस को तितर-बितर कर चली गई।

स्वयंसेवी दल के युवक पुलिस के चले जाने के बाद आए। उन्होंने श्रीराम को कीचड़ से बाहर निकाला। घर ले गए। वहाँ उनका उपचार किया गया। चिकित्सक ने उन्हें होश में लाने के लिए मुँह में दवा डाली। उपचार में लगे लोग यह देख कर चकित हुए कि उनके दाँतों के बीच झंडे का एक हिस्सा फँसा हुआ है। कसकर जबड़ा बंद किए रहने के कारण यह हिस्सा अटका रह गया। इस घटना ने श्रीराम की निष्ठा, दृढ़ता और शक्ति को अच्छी तरह सिद्ध कर दिया। चिकित्सक ने भी उनके स्वभाव पर टिप्पणी की और कहा कि यह युवक देशभक्ति के मद



में सचमुच 'मत्त' है। उनका यह नाम अब लोकप्रिय होने लगा। चिकित्सकों ने व्यवहार में भी इस नाम को प्रचलित कर दिया। उन्हें ठीक होता देख लोग बाहर निकले तो कुछ के मुँह से अहोभाव प्रकट हो रहा था। वे 'कमाल है मत्त जी' कहते हुए जा रहे थे।

स्वस्थ होने में समय लगा। उस दिन किसी ने घर से बाहर नहीं निकलने दिया। ताईजी ने इतना ध्यान भी रखा कि कमरे से बाहर ही नहीं जाना पड़े। श्रीराम को निरंतर बिस्तर पर लेटे रहना रास नहीं आया। वे उठकर चले-फिरे। हवेली के बाहर भी गए। सिर पर ज्यादा चोट आई थी। खून बहा था, वहाँ पट्टियाँ बाँधी रहने दी। और जगह मामूली चोटें आई थीं, वहाँ बाँधी गई पट्टियाँ खोल दी और साथियों को बुलाकर बातचीत करने लगे। शाम ढलते तक वे अपने अनुसार सामान्य हो गए थे। साथियों और घर वालों ने उन्हें सामान्य स्वस्थ नहीं समझा। साथी आए तो सही, थोड़ी बातचीत भी की और कुछ देर रुक कर आराम करने की सलाह देते हुए वापस चले गए।

बीमारों की तरह बिस्तर पर पड़े रहना था। इस रूप में अकेले पड़ जाना श्रीराम को अखर रहा था। वे काफी देर तक उधेड़बुन में उलझे रहे। कल क्या करना है? कल भी यदि बाहर नहीं जाने दिया तो क्या करेंगे? आंदोलन का भावी स्वरूप क्या हो? यहाँ और आसपास कौन-सी गतिविधियाँ चलाई जानी चाहिए? पिछले दो साल से साधना अनुष्ठान का क्रम अनियमित-सा हो गया है। आंदोलन में भाग लेते हुए वह व्यवस्थित और नियमित कैसे चले? इस तरह के प्रश्नों में मन उलझता जा रहा था। इन प्रश्नों का उत्तर भी वे अपने आप ही दे लेते। आने वाले दायित्वों का बोध भी इस ऊहापोह में उभरता रहा।

परिवार में एक नए सदस्य के आगमन का संकेत था। श्रीराम पिता बनने वाले थे। ताईजी अक्सर कहने लगी थी कि जर्मींदारी और खेती-बाड़ी पर भी ध्यान देना चाहिए। मजदूर किसान काम करते हैं, यह तो ठीक है। प्रबंध देखने वाले लोग भी हैं माना कि उनमें कोई भी आदमी गलत नहीं हैं लेकिन परिवार के किसी बड़े सदस्य की निगरानी तो होनी चाहिए। कभी कभार वहाँ जाकर खड़े ही हो लिया जाय।

श्रीराम अनुभव कर रहे थे कि ताईजी का कहना अपनी जगह सही है। लेकिन अगले ही पल दूसरी प्रेरणा इस अनुभूति को मनःक्षेत्र में प्रवेश करने से रोक लेती। देश पहले है, देश के प्रति कर्तव्य सबसे पहले है। फिर दूसरा विचार

स्वातंत्र्य यज्ञ में आहुति

आया पाँच साल पहले वसंत पर्व पर मार्गदर्शक सत्ता ने जो राह दिखाई, उस पर चलना भी अभीष्ट है। उस लक्ष्य और पथ को घरेलू और कारोबारी जीवन के लिए तिलाजंलि देना उचित होगा क्या? फिर विचार आया लेकिन वह साधनाक्रम भी भलीभाँति कहाँ चल रहा? विचार और भावों की लहरें उठती उतरती रहीं। चारपाई पर बैठे-बैठे ही वे भाव जगत् में खो गए। ताई जी कब कमरे में आ गई और उनके पास खड़ी हो गई, कुछ ध्यान ही नहीं रहा। उन्हें सुध आई।

साधना का असमंजस

औषधि पीने के बाद वे लेट गए। कुछ क्षण लेटने के बाद विचारों का वही क्रम फिर चल पड़ा। आवेग इतना प्रबल था कि लेटे रहना संभव न रहा। श्रीराम उठकर बैठ गए। उसी स्थिति में वे भीतर से उठने वाली हिलोरों को देखते रहे। एक स्थिति ऐसी आई कि हिलोरें भी अदृश्य हो गईं और उनमें डूबने उतराने वाला मन भी। अंतस की स्थिति पूरी तरह शांत और नीरव हो गई। उस शून्य वातावरण में दिव्य संगीत सुनाई देने लगा। प्रतीत हुआ जैसे एक साथ कई कंठ गुरुमंत्र गा रहे हों। उस गायन में शब्द नहीं थे, मात्र स्फोट ही गूँज रहे थे। संगीत की स्वर लहरियों के साथ आभास हुआ कि प्रातःकाल का समय है और सूर्य का उदय हो रहा है। अरुणिम आभा से कमरा दीप्त हो रहा है। मन प्राण उस प्रकाश से आलोकित हो रहे हैं। अपना आपा प्रकाश से पूरित हो रहा है। स्वयं का अस्तित्व ही जैसा प्रकाश हो गया हो।

तल्लीन अवस्था में ही प्रतीत हुआ कि सामने मार्गदर्शक सत्ता अपना हाथ अभय मुद्रा में उठाए साक्षात् है। गुरुदेव अपने मुँह से कुछ कह नहीं रहे हैं, उनकी उपस्थिति से ही संदेश ध्वनित हो रहा है। उस संदेश में आश्वासन है और आश्वासन के साथ अगले दिनों के लिए मार्गदर्शन भी। कमरे में उस समय कोई और नहीं था। गुरुदेव ने कहा 'तुम्हारी व्यथा यही है न कि साधना क्रम भलीभाँति नहीं चल रहा। चिंता न करो। जिस भूमि में साधना के संस्कार देना है, उसे स्वतंत्र कराना भी साधना का ही अंग है। जो व्यतिक्रम हुआ उससे व्यथित मत होओ। कुछ अस्तव्यस्तता आगे भी आ सकती है, वह भी आवश्यक है। जप ध्यान में जो कमी रह जाए, वह आगे-पीछे पूरी की जा सकती है, लेकिन ऋषियों की इस भूमि को अपना स्वत्व अर्जित करने दो। उस अर्जन में स्वयं भी भागीदार बनो-निमित्त होओ। कुछ वर्षों की ही बात है।'

मार्गदर्शक का यह संदेश या आश्वासन चित्त में गूँज उठा। उसकी प्रतिध्वनि रोम-रोम को आश्वस्त सी कर गई। फिर सब कुछ सहज हो गया। मन में न भाव हिलोरें थीं और न ही संकल्प-विकल्प उठ रहे थे। साधन अपराध का यह बोध मन से व्यतीत हो गया था कि मार्गदर्शक सत्ता का सौंपा हुआ दायित्व ठीक से पूरा नहीं हो रहा। तपश्चर्या में व्यवधान आ रहा है। उसके लिए राष्ट्रीय आंदोलन में भागीदारी मोहक बाधा बन रही है। आश्वस्त से होकर श्रीराम लेट गए। नींद आने लगी थी।

उस दिन सुबह तीन बजे नींद खुल गई। प्रति दिन की तरह स्नान-ध्यान की तैयारी करने लगे। ताईजी को पहले से ही आशंका जैसी थी कि उनका चिरंजीव बीमार और घायल व्यक्ति की तरह आराम नहीं करेगा। श्रीराम के उठते ही वे भी बाहर आ गईं। लाड़दुलार से कुछ फटकारते हुए वे श्रीराम के नहाने की व्यवस्था देखने लगीं। उन्हें डर था कि घाव पर कहीं पानी न लग जाय। नहा धोकर जब तक श्रीराम तैयार नहीं हो गए वे बाहर ही खड़ी रहीं। वे जब पूजा कक्ष में चले गए, तभी वहाँ से हटीं।

झंडा जुलूस निकालने पर हुई पिटाई की खबर सुनकर सैनिक के संस्थापक-संपादक श्रीकृष्णदत्त पालीवाल भी अगले दिन आँवलखेड़ा आए। वे सोच रहे थे कि श्रीराम बिस्तर पर पड़े होंगे। हवेली पहुँच कर देखा कि वे मजे से काम कर रहे हैं। स्वयंसेवक दल के सदस्यों से विचार-विमर्श चल रहा है। उनका आना अप्रत्याशित था। उन्होंने अपने आने की कोई सूचना भी नहीं दी। अचानक उन्हें आया देख श्रीराम और उनके सहयोगियों को आश्चर्य और उल्लास दोनों एक साथ हुआ। कुशलक्षेम पूछने के बाद पालीवालजी ने पूरा घटनाक्रम विस्तार से सुना। उनकी वीरता को सराहा।

पालीवाल जी आए तो वे गोष्ठी में मुख्य अतिथि भी हो गए। युवकों को संबोधित करते हुए उन्होंने नगर के जागीरदार सूरजपाल सिंह की ज्यादतियों का जिक्र किया। यह कस्बा सत्याग्रहियों की गतिविधियों का केन्द्र बना हुआ था। सूरजपाल अंग्रेजों की बड़ी चापलूसी करते थे। उन दिनों सभी जागीरदार अपने आकाओं की जी हुजुरी में हरी बेंत की तरह दुहरे हुए जाते थे। जरार गाँव में सत्याग्रहियों का दमन करने के लिए सूरजपाल नए-नए तौर-तरीके ढूँढ़ता। अपने मुष्टिडों से उनकी पिटाई करवाना सूरजपाल का प्रिय कार्य था। पालीवाल जी ने

स्वातंत्र्य यज्ञ में आहुति

बताया कि वहीं के एक सत्याग्रही श्रीचंद दोनोरिया को तीन चार दिन पहले सूरजपाल के लोगों ने गाँव के बाहर घेर लिया था। उन्हें बुरी तरह मारा। मार खाते-खाते दोनोरिया बेदम होकर गिर पड़े। वे अब भी बेहोश हैं और आगरा के अस्पताल में भरती है।

श्रीराम दल के सदस्यों ने गोष्ठी में ही निश्चय किया कि दोनोरियाजी का हालचाल जानने के लिए आगरा चला जाए। श्रीराम की हालत देखते हुए साथियों ने मना किया। वे नहीं माने। उनमें और दूसरे सदस्यों में इस विषय पर बहस सी होने लगी। पालीवाल जी ने हस्तक्षेप किया और व्यवस्था दी कि श्रीराम के माथे की पट्टी खुल जाए, तब दोनोरिया का कुशलक्षेम पूछ सकते हैं। वैसे उनकी देखभाल के लिए आगरा में कार्यकर्ता लगे हुए हैं। पालीवाल जी की यह व्यवस्था सबने स्वीकार की।

सिर की पट्टी खुलने की जैसे प्रतीक्षा थी। थोड़ा स्वस्थ होते ही श्रीराम तीन स्वयंसेवकों को साथ लेकर दोनोरिया जी को देखने गए। आगरा पहुँच कर पता चला कि परिवार के लोग उन्हें वापस जरार ग्राम ले गए हैं। वहीं आयुर्वेदिक उपचार कराएँगे। जरार गाँव आगरा से करीब चालीस किलोमीटर दूर था।

गाँव में दोनोरिया उस समय भी अचेत पड़े हुए थे। श्रीराम ने कुशलक्षेम पूछने के बाद औषधि उपचार की जानकारी ली। आगरा से यहाँ लाने पर वैद्यजी का इलाज चल रहा था। उनके पास गए और कहा, 'शरीर की जो भी स्थिति है, स्पष्ट कहिए। हम आध्यात्मिक उपाय भी करेंगे'।

वैद्य जी इस शर्त पर बताने को तैयार हुए कि घरवालों से कुछ भी नहीं कहा जाएगा। उनके अनुसार दोनोरिया जी का जीवन संकट में है। उनके मस्तिष्क में मर्मस्थानों पर चोट आई है। आगरा के डाक्टरों ने भी जान लिया था कि कोई चारा नहीं है। वे आधे मन से उपचार कर रहे थे। इसीलिए उन्होंने परिवार वालों के एक बार कहने पर ही दोनोरिया को ले जाने दिया।

दोनोरिया उनका गोत्र नाम था। इस नाते परिवार के सभी लोग इसी नाम से इंगित होते थे। लेकिन श्रीचंद अपने संगी साथियों में गोत्र नाम से ही प्रसिद्ध थे। वैद्य जी से मिलकर श्रीराम दोनोरिया के पास आ गए। थोड़ी देर उसके सिरहाने बैठे रहे और आँखे बंद कर ध्यान करते रहे। दस-पंद्रह मिनट बाद वहाँ से उठकर घुटनों के पास आ गए। उनका मुँह दोनोरिया के मुँह की ओर था। टकटकी लगाकर वे अपने साथी को निहारते रहे। पचीस-तीस मिनट इसी प्रकार बैठे रहे। शाम हो रही थी। श्रीराम जिस तरह ध्यानस्थ बैठे हुए थे, उसे

देखते हुए किसी को उन्हें छेड़ने का साहस भी नहीं हो रहा था। गोपी को लगा कि याद नहीं दिलाया गया तो शाम ढल जाएगी और आँवलखेड़ा वापस जाने में कठिनाई होगी। वह पास गया और श्रीराम के कान में कुछ फुसफुसाया। श्रीराम पर इसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। वे अविचल बैठे रहे।

याद दिलाने के लगभग पंद्रह-बीस मिनट बाद वे उठे। दोनोरिया के माता-पिता को प्रणाम किया। अगले सप्ताह फिर आने की बात कहकर उन्होंने विदा ली। गाँव से निकलते-निकलते शाम ढल गई थी। अंधेरा होने लगा था। चाँदनी रात में देशभक्ति के गीत गाते और आपस में बातचीत करते हुए सब लोग वापस आ गए। चर्चा के विभिन्न विषयों में एक जरार गाँव में सूरज प्रकाश के अत्याचार भी थे। मुकाबले की कुछ योजनाओं पर भी विचार हुआ। उनमें एक तरीका सेठ बिरदीचंद के यहाँ बंधुआ लड़कों को मुक्त कराने वाला उपाय भी था। कठिनाई यह थी कि साहूकार के खेत में तो कोई लठैत नहीं थे, जिनका मुकाबला करना पड़ता। वहाँ आसानी से काम बन गया। किन्तु सूरज प्रकाश के यहाँ बड़ी संख्या में लठैत और गुंडे थे। स्वयंसेवक दल का उनसे निपटना मुश्किल था। इस विषय पर दो-चार दिन में बात कर लेना तय हुआ। क्षेत्र में राष्ट्रीय आंदोलन को गति देने के लिए दूसरे कार्यक्रमों पर भी चर्चा हुई।

प्रारब्ध का अतिक्रमण

मार्गदर्शक सत्ता से आश्वासन मिल गया था कि किसी दिन जप पूरा नहीं हो पाए तो व्यग्र नहीं हो जाना है। अपने कर्म को- स्वातंत्र्य यज्ञ में आहुति को भी अनुष्ठान ही समझना है। फिर भी श्रीराम नियत समय पर संध्या और अभीष्ट संख्या में जप ध्यान के लिए पर्याप्त समय निकालते ही थे। कभी कोई कमी रह जाए तो रह जाए। जरार से लौटते समय सायंकाल का जप पूरा नहीं हुआ था। अगले दिन सुबह शेष जप के लिए अतिरिक्त समय लगाया। सुबह लगभग आठ बज गए। जप पूरा होने पर निवेदन का उपचार आया। समर्पण का पाठ किया। 'इति संध्योपासनाख्येन कर्मणां श्री परमेश्वरः प्रीयतां न मम।' जैसे ही श्री परमेश्वरः प्रीयतां न मम, पढ़ा अंतस् में एक बोध जागा। अपनी आत्म चेतना ही जैसे कह रही हो, जप-तप परमेश्वर की प्रीति के लिए है तो इसका उपयोग प्रारब्ध का क्षय करने में क्यों किया जाए?

स्वातंत्र्य यज्ञ में आहुति

प्रश्न कल दोनोरिया जी के पास बैठकर की गई प्रार्थना और ध्यान धारणा के संबंध में था। उसी क्षण उत्तर आया वह प्रारब्ध का क्षय करने के लिए नहीं था, बल्कि राष्ट्र यज्ञ में आहुति दे रहे लोगों के कुशलक्षेम के लिए था। पूर्व पक्ष से फिर तर्क उठा, जो भी हो अपने साधन को लौकिक प्रयोजन में नहीं लगाना चाहिए। इससे ईश्वर के बनाए कर्मफल विधान में हस्तक्षेप होता है। अपनी तपस्या का भी क्षय होता है।

पूर्व पक्ष हावी होने लगा। उलझन थोड़ी बढ़ी तो सामने प्रतिष्ठित गायत्री माता की छवि को निहारा। कुछ देर तक एकाग्र होकर देखते रहे। उस आकृति पर मुसकान सी दिखाई दी और फिर लगा कि होंठ हिल रहे हैं। अस्फुट ध्वनि आ रही है। लेकिन जो कहा जा रहा है वह स्पष्ट सुनाई दे रहा है। उद्बोधन था कि साधक की साधना होती ही प्रारब्ध का अतिक्रमण करने के लिए है। अंततः सभी को परम सत्ता में लीन हो जाना है। स्वाभाविक रूप में होने दें तो किसी को साधना की आवश्यकता ही नहीं है। लेकिन प्रकृति पर विजय पाना है। उन बंधनों से मुक्त होना है, अपने पुरुषार्थ से मुक्त होना है जो प्रकृति ने बांध रखे हैं। समाधान मिल गया।

निवेदन के तुरंत बाद श्रीराम ने अपनी प्रार्थना दोहरा दी, माँ दोनोरिया को स्वस्थ करो। उसे जीवन और शक्ति दो। प्रार्थना पूरी हुई और यह विश्वास भी बना कि वह सुनी गई है। तीन-चार दिन बाद श्रीराम अपने साथियों को लेकर दोनोरिया का कुशलक्षेम पूछने के लिए जरार पहुँचने का विचार करने लगे। जिस गोष्ठी में यह विचार हुआ, वहीं सूरज प्रकाश के आतंक को समाप्त करने की रणनीति भी बना ली गई। रणनीति के अनुसार दोनोरिया को ही अग्रणी बनना था। उस गाँव में रहने वाला व्यक्ति ही मुकाबला करे तो विजय ज्यादा टिकाऊ होगी।

जिस दिन दोनोरिया जी से मिलने गए, उस दिन फिर एक बार विचार हुआ। घर जाकर देखा उनकी हालत बहुत अच्छी नहीं थी। लेकिन पहले से सुधार था। होश आ गया था। श्रीराम आदि जब घर पहुँचे तो वे सो रहे थे। घर वालों से हालचाल पूछकर वैद्यजी के पास चले गए उनसे पूछा तो कहने लगे भगवान की कृपा हुई है। इतने दिन बेहोश रहने के बाद आशा कम ही रहती है।

‘दोनोरिया के सिर में ज्यादा चोटें आई हैं। कितने दिन में ठीक हो जाएंगे? पूछा तो वैद्यजी ने कहा ‘आठ-दस दिन तो मानना ही चाहिए। पहले तो कोई आशा नहीं थी लेकिन चेतना लौटने पर इस संबंध में अनुमान लगाया जा सकता है।’



वैद्यजी के पास कुछ समय व्यतीत कर श्रीराम वापस अपने क्रांतिकारी साथी के पास आ गए। उनकी नींद खुल गई थी। होश में आने के बाद दिन में कई बार नींद आ जाती थी। उन्होंने श्रीराम को देखा और देखते ही पहचान लिया। प्रणाम करने की भावना से उठने की कोशिश की। श्रीराम ने उन्हें लेटे रहने के लिए ही कहा। बोले, 'भारत माता को आपकी आवश्यकता है। उनके आशीर्वाद आपको जीवन और स्वास्थ्य दे रहे हैं।'

सुनकर दोनोरिया जी मुसकराए। उनके मुँह से उद्गार निकल पड़े, 'जल्दी चलने फिरने लगूँ ताकि अपने गाँव से आतंक राज खत्म किया जाए।' उनका इशारा सूरज प्रकाश के आतंक की ओर था। काफी देर तक बातचीत चलती रही। इसमें संयुक्त-प्रान्त और दूसरे राज्यों-रियासतों के आंदोलन की स्थिति पर ज्यादा चर्चा हुई। बातों ही बातों में जरार के जागीरदार को परास्त करने का विषय भी छिड़ा। श्रीराम ने सुझाया कि दस बारह दिन बाद स्वस्थ हो जाए तो सूरज प्रकाश की हवेली के सामने बैठ जाएं। साथ में और लोग भी बैठें। आने जाने वालों को अपने ऊपर हुए अत्याचार के बारे में बताएं।

दोनोरिया जी ने उत्सुकता दिखाई, 'दस-बारह दिन बाद क्यों? अभी ही क्यों नहीं?' उत्साह देख कर गोपीनाथ ने कहा 'अगर स्वास्थ्य ज्यादा नहीं बिगड़े तो अब भी बैठा जा सकता है। अभी घायल अवस्था है। उसका अच्छा असर रहेगा।' गोपीनाथ का यह विचार सभी को अच्छा तो लगा लेकिन फिर भी तीन-चार दिन ठहरना आवश्यक समझा गया। हवेली के बाहर जेठ की गर्मी में डेरा लगाना निरापद नहीं था। धरने की तैयारी के लिए तीन-चार दिन का समय वैसे भी आवश्यक था।

लोगों को बताने और पोस्टर तैयार करने में तीन-चार दिन का समय लगा। श्रीराम इस व्यवस्था में अग्रणी थे। उन्होंने स्याही की टिकिया घोलकर गत्ते पर बड़े-बड़े अक्षरों में सूरज प्रकाश के अत्याचारों के बारे में लिखा। धरने का उद्देश्य बताया कि जागीरदार अपना गुंडाराज खत्म करे। इस आशय के संदेश लिखे गए। हवेली से करीब पचीस कदम दूर छोटा सा मंच बनाया। उस पर छाया की। जिस दिन धरने पर बैठना था, उस दिन आगरा से श्रीकृष्ण दत्त पालीवाल को बुलाया। पालीवाल जी आये तो दूसरे नेता भी आ गए। उनके आ जाने से सूरज प्रकाश थोड़ा विचलित हुआ। उसके मन में यह दबाव बैठ गया कि अगर गुंडों से धरना उठवाने की कोशिश की तो बवाल हो जाएगा। आगरा से लोग आए हैं

स्वातंत्र्य यज्ञ में आहुति

और पालीवाल जी जैसे प्रांतीय स्तर के नेता भी हैं, तो किसी भी तरह का बल प्रयोग भारी ही पड़ेगा।

धरना शुरू होने के बाद श्रीराम चले गए। दो-तीन दिन के अंतराल से वे खोज-खबर लेने आते रहे। सूरज प्रकाश की हवेली के सामने जो हो रहा था, उसका समाचार अखबारों में छपा। धरना स्थल पर लोगों का आना-जाना बढ़ा। सूरज प्रकाश के दबदबे से सभी लोग परिचित थे; लेकिन कोई उसकी चर्चा नहीं करता था। दोनोरिया जी के डेरे में आने वाले लोगों और उनकी बातचीत की सूचना भेदियों के माध्यम से जागीरदार तक पहुँची। आने वाली प्रत्येक नई सूचना उसके उद्धत अहं को थोड़ा सा खरोंच जाती थी।

दस-बारह दिन में यह स्थिति आ गई कि उसने श्रीराम से बातचीत चलाना शुरू कर दिया। वह स्वयं आगे नहीं आया, अपने एक मध्यस्थ को भेजा। श्रीराम ने उत्तर भिजवाया कि 'दोनोरिया के पास स्वयं ही जाएँ। उनकी बातों को ध्यान से सुनें और उन्हें आश्वासन करने वाला उत्तर दें।' सूरज प्रकाश को इसमें अपनी हेठी होती दिखाई दे रही थी। लेकिन डर भी लग रहा था कि गाँव में उसके विरुद्ध कहीं विद्रोह न हो जाए। भेदिए जिस तरह की सूचना ला रहे थे, उनसे साफ दिखाई देता था कि लोगों के मन बदल रहे हैं।

जागीरदार को समझ आई

सरकारी अमले में अपने शुभ चिंतकों से राय ली। उन्होंने यही परामर्श दिया कि दोनोरिया जी और उनके साथियों को मना लेने में ही समझदारी है। समझौते या मेलमिलाप की रूपरेखा तैयार करने का दायित्व श्रीराम को सौंपा गया। उन्होंने दोनोरिया जी को अपनी जीत के लिए बधाई दी। एक छोटा सा औपचारिक कार्यक्रम रखा गया उसमें सूरज प्रकाश ने दोनोरिया जी को लस्सी पिलाई। उन्हें अपना बेटा कहा और भरोसा दिया कि किसी भी तरह के सहयोग की आवश्यकता हो तो हवेली का दरवाजा तुम्हारे लिए सदा खुला है।

सूरज प्रकाश ने पहले जो कुछ हो गया उसके लिए क्षमा आदि तो नहीं माँगी। उसकी अपेक्षा भी नहीं की गई थी। सहयोग के आश्वासन में ही क्षमा का भाव निहित था। इस घटना के बाद जागीरदार ने लोगों को अकारण सताना लगभग बंद कर दिया। लठैतों के उपद्रवों पर भी बहुत कुछ अंकुश लग गया। सूरज प्रकाश और दोनोरिया जी के मिलाप के बाद कुछ साथियों ने राय दी कि विजय उत्सव



मनाया जाए। श्रीराम इसके लिए सहमत नहीं हुए। उनके अनुसार जीत-हार मानने से सूरज प्रकाश के अहं को चोट लगती। उसका कोई औचित्य नहीं था। उद्देश्य किसी को पराजित करना नहीं था, बल्कि न्याय और शांति का वातावरण बनाना था। वह बनना आरंभ हुआ बस इतना पर्याप्त है।

पिछले साल छिड़े सविनय अवज्ञा आंदोलन का प्रभाव अभी शेष था। मार्च १९३१ में गाँधी-इरविन समझौता होने के बाद आंदोलन स्थगित सा कर दिया गया था। सरकार ने भी दमन की कार्रवाई छोड़ दी थी और दोनों पक्षों ने आमने-सामने बैठकर मसले सुलझाने का रास्ता अपनाया। दमन करने वाले कानून वापस ले लिए गए। जिन पर हिंसा और संगीन अपराध के आरोप थे, उनके अलावा सभी राजनैतिक बंदी रिहा कर दिए गए। इस तरह आंदोलन और धरपकड़ की गरमागरमी कम हुई; लेकिन सविनय अवज्ञा आंदोलन से जो चेतना जागी थी, वह प्रगाढ़ ही होती गई।

जिन दिनों उत्साह का वातावरण था, उन दिनों तो 'सैनिक' पत्र की धूम मची हुई थी। आंदोलन की सूचना देने वाला यह प्रमुख माध्यम था। गांधी इरविन समझौते के बाद राष्ट्रीय भावनाओं पर अंकुश तो नहीं लग गया था; लेकिन गति थोड़ी धीमी पड़ने लगी थी। उसी के चलते सैनिक पत्र में भी थोड़ा उतार आया। कुछ कार्यकर्त्ता इस डर से अखबार छोड़ने लगे कि कहीं उन पर प्रशासन का कोप न टूट पड़े। यह डर निराधार ही था फिर भी आशंका के मारे चार-पाँच लोग अखबार छोड़ गए। खबरों में वैसी तेजी नहीं रहने के कारण प्रसार संख्या में भी कुछ गिरावट आई थी। पालीवाल जी ने श्रीराम से कहा कि 'संभव हो तो वे भी थोड़ा हाथ बटाएँ।' श्रीराम ने सहयोग का स्वरूप पूछने की आवश्यकता भी नहीं समझी और हाँ कर दी। उन्हें संपादकीय विभाग में रखा गया। उन दिनों विधिवत् नियुक्ति-पत्र देने या वेतन आदि तय करने का चलन नहीं था। परिवार में अतिथि की तरह या स्वजन संबंधी की तरह संस्थाओं में प्रवेश किया जाता था। श्रीराम भी 'सैनिक' परिवार के सदस्य बन गए।

शुरू में आँवलखेड़ा से प्रतिदिन आने जाने की बात सोची गई। कुछ दिन यह सिलसिला चलाया भी सही। लेकिन बाद में आगरा में ही पड़ाव डालना आवश्यक हो गया। ताई जी इसके लिए अनुमति नहीं दे रही थीं। इसलिए 'सैनिक' में प्रतिदिन आने का क्रम कुछ समय के लिए स्थगित रखा गया। लेख और स्थायी महत्व के समाचार, फीचर आदि आँवलखेड़ा में रहकर



स्वातंत्र्य यज्ञ में आहुति

ही तैयार कर लेते। तीसरे-चौथे दिन आगरा आकर दे जाते। पहले दिए गए लेखों और वृत्तान्तों के प्रूफ वहीं बैठकर पढ़ लेते और वापस आ जाते। ताई जी श्रीराम का इस तरह आना जाना और यहाँ भी आंदोलन आदि में हिस्सा लेते हुए व्यस्त रहना देखती थी। सप्ताह में दो बार तो वे आगरा चले ही जाते थे। ऐसे अवसर भी आए जब उन्हें एकाध बार और जाना पड़ा। यह व्यस्तता देख एक दिन ताई जी ने अपने पास बिठाया और माथे पर हाथ फेरकर सहलाते हुए पूछा, 'बहुत कमजोर हो गये हो। खाना-पीना जँच नहीं रहा है शायद?'

'नहीं तो! ऐसी कोई बात नहीं है। भरपेट खा लेता हूँ। दिन भर काम करता हूँ। कमजोर होता, तो यह सब कैसे कर लेता।' श्रीराम ने उत्तर दिया। ताई जी ने इस उत्तर पर कोई गौर नहीं किया। वे अपने मन में पहले ही कोई व्यवस्था सुनिश्चित किए बैठी थी। श्रीराम ने स्पष्टीकरण को अनसुना किए ही वे बोली 'आने-जाने से बहुत परेशानी होती है न। मैं अपने आपको समझा लूँगी। पालीवाल जी के साथ ही रहो।'

श्रीराम ने कहा 'ठीक है।' ताई जी ने अपने आँसू पोंछे 'यहाँ आए थे तब देखा था। बहुत भले आदमी हैं। उनका हाथ बँटाना।' कुछ देर रुककर वे फिर बोलीं, बीच-बीच में यहाँ आते रहना। हफ्ते में एक बार एक दिन के लिए अवश्य ही। इस निर्देश के बाद उन्होंने हवेली के मुंशी जी को आगरा में प्रबंध के लिए कहा। प्रबंध क्या करना था? पालीवाल जी ने अपने पास ही रहने का प्रस्ताव रखा था। ताई जी का मानना था कि फिर भी अपने भरोसे रहना ही ठीक है।

आगरा में डेरा

आगरा रहने लगने के बाद श्रीराम ने आँवलखेड़ा के कार्यक्रमों की कमान गोपीनाथ को सौंपी। सप्ताह में कम से कम एक दिन के लिए तो वहाँ आना तय ही था। किसी विषय में परामर्श आवश्यक हुआ, तो वह 'सैनिक' कार्यालय में आकर अथवा यहाँ बुलाकर भी किया जा सकता था। श्रीराम की लेखनी ने अब पत्रकारिता की राह पकड़ी। वे लिखने पढ़ने में दत्तचित्त होकर लग गये। 'सैनिक' तब अखबार का कार्यालय ही नहीं था बल्कि स्वतंत्रता सेनानियों का आश्रय स्थल भी बना हुआ था। वहाँ उनकी बैठकें होती, रणनीति बनाई जाती और रात देर रात होने पर लोग वहाँ सो भी जाते।



पालीवाल जी आंदोलन और संगठन का काम देखते हुए बाहर रहते। श्रीराम के आने के बाद वे कुछ निश्चित हो गये। पूरे समय के लिए आ जाने के बाद इस नये पत्रकार ने पहले ही दिन अखबार के ढाई पृष्ठ अकेले तैयार किये। पूरा अंक चार पृष्ठ का निकलता था। पहले दिन के इस रिकार्ड से ही नहीं, पिछले कार्यों से भी पालीवाल जी के मन में श्रीराम की अच्छी छवि बनी हुई थी। उनके आने के बाद पालीवाल जी दिनोंदिन निश्चित से होते गये।

‘सैनिक’ में जो सामग्री छपती थी, उससे ज्यादा सरकार आंदोलनकारियों को वहाँ टिके रहने से चिंतित थी। चिंता मुक्त होने के लिए प्रशासन सैनिक में ताला लगवाने की योजना बनाता रहता। आंदोलन थोड़ा धीमा पड़ने लगा तो प्रशासन को अपनी योजना पर काम करने का अच्छा मौका मिला। हथियार रखने के आरोप में दो पत्रकारों को गिरफ्तार कर लिया। छह-सात कर्मचारियों को डरा-धमकाकर काम पर आने से रोक दिया। ज्यादातर लोगों के नहीं आने से ‘सैनिक’ के ताजा अंक निकलने की समस्या आ गई। पालीवाल जी उस समय संगठन के काम से बाहर थे। उन तक संदेश भेजने का समय नहीं था संदेश भेज दिया जाता, तो भी क्या होता? वे आ जाते और आते-आते इतना समय लग जाता कि ‘सैनिक’ के प्रकाशन का समय निकल जाता। कार्यालय में बचे रह गये कर्मचारी-पत्रकार इसी उधेड़बुन में लगे हुए थे।

हाल में ही वहाँ आए श्रीराम ने सबकी चिंताओं का निवारण सुझाया। उन्होंने अपने आपको प्रस्तुत किया और समाचार संकलन करने से लेकर उन्हें लिखने, कम्पोज करने, प्रूफ पढ़ने के मोर्चों पर अपने आपको झोंक दिया। साथी कर्मचारियों को यह संभव नहीं लग रहा था कि समाचार पत्र समय पर निकल जाएगा। वे बीच-बीच में टीका-टिप्पणी करने लगते। निष्क्रिय चिंता जताने से जो काम होता संभव लगता है, उसमें भी बाधाएँ आती हैं। श्रीराम ने अपने साथियों को समझाया। उन्हें सलाह दी कि ‘इस तरह की चिंता व्यक्त करने से अच्छा है, चुप रहा जाय। सचमुच यदि चिंता है, तो थोड़ा बहुत हाथ बटाएँ।’

दो साथियों को अपनी गलती का भान हुआ। वे भी काम में जुट गये। उन लोगों को मशीन चलाने का अनुभव था। तीन व्यक्तियों की अच्छी टीम बन गई और उस दिन का समाचार पत्र तैयार होकर बाजार में आ गया। जिन अधिकारियों ने ‘सैनिक’ बंद कराने का षड्यंत्र रचा था और मान बैठे थे कि अब अगला अंक नहीं निकलेगा। वे दंग रह गये। तीन लोगों की टीम ने समाचार

स्वातंत्र्य यज्ञ में आहुति

पत्र निकाल दिया। उसकी किसी भी पंक्ति और छपाई से नहीं लगता था कि 'सैनिक' पत्र में कोई संकट आया हो।

अगले दिन का अंक भी उसी स्तर का प्रकाशित हुआ। उसमें श्रीराम ने पहले पृष्ठ पर एक निवेदन लिखा था। पिछले दो दिन में 'सैनिक' पर हुई अधोषित कार्रवाई के बारे में बताया गया था। उसे दमन की संज्ञा देते हुए सैनिक परिवार के सदस्यों के जीवट से भी परिचित कराया। उसका प्रभाव हुआ। दोपहर बाद से ही कार्यालय के सामने अपने आपको कार्यकर्ता के रूप में प्रस्तुत करते हुए लोग आने लगे। ये लोग शुद्ध रूप से पाठक ही थे। पत्रकारिता या मुद्रण कला का उन्हें कोई अनुभव नहीं था। फिर भी उनकी निष्ठा ने 'सैनिक' कार्यालय में ऊर्जा भर दी। कल तक जो कर्मचारी अपना काम छोड़कर जा रहे थे, वे वापस होने लगे। उनमें साहस का संचार हुआ और अगले दिन से स्थितियाँ सामान्य हो गईं।

तीसरे दिन पालीवाल जी लौट आए। उन्हें 'सैनिक' पर आए संकट की सूचना मिल गयी थी। वे चिंतित थे। कार्यालय में आकर देखा तो सब कुछ सहज लगा। वहीं के साथियों ने संकट की गंभीरता और चुनौती से अवगत कराया। उस विकट स्थिति से बाहर आने की कहानी भी साथी पत्रकारों, कर्मचारियों से पता चली। 'सैनिक' के प्रथम पृष्ठ पर छपा निवेदन पढ़कर वे गद्गद हो उठे। इस सूझ-बूझ और लगन से अभिभूत होकर उन्होंने श्रीराम को गले लगा लिया। उल्लास के मारे उनके मुँह से शब्द नहीं निकल रहे थे। रुंधे हुए कंठ से उन्होंने श्रीराम की पीठ थपथपाते हुए कहा 'सैनिक' को उसका सेनापति मिल गया। श्रीराम चुपचाप यह सब देख-सुन रहे थे।

पालीवाल जी ने आते ही व्यवस्था को नया रूप देना आरंभ किया। पिछले तीन-चार दिन में जो रूप उभरा था। उसमें ज्यादा संशोधन की आवश्यकता नहीं पड़ी। पालीवाल जी ने श्रीराम के दायित्व को हलका करते हुए नये साथी चुनें। पुरानों में कुछ ने आना बिल्कुल बंद कर दिया था। सिर्फ दो लोग ही आ रहे थे। उन्हें संपादन और प्रोडक्शन की जिम्मेदारियाँ दीं। नये पुराने में से एक को वितरण का प्रभारी बनाया। श्रीराम के पास मुख्य रूप से संपादन का काम ही रह गया। उन्हें पत्र चलाने का विशेष अनुभव नहीं था। पालीवाल जी ने पहले की तुलना में ज्यादा समय लगाने की बात कही। 'सैनिक' चलाने का प्रशिक्षण देने के बाद ही बाहर जाने का निश्चय किया। बातों ही बातों में उन्होंने श्रीराम से कहा,



‘मुझे अपना दाहिना हाथ मिल गया है। वचन दो कि ‘सैनिक’ परिवार में ही रहोगे। इसे छोड़कर कहीं नहीं जाओगे।’

वचन नहीं संकल्प

श्रीराम ने उत्तर देने में तनिक भी देर नहीं लगाई। कहा, ‘परिस्थितियाँ कब-कहाँ ठेल देंगी, कुछ कहा नहीं जा सकता, इसलिए मैं वचन में तो नहीं बँधता, लेकिन यह अवश्य कहूँगा कि आप मुझे हमेशा अपने सहयोगी के रूप में ही पाएँगे।’ सुनकर पालीवाल जी ने समझ लिया कि उनकी अपेक्षा भावुकता से भरी हुई थी। श्रीराम का इतना कहना भी उन्हें पर्याप्त लगा।

आन्दोलन की गर्मी कुछ देर के लिए ही ठंडी पड़ी थी। कुछ महीनों तक माहौल शांत होता दिखाई दिया। लंदन में होने वाले दूसरे गोलमेज सम्मेलन में गाँधीजी कांग्रेस के एक मात्र प्रतिनिधि के रूप में आमंत्रित किये गये थे। पहला सम्मेलन नवम्बर १९३० में हो चुका था। उसमें कांग्रेस का कोई प्रतिनिधि नहीं गया, इसलिए वह एक तरफा ही रह गया। ब्रिटेन की सरकार ने फिर भी केन्द्रीय और राज्यों की विधानसभाओं को शासन सम्बंधी उत्तरदायित्व सौंपना स्वीकार कर लिया था। कांग्रेस ने इस पर विशेष उत्साह नहीं दिखाया। दूसरा सम्मेलन सितंबर से दिसम्बर १९३१ तक होना था। महात्मा गाँधी के जाने से उसकी सफलता और विफलता के बारे में कई तरह के अनुमान लगाए जाने लगे। समाज में उनकी चर्चा होती थी। तिथियाँ जैसे-जैसे निकट आती गयीं, लोगों की उत्सुकता भी बढ़ने लगी।

गाँधीजी के प्रस्थान से पहले ही विधानसभाओं से साम्प्रदायिक आधार पर प्रतिनिधित्व का मसला उठ गया था। माँग मुस्लिम लीग की ओर से उठी थी। अंग्रेजों ने इसे खूब हवा दी, इतिहास की गवेषणा करते हुए विद्वान् मानते हैं कि उन माँगों से ही पाकिस्तान का बीज पड़ा था। साम्प्रदायिक आधार पर न केवल मुसलमान अलग प्रतिनिधित्व माँग रहे थे बल्कि सिख, ईसाई, जैन, फारसी और जनजातियों के संगठन भी इसकी माँग करने लगे। आशंका उसी समय से होने लगी थी कि दूसरे सम्मेलनों में यह प्रश्न छाया रहेगा और वैसा ही हुआ। महात्मा गाँधी ने साम्प्रदायिक आधार पर प्रतिनिधित्व के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। वे २८ दिसम्बर १९३१ को भारत लौट आये।

गोलमेज सम्मेलन का निमंत्रण स्वीकार किये जाने से लेकर उसके सम्पन्न होने तक श्रीराम ने ‘सैनिक’ पत्र में टिप्पणियाँ लिखीं। ‘मत्त’, ‘श्रीराम’,

स्वातंत्र्य यज्ञ में आहुति

‘श्रीराम शर्मा’ आदि नामों से लिखे गये लेख, विश्लेषण और टिप्पणियों ने अखबार को नये सिरे से लोकप्रिय बनाया। उनके लेखन का स्वर मूल रूप से राष्ट्रीय होता था। वे जोर देकर कहते थे कि भारत में रहने वाले सभी लोग पहले भारतीय हैं, फिर बाद में कुछ और। विभिन्न रुचि, प्रकृति और स्वभाव के लोग यहाँ रहते आए हैं। उनके विश्वासों को आदर दिया जाता रहा है। अपने विश्वास को विचलित किए बिना दूसरों के साथ सद्भाव और सहयोग के सम्बंध कायम रहे हैं। इस आधार पर ही देश में सामंजस्य और समरसता का वातावरण बना रहा है। उनके लेखों में इतिहास-पुराणों से भी कई प्रसंग और उद्धरण दिये जाते थे। सात-आठ सप्ताह में ही उनका अपना एक छोटा सा पाठक समुदाय बन चला था।

पहला भाषण

आशंका के अनुरूप महात्मा गाँधी के रवाना होते ही भारत में दमन और उत्पीड़न का चक्र फिर गति पकड़ने लगा। श्रीराम शुरु से ही धोती-कुर्ता पहनते थे। ‘सैनिक’ में काम करते हुए उन्होंने थोड़ा सा परिवर्तन किया। कभी कभार वे नेकर और कमीज भी पहनने लगे। यह वेश काम करते हुए या प्रदर्शन सत्याग्रह के समय अपनाते। प्रदर्शन आदि के समय तो वह हाथ में एक छोटी सी लाठी भी पकड़ लिया करते थे। गाँव में झंडा जुलूस निकालने के बाद लाठी को उन्होंने श्रीकृष्ण की वांसुरी की तरह अपना लिया था। कंधे पर प्रायः एक झोला लटका रहता था। उसमें दो एक पुस्तकें और रूमाल तौलिया आदि रखे रहते। जिस दिन समाचार आया कि गोलमेज सम्मेलन का प्रस्ताव ठुकरा कर गाँधी जी वापस लौट आए हैं, उस दिन उन्होंने पूरा सत्याग्रही बाना धारण किया और कार्यालय के बाहर आ गये।

अखबारी कागज पर स्याही से बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा, ‘महात्मा गाँधी की जय’ और वह पोस्टर बाहर की दीवार पर लगा दिया। राह चलते लोग यह पोस्टर देखने के लिए रुके। आठ-दस व्यक्ति इकट्ठा हो गये, तो श्रीराम ने छोटा-मोटा भाषण देना शुरू किया। भाषण से महात्मा गाँधी की वापसी और उसमें निहित राष्ट्रीय एकता के संदेश का खुलासा किया गया था। श्रीराम जिस जगह खड़े होकर भाषण दे रहे थे, वह कार्यालय की दीवार से सटा हुआ चबूतरा था। लोग जहाँ खड़े सुन रहे थे, वह भी ‘सैनिक’ कार्यालय के बाहर का ही हिस्सा था। सभा जैसा कोई औपचारिक आयोजन नहीं था। श्रीराम ने कोई तैयारी नहीं की थी। वे अनायास ही बाहर आ गये थे और पोस्टर देखने के लिए रुक

गये और लोगों को देखकर उत्साहित हो उठे थे। उत्साह में ही वे बोलने लगे थे। श्रीराम का यह पहला भाषण था। इससे पहले वे बातचीत में या गोष्ठियों और बैठकों में ही बोलते थे। वह बोलना संवाद ही होता था, जिसमें दूसरे लोग भी बराबरी से हिस्सा लेते थे।

पालीवाल जी को पता चला, तो उन्होंने बधाई दी। कहा, 'अपने सार्वजनिक जीवन में यह एक नया अध्याय है। अवसर भी कितना अच्छा कि महात्मा गाँधी जिस दिन अंग्रेजों की दुरभिसंधि को तोड़कर भारत आ गये, वह दिन।' विजय दिवस पर गाँधी के एक सेनानी के व्यक्तित्व में नया फूल खिलने की सुवास ने उन्हें विभोर कर दिया। आगरा में जिस समय श्रीराम 'सैनिक' कार्यालय के बाहर लोगों को संबोधित कर रहे थे। लगभग उसी समय या थोड़ा बाद में गाँधी जी बंबई की एक सभा में बोल रहे थे। उन्हें सुनने के लिए अपार भीड़ जमा हुई थी। लोग उन्हें सुन कम रहे थे अनुभव ज्यादा कर रहे थे। लंगोटीनुमा धोती पहनने वाला महात्मा गाँधी का इंग्लैण्ड जाना और वहाँ अपना प्रभाव छोड़कर आने का समाचार ही लोगों को रोमांचित कर रहा था। सभा में गाँधीजी ने नये सिरे से लड़ाई छेड़ने की आवश्यकता बताई।

तीन दिन बाद सन् १९३२ में पहली तारीख को कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक में सविनय अवज्ञा आन्दोलन फिर शुरू करने का निर्णय हुआ। इस बार विदेशी सामान के बहिष्कार का भी आह्वान किया गया। आंदोलन फिर से शुरू करने की घोषणा ने नागरिकों में उत्साह भर दिया। आह्वान की तुरंत जैसी प्रतिक्रिया हुई, उसे देखकर लगता था कि लोग जैसे पहले से ही तैयार बैठे थे। उन्हें शायद यह भी मालूम था कि आंदोलन छिड़ने की घोषणा होते ही क्या कदम उठाये जाने हैं?

ब्रिटिश सरकार को भी इसका पूर्वाभास था। गाँधीजी के लौटते ही उसने भी क्रान्तिकारी संभावना वाले लोगों को पकड़ना शुरू कर दिया था। घोषणा होने के तीसरे दिन महात्मा गाँधी को भी गिरफ्तार कर लिया गया। कांग्रेस को गैर कानूनी संगठन घोषित कर दिया। उसका प्रचार करने वाले कार्यकर्ता, पत्र पत्रिकाओं और सदस्यों पर शिकंजा कसा गया। राष्ट्रीय आंदोलन की बात करने वाले समाचार पत्रों का प्रकाशन रोक दिया गया। आगरा में 'सैनिक' कार्यालय बंद हो गया। उसके प्रबंधक और कार्यकर्ता यहाँ वहाँ छुप गये।

जनवरी के पहले सप्ताह में ताबड़तोड़ हुई इस कार्यवाही से बचते हुए श्रीराम भी कार्यालय से निकल गये। उन्होंने अपने साथ अखबारी कागजों का एक पुलिंदा रख लिया था। वहाँ रखे कपड़े और आवश्यक सामान भी समेटने चाहे, लेकिन सोचा कि इनकी जगह कागज रख लिये जाएँ, तो ज्यादा अच्छा है। खबरें लिखने और दीवारों पर चिपकाने के काम आएँगे। श्रीराम कार्यालय से छुपकर आँवलखेड़ा नहीं गये। वहाँ पुलिस के पहुँच जाने की आशंका थी। वे सीधे जरार गए और अस्थाई रूप से वहाँ टिके। दोनोरिया जी का निवास भी सुरक्षित नहीं था। आंदोलन में उनकी भागीदारी को देखते हुए पुलिस के वहाँ आ धमकने का खतरा था। दो-दिन बाद वे सूरज प्रकाश के पास गये। उससे कहा कि कुछ दिन के लिए अपनी किसी बगीची में रहने की व्यवस्था कर दे।

सूरज प्रकाश उस इलाके का जागीदार था। उससे आश्रय माँगना जोखिम मोल लेने जैसा ही था। लेकिन सूरज प्रकाश को उन क्षणों की याद थी, जिसमें श्रीराम ने साथ दिया था और दोनोरिया जी के धरने के संकट से वह उबर आया था। इस बीच राष्ट्रीय आंदोलन के कई मार्मिक प्रसंग आँखों के सामने आए और कानों से सुने थे। आगरा के कलेक्टर विलियम्स की आए दिन मिलने वाली धमकियों ने भी जागीरदार की आँखें खोल दी थी। वह सोचने लगा था कि अंग्रेजों को साथ देने से क्या लाभ? वे आज हैं, कल नहीं। यहाँ के लोग हमेशा यहीं रहेंगे और समय-असमय काम आते रहेंगे। सूरजप्रकाश में आए इस बदलाव को श्रीराम ने पता नहीं कैसे पढ़ लिया और रहने की व्यवस्था करने के लिए कहा। प्रबंध हो गया। लगभग दो किलोमीटर दूर पर पक्के मकान में उनके रहने की व्यवस्था कर दी गयी।

सैनिक का दीवार संस्करण

श्रीराम ने दोनोरिया जी और उनके साथी सुराजियों को भी वहाँ बुलाया। कार्यालय पर पहरा बैठ जाने से 'सैनिक' का प्रकाशन तो संभव नहीं था। उन लोगों ने सरकंडे की कलम से पोस्टरनुमा कागजों पर समाचार लिखना शुरू किया। पहली प्रति श्रीराम ने तैयार की। उसकी प्रतिलिपियाँ तैयार हुईं। बीस-पचीस प्रतियाँ तैयार हुईं, तो उन्हें आगरा के विभिन्न इलाकों में दीवारों पर चिपकाने की योजना बनी। यह सब बहुत मेहनत और कसरत का काम था। प्रतिदिन ताजा अंक निकलने की आशा नहीं की गई थी। उद्देश्य यह था कि 'सैनिक' की उपस्थिति प्रतीत होती रहे। श्रीराम अपने संगी-साथियों के साथ

आगरा पहुँचे और वहाँ खास ठिकानों पर 'सैनिक' का दीवार-संस्करण चिपकाया। बाद में उन्होंने सूरज प्रकाश की बगीची पर जाने के बजाय आगरा में रहना ही अच्छा समझा। अपने आपको छुपाना ही तो था। उसके लिए मीलों तक भागने से थोड़ी सी सावधानी बरतना बेहतर समझा।

सरकार इस बार निर्ममता से दमन कर रही थी। सार्वजनिक जीवन में रहने वाले आंदोलनकारियों को पहले दौर में ही पकड़ लिया गया था। भूमिगत काम करने वालों को भी बाज की आँख से ढूँढा जा रहा था। 'सैनिक' के पहले ही अंक में ब्रिटिश सरकार को धोखेबाज और निर्मम बताते हुए उसे उखाड़ फेंकने का आह्वान था। समाचार संकलन का तंत्र उस समय विकसित नहीं हुआ था। स्थानीय समाचारों के लिए संवाददाता भागदौड़ करते रहते थे। नगर से बाहर की खबरों के लिए रेडियो, टेलीग्राम और टेलीफोन पर निर्भर रहना पड़ता था। इन साधनों पर सरकार का अधिकार था। सही खबरें मिलने का सवाल ही नहीं उठता। रेडियो और सरकार की जी हुजुरी कर रहे अखबार सब ओर अमन चैन की सूचना दे रहे थे। 'सैनिक' में इसलिए समाचार कम विश्लेषण ज्यादा होते थे। विश्लेषण कहना भी ठीक नहीं होगा, सूचनाएँ और आंदोलित करने वाली अपीलें पर ही ध्यान दिया गया था।

दूसरे अंक में सूचना छपी कि १० जनवरी को ब्रिटेन की महारानी का पुतला फूँका जाएगा। जगह बताई गयी थी, यमुना का तट और समय सुबह दस बजे। यह अंक जिलाधीश की कोठी के सामने भी चिपकाया गया। प्रशासन सतर्क हुआ। पुतला नहीं जलाने देने और इस तरह की कोशिश करने वालों को पकड़ने की योजना बनाई गयी। यमुना तट बहुत विस्तृत है। आगरा शहर को लगभग दस किलोमीटर तक घेरता है। जगह का खुलासा नहीं था कि कौन सा बिन्दु होगा? पुलिस ने चप्पे-चप्पे पर नजर रखने की नीति अपनाई।

'सैनिक' का दीवार-संस्करण पंद्रह बीस जगह चिपकाया गया था। लेकिन सूचना सैकड़ों लोगों ने पढ़ ली। कानों-कान तो वह हजारों लोगों तक पहुँच गयी होगी। सभी संशय में थे कि यमुना किनारे किस जगह पुतला फूँका जाना है। दस जनवरी का दिन आया। उस दिन पुलिस बेहद सतर्क थी। 'सैनिक' के कार्यकर्त्ताओं ने यमुना किनारे पहरा दे रही पुलिस को चकमा दिया। ताजमहल के पास तैनात पुलिस दल को एक युवक ने सूचना दी कि वहाँ ताजमहल के मुख्य गेट के पास लोग इकट्ठे हो रहे हैं, शायद पुतला फूँकने वाले हैं।

सूचना मिलते ही पुलिस दल के लोग दौड़े गये। वहाँ जाकर दूर से ही देखा कुछ युवक घेरा बनाकर खड़े हैं। कुछ जल रहा है, लपटें उठ रही हैं। युवक विलाप कर रहे हैं, 'हाय रानी नहीं रही, उनके प्रभुओं का राज भी नहीं रहा'। फिर भारत माता की जय और महात्मा गाँधी की जय। युवकों को ललकारे बिना पुलिस वाले चुपचाप दौड़े चले आ रहे थे। युवक भी असावधान नहीं थे। उनमें से किसी की निगाह पड़ गयी, वह चिल्लाया- 'पुलिस' और वहाँ पुतला जला रहे युवक पलक झपकते रफू चकर हो गये। वे इस तेजी से भागे थे कि पुलिसकर्मियों को उनका पीछा करने में कोई सार नहीं दिखाई दिया। उन्होंने आग बुझाने की कोशिश की, लेकिन व्यर्थ। पुतला जलकर खाक हो चुका था। पास में 'भारत माता की जय' और 'ब्रिटिश राज मुर्दाबाद' लिखी तख्तियाँ पड़ी हुई थीं।

पंडित मोतीलाल नेहरू का आह्वान लोगों तक पहुँच गया था। उसमें विदेशी कपड़ों की होली जलाने और शराब पीने वालों को निरुत्साहित करने की अपील थी। सरकारी दमन का विरोध करने के लिए उन लोगों को घेराव करने और उनसे कोई संबंध नहीं रखने की अपील भी की गयी। 'सैनिक' के दीवार-संस्करण में इन कार्यक्रमों को प्रकाशित किया गया।

गाँवों में प्रचार का काम चल ही रहा था। वहाँ स्वराज पंचायतें बनाने का कार्यक्रम भी शुरू हुआ। पुरानी पंचायतों को भंग करने और उनकी जगह आन्दोलन कर्मियों की नई पंचायतें बनाने की खबरें भी 'सैनिक' में आने लगी। जिला प्रशासन का सामानांतर विकल्प बनाने पर भी अखबार में जोर दिया जाने लगा। 'सैनिक' पत्र का नया अंक पाँच-सात दिन में आता था। पुलिस और खुफिया विभाग ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थक गये कि यह कहाँ तैयार होता है। कौन लोग इसे तैयार करते हैं और उनकी सूचनाओं का स्रोत कहाँ है? लेकिन पता नहीं लग पाया। 'सैनिक' के कर्मचारियों पर संदेह तो जाता था। श्रीराम का नाम उन संदिग्ध लोगों में सबसे ऊपर था, परन्तु उनका पता नहीं चल रहा था।

पुलिस को चकमा और गिरफ्तारी

आगरा मंडल में एक गाँव है किरावली। वह आंदोलनकारियों का गढ़ बना हुआ था। स्वतंत्रता सेनानी वहाँ आते-जाते थे। बैठकें करते और आस-पास के क्षेत्रों में प्रचार की योजनाएँ बनाते। पुलिस को पता चला, तो उसने स्वतंत्रता सेनानियों को पकड़ने के लिए जाल बिछाया। जाल कुछ इस तरह कि जब बैठक चल

रही हो, तब सबको धर-पकड़ लिया जाये। इस योजना की भनक श्रीराम को लग गयी। उन्होंने योजना विफल करने की ठानी। १६ मार्च को करीब साठ स्वतंत्रता सेनानी वहाँ इकट्ठा होने थे। उन्हें पकड़ने के लिए पुलिस की दो गाड़ियाँ आगरा से रवाना हुई।

किरावली से लगभग पाँच किलोमीटर पहले से उन्हें कुछ युवकों की आवाजें सुनाई दी। लगता था जैसे कि किसी मुद्दे पर बहस कर रहे हैं। गाड़ियों की घरघराहट से आवाज साफ नहीं सुनाई दे रही थी। दल का नेतृत्व कर रहे पुलिस अधिकारी जनक सिंह ने गाड़ी रुकवाई और आवाजें समझने की कोशिश की। बहस का विषय यह समझ में आया कि जिला मुख्यालय, पुलिस थाने और अदालत की टेलीफोन लाइनें काटी जानी है। उसके बाद वहाँ हमला कर देना है।

जनक सिंह ने तुरंत उस जगह की घेरा बंदी कर दी। घेरा सिकुड़ता गया। पास आकर देखा तो एक युवक के हाथ कुछ कागज हैं। वह उन पर लिखे संवाद बोल रहा है। दूसरे उसकी नकल कर रहे हैं। यह किसी नाटक का रिहर्सल लग रहा था। जनकसिंह ने उन युवकों को धमकाया कि कैसा नाटक खेल रहे हो। सरकार के खिलाफ योजना बनाना सिखा रहे हो! जिस युवक के हाथ में पटकथा थी, उसने कहा, 'नहीं माई बाप। नाटक का अंत तो आपने देखा ही नहीं। इसमें सुराजी बड़ी बुरी तरह मारे जाते हैं। उनके घर वाले दाने-दाने को मोहताज हो जाते हैं। लोगों को सरकार के पक्ष में करने के लिए ही हम नाटक की तैयारी कर रहे हैं।'

घेराबंदी और बातचीत में बीस पच्चीस मिनट लगे। दोनों गाड़ियों में सवार पुलिस कर्मी वापस आए, तो देखा कि गाड़ियाँ पंचर हुई पड़ी हैं। पहियों में किसी ने कीलें ठोंक दी थीं। जनक सिंह का माथा ठनका। उसे समझ में आ गया। नाटक की ओर से ये दूसरा नाटक हो गया। उससे लड़कों को पकड़ने के लिए हांक लगाई; लेकिन लड़के तब तक नौ दो ग्यारह हो चुके थे। पुलिस को इस तरह चकमा देने और स्वराजियों को साफ बचा ले जाने की योजना श्रीराम ने बनाई थी। पुलिस की गाड़ियों को उन्होंने अपने हाथों से पंचर किया था। यह विद्या सीखने के लिए उन्होंने मोटर मैकेनिक के हेल्पर की सहायता ली थी।

पुलिस उन्हें ढूँढ़ती परेशान हो गयी। आखिरी उपाय के तौर पर आँवलखेड़ा में दबिश देने की योजना बनाई गयी। किसी मुखबिर ने बता दिया था कि सप्ताह में एक दिन श्रीराम अपनी माँ के पास आते हैं। वह दिन प्रायः रविवार का दिन

स्वातंत्र्य यज्ञ में आहुति

होता है। पुलिस ने गुरुवार के दिन से ही हवेली की निगरानी शुरू कर दी। सादे कपड़ों में पुलिस वाले बारी-बारी से ड्यूटी देते रहे। हवेली में कुछ विशेष हलचल नहीं दिखाई दी। पूछताछ से स्पष्ट नहीं हुआ कि श्रीराम आने वाले हैं या हर रविवार को आते हैं। उधर हवेली के ही कुछ सूत्रों ने आगरा में श्रीराम के पास सूचना भिजवा दी थी कि आँवलखेड़ा में पुलिस पहरा दे रही है। उनके आने का इंतजार हो रहा है।

श्रीराम ने उस रविवार को आने का विचार स्थगित कर दिया। उसी संदेशबाहक के हाथों ताई जी को सूचना भिजवा दी कि अगले हफ्ते बुधवार को आएँगे। आँवलखेड़ा में पुलिस ताकती ही रह गयी। उधर आगरा छावनी में दीवारों पर 'भारत माता की जय' 'महात्मा गाँधी अमर रहें,' 'स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है, हम उसे लेकर रहेंगे।' जैसे वाक्य लिखे दिखाई दिये। इनमें कुछ वाक्यों की लिखावट 'सैनिक' पत्र के पोस्टरों से मिलती-जुलती थी।

५ अप्रैल १९३२ को श्रीराम अचानक पकड़ लिये गये। उस समय वे अपनी कोठरी में सुबह की उपासना करके उठे ही थे कि बाहर दस्तक हुई। देखा सामने चार-पाँच पुलिस वाले खड़े हुए हैं। श्रीराम को पहचानता हुआ एक पुराना साथी गंगादीन भी था। उसी ने पता बताया था। बाद में पता चला कि इनाम के लालच में उसने श्रीराम का पता-ठिकाना बताया। श्रीराम की गिरफ्तारी पुलिस के लिए महत्वपूर्ण सफलता थी। कोठरी के दरवाजे पर खड़े-खड़े पुलिस अधिकारी ने कहा- 'बहुत खिलाड़ी बनते थे'। अब क्या कहते हो। श्रीराम ने कहा - 'यह प्रभु का खेल है। वह कुछ दिन के लिए विश्राम कराना चाहता हो।' डेढ़ महीने हवालात में रहने के बाद अदालत ने उन्हें छह महीने के लिए सजा सुनाई और पच्चीस रुपये जुर्माना लगाया।



आशीष और आश्वासन

अगस्त १९३२ की कोई दोपहरी थी। आगरा की सेंट्रल जेल में मुलाकातियों का कक्ष। आँवलखेड़ा से आए गोपीनाथ अपने मित्र सखा श्रीराम से मिलने के लिए कक्ष में बैठे थे। लोग बारी-बारी से अपने संबंधियों से मिलने जा रहे थे। राजनैतिक बंदियों को बाहर आकर मिलने की छूट भी थी। गोपीनाथ को पुकारते हुए अर्दली ने आवाज लगाई, 'तुम्हारा रिश्तेदार श्रीराम कमरा नंबर तेईस में इंतजार कर रहा है। दस मिनट में अपनी मुलाकात पूरी कर लेना। होशियार। इससे ज्यादा वक्त नहीं मिलेगा।'

कमरा नंबर तेईस में पहुँच कर गोपीनाथ ने देखा, श्रीराम अपने साथी सेनानियों के साथ बैठे हुए हैं। उनसे बातचीत कर रहे हैं। कतई नहीं लग रहा था कि वे प्रतीक्षा कर रहे हैं। अपने साथियों से बातचीत में व्यस्त थे। गोपीनाथ की आहट सुनते ही उठे और उसे गले लगा लिया। ठीक तो हो भाई? पीठ थपथपा कर पूछा। श्रीराम को कैदियों की वेशभूषा में देखकर गोपीनाथ सन्न रह गया। उसके मुँह से बोल नहीं निकले। आँखें भर आई। कुछ कहने का साहस बटोरे, इससे पहले ही श्रीराम ने गाँव घर मित्रों और संबंधियों के कुशलक्षेम को लेकर प्रश्न पर प्रश्न कर दिए। उन सब के उत्तर गोपी 'ठीक हैं', 'कुशल हैं', 'आनंद हैं' कहकर ही दे पाए। गला रुंध रहा था। इससे ज्यादा कुछ कहते नहीं बन रहा था। मिलन का आवेग थोड़ा थमा तो गोपी ने कहा, 'भैया एक शुभ समाचार है।'

श्रीराम गोपी के मुँह की ओर देखने लगे। इस वाक्य को पूरा होने देने के लिए जैसे चुप हों। गोपीनाथ ने कहा, 'हम चाचा बन गए हैं। भाभी जी और भतीजा कुशल है। ताई जी ने कहलवाया है कि नाम आप ही बताना।'

समाचार सुनकर श्रीराम प्रसन्न हुए। पिता बनने का उल्लास उमग उठा था, लेकिन वे किलकारी मारने के स्थान पर चुप हो गए। आँखें बंद की और मन ही मन गायत्री मंत्र का पाठ किया। आँखें खोली और कहा 'ओम्' फिर चुप हो

गए जैसे गायत्री मंत्र एक बार फिर पूरी तरह दोहराया। कुछ क्षण रुककर कहा, 'यही नाम रखें। ओम। ओमप्रकाश।' नाम चुनने के बाद उन्होंने अर्दली से थोड़ा गुड़ मंगाया और गोपीनाथ के अलावा वहाँ बैठे साथियों को भी बांटा। इस प्रकार पुत्र जन्म की खुशी मनाई गई।

गोपीनाथ से यहाँ वहाँ की बातें होती रहीं। कब दस मिनट पूरे हो गए पता ही नहीं चला। अर्दली ने आकर कहा कि मिलने का समय अब पूरा हो गया। गोपीनाथ ने अपने आपको समेटा। सामान तो वह कुछ विशेष लेकर नहीं आया था फिर भी समेटा इसलिए कि उसने चारों तरफ दृष्टि दौड़ाई जैसे वहाँ आने के बाद काफी सामान फैला दिया हो। बहुत देर से बैठा हो और उठते हुए देख रहा हो कि कुछ छूट तो नहीं गया। भावों का आवेग इतना प्रबल था कि उठने का जी नहीं हो रहा था। समेटने के बहाने ही शायद थोड़ा समय और मिल जाए। लेकिन कितनी देर? श्रीराम ने ढाँढ़स दिया जल्दी ही बाहर आऊंगा। डेढ़ दो महीने की बात और है। फिर हम सब पहले की तरह ही काम करेंगे। भारत माता की जय बोलेंगे।

अगले हफ्ते फिर कोशिश करूंगा कहकर गोपीनाथ उठा। उसने श्रीराम के दिए हुए गुड़ में से चने के बराबर टुकड़ा ही खाया था। उठते हुए उसे मुट्ठी में सहेजा और कहा, 'आँवलखेड़ा में सब लोग बांट कर खाएँगे।' वाक्य पूरा करते हुए उसकी आँखों में आंसू छलक आए। श्रीराम की आँखें भी नम होने लगीं। उन्होंने गोपीनाथ की आँखों का सामना करने से बचने की कोशिश की। वे इसमें थोड़े सफल भी हुए। गोपी से गले मिले, पीठ थपथपाई और सिर झुकाए ही कमरे से बाहर निकल गए। गोपी भी चुपचाप अपनी राह चला गया।

सेंट्रल जेल में श्रीराम के साथ बारह लोग और थे जो उनके साथी सहयोगी थे या परिचित शुभैषी। कमरे में आकर बैठे लोगों में दो खासे परिचित थे। उनसे भी कोई मिलने आए थे। गोपीनाथ के चले जाने के बाद श्रीराम घर के बारे में विचार करने लगे। उन्हें ध्यान आया कि स्वतंत्रता आंदोलन में भागीदारी के चलते घर की हालत बिगड़ने लगी थी। कहने के लिए विशाल मकान था, खेती-बाड़ी थी नौकर-चाकर थे, लेकिन उन्हें संभालने के लिए एक अकेली ताई जी ही थीं। संयुक्त परिवार में और भाईबंधु भी थे लेकिन जिम्मेदारी उठाने लायक कोई नहीं था। श्रीराम उस परिवार के दीपक थे। उन पर दायित्व भी आता था लेकिन उन्हें अपने आंदोलन और साधना स्वाध्याय से ही समय नहीं



मिलता। छह महीने की सजा हो गई तो गाँव में उसका विपरीत असर ही हुआ। लोग कहने लगे कि पहले ही मना करते थे। अंग्रेजों से लड़कर कौन जीत सकता है? उनके राज में सूरज भी अस्त होने की हिम्मत नहीं करता, उन्हें कोई क्या अस्त करेगा? मत्त जी दीवाने हैं, उन्मत्त हैं, सजा भुगत कर आएँगे, तो अपने आप सुधर जाएँगे।

रिश्ते में चाचा लगने वाले दुर्गाशंकर अक्सर ताईजी को छेड़ते। उन पर व्यंग करते। कहते अब श्रीराम कुछ कलाएँ और सीखकर आएगा? उन के घर में कुछ कमाने जोतने बोलने की जरूरत नहीं रहेगी। पहली बार व्यंग किया तो ताई जी समझी नहीं। अपने सहज सरल भाव से पूछ लिया, 'क्या कलाएँ सीख कर आएगा? तुम्हें कुछ पता है दुर्गा?'

चाचा ने कहा, 'यही चोरी, बटमारी, उठाईगीरी।' सुनकर ताईजी अपना सा मुँह लेकर चुप हो गई। उन्हें दुख भी हुआ। बाद में अपने आपको समझाया कि अपना चिरंजीव औरों की तरह खाने पीने कमाने और घर संसार तक ही सिमटा हुआ नहीं है। वह पूरे मुल्क के लिए काम कर रहा है। सबके भले के लिए मर खप रहा है। कष्ट तो होगा ही।

मन में यह भाव सरणि चल ही रही थी कि जेलयात्रा के प्रसंग ने सिर उठा लिया। किंतु जेल जाना तो अच्छी बात नहीं है। उससे अपकीर्ति होती है। जेल सज्जनों के लिए तो नहीं हैं। इस प्रतिप्रश्न का उत्तर भी आया। भगवान कृष्ण तो जेल में ही जन्मे थे। उन्हें किसने अपयश दिया। वसुदेव देवकी कारावास में रहे। असुरों ने सत्पुरुषों को कई बार बंदी बनाया और आज भी तो गाँधी बाबा के जेल जाने के समाचार आते रहते हैं। यही सब सोचते हुए आँखें लग गई। उसके बाद चाचा ने कितनी ही बार व्यंग कटाक्ष किए होंगे, ताईजी पर उनका कोई प्रभाव नहीं हुआ। वे श्रीराम की अनुपस्थिति में घर और कारोबार की व्यवस्था बनाने में जुटी रहीं।

अब सावधान रहेंगे

स्वतंत्रता आंदोलन में जेल जाने के बाद संबंधियों के व्यवहार में जो परिवर्तन आया, उसके बारे में आने वालों से पता चलता रहता था। श्रीराम से मिलने के लिए मित्र और सखा सहकर्मी ही ज्यादा आते थे। स्वजन संबंधियों में इक्का दुक्का ही कभी कोई आया हो। दो बार मामाजी जरूर आए थे उन्होंने

प्रश्नसन से सिफारिश कर या मिल मिलाकर जल्दी रिहा कराने की पेशकश की थी। श्रीराम ने यह कहते हुए मना कर दिया कि किसी ऐसे जुर्म में गिरफ्तार नहीं हुआ हूँ, जिसमें लज्जा आती हो। भारत माता की सेवा करते हुए पकड़े गए हैं। उसकी सेवा में लोग हँसते-हँसते फाँसी चढ़ गए। हम बाहर आने की उतावली क्यों करें?

मामाजी ने भानजे के इस विचार को सराहा था। लेकिन उनके परामर्श में एक सूक्ष्म तत्व भी था। उन्होंने कहा था जेल में रहकर आदमी बंध जाता है। बाहर रहते हुए वह देश के लिए ज्यादा काम कर सकता है। मुक्त होने को कायरता मत समझो। श्रीराम ने कहा, 'ले देकर तो बाहर नहीं ही आना चाहिए। बाहर आया तो सावधानी बरतूंगा। पहले से ज्यादा सावधान रहूँगा और ऐसी स्थिति ही नहीं आने दूँगा कि बंदीगृह में आना पड़े।'

छह महीने पूरे होने पर श्रीराम बाहर आए। नवंबर का महीना था। दीवाली बीत चुकी थी। ताई जी ने वह दीवाली विचित्र मनःस्थिति में मनाई। बड़ा बेटा जेल में है, यह दुःख था लेकिन बहू की गोद में पौत्र खेल रहा है, यह सुख था। दीवाली के दिन ही दुलारे ओमप्रकाश का लाड़ लड़ाते हुए उन्होंने कहा, 'आने दे तेरे बाप को। सबक सिखाऊंगी।' तीन चार महीने के पौत्र को इस बारे में क्या समझ हो सकती थी कि ताईजी क्या कह रही हैं? उसकी माँ यानी ताई जी की बहू भी नहीं समझ पाई थी कि सास का आशय क्या है? वे समझी यों ही दुलार से बोल रही हैं। उस समय कही हुई बात का आशय पतिदेव श्रीराम के घर आने के वक्त प्रकट हुआ था।

आगरा के सेंट्रल जेल से छूटकर श्रीराम घर आए तो संगी साथियों ने रास्ते में ही घेर लिया। इतने दिन के बिछोह ने उन्हें स्नेह विभोर कर दिया था। महीनों बाद घर आए है, माता और पत्नी भी प्रतीक्षा कर रही होंगी, यह बात साथियों के ध्यान में ही नहीं आई। यह भी कि घर में आया नन्हा मुन्ना सदस्य भी अपने पिता को देखने या अपने आपको दिखाने की अव्यक्त आकांक्षा संजोए होगा। इन सब बातों से बेखबर श्रीराम को साथियों ने करीब दो घंटे तक घेर रखा। उन्हें भी सुध नहीं आई कि घर पर प्रतीक्षा हो रही है। वे अपने मित्रों के बीच बैठे भावी योजनाओं के बारे में बात करते रहे। आंदोलन का अगला चरण क्या होगा? उसमें कौन किस प्रकार भागीदार बन सकता है, यह समझाते रहे।



सभी साथियों ने जेलयात्रा के अनुभव भी पूछे, कैसा लगा? क्या दिनचर्या होती थी? लोगों के आपस में क्या संबंध होते? जैसे सवाल को कुरेदने की कोशिश की। श्रीराम ने इस तरह के सवालों को टाल दिया। इसलिए नहीं कि बताना नहीं चाहते थे, बल्कि इसलिए कि उनकी दृष्टि में आगे की योजनाएँ मुख्य थीं। पाँच-सात बार तो उन्होंने अतीत की स्मृतियों को वैसे ही टाला। साथियों का आग्रह बढ़ने लगा तो उन्होंने कहा, जेल की कहानी विस्तार से फिर कभी। एकाध घटना नहीं है। ढेरों बातें हैं। उन्हें बताने के लिए घंटों समय चाहिए। अभी हमें आगे की बात ही सोचना चाहिए।

बातचीत के दौर में फिर भी कुछ प्रसंग तो छिड़ ही गए। इनमें एक प्रसंग था कि जेलयात्रा के दिनों में सबसे ज्यादा किसकी याद आती थी? श्रीराम ने कहा सभी की आती थी। लेकिन वहाँ का जीवन इतना व्यस्त था कि दिनचर्या और सौंपे गए कार्यों में ही मन उलझा रहता था। किसी की याद ज्यादा सताती नहीं थी। जेल में काफी समय पढ़ने लिखने में बीत जाता। बड़े नेताओं को बहुत सी सुविधाएँ मिलती थीं। उनके लिए अखबार भी आते थे। विचार आया कि कुछ समय अंग्रेजी सीखने में लगाया जाए। लिखने का साधन नहीं था। न कलम और न कागज। इसका समाधान ढूँढ़ लिया। तसले पर कोयले से लिखने का उपाय ध्यान में आया। 'हिन्दुस्तान टाइम्स' की पुरानी प्रतियाँ ले लेते और कभी क्रांतिकारी साथियों से तो कभी जेल अधिकारियों से पूछकर अभ्यास करते। तसले पर ही अंग्रेजी की वर्णमाला सीखी। लिखने का अभ्यास किया और दो महीने में अखबार पढ़ने लायक अंग्रेजी जान ली। बाद में यह अभ्यास और सुदृढ़ हुआ।

साथी जेल जीवन की कुछ घटनाओं के बारे में पूछ रहे थे। ऐसी कोई घटना तुरंत याद नहीं आ रही थी। गंगाशरण ने कहा, अच्छा ज्यादा मत बताओ। कोई एक घटना ही सुना दो, जिसने आपके मन से सबको बिसरा दिया। किसी को याद आने लायक नहीं छोड़ा।

श्रीराम स्मृतियों में उतरे। कुछ देर तक चुप रहे और कारागार की एक घटना जैसे मुट्ठी में भर कर लाए। उन्हें गिरफ्तार कर सेंट्रल जेल ले जाया गया, तो जिन लोगों ने श्रीराम को आकर्षित किया उनमें एक साधु भी थे। नाम था उनका राघवदास। भक्तिमार्ग के उपासक ये साधु अपने आपको स्वामी के स्थान पर दास राघव कहना-कहलाना ज्यादा पसंद करते थे। कोई उन्हें स्वामी कहता

तो वे हाथ जोड़कर कहते भैया स्वामी तो एक ही है। वह ऊपर वाला। हम तो दास हैं। दास ही कहो तो बेहतर होगा। लोगों को उन्हें दास कहने में हिचक होती। इसलिए वे बाबा, महाराज आदि संबोधन उपयोग में लाते। श्रीराम ने उन्हें भगतजी कहना शुरू किया। भक्त राघवदास।

क्रांतिमार्गी भक्ति

अपने साथियों को श्रीराम ने बताया संत राघवदास को धीरे-धीरे सभी लोग भगतजी कहने लगे। भक्तिभाव से सराबोर होते हुए भी वे स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भाग ले रहे थे। उन्हें क्रांतिकारी मान लिया गया था। इसी कारण उन्हें जेल में बंद किया गया। भगत जी आगरा के पास एक हनुमान मंदिर में रहते थे। मंदिर में राम दरबार के विग्रह प्रतिष्ठित थे। लेकिन उसे हनुमान मंदिर ही कहा जाता था। कहते हैं कि यह नाम भी भगत जी ने ही दिया हुआ था। उपास्य के स्थान पर उपासक के नाम से पहचाने जाने वाला यह मंदिर अपने आप में एक अनूठी स्थापना थी।

भगत जी कहते थे कि राम को प्रसन्न करना हो तो हनुमान जैसा बनना चाहिए। बल, पराक्रम, बुद्धि, ज्ञान और विनय की प्रतिमूर्ति हनुमान उनकी दृष्टि में भक्ति का सबसे बड़ा आदर्श थे। मंदिर आने वालों को वे इन गुणों की प्रेरणा देते। किशोरों और युवकों के लिए वे मंदिर में ही कुछ अभ्यास क्रम भी चलाते। आठ दस किशोर युवकों को व्यायाम आदि के साथ रामायण की कहानियाँ सुनाते। पंद्रह बीस साल से यह क्रम चल रहा था। कुछ वर्षों से उन्होंने अपने शिक्षण में स्वतंत्रता को भी सम्मिलित कर लिया। जिस भूमि पर भगवान ने शरीर धारण किया वह दूसरे लोगों के आधिपत्य में नहीं होना चाहिए। भगवान की भूमि स्वतंत्र कराना भक्त का पहला काम है। इस प्रेरणा ने हनुमान मंदिर को धीरे-धीरे स्वतंत्रता मंदिर में बदल दिया। मंदिर और उसके संस्थापक कर्ताधर्ता शासकों की आँख में गड़ने लगे। लेकिन उनके विरुद्ध सीधी कार्यवाही करना कठिन था। भगत जी अपनी शिक्षा और अभ्यास में ऐसी कोई बात नहीं कहते थे जिसे सरकार के खिलाफ बताया जा सके।

भगत जी जिस अभियोग में बंद हुए, वह भी सीधे राजद्रोह के अंतर्गत तो नहीं आता था। लेकिन घुमा फिरा कर मामला बन ही गया। अंग्रेज और उनसे भी ज्यादा वफादार देशी अफसर भगत जी को अक्सर डपट जाया करते। आरोप



लगते थे कि वे क्रांतिकारियों को मंदिर में छुपाते हैं। भगत जी कहते कि शंका है तो तलाशी ले लो। मंदिर की तलाशी ली जाती। कहीं कुछ नहीं मिलता। एक दिन किसी अधिकारी ने कहा जहाँ रामदरबार की स्थापना है, उसके पीछे गुप्त द्वार है। मूर्तियाँ हटाकर उस गुप्त स्थान का रास्ता खुलता है।

भगत जी ने बात को हंसी के रूप में लेने की कोशिश की लेकिन वह अधिकारी अपनी बात पर अड़ा रहा। न केवल अड़ा रहा, मूर्तियाँ हटाने की कोशिश भी करने लगा। धकेलकर हटाने के लिए वह गर्भगृह की ओर बढ़ा। भगत जी ने पकड़ कर रोका। इस रोकटोक में हाथापाई की स्थिति आ गई और भगत जी ने उसकी अच्छी ठुकाई कर दी। कुछ और श्रद्धालु भी वहाँ थे। भगत जी को उलझते देखकर वे आगे आए। बुरी तरह पिट जाने के डर से अफसर दम दबा कर भाग निकला। जाते हुए वह धमकी दे गया कि अपने किए की सजा जल्दी ही मिलेगी।

न जाने क्या हुआ कि इस घटना के तीसरे दिन वह अफसर अपने घर में मरा हुआ मिला। किसी ने उसकी हत्या कर दी थी। पुलिस ने पूछताछ की तो पिछली घटनाएँ भी सामने आईं। संदेह के आधार पर भगत जी और उनके तीन सहयोगी पकड़ लिए गए। उन सब पर हत्या और सरकारी अफसर पर हमले का मुकदमा चल रहा था। आरोप संगीन था, इसलिए जमानत नहीं हुई थी।

पिछला वृत्तांत सुनाने के बाद श्रीराम ने कहा, 'भगत जी को किसी भी स्थिति, आरोप या संभावना से कोई शिकायत नहीं थी। निस्पृह भाव से अपना काम जेल में भी जारी रखते। बल, पराक्रम, बुद्धि, ज्ञान और विनय को बढ़ाने का उपदेश देते हुए वे यहाँ भी अपना अभ्यास क्रम चलाते। बल के लिए व्यायाम, पराक्रम के लिए आत्म गौरव, बुद्धि के लिए एकाग्रता, ज्ञान के लिए अध्ययन और विनय के लिए भक्ति के प्रायोगिक अभ्यास सिखाते। उनकी कक्षाओं में जाने वाले अपने आप को पहले की तुलना में श्रेष्ठ और संस्कार संपन्न हुआ अनुभव करते।'।

साधक को यद्यपि किसी चमत्कार की अपेक्षा नहीं होती, लेकिन आवश्यक हो तो उसकी निष्ठा चमत्कार भी करती है। भगत जी बहुत परिश्रमी और दिन रात एक कर देने वाले जीव थे लेकिन उन्हें जेल की स्थितियाँ प्रतिकूल लगती थीं। वहाँ नियुक्त अंग्रेज अधिकारी उनसे दुर्व्यवहार करते। देखादेखी कुछ उद्दंड देशी अफसर भी अबे तबे कह कर बोलते। कुछ दिन तक

यह चलता रहा। साधुवेश के प्रति यह व्यवहार अन्य कैदियों को भी बुरा लगता लेकिन क्या किया जाए। इस तरह का व्यवहार ज्यादा बढ़ने लगा तो विचित्र घटना घटी। पता नहीं कहाँ से चार पाँच बंदर जेल में आ गए और भगत जी के आसपास मंडराने लगे। उनका अपमान करने वाले अफसरों को देखते ही वे खी खी कर उन्हें डराने लगते।

अफसरों ने एकाध बार दुस्साहस भी दिखाया। वे डंडा उठाकर भगत जी की ओर बढ़े तो तीन बंदरों ने उन पर एक साथ हमला बोल दिया। उन्हें जगह जगह नोंचा और काट लिया। अफसरों के सामने भागने के सिवा कोई चारा नहीं था। दो तीन बार इस तरह की घटनाएँ और हुईं। जेल में चर्चा फैल गई कि भगत जी की रक्षा के लिए भगवान ने अपने दूत भेज दिए हैं। जेल प्रशासन ने बंदरों को पकड़ने की कोशिश की। उन पर निशाना भी साधा लेकिन कुछ कर नहीं पाये। अफसरों को अंततः अपना व्यवहार बदलना पड़ा। वे भगत जी के सामने नतमस्तक हुए तब कहीं वानरों ने उत्पात रोका। कुछ दिन बाद वे जेल से अपने आप चले गए। उनका वहाँ दिखाई देना बंद हो गया।

श्रीराम के कारावास में रहने के कुछ समय पहले तक राघव भगत सेंट्रल जेल में ही थे। एक अदालत में मुकदमा चल रहा था। पुलिस और प्रशासन ने उनके खिलाफ पूरी मोर्चाबंदी कर रखी थी। सरकारी वकील उन्हें पूरी तरह दोषी करार दे चुका था। पर्याप्त प्रमाण और दलीलें दी गईं। मजिस्ट्रेट थाम्सन को पता नहीं किस कोण से लगा कि राघव भगत निर्दोष हैं और उन्होंने बरी कर दिया। जिस दिन भगत जी छूटे उस दिन कारागार में चल रही उनकी कक्षा या साधना सत्रों का भी समापन था। उन्हीं भगत जी ने श्रीराम से बातचीत में कहा कि साधक को सिर्फ वर्तमान की चिंता करनी चाहिए। अभी क्या करना है, यह महत्वपूर्ण है। अतीत में जो हो चुका या भविष्य में क्या होगा, उसकी चिंता नहीं करनी चाहिए।

आजादी लेकर ही आना

राघव भगत का किस्सा सुनाने में काफी समय लग गया। घर से ताई जी का संदेश आया कि श्रीराम को हवेली नहीं लौटना है क्या? कारावास के बाद अब क्या वनवास में ही समय काटना है। संदेश पा कर वे थोड़ा सकुचाए। साथियों से दस पांच मिनट औपचारिक बातों की और हवेली की ओर रवाना

हुए। वहाँ देहरी पर उनकी अर्धांगिनी सरस्वती देवी थाली में दीपक सजाए खड़ी थीं। पीछे ताई जी थीं। आरती उतारने के बाद वे पीछे हट गईं। ताई जी आगे आईं। श्रीराम ने उनके पैर छुए। उन्होंने आशीर्वाद दिया। उस आशीर्वाद में एक व्यवस्था भी दी गई थी। उन्होंने कहा, 'श्रीराम अब तुम्हें पूरी छूट है। तुम किसी भी समय आ जा सकते हो। तुम्हारे ऊपर घर की कोई जिम्मेदारी नहीं है। घर परिवार का दायित्व उसी समय लेने आना जब भारत को आजादी मिल जाए।'

कहते हुए ताईजी के चेहरे पर आशीर्वाद और संतोष का भाव था। अपने चिरंजीव को उन्होंने भारतमाता के लिए समर्पित कर दिया। वे स्वयं बहू और पौत्र में ही संतोष मान कर रह गईं। श्रीराम ने एक बार और ताई जी के चरण स्पर्श किए। उनकी चरण रज को अपने मस्तक पर लगाया। घर के भीतर गए। पालने में तीन महीने का पुत्र सो रहा था। जेल में उसे जो नाम दिया था 'ओम,' उसी से पुकारा और सिर पर हाथ फेरा। बच्चे की माँ पास ही खड़ी थी। उन्होंने पति के पाँव छुए। पूछा, 'इसके प्रति आपका और मेरा क्या धर्म है?'

'ताई जी यहाँ हैं तो सही,' श्रीराम ने कहा, 'पुत्र के प्रति माता-पिता के धर्म के बारे में उनसे ज्यादा अच्छी तरह कौन बता सकता है। उन्हीं से मार्गदर्शन लेना। मेरा आना-जाना चलता रहेगा। सुना नहीं ताईजी ने मुझे देश के लिए मुक्त कर दिया है। वनखंडी साधक बना दिया है।'

इस बीच ब्रिटिश शासन थोड़ा नरम पड़ा। लंदन में तीसरे गोलमेज सम्मेलन की तैयारियाँ चल रहीं थी। उस सम्मेलन में आने वाले निष्कर्षों के आधार पर ही भारत में भावी शासन का ढाँचा खड़ा किया जाना था। अंग्रेजों की मंशा थी कि भविष्य के भारत में उनका ज्यादा से ज्यादा हस्तक्षेप रहे। बल्कि भारत हमेशा के लिए उनकी मुट्ठी में आ जाए। ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैमले मैकडोनल्ड का दिया सांप्रदायिक निर्णय उसी मंशा का नतीजा था। कम्यूनल अवार्ड के नाम से दी गई इस व्यवस्था में मुसलमानों, सिक्खों, ईसाइयों, बौद्धों आदि धर्मावलंबियों को ही नहीं दलितों और पिछड़ी जातियों को भी अलग समूह के रूप में पहचाना गया था। उस आधार पर उन्हें सरकार में प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था की गई थी।

यह अवार्ड भारत को कई टुकड़ों में बाँट देने की मंशा से लाया गया था। महात्मा गाँधी ने इसका विरोध किया। वे भारतीय समाज को हमेशा के लिए खंड-खंड बाँट देने के खिलाफ पूना में अनशन पर बैठे। समाज में भी इस

फैसले के विरोध में आंदोलन सा छिड़ गया। सरकार को संशोधन करना पड़ा। २४ सितंबर १९३२ को हुआ यह संशोधन पूना पैक्ट के नाम से जाना जाता है। अनशन पर बैठने के बाद गांधी जी की हालत बिगड़ने लगी थी। समझौता उनकी रोगशैया पर हुआ था। इस साम्प्रदायिक निर्णय के समझौते के बदल जाने के बाद दलितों को हिंदू समाज का अभिन्न अंग मान लिया गया। मुसलमानों का अलग प्रतिनिधित्व फिर भी कायम रहा। उसी का परिणाम १९४७ में स्वतंत्रता के साथ विभाजन के रूप में देखने को मिला। सांप्रदायिक निर्णय यदि पूरी तरह लागू हो गया होता तो भारत के आज सैकड़ों टुकड़े हो चुके होते।

दलितों और पिछड़ी जातियों को हिंदू समाज का अभिन्न अंग मानने के साथ विधान मंडलों में उनका प्रतिनिधित्व बढ़ा दिया गया। उनके लिए आरक्षित सीटों की संख्या दो गुनी कर दी गई। गांधी जी और दूसरे नेताओं ने भी इन संशोधनों को हृदय से स्वीकार किया। पूना पैक्ट के बाद तीसरे गोलमेज सम्मेलन की तैयारियां चलने लगी। इन घटनाक्रमों ने वातावरण में थोड़ी विश्रान्ति ला दी थी। पूना समझौते के बाद समाज में जो बदलाव आने थे उन्हें श्रीराम की सूक्ष्म चेतना ने जैसे पकड़ लिया। वे अपने साथियों के बीच चर्चा चलाने लगे कि दलित कहे जाने वाले लोग हमारे अपने ही भाई हैं। उनके लिए गाँव में अलग बस्तियाँ नहीं होनी चाहिए उन्हें छू लेने पर दुरदुराना नहीं चाहिए, शुद्ध होने के लिए नहाने धोने जैसे ढकोसले नहीं करना चाहिए।

आँवलखेड़ा की दलित बस्ती में एक चबूतरा था। उस पर किन्हीं लोकदेवता के चरण स्थापित थे। उस बस्ती में रहने वाले लोगों के किसी पूर्वज को ही लोकदेवता मान लिया गया था। उन्हीं की पूजा होती थी। दलितों को अपने समान ही मानने अपनाने के लिए श्रीराम उस चबूतरे पर गए। पास ही झोंपड़ी में बैठे कन्हैया को पुकारा और उस देवता के बारे में पूछने लगे। कन्हैया को ज्यादा कुछ नहीं मालूम था। वह इतना ही बता सका कि सात आठ पीढ़ी पहले इस विभूति ने बस्ती पर हमला करने आए डाकुओं से मुकाबला किया था। उन्हें रोकने की कोशिश की थी। दस्युदल के चार सदस्यों को उन्होंने मार गिराया था और स्वयं बुरी तरह घायल हो गए थे। सात आठ दिन बाद उनकी भी मृत्यु हो गई। श्रीराम ने कहा 'इन्होंने पूरे गाँव के लिए अपने आपकी बलि दी तब तो ये सबके देवता हो गए। पूरे गाँव को इनकी आराधना करनी चाहिए।'



लोकदेवता ग्रामदेवता

कन्हैया ने 'कहा हम लोग तो चाहते ही हैं कि गाँव के लोग यहाँ ध्यान दें। पूजा पाठ भले न करे। चबूतरे की मरम्मत करवा दें, हो सके तो एक छोटा आसरा भी बना दें।' श्रीराम ने पूछा 'आसरा से क्या मतलब है?'

उत्तर आया, छोटा सा मंदिर। हम लोग ऐसे मंदिरों को आसरा कहते हैं। जैसे हम, वैसे गरीब हमारे देवी देवता भी। श्रीराम ने कहा, इस तरह मत सोचो। यहाँ देवता के चरण स्थापित हैं। शक्ति के इक्कावन पीठ है। हम लोग इसे ग्रामदेवता का चरणपीठ कहेंगे। सब लोगों को यहाँ आना चाहिए।

तुरंत कार्यक्रम बन गया। मार्गशीर्ष पूर्णिमा को अखण्ड रामायण का निश्चय हुआ। उसमें गाँव के सभी लोगों को आमंत्रित करने और उनका सहयोग लेने की बात सोची गई। चबूतरे पर छत बनवाना था। लगे हाथों चबूतरे की मरम्मत भी हो जाए। हिसाब लगाकर देखा। अस्सी रुपए का बजट आ रहा था। १९३०-३२ के उस युग में इतनी रकम से नई छत और चबूतरे की मरम्मत के साथ देवालय का कार्याकल्प हो सकता था। हर घर से चार आने (पच्चीस पैसे) उगाहने और पाठ में पोथी पर आए चढ़ावे से यह प्रबंध हो जाने का अनुमान था। श्रीराम सेना के युवक अगले दिन से ही सहयोग जुटाने में लग गए। दलित टोले में, उनके कुल देवता की स्थापना के लिए पाठ की बात सुनकर गाँव वालों को आश्चर्य हुआ। बड़े बुजुर्गों ने सवाल उठाया कि उस बस्ती में पूजा-पाठ को बढ़ावा देना धर्म के विरुद्ध होगा।

श्रीराम ने इस तरह की आशंकाओं और प्रश्नों का अनुमान पहले से ही लगा लिया था। युवक सेना के कार्यकर्ताओं को इसके उत्तर भी समझा दिए गए थे। शबरी, केवट आदि भक्तों और कोल-किरातों, रीछ वानरों के उदाहरण बता दिए थे। उस अभ्यास के अनुसार युवक कहते कि भक्ति सेवा में सबका अधिकार है। पूजा पाठ के लिए प्रेरित करना अधर्म नहीं धर्म है। श्रीराम ने रीछ वानरों से रामेश्वर की पूजा कराई थी या नहीं? भगवान कृष्ण ने भी तो गोवर्धन की पूजा आरंभ कराई थी। उसके लिए ग्वालबालों को आगे किया था।

तर्क और प्रमाण के अलावा युवकों, किशोरों के अपने व्यक्तित्व का प्रभाव भी था। युवकों ने आड़े वक्त में गाँव समाज की जो सेवा की थी, लोग उसे स्वीकार करते थे। स्वीकार ही नहीं करते, अपने होनहार किशोरों को पलकों पर

बिठाते थे। सामान्य दिनों में भी युवक स्कूल और व्यायामशाला के लिए काम करते रहे थे। स्कूल में विद्यार्थी आ रहे हैं या नहीं, गांव का कोई बच्चा शिक्षा से वंचित तो नहीं है, जो बच्चे पढ़ने जाते हैं उनका अभ्यास कैसा चल रहा है, आदि बातों पर उनकी पैनी दृष्टि रहती थी। कहीं कोई कमी होती तो वे तुरंत पूरी करते। बच्चों को अपना शरीर स्वास्थ्य संभालने के लिए प्रेरित करने में भी वे तत्पर रहते।

सामान्य दिनों की इस सजगता के अलावा विशेष अवसरों पर उनकी तत्परता ने भी गाँव वालों को मुग्ध कर रखा था। दलितों के प्रति मन में विष की तरह फैली घृणा के कारण उनके मुँह से कुतर्क निकलते थे। लेकिन युवकों की बातें सुनकर उनके तीरों की नोक भोथरी हो जाती। जिस घर भी गए वहाँ से न्यूनतम अनुदान लेकर ही आए। कुछ घरों से एक या सवा रुपए का अनुदान भी मिला। लाला जडावचंद दलितों के नाम पर सबसे ज्यादा नाक भौं सिकोड़ता और गालियाँ देता था। उसने पाँच रुपए दिए। अखण्ड पाठ की तैयारी जोरशोर से हो गई।

मार्गशीर्ष पूर्णिमा की तिथि आई। टोले के चौधरी ने कहा कि ताई जी को मुख्य यजमान बनाया जाए। औरों ने भी इसका समर्थन किया और वे पूजा पर बैठीं। पंडित दयाशंकर ने 'वर्णानामार्थ संधानां.....' से पाठ शुरू किया। उनका साथ देने के लिए पाँच व्यक्ति नियत हुए थे। पहली पारी में जो पाँच लोग चुने गए, वे सभी पढ़ने में असमर्थ थे। नई व्यवस्था बनाई गई। पाँच लोगों में से दो हटाए गए। उन्हें अगली पारी में जगह दी गई। जो नए लोग पाठ करने के लिए चुने गए, वे पाँचवीं और सातवीं तक पढ़े हुए किशोर थे। सुविधा से मानस पढ़ सकते थे। वे पंडित दयाशंकर के साथ चौपाई गाते। बाकी तीन लोग भी उनकी लय में लय मिलाते। पाँच-पाँच लोगों के क्रम में कुछ साक्षर और कुछ अनपढ़ों ने मिलजुलकर चौबीस घंटे का पाठ पूरा कर लिया। निरक्षर लोगों को बिठाना जरूरी था। पोथी पढ़ सकने की न्यूनतम योग्यता निश्चित की जाती तो दलित टोले का एक भी व्यक्ति पाठ में नहीं बैठ सकता। उन्हें प्रतिनिधित्व देना था, इसलिए छंदों के मूल पाठ और उसकी लय मिलाने का रास्ता अपनाया गया।

प्रतिपदा को ग्राम देवता की पूजा और संक्षिप्त हवन के साथ पाठ पूरा हुआ। गाँव वालों से मिले चंदे और चढ़ावे से एक सौ पाँच रुपए इकट्ठे हुए थे। पाठ हवन और प्रसाद आदि में हुए खर्च को निकाल देने के बाद चरणपीठ के जीर्णोद्धार के लिए पर्याप्त रकम बच रही थी। वह रकम श्रीराम के हाथों में सौंपी



गई तो उन्होंने चौधरी शिबू को पुकारा और सिक्कों की थैली उनके हाथ में रख दी। पहला पत्थर भी उन्हीं के हाथ से रखवाया।

आगरा में 'सैनिक' अखबार की व्यवस्था कुछ लड़खड़ा गई थी। १९३२ में कार्यकर्त्ताओं की रिहाई के बाद वह निकल तो रहा था, लेकिन उसमें पहले जैसी प्रखरता नहीं आ पा रही थी। ताई जी के निर्देश पर श्रीराम ने भी रमते योगी की जीवन शैली अपना ली थी। कभी आगरा, कभी आँवलखेड़ा, कभी मथुरा चले जाते। ग्वालियर, मेरठ, हाथरस तक भी हो आते। आगरा में उन दिनों आर्यसमाज ने यकायक जोर पकड़ना शुरू किया।

पूना पैक्ट के प्रभाव से दलितों के प्रति समाज में जो आत्मीय अनुराग आया, उसी का परिणाम था कि कांग्रेस कार्यकर्त्ता दलित बस्तियों में निस्संकोच आने जाने लगे थे। वर्णभेद नहीं मानने और जातिगत ऊँचनीच को सिरे से नकारने के लिए आर्यसमाज की ख्याति पहले ही बहुत थी। पूना पैक्ट या कहें कि गांधी जी और दूसरे सामाजिक राजनैतिक दबावों के कारण दलित हिंदू समाज से अलग होते होते रह गए। आर्यसमाज के प्रचारक इस घटना को अपने ढंग से लोगों के बीच प्रस्तुत करते। श्रीराम को पूना पैक्ट और उसके प्रभावों के बारे में अच्छी तरह मालूम था। फिर भी वे सामाजिक कार्य में लोगों की बात ध्यान से सुनते थे। उनकी बात में भले ही कोई दम नहीं होता लेकिन श्रीराम उसके विचारों की उपेक्षा नहीं करते। आर्यसमाज के एक उत्साही प्रचारक आनंद प्रकाश आँवलखेड़ा में उनके पास आए। प्रचारक को इतना ही मालूम था कि श्रीराम बीस इक्कीस वर्ष का एक उत्साही युवक है। जो ठान लेता है, वह करता है। कर ही गुजरता है। उसने मिलते ही कहा, 'सुना है समाज सुधार में आप बहुत रुचि लेते हैं।'

'समाज सुधार में नहीं। समाज सेवा में,' श्रीराम ने कहा। आनंद प्रकाश ने बातचीत को आगे बढ़ाते हुए पूछा, 'अब तक आपने क्या क्या किया?'

श्रीराम ने विनम्रता से कहा, 'हमने तो कुछ नहीं किया उपदेशक महोदय। भगवान ने जो कराना चाहा करा लिया। हमने उसका अलग से कोई हिसाब नहीं रखा है।'

प्रचारक को उत्तर सुनकर लगा कि श्रीराम जैसे टाल रहे हैं। लेकिन उनकी आवाज में शालीनता और निश्छल भाव की गूँज स्पष्ट दिखाई दे रही थी।

आनंद प्रकाश ने इस तरह के उत्तर को अपने लिए एक प्रेरणा प्रकाश ही माना। वह बोला, 'आपने दलितों को गाँव समाज में समरस करने के लिए उनके कुल देवता को ग्राम देवता के रूप में प्रतिष्ठित कराया। यह अच्छा है, लेकिन इससे अविद्या नहीं फैलेगी?'

'अविद्या कैसी?' श्रीराम ने जिज्ञासा की, प्रचारक ने समाधान की चेष्टा की, 'वेदशास्त्रों के अनुसार ईश्वर एक है। वह निर्गुण निराकार भी है। उनके नाना रूप नहीं हो सकते। हम लोग विविध देवों की स्थापना करते रहे तो ईश्वर के प्रति श्रद्धा के उदय में बाधक बनते हैं।'

'आनंद जी हमने वेदों का गहन अध्ययन तो नहीं किया है।' श्रीराम ने प्रचारक को उत्तर दिया, 'विद्वानों से ही सुना है और उनकी लिखी पुस्तकों में ही पढ़ा है कि वेदों में कई देवताओं की स्तुतियाँ हैं। कम से कम पचास देवताओं के नाम तो हम भी देखते आए हैं। फिर राम, कृष्ण, बुद्ध आदि भी तो ईश्वर के ही अवतार थे। लोग उन्हें भी ईश्वर मानकर ही पूजते हैं।'

'यह अविद्या के कारण है। देखो ईसाइयों ने एक ईश्वर को माना। वह जाति संसार पर राज कर रही है। मुसलमानों ने एक खुदा को अपनाया दुनिया में उनका भी डंका बजता है। हम बहुत से देवी देवताओं को मानते हैं। इसलिए भटक जाते हैं। किसी का सामना नहीं कर पाते।'

इन तर्कों का उत्तर भी श्रीराम के पास था लेकिन वे विवाद को बढ़ाना नहीं चाहते थे। उन्होंने कहा, 'सिद्धान्त की बहस में पड़ना हमारा काम नहीं है। हम काम करने वाले लोग हैं। बताइए किस तरह मिलजुल कर समाज के काम को आगे बढ़ाया जाए।'

सुधारवादी की पहल

आनंद प्रकाश का आवेश ठंडा होने लगा। उसने कहा, 'मैं आपके बनाए चरणपीठ का समाचार सुनकर यहाँ आया। वह सही हुआ हो या गलत। उससे दलित टोले में लोगों का आना-जाना बढ़ा है। अपने वंचित भाइयों को अपनाने की दिशा में यह एक कदम है। स्वामी दयानंद ने भी सबको गले लगाने पर जोर दिया था। अब मैं आपके पास एक सुझाव लेकर आया हूँ।' श्रीराम टकटकी लगाए आनंद के मुँह की ओर देखते रहे। कुछ कहा नहीं। उनके मौन में ही उत्सुकता झलक रही थी कि वे आगे की बात सुनना चाह रहे हैं। आनंद

प्रकाश ने कहा, 'आपको लगता नहीं है कि गांव में दलित टोले के जो लोग हैं, उनके रोजगार की सम्मान जनक व्यवस्था नहीं है?'

श्रीराम ने कहा, 'आपके मन में कोई योजना है क्या?' आनंद प्रकाश ने कहा, 'योजना आप बनाएँ। मैं साधन जुटाने में सहयोग करूँगा।' योजना के बारे में विमर्श के लिए शाम तक चर्चा स्थगित हो गई। कुछ सोचने के लिए इतना समय पर्याप्त था। शाम को आनंद प्रकाश से भेंट हुई तो श्रीराम ने अब तक चले कथन का निचोड़ सामने रखा। उनकी राय में एक करघा उद्योग खुलना चाहिए। आठ दस लोगों को इससे कातने-बुनने का काम मिलेगा।

गांधी जी के खद्दर आंदोलन ने तब जोर नहीं पकड़ा था। वे स्वयं जरूर खादी पहनते थे। उनके आसपास रहने वाले लोग भी यही वेश अपनाते थे। लेकिन ग्राम स्वराज्य आत्म निर्भर गाँव, स्वदेशी और कुटीर उद्योग जैसे कार्यक्रमों ने आंदोलन का रूप नहीं लिया था। गांव में करघा लगाने के लिए पांच सात सौ रुपए की आवश्यकता थी। आनंद प्रकाश ने आर्यसमाज से आधे प्रबंध का वचन दिया। कहा कि कोशिश तो वे पूरे व्यय के लिए ही करेंगे फिर भी श्रीराम आदि को अपनी थोड़ी बहुत तैयारी रखना चाहिए।

चरणपीठ तैयार होने में पंद्रह दिन लगे। निर्माण की व्यवस्था दलित टोले के लोग ही संभाल रहे थे। श्रीराम बीच-बीच में वहाँ जाते। टोले के निवासियों ने यह काम श्रमदान से करना पुण्यप्रद माना। वैसे भी लोग राजमिस्त्री के साथ मजदूरी ही करते थे। यहाँ किसी ने दिहाड़ी या मेहनताने की बात नहीं की। निर्माण या मरम्मत के दिनों में श्रीराम वहाँ जाते तो लोग उत्साहित हो उठते। दूने जोश के साथ काम करने लगते। उन्हें श्रीराम ने कई बार कहा। तरह-तरह से कहा कि चरणपीठ पर प्रतिदिन प्रणाम करने आना है और यों ही उठकर नहीं आ जाना। नहा धोकर साफ कपड़े पहनकर आना है। धुले हुए।

करया चौधरी ने अपनी समस्या रखी, 'लेकिन हमारे पास तो फटे पुराने एक जोड़ी कपड़े ही हैं। उन्हें धोकर सुखाएँ। सुखाएँगे तो काम पर नहीं आ पाएँगे।' और लोगों ने भी यह कठिनाई रखी।

कपड़ों का प्रबंध भी हो जाएगा, श्रीराम ने कहा, 'आपके लिए करघा लगाने की सोच रहे हैं। लग जाएगा तो दस बारह लोगों को काम मिलेगा, अपने लिए भी कपड़े बनाना और बाजार में बेचने के लिए भी। उससे दो पैसे आएँगे।'



‘पैसों की हमें क्या जरूरत है। बाबू साहब लोगों की मेहरबानी से काम चल ही जाता है।’ करया बोला। इस पर श्रीराम ने समझाया, ‘किसी की मेहरबानी पर जीने की जरूरत नहीं है। अपनी मेहनत-मजदूरी की कमाई से ही देवता प्रसन्न होते हैं।’

चरण पीठ बनने के बाद करघों पर ध्यान गया। दो करघों के लिए श्रीराम ने अपनी हवेली के सामने एक खुले चबूतरे को ढककर जगह निकाल ली। इसका नाम रखा गया बुनता घर। किराए की जगह ढूँढ़ने और उस पर खर्च करने का झंझट मिटा। पांच चरखे मंगा लिए। उन्हें दलित टोले में बांट दिया और उन पर सूत कातते रहने की जिम्मेदारी बांटी गई। घरों में जिन लोगों को सूत कातने का जिम्मा दिया गया, उन्हें यह भी बता दिया कि पहली मजदूरी के लिए कुछ दिन धीरज रखना पड़ेगा। करघे पर बुना हुआ कपड़ा बाजार में बिकने लगेगा, तब दिहाड़ी दी जाएगी। लोग वैसे भी फालतू बैठे रहते थे। देर से ही सही, पैसा मिलने की बात ने उन्हें प्रसन्न कर दिया।

कपड़ा बुनने के लिए दो कारीगर बाहर से बुलाये गये थे। कताई करने वाले दो चार दिन में इतना सूत नहीं कात पाए थे कि कपड़ा तैयार किया जा सके। आगरा के बाजार से सूत मंगाकर पहला वस्त्र बुना गया। यह वस्त्र करीब सात गज का था। इसे चरणपीठ पर चढ़ाकर कजली बुआ को दे दिया। कजली के परिवार में कोई नहीं था। उम्र साठ पैंसठ के आसपास थी। समय के थपेड़ों ने उसे बुरी तरह तोड़ दिया था। अपने घर में थकी हारी पड़ी रहती और लोगों की दी हुई इस्तेमाल की गई चीजों के सहारे जी रही थी। उसके लिए नया कपड़ा वरदान की तरह था। उसी के लिए बुना गया है, यह जानकर अभिभूत हो उठी। उल्लसित मन से उसने आशीर्वाद दिया, तुम लोगों का काम बहुत फले-फूले। भगवान तुम लोगों की मुरादें पूरी करे।

उनका उद्योग उन्हें ही सौंपा

करीब साल भर तक श्रीराम ने यह उद्योग चलाया। बाद में दलित टोले के लोगों की ही एक समिति बना दी गई। वही व्यवस्था देखती। जब तक श्रीराम की प्रत्यक्ष निगरानी रही, उद्योग बहुत फला-फूला। यही नहीं लोगों ने दूसरे काम भी शुरू कर दिए। इनमें खेती के काम आने वाले लकड़ी के औजार बनाना, टोकरियाँ बुनना, मिट्टी के खिलौने बनाना जैसे कारीगरी में



टोले के लोगों का मन खूब लगा। आनंद प्रकाश भी दो चार महीने में आकर काम देख जाया करते थे।

आनंद प्रकाश के कारण श्रीराम आर्यसमाजी कार्यकर्ताओं के संपर्क में भी आए। मिले तो बहुत लोग लेकिन उनके साथ अधिक निभा जो स्वतंत्रता आंदोलन में भी हिस्सा लेते थे। ऐसे ही लोगों में जगन प्रसाद रावत और राधेश्याम शर्मा भी थे। इनसे श्रीराम के संबंध अगले पचास साठ साल तक चले। जगन प्रसाद आगरा में रहते थे। आर्यसमाजी होते हुए भी वे मंदिरों में जाते और जन्माष्टमी, रामनवमी जैसे त्यौहार मनाते थे। करघा उद्योग चल पड़ने के बाद श्रीराम ने अपने आपको राजनैतिक आंदोलन कार्यक्रमों में फिर सक्रिय किया।

पूना पैक्ट के बाद समाज में दलितों का महत्त्व तो बढ़ा था, लेकिन राजनैतिक तापमान में उतार चढ़ाव कम नहीं हुए। मार्च १९३३ तक लोगों को गिरफ्तार करने और सबक सिखाकर छोड़ने की कार्यवाही चलती रही। कांग्रेस के अपने आंकड़ों के अनुसार एक लाख बीस हजार से ज्यादा कार्यकर्ता गिरफ्तार हुए थे। श्रीराम ने कांग्रेस की विधिवत् सदस्यता नहीं ली थी। स्वतंत्रता संग्राम सेनानी होने के नाते उन्हें इस संगठन के स्थानीय नायक के तौर पर ही जाना जाता था। गिरफ्तारियों के दौर में श्रीराम ने अवज्ञा आंदोलन को नए सिरे से संगठित करने की योजना बनाई।

असहयोग आंदोलन यद्यपि १९१९ में शुरू हुआ था। चौरी चौरा (गोरखपुर) में इसके उग्र हिंसक रूप ले लेने के कारण महात्मा गांधी ने बीच में ही वापस ले लिया। फिर भी १९२४ तक तेजी से चला। मुस्लिम लीग नेताओं के उदासीन हो जाने से आंदोलन ठंडा पड़ने लगा, लेकिन यह एकदम खत्म नहीं हो गया। कर नहीं देने, सरकारी आदेशों को नहीं मानने, प्रतिबंधित स्थानों पर जाने, रोक टोक की परवाह नहीं करने जैसे कदम उठाए। इन प्रतिबंधों की अवज्ञा होते देख प्रशासन भी कड़ाई से दमन करता।

दिसम्बर १९३२ में कृष्णदत्त पालीवाल झांसी जेल से छूटकर आए। आगरा पहुँचते ही उनका भव्य स्वागत हुआ। श्रीराम ने पिछले दो महीनों में जो काम किए थे, उनकी भनक उन्हें लग गई थी। चरण पीठ की स्थापना और दलितों के लिए करघा उद्योग शुरू करने को उन्होंने स्वातंत्र्य यज्ञ का ही एक अनुष्ठान बताया था। स्वागत में जो समारोह हुआ उसमें पालीवाल जी ने श्रीराम को मंच पर बुलाया और फूलमाला पहना कर अभिनंदन किया। कहा यह युवक आगरा जिले का गौरव है।

स्वागत समारोह के बाद रात में ही एक बैठक हुई। इसमें असहयोग आंदोलन को नए सिरे से संगठित करने का निश्चय हुआ। अगले दिन ही उस पर काम भी शुरू हो गया। दो सप्ताह में करीब चालीस सभाएँ हुईं। जमींदारों और किसानों से अपील की गई कि सरकार को लगान नहीं दें। जमीन हमारी है, हमारे देश की है। सरकार विदेशी है, उसे कर लेने का कोई अधिकार नहीं है। आंदोलन के लिए २० दिसम्बर की तारीख चुनी गई।

महात्मा गांधी ने १९२२ में जिस तरह गुजरात के बारडोली कस्बे को सविनय अवज्ञा आंदोलन के लिए चुना था, उसी तरह आगरा में कार्यकर्ताओं ने किरावली तहसील के बरौदा और भिलावटी गांवों को चुना। दो सप्ताह के संपर्क अभियान में लोगों से २० दिसम्बर को वहीं पहुँचने का आग्रह किया। पुलिस प्रशासन को तैयारी कार्यक्रमों की रिपोर्ट बराबर मिल रही थी। उनके आकलन के अनुसार लोगों में उत्साह उमड़ रहा था। पिछले दो साल में जिस तरह ताबड़तोड़ गिरफ्तारियाँ हुई उसका प्रतिशोध लोगों के मन में भरा हुआ था। बरौदा और भिलावटी में इकट्ठा होने के आह्वान ने उस भाव को व्यक्त होने का मौका दिया। आगरा पुलिस सूत्रों की जानकारी का विश्लेषण किया गया तो लगा कि एक लाख किसान इकट्ठे हो सकते हैं। बरौदा और भिलावटी की दूरियाँ खत्म हो जाएगी।

भिलावटी में किसान

पुलिस आयुक्त ने गाँव-गाँव हो रही सभाओं पर रोक लगाने के आदेश जारी किए। आंदोलन करने संचालित करने वालों को तुरंत पकड़ लेने के निर्देश आए। प्रमुख नेताओं में कृष्णदत्त पालीवाल, जगन प्रसाद रावत, द्वारका प्रसाद, दलपत सिंह और मुंशीराम गोस्वामी को बरौदा पहुँचने पर रोक लगा दी गई। उनसे कहा गया कि अपना ठिकाना छोड़कर कहीं न जाएँ। यही नहीं बरौदा और भिलावटी में सभा समारोह पर भी रोक लगा दी गई। यह सब आनन फानन में हुआ।

लगा कि २० दिसम्बर को कुछ किया ही नहीं जा सकेगा। १४ दिसम्बर की शाम को पालीवाल जी के निवास पर बैठक हुई। उसमें श्रीराम भी आमंत्रित थे। आंदोलन के सात-आठ प्रमुख नेताओं में किसी को नहीं सूझ रहा था कि क्या किया जाए। सरकार ने आंदोलन को विफल कर दिया था। सबकी बातें सुन रहे



श्रीराम ने सुझाव दिया कि हम वहाँ सभा समारोह नहीं करें। उसके स्थान पर ग्यारह कुण्डों का यज्ञ किया जाए। यज्ञ के बीच में ही लोगों को अपना संदेश सुनाया जाए। यज्ञ कम से कम पांच दिन तक चले।

उपस्थित नेताओं को यह विचार एकदम भा गया। जो तैयारियाँ सम्मेलन के लिए की जा रही थीं, वे यज्ञ की दिशा में मोड़ दी गईं। तैयारियों में दो दिन नहीं लगे। श्रीराम के युवा दल ने कुछ ही घंटों में ग्यारह कुण्ड बना दिए। गुपचुप चल रही तैयारियों में लोगों से कहा गया कि यज्ञ सम्मेलन में आने वाले लोग अपने साथ समिधा, हवन सामग्री, पूजा पाठ का सामान और प्रसाद आदि भी लेते आएँ। जगन प्रसाद रावत और कृष्णदत्त पालीवाल आदि को अपना ठिकाना छोड़ने के लिए मनाही थी। १८ दिसम्बर की रात को वे वेश बदल कर खेतों के बीच से होते हुए बरौदा गए। वहाँ जाकर तैयारियाँ देखीं और प्रसन्न होकर लौटे।

२० दिसम्बर को आनंद प्रकाश के आचार्यत्व में यज्ञ आरंभ हुआ। पहले दिन करीब पांच हजार व्यक्ति आए। लगभग सभी अपने साथ समिधाएँ और हवन सामग्री लाए थे। सुबह की पारी समाप्त होने के बाद एक घंटे का भाषण हुआ। उसमें पिछले तीन साल से जगह-जगह हो रहे अत्याचारों का वर्णन किया गया। आततायी शासन का विरोध करना चाहिए। उसे किसी कीमत पर नहीं सहना चाहिए। धीरे-धीरे मुद्दे पर आते हुए अवज्ञा आंदोलन की चर्चा छिड़ गई। लोगों से प्रतिज्ञा कराई जाने लगी कि वे लगान नहीं देंगे।

वहाँ नियुक्त पुलिस कर्मियों को इस संदेश की पहले भनक भी नहीं थी। सुना तो अपने अधिकारियों को सूचना दी कि यहाँ लगानबंदी की शपथ दिलाई जा रही है। अधिकारी तुरंत सक्रिय हुए और दौड़े चले आए। इस उपक्रम में शाम हो गई थी। अगले दिन हजारों लोग सुबह से पहुँच गए। उन्होंने आयोजन का नाम ही लगानबंदी यज्ञ रख दिया। अग्रिहोत्र और स्तुति पाठ को रोकना तो उचित नहीं था। पुलिस ने यहाँ संयम बरता। रोकथाम के लिए आए अधिकारियों में स्वाभाविक ही कई लोग धर्मश्रद्धालु थे। कुछ तो कपड़े बदल कर यज्ञ में ही बैठ गए। यज्ञ को रोकने के स्थान पर उन्होंने आने वालों की ही रोकथाम की। धीरे-धीरे रोकने का असर नहीं हुआ तो कुछ ने सख्ती की लेकिन लोग टस से मस नहीं हुए। बरौदा में आयोजन पूरी गति से चलता रहा। भिलावटी में कम ही लोग इकट्ठे हो पाए। लेकिन जनवरी १९३३ में आंदोलन भिलावटी की सीमा पार कर गया था।





1940 में सर्वप्रथम लिखी गई एक किताब
“मैं क्या हूँ”। आत्मोपनिषद् रूप में निस्सृत इस पुस्तक के
विचारों की
धुरी पर ही जीवन भर का लेखन चलता रहा।

(IX)



साधक श्रीराम

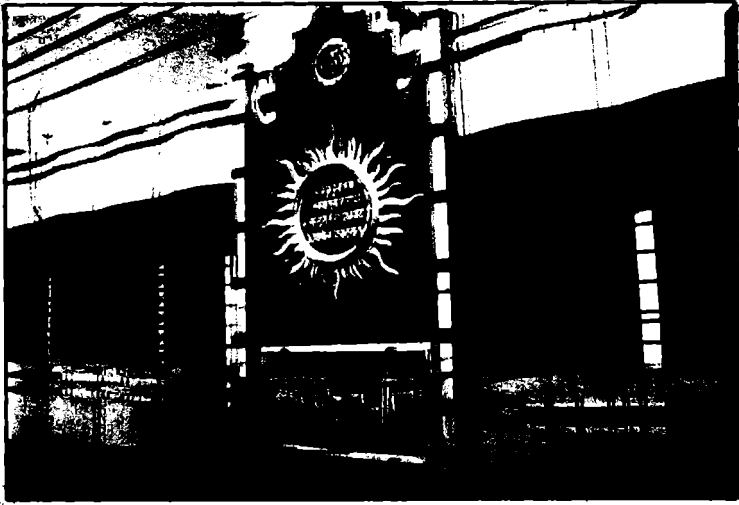


आराध्य महाशक्ति गायत्री



युवावस्था का श्रीराम का चित्र

(X)

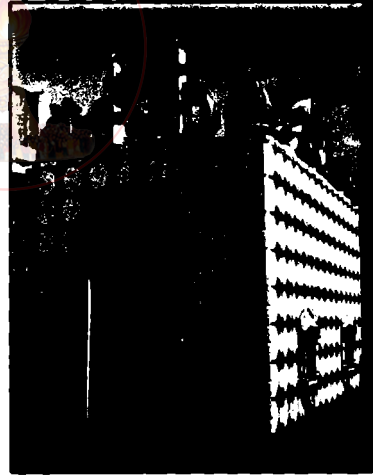


आज का अखण्ड ज्योति संस्थान

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org



वह कक्ष जहाँ 24-24 लक्ष के प्रायः
बारह अनुष्ठान संपन्न हुए, अखण्ड
दीपक की साक्षी में। अंदर से यह
पूर्ववत् आज भी है।



इसी कक्ष को अब एक दर्शनीय स्थान
ध्यान-स्थली बना दिया गया है।



1. **THE**
 2. **THE**
 3. **THE**
 4. **THE**
 5. **THE**
 6. **THE**
 7. **THE**
 8. **THE**
 9. **THE**
 10. **THE**
 11. **THE**
 12. **THE**
 13. **THE**
 14. **THE**
 15. **THE**
 16. **THE**
 17. **THE**
 18. **THE**
 19. **THE**
 20. **THE**
 21. **THE**
 22. **THE**
 23. **THE**
 24. **THE**
 25. **THE**
 26. **THE**
 27. **THE**
 28. **THE**
 29. **THE**
 30. **THE**
 31. **THE**
 32. **THE**
 33. **THE**
 34. **THE**
 35. **THE**
 36. **THE**
 37. **THE**
 38. **THE**
 39. **THE**
 40. **THE**
 41. **THE**
 42. **THE**
 43. **THE**
 44. **THE**
 45. **THE**
 46. **THE**
 47. **THE**
 48. **THE**
 49. **THE**
 50. **THE**
 51. **THE**
 52. **THE**
 53. **THE**
 54. **THE**
 55. **THE**
 56. **THE**
 57. **THE**
 58. **THE**
 59. **THE**
 60. **THE**
 61. **THE**
 62. **THE**
 63. **THE**
 64. **THE**
 65. **THE**
 66. **THE**
 67. **THE**
 68. **THE**
 69. **THE**
 70. **THE**
 71. **THE**
 72. **THE**
 73. **THE**
 74. **THE**
 75. **THE**
 76. **THE**
 77. **THE**
 78. **THE**
 79. **THE**
 80. **THE**
 81. **THE**
 82. **THE**
 83. **THE**
 84. **THE**
 85. **THE**
 86. **THE**
 87. **THE**
 88. **THE**
 89. **THE**
 90. **THE**
 91. **THE**
 92. **THE**
 93. **THE**
 94. **THE**
 95. **THE**
 96. **THE**
 97. **THE**
 98. **THE**
 99. **THE**
 100. **THE**

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org <http://literature.awgp.org>

परिक्रमा के पथ पर

मार्गदर्शक सत्ता ने कुछ वर्ष के लिए छूट दी थी कि प्रातः सायं की संध्या में जितना संभव हो, जप कर लिया जाए। यह छूट स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने के लिए ही थी। दोनों समय जितना हो सके जप करने के बाद बाकी संख्या दिन में किसी भी समय पूरी कर लें। उस दिन संख्या पूरी न हो सके तो बाद के दिनों में भी जप किया जा सकता है। इस व्यतिक्रम से उत्पन्न दोष का परिमार्जन उन्होंने स्वयं करते रहने का आश्वासन दिया था। बरौदा में हुए यज्ञ का प्रभाव तत्काल देखने में आया था। लोगों ने लगान नहीं देने की शपथ निभाना शुरू कर दिया। श्रीराम ने यज्ञ के समय कहा था कि अन्य अवसरों पर कही हुई बात लोग भूल जाते हैं लेकिन पुनीत वातावरण में ली गई शपथ हर कीमत पर निभाते हैं।

यज्ञ पूरा होने के दूसरे दिन की बात है। श्रीराम आगरा में ही थे। प्रातःकालीन संध्या, जप और ध्यान से निवृत्त होकर विसर्जन आदि उपचार संपन्न कर रहे थे कि स्फुरणा उठी गोवर्धन चलो। लगा जैसे उन्हें वहाँ से ही कोई पुकार रहा हो। जप ध्यान से उठते ही उन्होंने महावीर सहाय को बताया, 'कुछ दिन के लिए जा रहा हूँ। निश्चित बताना कठिन है। फिर भी पाँच सात दिन कम से कम लग जाएंगे। लौट कर नए सिरे से कार्यक्रम छेड़ेंगे।'।

महावीर सहाय ने यह नहीं पूछा कि कहाँ जा रहे हैं? वह पूछना चाहता था, लेकिन पूछ नहीं पाया। श्रीराम का मुखमंडल उस समय तप्तवर्ण का था। साधना के समय उनका मुँह सोने की तरह दमक उठता था। उस तेज को देखकर महावीर सहाय से कुछ पूछते नहीं बना। श्रीराम ने जाने की तैयारी शुरू कर दी। तैयारी में कोई साज सामान नहीं जुटाना था। एक जोड़ी कपड़े, कुछ पुस्तकें और पूजा पाठ की सामग्री दो झोलों में समेटी। उन्हें कंधे पर टांगा और चल दिए। महावीर सहाय कुछ दूर तक पीछे-पीछे आया। गली से बाहर पहुँचा



ही था कि श्रीराम ने वापस भेज दिया। उससे कहा, 'जाओ। मैं चला जाऊँगा। अपना काम देखो। मैं ज्यादा से ज्यादा एक सप्ताह लगाऊँगा। लौटकर यहाँ बहुत काम करना है।' यह कहते हुए श्रीराम कुछ देर के लिए ठिठके थे। महावीर सहाय ने इस बीच अपने आपको संभाल लिया था। यों कहें कि हिम्मत जुटा ली। उसने पूछ ही लिया, 'पर अचानक आपने गोवर्धन जाने की क्यों ठानी?'

श्रीराम ने कहा, 'अभी इस प्रश्न का उत्तर मैं भी नहीं खोज पाया हूँ। बस लगता है कि कोई उस तरफ खींचे चला जा रहा था। उधर क्यों जाना हो रहा है, यह लौट कर ही बता पाऊँगा।' इतना कहकर उन्होंने महावीर सहाय के दूसरे प्रश्न का या प्रतिक्रिया का विचार किए बिना अपनी राह पकड़ी। उस की तरफ मुड़कर भी नहीं देखा।

श्रीराम की वह गोवर्धन यात्रा सचमुच विलक्षण थी। वे अपने इच्छा से नहीं जा रहे थे। किसी के बुलाने पर या प्रेरित करने पर वे निकले थे। वे मथुरा भी नहीं रुके। उस जगह भी नहीं, जहाँ कुछ वर्ष पहले एक बगीची में ठहरे थे और वहाँ गायत्री की प्रतिमा देखी थी। गाड़ी-घोड़ा जो भी साधन मिला, उससे गोवर्धन पहुँचे। वहाँ पहुँचने की अधीरता थी। रास्ते में पानी पीने के लिए भी शायद ही कहीं रुके हों। इस यात्रा से पहले गोवर्धन कभी जाना नहीं हुआ था। लेकिन रास्तों में कहीं नहीं लगा कि किसी अनजाने क्षेत्र की यात्रा हो रही है। सब कुछ परिचित और अपना सा प्रतीत हो रहा था।

गोवर्धन की ओर चलते हुए श्रीराम जैसे-जैसे निकट आते गए वैसे-वैसे अपनापन और प्रगाढ़ होता गया। लगभग साढ़े सात किलोमीटर तक फैला गोवर्धन कहने के लिए पहाड़ है। आकार प्रकार में वह एक छोटी सी पहाड़ी या दूर तक फैला टीला है। ऊँचाई बहुत ज्यादा नहीं है। भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा उसे अंगुली पर उठाने और ब्रज के लोगों को इंद्र के कोप से बचाने के पौराणिक संदर्भ ने उसे प्रतिष्ठा दी है। उसके इक्कीस किलोमीटर लंबे घेरे की परिक्रमा करने विशिष्ट पर्वों पर हजारों की संख्या में लोग आते हैं। सामान्य दिनों में भी लोग परिक्रमा करते रहते हैं। पाँच सात सौ लोग तो सहज ही कर लेते हैं।

श्रीराम परिक्रमा पथ पर पहुँचे तो एक युवा साधक गया प्रसाद दंडवती परिक्रमा करते दिखाई दिए। उनकी परिक्रमा अद्भुत थी। एक ही स्थान पर वे बार-बार दंडवत कर रहे थे। चार-पाँच लोग उनके साथ पैदल थे। वे दंडवत नहीं कर रहे थे। सिर्फ साथ चल रहे थे। उन्हीं में से एक ने बताया कि गया

परिक्रमा के पथ पर

प्रसाद जी रसभाव के उपासक हैं। वे एक स्थान पर एक सौ आठ दंडवत करते हैं और फिर आगे बढ़ते हैं। इस क्रम से इक्कीस दिन में परिक्रमा पूरी होगी।

गया प्रसाद जी को उन लोगों ने पंडित जी कहा था। बाद में इनकी ख्याति ब्रज भूमि के अनन्य भक्तों के रूप में हुई। गोवर्धन के परिक्रमा मार्ग से सटी जगह पर ही उन्होंने अपना आश्रम बनाया। आजीवन वहीं रहे। गोवर्धन छोड़कर कभी नहीं गए। गाँव की सीमा भी नहीं लांघी। उन्होंने गोवर्धन की ओर कभी पीठ नहीं की, उस दिशा में पांव फैलाकर भी नहीं बैठे। जिस दिन श्रीराम ने उन्हें दंडवती परिक्रमा करते देखा, वह उनका समापन दिवस था। परिक्रमा पूरी होने के उपलक्ष्य में गोविन्द कुंड के पास एक यज्ञ किया गया था। श्रीराम भी उस यज्ञ में सम्मिलित हुए। पंडित जी का व्यक्तित्व उन्हें अभिभूत कर रहा था। वे प्रतीक्षा करते हुए लगते थे कि कब उनसे भेंट हो। मन में यह विचार भी आया कि कहीं इस तरुण तपस्वी ने ही तो यहाँ आकर्षित नहीं किया है। उसकी भावधारा तो खींच कर नहीं ले आई। लेकिन यह विचार देर तक टिका नहीं रह सका।

यज्ञ संपन्न होने के बाद पंडित गया प्रसाद ने श्रीराम को नाम लेकर पुकारा। यह सामान्य बात थी। उनके मन में भी श्रीराम के प्रति उत्सुकता का भाव जगा था। जिस समय वे दंडवती परिक्रमा का अंतिम चरण पूरा कर रहे थे, तभी उन्होंने श्रीराम को साथ आए साधकों से बातचीत करते सुना था। श्रीराम की बातों ने उनका मन मोह लिया था। यज्ञ के समय उन्होंने साथी साधकों से उनका परिचय प्राप्त किया। श्रीराम पास पहुँचे तो उन्होंने आत्मीयता से अपने आसन पर ही बिठाया। कुशल क्षेम पूछने के बाद बोले लगता है, 'आप गोवर्धन पहली बार आए हैं।'

श्रीराम ने कहा, 'हाँ अब भी नहीं आता लेकिन मन में तीव्र स्फुरणा जागी। रहा नहीं गया इसलिए अभी आना पड़ा। अभी आंदोलन का बहुत काम है। उसे छोड़कर आना ठीक नहीं था, लेकिन लगा जैसे यहाँ कोई आने के लिए विवश कर रहा हो।'

'कौन विवश करता है। ठाकुर जी ही बुला रहे होंगे। आपके अपने संस्कार प्रेरित कर रहे होंगे।' इसके बाद देर तक बातें होती रहीं। वे ज्यादातर गोवर्धन पर्वत के संबंध में ही थीं। यहाँ आए हैं तो गोवर्धन का दर्शन करके अवश्य जाना। गिरिराज की परिक्रमा तो करना ही है। उस दिन श्रीराम के मन में



कुछ प्रश्न निरंतर गूँजते रहे। क्या भगवान कृष्ण ने सचमुच कनिष्ठ अंगुली पर गोवर्धन धारण किया होगा? क्या इंद्र के कुपित हो जाने से यहाँ जलप्रलय का दृश्य बन गया होगा? ब्रजक्षेत्र के सभी लोग क्या इस पर्वत या पहाड़ी की छाया में सुरक्षित छुप सके होंगे?

गोवर्धन धारण का रहस्य

श्रीराम का तार्किक मन इन वर्णनों को अतिरंजित और कपोल कल्पित ही मान रहा था। आर्य समाज की भाषा में इस तरह की बातें पुराणपंथी पोपलीला और गपबाजी के सिवा कुछ नहीं थी। लेकिन श्रीराम लोगों के विश्वास को एकाएक नकारने के लिए भी राजी नहीं थे। गोवर्धन की परिक्रमा करते हुए उन्होंने तर्क के तीरों को तरकश में रखा और भाव के क्षेत्र में उतरे। परिक्रमा पथ में जहाँ तहाँ रखे पत्थरों को छुआ। स्पर्श के साथ वे द्वापर युग में पहुँचे, जब श्रीकृष्ण ने गोवर्धन को धारण किया था। श्रीराम उन पत्थरों से जैसे पूछ रहे थे कि उस घटना का सच क्या था? उन्होंने वृक्षों का स्पर्श किया। पूछा तुम लोग तो अपने पूर्वजों से गोवर्धन की कथा सुनते आए होगे, बताओ न सच क्या है? झरनों और पानी के स्रोतों से पूछा जो अब कुओं और तलैयाओं में बदल गए थे। राह में मिले पशु पक्षियों की आँखों में झाँका, जैसे कह रहे हों कि मनुष्य तो किसी घटना को कल्पना का रंग दे सकते हैं। तुमने तो पत्थरों, झरनों, वृक्षों और गोवर्धन की गुफाओं से कुछ सुना होगा।

इसी भावधारा में बहते हुए श्रीराम की परिक्रमा चल रही थी। बीच-बीच में परिक्रमा पथ से दाएँ-बाएँ हटकर आसपास की भूमि का निरीक्षण भी कर लेते। उसे देखकर सोचने लग जाते। कहीं-कहीं गुफाओं के अवशेष दिखाई दिए। स्पष्ट लगता था कि उनके मुँह पत्थरों से बंद हैं। अगर पत्थर हटाए जाए तो भीतर जाने का रास्ता मिले। एकाध जगह उन्होंने कोशिश भी की और अपने अनुमान को सही पाया।

शाम तक परिक्रमा पूरी हो गई। उस दिन वे गोविंद कुंज में सोए। कुंज में साधुओं के रहने के लिए कच्चे पक्के कमरे बने हुए थे। वहीं एक जगह चादर बिछाई और सोने लगे तो कहीं से एक वैष्णव गृहस्थ आ गए। उन्होंने कहा चारपाई पर सोएँ। जंगल पड़ा है। कीड़े-कांटे निकलते रहते हैं। वही व्यक्ति कुंज में ही किसी जगह से एक चारपाई ले आया। उस पर बिस्तर भी लगा दिया।

परिक्रमा के पथ पर

दिनभर के थके श्रीराम को लेटते ही नींद आ गई। नींद क्या आई वे एक दूसरे जगत में पहुँच गए। वह भाव जगत, अंतर्लोक या स्वप्न भी कह सकते हैं। स्वप्न कहना उस अनुभव को अनुचित रूप से सरल बनाना होगा। वह भावसमाधि ही थी, जो सुषुप्त अवस्था में लगी थी और अंतर्जगत में अतीत की परतें खोल रही थी। उस समय की परतें जब श्रीकृष्ण की लीलाएँ इस क्षेत्र में संपन्न हो रही थीं और श्रीराम की चेतना भी यहीं कहीं विद्यमान रही होगी। द्वापर के उन पन्नों पर कृष्ण लीला में कुछ पंक्तियाँ लिख रही होगी। वे पंक्तियाँ खुलती हैं—

वृंदावन में इंद्रोत्सव की तैयारियाँ चल रही थीं। गर्गाचार्य ने नंद से कहा कि इस बार श्रीकृष्ण को यजमान बनाया जाए। नंद ने आचार्य से कहा कि वे स्वयं ही कृष्ण को कहें। गर्ग मुनि अभिलषित यजमान के पास गए तो विचित्र उत्तर मिला। आचार्य को इस उत्तर की अपेक्षा नहीं थी। कृष्ण ने कहा कि आपका आदेश है तो मैं मना नहीं करूँगा लेकिन इंद्रोत्सव मुझे पसंद नहीं है? गर्गाचार्य को आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा क्यों? प्राचीन काल से यह उत्सव मनाया जाता रहा है। तुम्हें इससे क्या विरोध है?

श्रीकृष्ण ने कहा, 'यज्ञ में हम ढेरों सामग्री अग्नि को समर्पित करते हैं। बड़े परिमाण में घी, दूध, मधु और अन्न की आहुति देते हैं क्यों? इसीलिए कि हम इंद्र से भय खाते हैं। उसकी आराधना नहीं करेंगे तो वह कुपित हो जाएगा। मेरा अंतस कहता है कि भय से जो मनाया जाता है वह उत्सव नहीं हो सकता। वह आतंक है। उत्सव आनंद देने के लिए है। भय से आनंद नहीं भीरुता आती है।'

गर्गाचार्य ने कहा कि तुम क्या चाहते हो? श्रीकृष्ण उनका प्रश्न सुनकर बोले जैसे पहले से ही उन्हें अनुमान था और उसका उत्तर भी तैयार था। उन्होंने कहा, 'मैं ऐसा उत्सव पसंद करता हूँ जो प्रेम और उल्लास को जगाए। अपने गोप गोपियों के सम्मान में उत्सव मनाया जाए तो उत्तम होगा। दूध मक्खन और घी देने वाली गायों के लिए उत्सव मनाएं। शीतल छाया देने वाले वृक्षों के लिए उत्सव मनाएं जिनसे फल-फूल और ईंधन मिलते हैं, उनसे हमें वन में ही नहीं, घरों में भी आश्रय मिलता है।

आचार्य श्रीकृष्ण के भाव समझकर मुस्कराए। उन्होंने इतना भर कहा कि आराधना नहीं करने से इंद्र कुपित हो जाएंगे। श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया, 'उनके कोप से भयभीत नहीं होना चाहिए।' आप अनुमति दें तो हम गोपोत्सव मनाएं।

उनके इस विचार का समर्थन वहाँ आए मुनि संदीपनि ने भी किया। उनकी प्रेरणा थी कि गोपोत्सव मनाकर गोवर्धन की पूजा की जाए। यज्ञ आयोजन हो। उसमें आहुतियाँ भी दी जाएँ लेकिन वे निमित्त मात्र हो। इंद्र उत्सव के लिए मनो घी, दूध और अन्न आदि संचित कर रखा गया था, वह ब्रज के बालकों के लिए सुरक्षित रखें। यज्ञ में सिर्फ प्रतीकात्मक आहुतियाँ ही रहें।

गोवर्धन पूजा नई परंपरा का उन्मेष था। ब्रज के कुछ लोगों ने इसका विरोध किया। लेकिन ज्यादातर कृष्ण के साथ थे। जिस दिन गोप बाल उत्सव मना रहे थे और परंपरा के गिने चुने समर्थक इंद्र की आराधना कर रहे थे, उस दिन मध्य रात्रि में प्रकृति ने अपना रंग बदला। बादल घिर आए। उनके घटाटोप घेरे ने आकाश को ढक लिया। बिजलियाँ कड़कने लगीं और तेज वर्षा आरंभ हो गई। कुछ ही क्षणों में वह मूसलाधार हो गई। नंदबाबा ने कहा, 'जिस दिन कृष्ण का जन्म हुआ उस दिन भी ऐसी वर्षा नहीं हुई थी।'

गोप बालों का विक्षोभ

कुछ लोग इस विपत्ति का कारण कृष्ण को बताते हुए अपने आपको कोसने लगे। उन्होंने क्यों नंदबाबा के दुलारे का कहना माना और इंद्र की आराधना को तिलांजलि दी। नंद के चेहरे पर भी चिंता की रेखाएँ उभरी लेकिन उनके मन में अपने पुत्र के लिए रोष नहीं था। श्रीकृष्ण के संगी-साथी ग्वालबाल अब भी आश्वस्त थे कि उनका नायक कोई मार्ग निकाल लेगा और विपत्ति टल जाएगी। लोग अपनी बैलगाड़ियाँ छोड़कर झुंड बनाने लगे और श्रीकृष्ण के इर्द गिर्द इकट्ठे हो गए। प्रभात होने तक वर्षा का पानी चारों ओर भर गया। मेघ फिर भी बरसना रोक नहीं रहे थे। लगता था इंद्र के सैनिक बनकर वे ब्रज के नागरिकों को दंडित करने के लिए पिल पड़े हों।

चारों ओर जल प्रलय का दृश्य छा जाने पर भी श्रीकृष्ण के चेहरे पर कोई चिंता नहीं थी। वे अपने चारों ओर निरीक्षण करते सोच रहे थे। रह रह कर उनकी दृष्टि गोवर्धन की ओर जाती। वहाँ वर्षा के कारण जगह जगह दरारें पड़ गई थी। सामान्य दिनों में श्रीकृष्ण गोवर्धन पर जब भी आते थे तो इन दरारों को अच्छी तरह देखते थे। वहाँ छुप जाने पर आने जाने वालों को पता नहीं चलता। छुपा हुआ व्यक्ति उनकी आहट लेता रह सकता था। उन दरारों का ध्यान आते ही श्रीकृष्ण के चेहरे पर स्मिति खिल आई। अपने साथी गोप बालों से उन्होंने कहा चलो और वे पर्वत की ओर खाना हो गए।

श्रीकृष्ण अपने उत्साही बलवान साथियों को लेकर नेतृत्व करते हुए आगे चले। श्रीकृष्ण कह रहे थे कि इंद्र ने हम पर आक्रमण किया है। हमें उसका सामना करना है। उन्होंने और बलराम ने मिलकर एक शिलाखंड हटाया। वह एक गुफा की ओर बना हुआ था। शिलाखंड हटते ही गुफा का विस्तार दिखाई दिया। श्रीकृष्ण ने कहा बच्चों और स्त्रियों को पहले लाओ। उन्हें गुफा में भेजकर ग्वालबाल समेत कृष्ण बलराम पूरे पर्वत पर छा गए। उनकी सहायता से जहाँ तहाँ पड़े शिलाखंड हटाए, उनके पीछे छुपी गुफाओं में झांका। पत्थरों, कंकड़ों और गुफाओं में फैली रेत को इस तरह हटाया कि कुछ देर वहाँ रुका जा सके। पर्वत के मध्य में एक विशाल गुफा थी। श्रीकृष्ण उसके बारे में जानते थे। गुफा का रास्ता एक विशाल शिला से बंद था। बलवान और युवा तो कूद फांद कर अंदर जा सकते थे, हर कोई नहीं पहुँच सकता था। कृष्ण और उनके सहयोगी इस शिला को हटाने के लिए प्रयत्न करने लगे। बाकी लोग भी उनकी सहायता में जुटे।

दृश्य निरंतर चल रहा था। श्रीराम को बोध था कि वे जाग रहे हैं लेकिन चेतना अतीत की यात्रा कर रही थी। द्वापर में हो रही वही वर्षा, वही गोवर्धन पर्वत और वही कृष्ण बलराम। उनके साथ वर्तमान का बोध भी बराबर बना हुआ था। हजारों ग्वालबाल गोवर्धन पर इंद्र के कोप से संघर्ष कर रहे थे। अचानक तूफान का वेग बढ़ गया। भयंकर गर्जना हुई जैसे बादल फट गया हो। बिजलियाँ कड़कड़ाती हुई चमकने लगीं। भयंकर गर्जन के कारण समूचा पर्वत प्रदेश हिल उठा। लोग बुरी तरह भयभीत हो उठे। लगा कि जीवन अब निशेष हुआ। उन्हें वज्रपात के प्रसंग याद हो आए, जो ऋषि मुनियों से सुन रखे थे।

इस बीच एक चमत्कार भी हुआ। जिस शिला को हटाने के लिए कृष्ण आदि प्रयत्न कर रहे थे वह टूट गई, दो खंडों में बंट गई और इस तरह लुढ़कने लगी कि गोप बाल समय पर रोक नहीं लेते तो लोगों के सिर पर गिरती। उस शिला को धीरे धीरे उतरने दिया। गुफा का रास्ता साफ हो गया था, उसके पीछे एक बड़ा भूखंड हिला और जोर की आवाज करता हुआ नीचे लुढ़का। ग्वालबालों ने अनुभव किया कि गोवर्धन जैसे ऊँचा उठ गया हो। उस भूखंड के टूट कर गिर जाने से गुफा का आकार बहुत विस्तृत हो गया। इतना विशाल कि लोग आराम से उसमें खड़े हो सकें। श्रीकृष्ण ने संकेत किया और गोप बाल हर्षनाद करते हुए गुफा में घुसने लगे। यहाँ वहाँ दरारों और छोटी मोटी गुफाओं में छिपे



लोग भी निकल कर आ गए और एक ही आश्रय में खड़े हो गए। कुछ ही क्षणों में उनकी चिंता मिटने लगी। कपूर की तरह जैसे जलकर उड़ गई हो।

लोगों की मनःस्थिति सहज सामान्य हुई। बाहर मेघ उसी गर्जन तर्जन के साथ बरस रहे थे लेकिन व्रजवासियों को उनका भय कहीं भी नहीं छू रहा था। ऊँचे शिखर पर खड़े होकर बाढ़ से उफनती नदी को देखने की तरह वे इंद्र के कोप को अविचलित देख रहे थे। श्रीकृष्ण ने उन्हें सुरक्षित बचा लिया था। गुफा के भीतर उत्सव का वही वातावरण बनने लगा जो कल रात देर तक उल्लसित कर रहा था। उस उल्लास से थके ग्वाल बालों पर इंद्र का कोप जिस तरह टूटा था, उसकी स्मृति कुछ ही क्षणों में स्वप्न की तरह हो गई। गोवर्धन पर आरंभ हुआ नया उत्सव प्रायः पूरे दिन चलता रहा।

गोवर्धन धारण के इस प्रसंग को श्रीराम ने साक्षी भाव से ही नहीं कर्त्ताभाव से भी अनुभव किया। उत्सव वेग पकड़ने लगा था और श्रीराम जाग्रत अवस्था में आ गए थे। वे सोचने लगे थे कि भय या प्रलोभन से कर्मकाण्ड क्यों संपन्न किए जाने चाहिए? वे उल्लास मनाने, ईश्वर के प्रति अनुग्रह व्यक्त करने और जीवन जिन निमित्तों से समृद्ध होता है उनके प्रति आभार व्यक्त करने के लिए होने चाहिए। प्रातःकृत्यों से निवृत्त होने के बाद चिंतन धारा इसी दिशा में बह चली थी। सुबह आठ बज गए। इस अनुभूति के संदर्भ में वे आंदोलन की समीक्षा करने लगे। अपनी कुटिया में बैठकर वे सोच विचार कर ही रहे थे कि पंडित गया प्रसाद का संदेश आ गया। उनके शिष्य ने आकर कहा कि पंडित जी आज का भोजन आपके साथ ही करना चाहते हैं। उन्होंने सविनय कहलवाया है।

रात के अनुभव से श्रीराम बाहर आए। अभी तक वे उसी जगत में खोए हुए थे। पंडित जी के निमंत्रण ने उन्हें इस जगत से जोड़ा। निमंत्रण स्वीकार किया और एक बार फिर पर्वत की ओर चल दिए। उन शिलाओं को निरखा, परखा जिनसे कल की परिक्रमा में परिचय हुआ था। परिक्रमा मार्ग पर उन्हें एक वृद्ध अपाहिज मिला वह आनंद और उत्साह से भजन कर रहा था। एक पत्थर से सटी हुई वैसाखियां देख-देख कर वह और आवेग से भर उठता था। श्रीराम को वैसाखियों के सामने भजन करता हुआ अपाहिज एक पहेली लगा। पूछने का मन हुआ कि इस प्रकार का भजन किस साधन मार्ग का अंग है। वृद्ध की मस्ती देखकर पूछने का साहस नहीं किया। उसे भजन करते हुए चुपचाप देखते रहे।

अपाहिज की आस्था

लगभग दो घंटे उस क्षेत्र में घूमते हुए श्रीराम पंडित जी के पास गए। भ्रमण में उन्होंने कुछ और विलक्षण चीजें भी देखी थीं। पंडित जी से उनकी चर्चा की। कुछ घटनाओं के रहस्य खुले। कुछ के नहीं। उस वृद्ध अपाहिज का उल्लेख आया तो पंडित जी ने बताया उस पर ठाकुर की कृपा हुई है। वह अपाहिज था। वैसाखियों के सहारे गिरिराज की परिक्रमा कर रहा था। हर साल परिक्रमा करता था। वैसाखियों के सहारे चलता और गोवर्धन धारी से अपने मन की व्यथा कह कर चला जाता। पाँच साल तक यह क्रम चला। घर के लोग उसे भार समझते थे। इस के कारण परिवार में अक्सर झगड़े होते थे। उसने घर परिवार छोड़कर अन्यत्र कहीं भी बस जाने और अपनी जीविका स्वयं अर्जित करने का निश्चय कर लिया था। अपने इष्ट से यह निवेदन करते हुए वह चल रहा था कि परिक्रमा में एक विचित्र घटना घटी। चलते चलते एक ग्वाला कहीं से आ निकला और उसने वृद्ध का रास्ता रोक लिया। ग्वाला युवक ही था। रास्ता रोकते ही उसने झपट कर बैसाखियाँ छीन ली। वृद्ध लड़खड़ाया। उसे युवक के इस व्यवहार पर गुस्सा आया। वह कुछ बोले इसके पहले ही युवक ने लड़खड़ाए वृद्ध को संभाल लिया और कहा, अब तुम्हें इन वैसाखियों की जरूरत नहीं है। सीधे खड़े रहो।

वृद्ध को समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या करे? गुस्सा, आश्चर्य और असमंजस ने उसकी स्थिति विचित्र बना दी थी। युवक के इस कथन पर वृद्ध को और तेज गुस्सा आया। वह कुछ कहे, इसके पहले ही उसने अनुभव किया कि सचमुच उसे बैसाखियों की जरूरत नहीं रही। वह तन कर खड़ा हो सकता है। वह अपने हाथ पाँव और शरीर को निहारने लगा। स्वस्थ अनुभव कर उसने युवक की ओर देखा, लेकिन वहाँ कोई नहीं था।

पंडित गया प्रसाद ने बताया कि इसके बाद वह वृद्ध गोवर्धन छोड़कर नहीं गया। यहाँ नित्यवास का व्रत ले लिया। अकिंचन भाव लेकर यहीं बस गया। किसी को अपना नाम भी नहीं बताता। समय पर जहाँ से जैसे जो कुछ मिल जाता है उसे ठाकुर जी का प्रसाद मानकर ग्रहण कर लेता है। उन वैसाखियों को युवक रूपी श्रीकृष्ण ने स्पर्श किया था। इसलिए उन्हें निरंतर अपने साथ रखता है। उन्हें अपने इष्ट का विग्रह मानता है।



पाँच दिन रहकर श्रीराम गोवर्धन से वापस चले गए। इन पांच दिनों में उनकी अनुष्ठान साधना नियत क्रम के अनुसार चलती रही। गोवर्धन के कई साधु संतों से भेंट हुई। जिनसे भी मिले उनसे भक्ति ज्ञान वैराग्य की ही चर्चा की। राजनैतिक या सामाजिक विषयों के प्रति संन्यास भाव ही अपनाए रखा। छठे दिन वे अपनी कर्मभूमि में वापस लौट गए।

आगरा पहुँचते ही श्रीराम को सूचना मिली कि जगन प्रसाद रावत भी मुंबई से लौट आए हैं। वहाँ उन्होंने क्रांतिकारी गतिविधियों का प्रशिक्षण लिया था। टेलीफोन और तार के खंभे काटना, रेल लाइन उखाड़ना, यातायात में अवरोध खड़े करना और सरकारी आयोजनों को विफल करना इस प्रशिक्षण के मुख्य हिस्से थे। लौटते ही उन्होंने श्रीराम को बुलाया। फ्रीगंज के एक मकान में जब वे पहुँचे तो रावत जी के अलावा राधेश्याम, कृष्ण जीवन दास, भगवान सहाय और उलफत सिंह भी वहाँ पहले ही आए हुए थे।

रावत जी ने यहाँ वहाँ चल रही गतिविधियों का परिचय दिया। उनके अनुसार प्रचार तंत्र ही बता रहा था कि चारों तरफ वातावरण ठंडा है। असलियत में क्रांतिकारी सभी जगह गुपचुप सक्रिय है। वे संचार व्यवस्था और यातायात दोनों ही ठप करने में लगे हुए थे। स्वतंत्रता सेनानी इन कामों में चुपचाप लगे हुए थे। प्रायः अकेले या दो तीन की टोली बनाकर काम करते। अलग अलग काम करने की सावधानी इसलिए ताकि धरपकड़ की स्थिति आने पर ज्यादा लोग गिरफ्तार न हों। वैसे भी इस तरह के कारनामे प्रदर्शन के लिए नहीं होते। संगठन की शक्ति भी इनमें नहीं दिखानी होती।

श्रीराम के साथ गोवर्धन सिंह और सिरोली दहू की टीम बनाई गई। उन्हें आगरा टूण्डला स्टेशनों के बीच रेल यातायात ठप करते रहने का दायित्व सौंपा गया। इस टीम ने दो महीने के भीतर पाँच बार रेलगाड़ियाँ रोकी। लगातार तीन बार गाड़ी रुकने के बाद प्रशासन ने चौकसी बढ़ा दी थी। रेल मार्ग पर पुलिस का पहरा बराबर बना रहने लगा। पहरा बढ़ा देख श्रीराम ने चौथी बार कुछ बढ़ा ही कारनामा करने की ठानी। इसके लिए जरूरी था कि पहरा दे रहे पुलिस वालों को देर तक के लिए वहाँ से हटाया जाए। प्रशासन ने रेल पटरियों पर गड़बड़ करने वालों का अता पता बताने या उसकी पूर्व सूचना देने वालों के लिए इनाम की घोषणा कर रखी थी। कई ग्रामीण इसका लाभ उठाने की ताक में रहते थे। वे ताड़ते रहते थे कि कहीं कोई गड़बड़ तो नहीं हो रही। गलत सूचना

परिक्रमा के पथ पर

देने पर पुलिस के डंडे खाने पड़ते थे, इसलिए लोग पहले ही अच्छी तरह छानबीन कर निश्चित कर लेते थे कि सचमुच तोड़फोड़ हो रही है।

रेल यातायात रोका

टूंडला से सात किलोमीटर दूर रेल लाइन पर पहरा दे रहे पुलिस वाले के पास उस दिन एक ग्रामीण युवक हांफते हांफते पहुँचा। लगा वह दूर से दौड़ा चला आ रहा था। उसने उखड़ती आवाज से कहा दरोगा जी कोस भर दूर तीन चार लोग पटरी उखाड़ रहे हैं। उस युवक ने खुले गले वाली बनियान पहनी हुई थी और घुटने तक धोती बंधी थी। सिपाही ने कहा सच कह रहा है। युवक ने कहा, 'हाँ मैं उनका एक औजार भी चुरा लाया हूँ। देखिए।' यह कहते हुए उसने नट बोल्ट खोलने वाला पुर्जा दिखाया।

सिपाही को भरोसा हो गया। उसने आसपास पहरा दे रहे दो पुलिस वालों को साथ लिया और उस युवक के साथ हो लिए। युवक ने कहा भी कि आप इजाजत दें तो मैं अपने गाँव चला जाऊँ। पुलिस वालों ने यह कहकर रोक लिया कि अगर तुम्हारी सूचना गलत निकली तो हम तुम्हें ही अंदर करेंगे। इसलिए हमारे साथ ही रहो।

पुलिस वाले ताड़ नहीं पाए लेकिन युवक के चेहरे पर अपने उद्देश्य में सफल हो जाने का हर्ष छलक रहा था। लगभग एक किलोमीटर लंबा रेलमार्ग पुलिस पहरे से मुक्त हो गया। दोपहर एक बजे के लगभग आगरा से टूंडला की ओर एक सवारी गाड़ी अपनी गति से दौड़ती हुई आई। दो युवक पटरियों के पास ही घूम रहे थे। गाड़ी आने का समय हुआ और दूर कहीं रेल की सीटी सुनाई दी। उनमें से एक युवक ने अपनी जेब में रखा लाल कपड़ा निकाल लिया और रेल की पटरियों के बीच दौड़ने का पूर्वाभ्यास करने लगा।

दूसरे युवक ने कहा, 'ठीक है, ठीक है। ज्यादा नाटक करने की जरूरत नहीं है। कार्रवाई का वक्त आए तब बुद्धि और बहादुरी का परिचय देना।' इतना कहकर वह युवक हंस दिया। चुनौती और संघर्ष के विकट क्षणों में भी इस तरह विनोद करने वाला युवक और कोई नहीं इस अभियान का नेतृत्व कर रहे श्रीराम ही थे। उन्होंने अलग वेशभूषा धारण कर रखी थी। चेहरे पर दाढ़ी बढ़ी हुई थी, जैसे खेत मजदूरी से निकल कर आ रहे हों।



दूसरा युवक गोवर्धन था। रेल की सीटी फिर सुनाई दी। इस बार वह वास्तव में लाल कपड़ा झंडी की तरह हिलाता हुआ रेल की पटरियों पर दौड़ा। जिस ओर से गाड़ी आ रही थी, वह उसी ओर दौड़ रहा था। उन दिनों रेल के इंजिनों में ड्राइवर की एक सीट बाहर की ओर लगी होती थी। इस सीट को ड्राइविंग लीवर के पास बनी खिड़की में आवश्यकता अनुसार लगाया हटाया जा सकता था। गाड़ी खाना होने से पहले ड्राइवर ने वह सीट इंजिन के बाहर लगा ली थी। वह बाहर सीट पर ही बैठा था। तीस पैंतीस किलोमीटर की गति से आ रही ट्रेन के ड्राइवर ने देखा कि एक युवक लाल कपड़ा दिखाता हुआ दौड़ता चला आ रहा है। सोचा, हो सकता है आगे पटरी उखड़ी हुई हो या कोई दुर्घटना हुई पड़ी हो। ड्राइवर ने ब्रेक लगाए और कुछ दूर अपने ही बल से आगे घिसटती गाड़ी रुक गई।

गाड़ी रुकते ही पटरी के आसपास झाड़ियों में छिपे दस बारह युवक बाहर निकल आए। उन्होंने हाथ में शायद बंदूक ली हुई थी, जिनके मुँह तौलियों से ढके हुए थे। उन लोगों ने समवेत स्वर में उद्घोष किया 'भारत माता की जय,' 'वंदे मातरम्' और गार्ड के डिब्बे के पास जाकर खड़े हो गए। कुछ लोग फर्स्ट क्लास के डिब्बे के पास भी पहुँचे। गार्ड के डिब्बे से गार्ड को उतारा और दो युवकों ने अपने घेरे में लिया। तौलिए से ढकी बंदूक उसकी पीठ में गड़ा दी। गार्ड हक्का बक्का सा खड़ा हो गया। उसके चेहरे पर भय के कारण पसीना छलक आया। उन युवकों ने गार्ड को घेरे हुए ही हाँक लगाई, फर्स्ट क्लास की सवारियाँ नीचे उतर जाएं। हम उसमें आग लगाने वाले हैं। यह हाँक डिब्बे के बाहर ही लगाई गई थी। सवारियाँ दनादन नीचे उतरने लगीं। गार्ड को आदेश सा दिया कि डिब्बे को पूरी गाड़ी से अलग किया जाए। गार्ड ने ड्राइवर और गाड़ी में चल रहे कर्मचारियों की मदद से फर्स्ट क्लास का डिब्बा अलग करवाया।

खेतों में छुपे गांव के लोग बाहर निकल आए। इस दल में मुख्य रूप से तीन लोग ही सक्रिय थे। गाड़ी को फूँकने के लिए दूर काम कर रही टोलियाँ भी बुला ली गई थी। उनके हाथ में मिट्टी का तेल और दूसरा ईंधन था। गाड़ी से अलग किए डिब्बे में तेल छिड़का और उसमें आग लगा दी। आग लगाने से पहले डिब्बे में सूखी लकड़ियाँ और घासफूस भी बिछा दी थी। मिनटों में डिब्बा धूँ धूँ कर जलने लगा। इसके बाद श्रीराम और गंगासिंह दूसरी टोलियों के सदस्यों को भागने का इशारा कर चलते बने।

पटरियां उखाड़ने और रेल यातायात ठप करने के लिए ही दूसरी टोलियों की आवश्यकता होती थी वरना तीन चार लोग ही अपना काम करते रहते थे। टूंडला सवारी गाड़ी में आग लगने का समाचार आसपास गांवों में आग की तरह फैल गया। समाचार पत्रों में भी खबर छपी, लेकिन विस्तार से नहीं। जिला प्रशासन ने उस समाचार को दबा दिया। दबाने का परिणाम यह हुआ कि घटना जितनी बड़ी थी उससे कई गुना विकराल रूप में लोगों के बीच फैली।

अंत तक यह पता नहीं चला कि इस घटना के पीछे किसका हाथ था? पुलिस ने गांव वालों को तंग किया। कुछ लोगों को पकड़ कर पूछा ताछा। सताया, दंडित किया लेकिन कुछ पता नहीं चला। उन युवकों के बारे में किसी को जानकारी हो तो बताए भी। उन्हें सिर्फ यह कहा गया था कि सवारी गाड़ी में कुछ गुंडे बदमाश हैं। वे गांव में लूट मार मचाने के लिए आ रहे हैं। उनसे मुकाबला करना है। डिब्बे में आग लगाने की बात उन्हें मौके पर ही बताई गई थी। बाद में वे लोग कहाँ चले गए इस बारे में भी कोई सुराग नहीं मिला।

टूंडला सवारी गाड़ी का डिब्बा जला देने के सप्ताह भर बाद आगरा के पास उसी स्तर की पटरियों से फिश प्लेटें हटी हुई थीं। फिश प्लेटें हटाने के कारण गाड़ी पटरी से उतर गई। उन दिनों रेलों की गति बहुत तेज नहीं हुआ करती थी। इसलिए डिब्बे पटरी से उतरने के बाद भी गिरते नहीं थे। जानमाल की हानि नहीं होती थी। पांचवी बार पटरियाँ उखाड़ने के बाद श्रीराम की टोली ने टेलीफोन के तार काटने और संचार व्यवस्था ठप करने का बीड़ा उठाया। वे अपने काम को सुचारू रूप से चलाते रहे। दूसरे युवकों को भी इस काम में दीक्षित करने का उपक्रम चलता रहा। अपने साथियों को इन कामों के लिए समझाते हुए श्रीराम कई बार दोहराते थे कि ध्यान रहे किसी व्यक्ति को तकलीफ न हो। हम अंग्रेजी राज को ठप करने के लिए तोड़फोड़ कर रहे हैं। जान माल तो अपने ही लोगों का है। उस पर आँच नहीं आने देना है।

१९३३ अप्रैल के पहले सप्ताह में कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता में निश्चित हुआ था। पिछले साल दिल्ली में हुए अधिवेशन के समय ही कलकत्ता के बारे में निर्णय हो चुका था। उस अधिवेशन के बाद देश ने उथल पुथल का एक बड़ा दौर देखा था। उस दौर ने लोगों को संगठित कर दिया था। महात्मा गांधी का अनशन, पूना पैक्ट, मुस्लिम कांफ्रेंस, आरक्षण आदि मसले इसी साल तय हुए। इन मुद्दों का राष्ट्रीय आंदोलन से गहरा संबंध था। ये उभरे तो कलकत्ता अधिवेशन



का महत्व भी बढ़ने लगा। श्रीराम क्रांतिकारी गतिविधियों को कुछ समय के लिए स्थगित कर लोगों के बीच जाने लगे। सभाएँ करने, संपर्क अभियान चलाने और आंदोलन में भागीदारी के लिए प्रशिक्षित करने पर जोर देने लगे।

कांग्रेस के स्थानाफ़्त अध्यक्ष अण्णे साहब ने ही सुझाव रखा था कि कलकत्ता अधिवेशन की अध्यक्षता महामना मदनमोहन मालवीय करें। इस अधिवेशन में लाहौर अधिवेशन के समय पारित हुए पूर्ण स्वराज्य के प्रस्ताव की फिर से पुष्टि होनी थी। कार्यकारिणी को सविनय अवज्ञा के संकल्प पर मोहर लगानी थी। विदेशी कपड़ों और ब्रिटिश माल के बहिष्कार का कार्यक्रम भी इसी अवसर पर दिया जाना था। अभी इनकी घोषणा नहीं हुई थी। संगठन में उच्च स्तर पर मंथन ही चल रहा था। सरकार को इसकी भनक लग गई। पिछले निर्णयों और उन पर हुई प्रतिक्रिया से भी अनुमान लगाया जा सकता था कि कलकत्ता अधिवेशन में कुछ कठोर कदम उठाए जाने हैं। सरकार के पास तो फिर भी अपना खुफिया तंत्र था। निर्णय लिया गया कि आयोजन को सफल नहीं होने देना है। कितने ही लोगों को गिरफ्तार करना पड़े या कैसा भी कठोर दमन चक्र क्यों न चलाना पड़े, चलाया जाए।

प्रतिक्रिया स्वरूप लोगों में भी उत्साह उभरने लगा। कांग्रेस कार्यकर्ताओं की भरती का दौर चल पड़ा। नए सदस्य बनाए जाने लगे। श्रीराम ने अधिवेशन से पहले तक एक हजार नए सदस्य बनाने का संकल्प लिया। इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए उनके पास दो महीने का समय था। वे अपनी चार लोगों की टीम के साथ इस काम में पिल पड़े। सदस्यता अभियान के दिनों में ही निर्देश आया कि कलकत्ता कांग्रेस को सफल बनाने के लिए प्रयत्न किए जाने हैं। अधिक से अधिक लोग उस अवसर पर इकट्ठे हों। कांग्रेस के बड़े नेताओं ने यह भी समझा दिया था कि हो सकता है लोगों को जाने से रोका जाए। रोकने के लिए गिरफ्तार किया जाए झूठे मामलों में फंसा कर बंद कर दिया जाए या ऐसा कहर ढाया जाने लगे कि घर गांव छोड़ना ही मुश्किल हो जाए। उन सब बाधाओं की परवाह नहीं की जानी है। प्रतिनिधियों को इस तरह तैयार किया जाए कि वे इन बाधाओं की परवाह नहीं करें।

अधिवेशन में उद्घापन

श्रीराम को बरौदा यज्ञ का अच्छा अनुभव था। हाल ही में की गई गोवर्धन यात्रा के समय की अनुभूति भी प्रयोग में लाना थी। वह अनुभूति

परिक्रमा के पथ पर

जिसमें श्रीकृष्ण आतंक या प्रलोभन की सत्ता मानने के स्थान पर उसे चुनौती देने का संदेश देते हुए दिखाई दिए। गोवर्धन की अनुभूति को उन्होंने रूपक की तरह लिया। स्वेच्छाचारी और विदेशी शासन की तुलना इन्द्र के साम्राज्य से की। इस आतंक के विरुद्ध आत्मबल था, उसका आश्रय लेकर खड़े हो जाने की बात कथा प्रसंगों के माध्यम से सुनाई। यज्ञ याग आदि कर्मकांड तो नहीं किए। लोगों के हाथ में कलावा बांधकर शपथ दिलाई कि अधिवेशन में जाएंगे। वह हमारा व्रत है, उसका उद्यापन कलकत्ता जाकर होना है। श्रीराम की इस पद्धति ने और लोगों को भी प्रेरित किया। उन्होंने भी कलावा बांधना शुरू किया।

ब्रिटिश सरकार का गुप्तचर तंत्र इस मौके पर सक्रिय हो गया और स्थानों की तरह आगरा जिले में सक्रिय लोगों की सूची तैयार की गई। उनके कारनामे, स्थिति और प्रभाव का आकलन किया। श्रीराम की रिपोर्ट इंस्पेक्टर मार्टिन नामक अधिकारी ने बनाई थी। उसने लिखा था कि 'यह व्यक्ति बहुत खतरनाक सिद्ध हो सकता है। वैसे यह कांग्रेस का सामान्य कार्यकर्ता है। लेकिन पार्टी के ऊँचे क्षेत्रों में भी इसकी धाक है। इसके काम करने का तरीका अदभुत है।'

पच्चीस तीस साल के युषकों में उत्साह तो बहुत होता है, परिपक्व सूझबूझ नहीं होती। श्रीराम में दोनों विशेषताएँ थीं। संभवतः इन विशेषताओं के कारण वरिष्ठ कांग्रेसी नेता बालकृष्ण केसकर ने अपना सहयोगी बनाया था। सैनिक के संपादक प्रकाशक कृष्णदत्त पालीवाल से केसकर ने अपने लिए कोई निष्ठावान स्वयंसेवक बताने के लिए कहा था। पालीवाल जी ने इसका दायित्व श्रीराम को सौंप दिया। श्रीराम ने किसी और का नाम सुझाने के स्थान पर स्वयं को ही प्रस्तुत कर दिया। केसकर साहब ने उन्हें चुन लिया, लेकिन पालीवाल जी को यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने श्रीराम को केसकर के पास ज्यादा समय तक टिकने नहीं दिया। वापस अपने पास बुला लिया।

मार्टिन की रिपोर्ट में इस घटना का उल्लेख था। एक अन्य प्रसंग भी उसने अपनी रिपोर्ट में सम्मिलित किया था। मार्च १९३१ में गांधी इरविन समझौता हुआ था। उस समझौते में कांग्रेस ने अवज्ञा आंदोलन छेड़ने और गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए सहमति वायसराय लार्ड इरविन से मांगी। इस सहमति के बदले वायसराय ने दमनकारी कानून उठा लेने और राजनैतिक कैदियों को छोड़ने का वचन दिया। समझौते में किसानों पर लगाए गए अनाप-शनाप लगान को संशोधित करने की शर्त भी थी। सरकार ने अनुचित



लगान माफ करने का आश्वासन दिया था। इसके लिए आंकड़े इकट्ठा करना आवश्यक था।

संयुक्त प्रांत में कांग्रेस का संचालन तब पंडित गोविन्द वल्लभ पंत कर रहे थे। वे नैनीताल में थे। आगरा क्षेत्र के आंकड़े नहीं मिल रहे थे। संगठन की बैठक में चर्चा चली गांवों में घूम-घूम कर विवरण इकट्ठे करने के सिवा कोई उपाय नहीं था। रावत जी ने कह दिया कि इस काम में श्रीराम को लगा दिया जाए। उन्हें क्षेत्र की अच्छी जानकारी है। इस सुझाव के बाद कुछ नेताओं ने एक दूसरे का मुँह देखा और श्रीराम के बारे में सम्मति पूरी। बैठक में इस बारे में आम राय बनी कि श्रीराम को तीन चार और साथियों को लेकर यह काम करने के लिए कहा जाए। वैसा ही हुआ। श्रीराम बैठक में ही थे। उन्होंने काम तुरंत आरंभ कर दिया। दायित्व मिलते ही वे पार्टी कार्यालय से बाहर आए। उनके अभियान में साथ रहने वाले कार्यकर्ता भी पीछे-पीछे उठकर आ गए। निवास से अपना प्रवासी झोला उठाया और मुहिम पर निकल गए।

चार दिन में ही उस क्षेत्र के एक सौ अट्ठाइस गांवों की जमीनें, किसान उनके खेत, खेतों का क्षेत्रफल और लगान का विवरण तैयार था। कैसे किया यह सब? श्रीराम और उनके साथियों ने तहसीलों में आने जाने वाले पंचों और पटवारियों से संपर्क किया था। अस्सी प्रतिशत जानकारी उनसे मिल गई। कुछ बड़े गांवों में जाकर वहाँ के मुख्य लोगों से मिले। उनसे क्षेत्र के किसानों और लगान के बारे में पूछा। अपनी जानकारी की पुष्टि की और चार दिन में सबका संकलन कर रिपोर्ट जिला मुख्यालय को सौंप दी। संयुक्त प्रांत के प्रमुख पंडित गोविंद वल्लभ पंत को सबसे पहले आगरा क्षेत्र की जानकारी मिली थी। उन्होंने आश्चर्य व्यक्त किया कि ऐसी परिपूर्ण जानकारी आखिर कैसे मिल गई। उस स्वयंसेवक को अपनी ओर से शाबासी देने के लिए कहा, जिसने यह विवरण जुटाया था।

मार्टिन ने श्रीराम की कार्यशैली का उल्लेख करते हुए यह प्रसंग लिखा था। उसने यह भी कहा कि चार दिन में इतने विस्तृत क्षेत्र का विवरण तैयार करने के बारे में गांधी जी को भी पता चला। गांधी जी ने इस पर टिप्पणी की थी कि हर जिले में इस तरह के एक एक सक्रिय कार्यकर्ता हों तो स्वतंत्रता का लक्ष्य दूर नहीं है, वह महीने भर में ही प्राप्त किया जा सकता है। गांधी जी ने नैनीताल सम्मेलन में श्रीराम मत्त को अलग से बुलाया और उनकी कार्यपद्धति



परिक्रमा के पथ पर

के बारे में पूछा परखा। कार्यकर्ताओं की बैठक में उन्होंने श्रीराम को शाबासी दी और कहा कि इस तरह के कार्यकर्ता हों तो हमें अपनी मंजिल तक पहुँचने से दुनिया की कोई ताकत नहीं रोक सकती। इन प्रसंगों के अलावा मार्टिन ने लिखा था कि श्रीराम वैसे एक सामान्य कार्यकर्ता है, लेकिन बहुत तीक्ष्ण और सक्रिय है।

जिला प्रशासन ने इस टिप्पणी को गंभीरता से लिया था। कलकत्ता अधिवेशन की तैयारियों में वह जिस तरह सक्रिय थे, उस पर भी प्रशासन की निगाह थी। ताना बाना बुना जाने लगा कि अधिवेशन आरंभ होने से पहले ही श्रीराम को पकड़ लिया जाए। प्रत्यक्ष में ऐसा कोई काम नहीं दिखाई दे रहा था जिसके आधार पर उन्हें रोका जा सके। श्रीराम को प्रशासन के मनसूबों की भनक लग गई। उन्होंने भूमिगत होने का निश्चय कर लिया। कांग्रेस स्वयंसेवक का बाना छोड़कर धोती कुर्ता पहनने लगे। दाढ़ी बढ़ा ली और उसे तराश लिया। इससे पहले वे हलकी मूछें रखते थे। बढ़ी हुई दाढ़ी और आधी बाहों वाली गंजी पहनकर वे ठेठ किसान पुत्र दिखाई देते थे।

दाढ़ी बढ़ने तक वे गाँव में काम करते रहे। वहाँ दो सौ स्वयंसेवक तैयार किए। फिर आगरा टूंडला, बाह सिरौली आदि कस्बों में लोगों से संपर्क करने लगे। यह काम भी पंद्रह बीस दिन से ज्यादा नहीं चल सका। वेशभूषा बदल कर वे कुछ दिन तक ही अपनी पहचान छुपा सके। काम करने की उनकी शैली ने उन्हें प्रकट कर ही दिया। फ्रीगंज के पास जिस गली में उन्होंने अपना डेरा डाल रखा था, वहाँ निगरानी रखी जाने लगी। श्रीराम वहाँ कम ही आते जाते थे। लोगों से संपर्क करते हुए जहाँ रात हो जाती वहाँ किसी कार्यकर्ता के यहाँ रुक जाते।

वेश बदल कर काम करते हुए उन्हें शंका होने लगी थी कि पुलिस उनके मकान पर निगरानी करती होगी। अपनी शंका को जांचने के लिए उन्होंने एक अन्य कार्यकर्ता को गली में भेजकर पास पड़ौस के लोगों से टोह ली। शंका सही निकली। श्रीराम ने तुरंत निर्णय लिया कि आगरा छोड़ दिया जाए। कलकत्ता करीब तेरह सौ किलोमीटर दूर है। रुकते-रुकते यात्रा करेंगे। बीच में पड़ने वाले स्टेशनों पर भी थोड़ा बहुत रुकेंगे और उन स्थानों पर लोगों से संपर्क करते चलने की पद्धति निश्चित की। घर पर पहरा बैठा देख कर उन्होंने उधर मुँह भी नहीं किया। दो जोड़ी कपड़े, कुछ पुस्तकें और लोटा लेकर वे मार्च के पहले सप्ताह में ही आगरा से खाना हो गए। प्रस्थान की तिथि के बारे में निश्चित जानकारी नहीं है।



ब्रिटिश सरकार अधिवेशन को नहीं होने देने के लिए कटिबद्ध थी। जगह-जगह लोगों को गिरफ्तार कर रही थी। कलकत्ता के लिए जहाँ से भी गाड़ियाँ जाती थीं उन स्टेशनों पर चौकसी बिठा दी। कलकत्ता के आसपास दो सौ किलोमीटर दूर तक के स्टेशनों पर कड़ी चौकसी थी। दूरवर्ती स्टेशनों पर सुराजी बाना पहने लोगों को ही रोका जा रहा था लेकिन इन स्टेशनों पर तो हर व्यक्ति की जांच पड़ताल की जा रही थी। नैहारी, राणाघाट, दुर्गापुर, आसनसोल, आरा, घाटशिला, हलदिया और खड़कपुर स्टेशनों पर पुलिस ने अभेद्य दुर्ग रचना कर दी थी। मार्च के अंतिम सप्ताह में यह स्थिति बन गई थी कि इन स्टेशनों पर सुराज या गांधी जी का नाम भी किसी के मुँह से निकल जाए तो वह आगे नहीं बढ़ पाता था। पुलिस से ज्यादा नागरिकों में ही फैले उसके भेदिए सक्रिय थे। उनके कान में किसी के भी मुँह से अधिवेशन या कांग्रेस से संबंधित कोई वचन सुनाई देते तो समझो बात पुलिस के कान में पहुँच गई है। स्टेशन पर स्टेशन से बाहर आते हुए गाड़ी में कुछ कहा सुना हो तो भी उसका धर लिया जाना सुनिश्चित था।

महामना मालवीय को कलकत्ता अधिवेशन की अध्यक्षता करनी थी। उनकी गिरफ्तारी भी तय थी। नियत समय पर वे वाराणसी से कलकत्ता के लिए रवाना हुए। आसनसोल स्टेशन पर उन्हें पुलिस ने पकड़ लिया। अलग अलग दिनों में इसी स्टेशन पर स्वरूपरानी नेहरू, पंडित जवाहर लाल नेहरू की माता, डॉ० सैयद महमूद, रफी अहमद किदवाई और अण्णे साहब जैसे लब्ध प्रतिष्ठित नेता भी इसी स्टेशन पर गिरफ्तार किए गए।

अप्रैल की दूसरी तारीख को श्रीराम और उनके साथ आए सुराजियों का जत्था आसनसोल पहुँचा। आगरा से आया हुआ एक पुलिस इंस्पेक्टर अनंतराम आसनसोल स्टेशन पर ही तैनात था। जगन प्रसाद रावत ने उसे देखते ही पहचान लिया। श्रीराम को सतर्क करते हुए बोले 'जल्दी करो मित्र देख लिए गए हैं।' वे भागने की तैयारी में थे कि अनंतराम डंडा फटकारता हुआ पास आ गया। उसके साथ चार पांच जवान और थे। गले में लटक रही सीटी को मुँह में दबाया और जोर से बजा दिया। उसकी आवाज से स्टेशन पर तैनात दूसरे पुलिस वाले भी सतर्क हो गए। अब भाग निकलना मुश्किल था। श्रीराम और उनके साथियों ने इसके लिए प्रयत्न भी नहीं किया।



परिक्रमा के पथ पर

मालवीय जी की प्रेरणा

कांग्रेस कार्यकर्ताओं को एक अहाते में घेर कर रखा गया पर यह अहाता आसनसोल के एक जागीरदार का था, जहाँ जानवर बंधते थे। जेल की तरह उपयोग करने के लिए सरकार ने अहाता खाली करा लिया था और टेंट तानकर अस्थाई कमरे बनवा कर उसे रहने लायक बना दिया था। इसी अहाते में महात्मा गांधी के पुत्र देवदास गांधी, रफी अहमद किदवई, कन्हैयालाल खादीवाला, रविशंकर शुक्ल, श्री मन्नारायण आदि नेता भी रखे गए। महामना मालवीय, स्वरूपरानी नेहरू और डॉ० अहमद को भी समीप के ही एक स्थान पर रखा गया। उद्देश्य अधिवेशन को विफल करना था। वह विफल तो नहीं हुआ, यह अवश्य हुआ कि प्रतिनिधि बड़ी संख्या में नहीं पहुँच पाए।

मालवीय जी गिरफ्तार कर लिए गए थे। उनके स्थान पर श्रीमती नेली सेनगुप्ता ने अध्यक्षता की। मालवीय जी का तैयार किया अध्यक्षीय भाषण पढ़ा गया। उसमें महात्मा गांधी को अनशन की सफलता पर बधाई दी गई। लाहौर कांग्रेस के पूर्ण स्वराज्य के संकल्प, ब्रिटिश माल के बायकाट और अंग्रेजी हुकूमत के बनाए संविधान को नहीं मानने के प्रस्तावों का उल्लेख था। कहना नहीं होगा कि सभी प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार किए गए। एक प्रस्ताव मुट्ठीफंड के बारे में भी था। कार्यकर्ता और आंदोलन से सहानुभूति रखने वाले लोग एक मुट्ठी अनाज प्रतिदिन आंदोलन के लिए निकालें। उससे मिलने वाली रकम कांग्रेस कार्यालय में जमा कराएं। यह प्रस्ताव भी सर्वसम्मति से पास हो गया। नेली सेनगुप्ता ने कहा कि अंग्रेज सरकार ने पिछले पंद्रह महीनों में डेढ़ लाख लोग गिरफ्तार किए हैं। इस अधिवेशन को विफल करने के लिए बीस हजार गिरफ्तारियाँ की गई। अंग्रेज सरकार को यह अच्छी तरह अनुभव हो गया कि ऐसी गिरफ्तारियों और दमन की कार्यवाहियों से लोगों की भावनाएँ दबाई नहीं जा सकती। न ही उन्हें अपनी बात कहने से रोका जा सकता है।

अधिवेशन समाप्त होने के बाद गिरफ्तार किए गए प्रतिनिधियों को छोड़ा जाने लगा लेकिन नेली सेनगुप्ता को पकड़ लिया गया। उन्हें बाद में छह महीने की सजा भी हुई। वरिष्ठ नेताओं के हस्तक्षेप से उन्हें रिहा किया जा सका और लोग भी रोके गए। आसनसोल जेल से छूटने के दो तीन दिन पहले मालवीय जी उस अहाते में आए जहाँ सैकड़ों प्रतिनिधि अब भी बंद थे। वे



कार्यकर्ताओं से अलग अलग मिले। श्रीराम की बारी आई तो उन्हें बताया गया कि 'इन्होंने आपसे ही यज्ञोपवीत लिया है। इनके पिता पंडित रूपकिशोर.....' बताने वाले का वाक्य पूरा होने दिए बिना ही मालवीय जी बोल उठे मेरे अभिन्न मित्र थे और हम एक साथ भागवत कर चुके हैं। अपने क्षेत्र से उन्होंने हिंदू विश्वविद्यालय के लिए अच्छा सहयोग जुटाया था।

इन संदर्भों का उल्लेख करने के बाद उन्होंने श्रीराम से पूछा, शिक्षा दीक्षा कैसी हुई। श्रीराम ने कहा गांव की पाठशाला और पिता के सान्निध्य में कुछ अध्ययन करने के बाद की शिक्षा आंदोलन के विद्यालय में चल रही है।

उत्तर सुनकर मालवीय जी मुसकराए। उन्होंने श्रीराम की पीठ थपथपाई कहा मैं कल भी आऊंगा। बहुत बातें करने और तुम्हें कुछ काम सौपने का मन है। बाद के व्यस्त दिनों में मालवीय जी की बात करने की मंशा तो पूरी नहीं हुई। मिलने पर उन्होंने यह निर्देश दिया यहाँ तक आए हो तो गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर का शांति निकेतन भी देखते जाना। वहाँ लगाया समय तुम्हारे काम को दिशा देगा। फिर कुछ रुककर स्वगत ही कहा, शांति निकेतन हर किसी को देखना चाहिए। उस स्थल की यात्रा किए बिना भारत को नहीं समझा जा सकता।

अधिवेशन में आए और बंद किए गए सात हजार प्रतिनिधियों में करीब चार सौ लोगों को रोक लिया गया। उन पर राजद्रोह के अभियोग में मुकदमा चलाने की योजना थी क्योंकि ये प्रतिनिधि अति सक्रिय समझे गए थे। रोके गए लोगों में श्रीराम भी थे। उन्हें आसनसोल की मुख्य जेल में ले जाया गया। विस्मय की बात थी कि जगन प्रसाद रावत और साथ आए दूसरे सभी लोगों को छोड़ दिया गया। जगन प्रसाद ने श्रीराम को रोक लिए जाने की बात पालीवाल जी तक पहुँचाई। वहाँ से बड़े अफसरों और नेताओं तक संदेश गया और श्रीराम को कारावास में दो सप्ताह ज्यादा रहना पड़ा।

जेल से छूटते ही उन्हें शांतिनिकेतन जाने की बेचैनी हुई। आसनसोल से वह करीब दो सौ किलोमीटर दूर था। उन्होंने जेलर से ही पूछा कि कलकत्ता जाने के लिए क्या मार्ग है? कौन-सी गाड़ी-पकड़नी चाहिए? सुनकर जेलर के चेहरे पर व्यंग्य का भाव आया। वह बोला, अब वहाँ कुछ नहीं है। सब तमाशा खत्म हो गया। जेल का भत्ता लो और अपने घर जाओ। जेलर ने आठ रुपए थमाए और खी खी कर हँस दिया।



विश्व जहाँ आश्रय पाये

बोलपुर से करीब एक मील चलते ही शान्तिनिकेतन के वातावरण का आभास होने लगा। चारों ओर हरियाली, कलरव करते पक्षी, झरनों में कलकल बहता पानी, अठखेलियाँ करते चौपाये और खुले मन से विचरण करते लोग। रास्ता सुनसान था। जो लोग यहाँ-वहाँ दिखाई दे रहे थे, उनमें युवाओं की संख्या ज्यादा थी। श्रीराम को आसनसोल में ही शान्तिनिकेतन पहुँचने का छोटा रास्ता मालूम हो गया था। आसनसोल से वर्धमान होते हुए बोलपुर पहुँचने में करीब छः घण्टे लगे होंगे। बोलपुर में ही आभास होने लगता है कि कवीन्द्र-रवीन्द्र की पुण्यभूमि में आ गये हैं। उन दिनों शान्तिनिकेतन विकास कर रहा था, इसलिए वहाँ अलग ही तरह का परिवेश था।

शान्तिनिकेतन के मुख्यद्वार पर लिखा एक पट दूर से ही पढ़ने में आ जाता था। उसमें समूचे विश्व के प्रति एक घोषणा थी। वह घोषणा आश्रम के सम्बंध में भी थी। संस्कृत के इस पट पर हर यात्री को तरंगित करता आया है— “यत्र विश्वम् भवत्येकम् नीडम्” का संदेश देने वाले इस पद ने श्रीराम के चित्त को भी तरंगित किया। लगभग पचास वर्ष तक एक ऋषि की साधना स्थली रही इस भूमि के कण-कण में आध्यात्मिकता की गंध व्याप्त थी। रवीन्द्रनाथ टैगोर के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ अपना पैतृक निवास छोड़कर सन् १८६१ में यहाँ आ बसे थे। वे उस समय के प्रतिष्ठित, धार्मिक, सामाजिक और आध्यात्मिक आंदोलन ब्रह्म समाज के अग्रणी नेताओं में थे। अंध विश्वासों और कुरीतियों से मुक्त समाज के लिए वे औपनिषदीय सिद्धांतों के साथ पाश्चात्य संस्कृति की अच्छी बातों को अपनाने के पक्ष में थे। अपने विश्वासों का उन्होंने दृढ़ता से प्रचार किया।

सामाजिक संस्थाओं में उन दिनों भी गहरी उथल-पुथल चलती थी। शीर्षस्थ लोगों में मतभेद के कारण ब्रह्म समाज विभाजित हो गया। केशवचंद्र सेन



समाज सुधार की प्रक्रिया उग्र रीति से और आवेग के साथ चलाने के पक्ष में थे। देवेन्द्रनाथ ठाकुर आदि सुधार को धीमी गति से चलाने के पक्ष में थे। उनके अनुसार आवेग से उठाया गया कोई भी कदम दीर्घ कालीन परिणाम नहीं लाता। उससे नयी जटिलतायें जन्म लेती हैं। इस मतभेद के कारण केशवचंद्र सेन आदि ने 'नवविधान' के नाम से नया पथ बना लिया।

उच्च चरित्र और आध्यात्मिक ज्ञान के कारण देवेन्द्रनाथ ठाकुर को समाज महर्षि के नाम से सम्बोधित करता था। उनका जोर शिक्षा पर था और बंगाल में कई शिक्षा संस्थाएँ उन्होंने खोली थी। अपने आध्यात्मिक मिशन को पूरा करने के लिए उन्होंने सन् १८६१ में बोलपुर के पास बीस बीघा जमीन खरीदी। वहाँ साधना कुटीर के नाम से एक आवास बनाया। बाकी जमीन पर खेती, बागवानी और बीच-बीच में छप्पर बनवाये। इस स्थान को नाम दिया- 'शान्तिनिकेतन'। कुछ वर्ष बाद उन्होंने एक ट्रस्ट बनाया और यह स्थान उसके सुपुर्द कर दिया।

यह एक विलक्षण संयोग था कि जिस वर्ष शान्तिनिकेतन के लिए जमीन खरीदी गयी, उसी वर्ष रवीन्द्रनाथ का जन्म हुआ। रवीन्द्रनाथ टैगोर के बड़े होने के साथ आश्रम भी बड़ा हुआ था लेकिन उसमें जीवन सक्रिय नहीं हुआ था। उनके पहल करते तक शान्तिनिकेतन एक शान्त आश्रम के रूप में ही स्थित था। वहाँ लोग ध्यान-धारणा और साधना-स्वाध्याय के लिए ही जाते थे। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने १९०१ में पाँच छात्रों को लेकर शान्तिनिकेतन में पढ़ाना आरंभ किया। यह एक आरंभ था, जो प्राचीन काल के ब्रह्मचर्य आश्रमों को ध्यान में रखकर हुआ था। उस आरंभ में बीसवीं शताब्दी की आवश्यक विशेषताओं को भी समाविष्ट कर लिया गया था।

श्रीराम ने १९३३ में जिस शान्तिनिकेतन को देखा, वहाँ बत्तीस साल पहले हुए आरंभ का विराट् विस्तार था। बारह वर्ष पहले यहाँ एक विश्वविद्यालय की स्थापना हो गई थी। विद्यार्थी खुले आकाश तले या पेड़ों की छांह में पढ़ते थे। छात्र-छात्राओं में कोई अंतर नहीं किया जाता। सब एक साथ बैठते और अपने विषय में निष्णात होने के लिए परस्पर सहयोग लेते। रवीन्द्रनाथ टैगोर का ज्यादा समय प्रवास में ही बीतता था, लेकिन जब वे प्रवास पर नहीं, होते तो शान्तिनिकेतन में ही रहते। उनका निवास 'उत्तरायण' के नाम से अवगत था।

जिस बात ने श्रीराम को मुग्ध किया वह यहाँ का नैसर्गिक और सहज वातावरण था। विद्यार्थियों को शिक्षा तो दी ही जाती उनके आध्यात्मिक विकास पर भी ध्यान दिया जाता था। विश्व की विविध अध्यात्म धाराओं का ज्ञान और अभ्यास करने के लिए समृद्ध पुस्तकालय उस समय भी स्थित था। 'साधना मंदिर' में विद्यार्थी और आगंतुक सामूहिक ध्यान करते। वृक्षों, कुंजों, लतागुल्मों और क्यारियों के पास बनी चौकियों पर भी छात्र ध्यान और स्वाध्याय का अभ्यास करते दिखाई देते थे।

विश्वविद्यालय के अधिकारी अमियराय श्रीराम से मिलकर बहुत गद्गद हुए। स्वतंत्रता आंदोलन का सैनिक नहीं, एक साधक संत शान्तिनिकेतन देखने आया है। साधक के परिचय ने उसे ज्यादा प्रभावित किया। अमिय राय ने ही बताया कि शान्तिनिकेतन को ब्रह्मचर्य आश्रम के रूप में विकसित करने की योजना बनी तो टैगोर ने कुछ कठोर संकल्प किया। एक संकल्प सरकार से किसी तरह का सहयोग नहीं लेने का भी था। इस तरह के संकल्पों के कारण आश्रम के विकास में कठिनाई हुई थी, लेकिन उनका महत्त्व कुछ वर्ष बाद अनुभव में आया। श्रीराम ने पूछा, 'क्या अनुभव हुआ?'

अमिय राय ने कहा, 'सरकार से सहयोग लेते, तो उसका दबाव भी सहना पड़ता'। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वभारती को स्वतंत्र चरित्र नहीं दे पाते। अमिय राय के इस उत्तर पर श्रीराम ने प्रतिप्रश्न किया, 'गुरुदेव ने ऐसा कोई निर्णय भी तो नहीं किया जिससे वे सरकार के विरुद्ध खड़े दिखाई देते हैं वे तो निरंतर विदेश में और खास कर ब्रिटेन में जाते रहे हैं।'

'कैसे कहते हो?' अमिय ने कहा, 'ब्रिटिश सरकार ने उन्हें सर की उपाधि दी थी। जलियांवाला बाग (१९१९) में जनरल डायर ने निहत्थे लोगों पर गोलियाँ चलवायी तो गुरुदेव ने उस उपाधि का त्याग कर दिया।'

'उपाधि त्यागने से क्या होता है?' श्रीराम के उस प्रश्न का समाधान अमिय राय ने यों कहते हुए दिया, 'उनके हाथ में बंदूक तो थी नहीं कि ब्रिटिश सरकार पर पिल पड़ते। जलियांवाला बाग के बाद गुरुदेव ने जगह-जगह यात्रायें कीं। एक यात्रा तो कलकत्ता से पेशावर तक हुई थी। उसमें गुरुदेव ने बैलगाड़ी का उपयोग किया था। अपनी यात्राओं में उन्होंने दीन-हीन भारत को देखा। उसे अपनी संवेदना का स्वर दिया। आपको पता है, उन्होंने सैकड़ों लोगों से सम्पर्क किया और अंग्रेजी राज्य के खिलाफ लोगों को प्रेरित किया।'



‘यात्रा में उन्होंने ग्राम पंचायतों को संगठित करने, उन्हें गाँव की समस्याएँ हल करने में जुट जाने और गरीबी मिटाने के लिए खड़ा किया। इस यात्रा के दौरान लगभग अस्सी ग्रामों में ग्राम पंचायतें बनीं। गुरुदेव चाहते, तो रेलगाड़ी का उपयोग भी कर सकते थे। रेल लाइन शहरों को ही जोड़ती है। गाँवों तक कोई रेल नहीं जाती। कवीन्द्र रवीन्द्र ने इसीलिए बैलगाड़ी का उपयोग किया। आपको याद है, महात्मा गाँधी ने ही उनके कार्य और विचारों से प्रभावित होकर उन्हें गुरुदेव का श्रद्धेय सम्बोधन दिया था।’

‘सर’ यानी सम्मान के पट्टे

अमिय राय से रवीन्द्रनाथ टैगोर के व्यक्तित्व और शान्तिनिकेतन के बारे में अंतरंग जानकारीयाँ प्राप्त हुईं। जालियाँवाला काण्ड से पहले भी टैगोर निरंतर विदेश यात्रा किया करते थे। ब्रिटेन, डेनमार्क, अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस, चीन, इरान, रूस, वर्मा (अब म्यामार) आदि देशों में उन्होंने अपनी संस्कृति का संदेश दिया और वहाँ का तत्त्वज्ञान समझा। इन यात्राओं में वे विश्वभारती का परिचय भी देते चलते थे। उनके व्याख्यानों, सम्पर्कों, गोष्ठियों के अलावा व्यक्तित्व का ही प्रभाव था कि कई विदेशी विद्वान् अपनी अच्छी नौकरियाँ छोड़कर विश्वभारती में पढ़ाने के लिए भारत आये। यहाँ आकर विश्वभारती में ही बस गये।

जालियाँवाला काण्ड की भर्त्सना करते हुए रवीन्द्रनाथ टैगोर ने ‘सर’ की उपाधि का त्याग करते हुए तत्कालीन वायसराय चेम्स फोर्ड को पत्र लिखा था। अमिय राय ने उसकी प्रति श्रीराम को बतायी। उसमें सर या नाइट की उपाधि को सम्मान का पट्टा बताया था। उस पत्र का एक अंश श्रीराम ने अपनी नोट बुक में लिख लिया। वह अंश इस प्रकार है, ‘हमारी आँखें खुल गयी हैं कि हमारी अवस्था कैसी असहाय है। भारतीय जनता को इस समय जो दण्ड दिया गया, उसकी मिसाल किसी भी सभ्य देश और सभ्य सरकार के इतिहास में नहीं मिलती। विडम्बना है कि इस कृत्य के लिए लज्जा और ग्लानि अनुभव करने के स्थान पर आप अपने आपको शाबाशी दे रहे हैं कि आपने भारतीयों को अच्छा सबक सिखाया।’

‘अधिकांश अधगोरे (एंग्लोइण्डियन) अखबारों में इस निर्दयता की प्रशंसा की है। कुछ ने तो पाशविकता की सीमा पर पहुँचकर हमारी भावनाओं का उपहास भी किया है। सरकारी अधिकारियों ने उन पत्रों पर तो कोई प्रतिबंध

नहीं लगाया, उलटे भारतीय समाज से सहानुभूति रखने वाले पत्रों का ही गला दबाया। इस अवसर पर मैं कम से कम इतना तो कर ही सकता हूँ कि जो भी दुष्परिणाम हो, उन्हें भोगने के लिए तैयार रहकर उन करोड़ों देशवासियों की ओर से विरोध व्यक्त करूँ, जो आतंक और भय के कारण चुपचाप सरकारी दमन सह रहे हैं। समय आ गया है, जब सरकार द्वारा दिये गये सम्मान के पट्टे (पदवियाँ) राष्ट्रीय अपमान के साथ और मेल नहीं खा सकते। वे हमारी निर्लज्जता को और भी चमका देते हैं। अतः मैं विवश होकर आदर सहित अनुरोध कर रहा हूँ कि आज मुझे सम्राट की दी हुई नाइट की उपाधि से मुक्त कर दें।'

अमिय राय ने श्रीराम को शान्तिनिकेतन के बाद श्रीनिकेतन की यात्रा भी करायी। यह स्थान कवीन्द्र रवीन्द्र के आवास से लगभग तीन किलोमीटर दूर है। उस समय श्रीनिकेतन में उद्योगों और शिल्पकलाओं का शिक्षण-प्रशिक्षण आरंभ हो गया था। भविष्य की दृष्टि यहाँ विकसित हो रही थी। टैगोर की मान्यता थी कि गाँव को आत्म निर्भर होना चाहिए। उद्योग धन्धों का विकास हो; लेकिन गाँव, शहर और कस्बों पर पूरी तरह निर्भर न हो जाये। उनकी अपनी व्यवस्था भी सुदृढ़ होनी चाहिए। श्रीराम ने अमिय राय से पूछा, 'सरकार से आप सहयोग नहीं लेते, यहाँ की विशेष आय दिखाई नहीं देती। फिर संस्थान का खर्च कैसे चलता है?'

इस अधिकारी ने कहा, 'टैगोर की पुस्तकों से जो आय होती है, वह सब शान्तिनिकेतन को मिलती है। यहाँ पढ़ने वाले छात्रों के परिवार भी शिक्षा-दीक्षा का व्यय उठाते हैं।' कुछ रुककर अमिय राय ने कहा, 'सच तो यह है कि प्रबंध किस तरह होता है, इस बारे में राई रत्ती किसी को नहीं मालूम। पैतृक सम्पत्ति से होने वाली आय भी टैगोर यहाँ लगा देते हैं। उनके मित्रों और शान्तिनिकेतन के शुभचिंतकों की संख्या बहुत बड़ी है। इन सभी स्रोतों से आश्रम की आवश्यकता पूरी हो जाती है। यह निश्चित जानिए की सरकार से सहायता लेने की आवश्यकता कभी नहीं पड़ी और न ही अनुभव हुई।' श्रीराम के मन मस्तिष्क में काशी हिंदू विश्व विद्यालय की स्मृतियाँ भी उभरने लगीं। वे स्मृतियाँ शांति निकेतन की अनुभूतियों से मिल कर मन में एक संकल्प रचने लगीं उन्हें लगा कि एक अवधि आएगी जब यह संकल्प पूरा होगा।

तीन दिन रुककर श्रीराम अपने कार्यक्षेत्र वापस आ गए। आगरा में सैनिक को फिर से व्यवस्थित करने की योजना पर काम शुरू हो चुका था।



स्वतंत्रता सेनानियों ने इसके लिए नियमित रूप से अंशदान की पहल की थी। पालीवाल जी को पता चला कि श्रीराम वापस आ गए हैं, तो उन्होंने तुरंत बुला लिया। उन्हें सैनिक के संपादन और प्रबंधन का दायित्व सौंपने की बात उठी। श्रीराम ने कहा, इस तरह तो मैं बँध जाऊँगा। पूरा समय तो अखबार में ही लग जायेगा, आंदोलन में भाग लेने के लिए समय ही नहीं बचेगा।

पालीवाल जी ने कहा, इसकी चिंता छोड़ो। सैनिक पत्र अपने आप में आंदोलन है। भारत माँ की व्यथा को भाषा देना क्या कम श्रेष्ठ है? फिर वे श्रीराम को एक कक्ष में ले गये। उस कक्ष में दोनों के अलावा कोई नहीं था। वहाँ पालीवाल जी ने बताया कि सैनिक कार्यालय अगले दिनों स्वतंत्रता आंदोलन का बारूद भंडार बनने वाला है। इसके माध्यम से आंदोलनकारी आपसी तालमेल बिठायेंगे। इसलिए डाक बंगले की व्यवस्था करेंगे। लगभग आधा घंटे तक दोनों चर्चा करते रहे। पालीवाल जी ने उन्हें सैनिक के पार्श्व में चलने वाली गतिविधियों का खुलासा किया। यह स्पष्ट किया कि इन व्यवस्थाओं को संभालने के लिए सिर्फ़ तुम ही समर्थ हो।

चर्चा के दौरान एक बात और निर्धारित हुई। पालीवाल जी ने कहा- आंदोलनकारियों में तुम्हारा परिचय श्रीराम के रूप में कम लिया जाएगा। हम लोग सोच रहे हैं कि वहाँ तुम्हारा उपनाम 'मत्त' ही प्रचलित किया जाए। उससे सुविधा रहेगी। मत्त उपनाम से वे कविता कहानी लिखा करते थे। साहित्यिक नाम का क्रान्तिकारी विस्तार श्रीराम को भी पसंद आया; लेकिन सैनिक का दायित्व संभालने के लिए उन्होंने कहा, 'यह स्पष्ट हो गया कि सैनिक पत्र क्रान्ति का आश्रय है।' प्रतिदिन वह प्रकाशित होगा; लेकिन जब आंदोलन के प्रखर दिनों में मुझे यह दायित्व स्वतंत्रता से निभाने की छूट मिल सकेगी क्या?'

पालीवाल जी आशय समझ गये। दायित्व उठाते हुए भी श्रीराम उससे बंधना नहीं चाहते थे। यद्यपि वे जानते थे कि 'मत्त' ने एक बार बीड़ा ले लिया, तो उसे काम को प्राणपण से पूरा करेंगे। वे अपने आपको जन आंदोलनों में सक्रिय भाग लेने के लिए खाली रखना चाहते थे। इसका समाधान एक सहयोगी रखने के रूप में निकाला गया। प्रभुदयाल अग्रवाल को उनका सहायक बनाया गया। सैनिक पत्र के लिए व्यवस्था बनी। समस्याओं के लिए एक रेडियो का प्रबंध किया गया। वह बैटरी से चलता था। छत पर एक पतली लंबी झिल्ली दो डंडों के सहारे तानना पड़ती थी। यह एरियल होता था।

रेडियो से सुनकर देश विदेश के समाचार नोट करते। मुख्य संवाददाता या नगर के समाचारों के लिए अलग से संवाददाता नहीं रखे गए। उस समय उपसंपादक और संवाददाताओं की अलग अलग नियुक्ति का चलन नहीं था। बड़े अखबारों में गिनती के संवाददाता रखे जाते थे। एजेंसियों की खबरों और रेडियो पर प्रसारित होने वाले बुलेटिनों से काम चल जाता था। प्रभुदयाल अग्रवाल प्रूफ पढ़ते और कभी कभार रेडियो से समाचार लिखने का काम भी उन्हें दिया गया था। प्रभुदयाल नामक वह सज्जन साहित्यिक रुचि के थे। पालीवालजी के सगे-संबंधी थे और कांग्रेस के कार्यक्रमों में भी भाग लिया करते थे। धरने-प्रदर्शनों में वे गुनगुने उत्साह से सम्मिलित होते थे, लेकिन साहित्यिक गतिविधियों में उनकी तत्परता कई गुना बढ़ जाती थी।

व्यवस्थाएँ बनाने में तीन महीने लग गए। तब तक सैनिक का प्रकाशन जैसे चल रहा था, गिरता- पड़ता चलता ही रहा। मत्तजी ने तैयारी के दिनों का उपयोग लेखन के काम में भी किया। आंदोलन, लेखन और पत्रकारिता के साथ गहन तप साधना के उन दिनों में मत्तजी देर तक आत्म चिंतन भी किया करते। शांतिनिकेतन देखकर आने के बाद मन में यह विचार उठता था कि कुछ वर्षों में स्वतंत्रता तो मिल ही जाएगी, उसके बाद अपनी क्या भूमिका होगी? उन्हें टैगोर के प्रति अपनी शिकायत याद हो आई, जो उन्होंने विश्वभारती के अधिकारी से की थी कि स्वतंत्रता आंदोलन में उनकी कोई सक्रिय भागीदारी क्यों नहीं है? जो उत्तर मिला था वह मन में बस गया था कि आश्रम व्यवस्था करना ही भाग लेना नहीं है। नए समाज की रचना के लिए काम करना भी राष्ट्र साधना है। नई पीढ़ी को संस्कार देना भी देश की सेवा है। उसकी गरिमा राष्ट्रीय आंदोलनों में भाग लेने से जरा भी कम नहीं है।

नचिकेता - प्रसंग

जुलाई १९३३ की कोई प्रभात बेला थी। पूर्व संध्या से नगर में चहल-पहल दिखाई दे रही थी। मंदिरों में उत्सव की तैयारी चल रही थी। श्रावण मास का शुक्ल पक्ष चल रहा था। इन दिनों लोग शिव की विशेष आराधना करते हैं। श्रीराम को लगा कि शिव से संबंधित कोई उत्सव होगा। थोड़ा गौर किया तो आभास हुआ कि आज श्रावण का अंतिम सोमवार है। कल से जो चहल - पहल दिखाई दे रही है, वह इतनी उत्सव की पूर्व तैयारी है। उस दिन की संध्या पूजा कर श्रीराम उपनिषदों का अध्ययन कर रहे थे।

कठोपनिषद् में नचिकेता प्रसंग में पहुँचे। उसी का अध्ययन चिंतन चल रहा था। यज्ञ संपन्न होने के बाद महर्षि उद्दालक दक्षिणा में बूढ़ी गायों का दान कर रहे थे। उन्हें देखकर नचिकेता ने प्रश्न किया कि पिताजी मैं भी तो आपका धन हूँ। आप मुझे किसको दान देते हैं। उद्दालक ने अपने पुत्र की बात अनसुना किया। नचिकेता ने फिर प्रश्न किया। पिता को इस बार थोड़ा अप्रिय लगा। दूसरी बार किये गये प्रश्न में व्यंग के चुभन हुई, यद्यपि ऐसा कुछ नहीं। नचिकेता की चिंता इतनी ही थी यज्ञ के बाद इन बूढ़ी गायों को दान देने में कोई पुण्य नहीं। यह शास्त्र विरुद्ध ही है। इसलिए पिता को सतर्क करना चाहिए और गायों के स्थान पर अपने आप को प्रस्तुत कर दिया जाए कि मेरा दान करो। मुझे स्वस्थ हृष्ट-पुष्ट ब्राह्मचारी को दान देने से कल्याण ही होगा। पिता ने तीसरी बार भी कोई उत्तर नहीं दिया। तो नचिकेता ने फिर वही आग्रह किया। तीसरी बार पूछने पर महर्षि उद्दालक का धीरज टूट गया। वे कुपित हो गये और बोले, 'मैं तुम्हें यम को दान दूँगा।'

उद्दालक के मुँह से यह वचन निकलते ही नचिकेता का शरीर निःचेष्ट निष्प्राण हो गया। वह यम के द्वार पर पहुँच गया। यम कहीं गये हुए थे। नचिकेता को उनके आने तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। तीन दिन तक प्रतीक्षा करने के बाद यम से भेंट हुई। दोनों का संवाद आरंभ हुआ। यह प्रसंग आगे बढ़ने के बाद श्रीराम को अपनी सुधबुध नहीं रही। आँखों के सामने एक अलग ही लोक उद्घाटित हुआ। नचिकेता के रूप में जैसे वे स्वयं हैं और यम उन्हें तीन वरदान माँगने के लिए कह रहे हैं। तीन वरदान क्योंकि ब्राह्मण कुमार को तीन दिन तक प्रतीक्षा करनी पड़ी है। यम कह रहे हैं, 'अतिथि के रूप में आए- हे अग्निदेवता आप मेरे द्वार पर आये हैं, आपको यहाँ तीन रात्रि तक प्रतीक्षा करनी पड़ी है। मुझे इसके लिए ग्लानि है। प्रत्येक रात्रि के बदले आप एक-एक वरदान माँग लीजिए। मैं आपको तीन वर देने के लिए प्रतिबद्ध हूँ।'

श्रीराम कुछ सोचने लगे। वे स्वयं ही अपने आप को देख रहे हैं। सामने जैसे नाटक का कोई अंक चल रहा हो या चलचित्र दिखाया जा रहा हो। उसमें वे स्वयं नचिकेता के रूप में भाग ले रहे हों। श्रीराम तीन वरदानों के बारे में सोच रहे हों कि क्या माँगें। तीन आकांक्षा उनके मन में उथल-पुथल मचा रही थी। एक दूसरे को पकड़ कर आगे आने के लिए जैसे धक्का-मुक्की कर रही है। यमराज ने कहा किसी भी प्रकार संकोच मत करो ब्राह्मण कुमार। तुम जो भी माँगोगे वर दिया जाएगा।

श्रीराम के मुँह से अनायास निकला, 'मेरी इस मातृभूमि पर आसुरी शक्तियों का शासन है। वह शासन मिटे और देवभूमि भारत स्वतंत्र हो।'

'तथास्तु,' यम ने कहा। यम के द्वार से लौट कर तुम देखोगे कि देवभूमि के बंधन शिथिल होते जा रहे हैं। वह ऊर्जावान् हो रही है। अपने पैरों खड़ी हो रही है और सब कुछ स्वाभाविक रूप से संपन्न हो रहा है। लोगों को यह पता भी नहीं चलेगा कि भारत किसी दैवी योजना के अंतर्गत स्वतंत्र हो रहा है। अब दूसरा वर माँगो.....

श्रीराम ने कहा, 'स्वर्ग लोक में किसी को भी किंचितमात्र भय नहीं है। वहाँ आपका भय भी नहीं है। वहाँ के निवासी भूख प्यास की चिंता से मुक्त होकर आनंद प्राप्त करते हैं। इस स्थिति की प्राप्ति के लिए साधन रूप अग्नि को आप जानते हैं। मुझे अग्निविद्या का उपदेश दीजिए।'

यमराज ने उन्हें स्वर्ग जैसी स्थितियाँ प्राप्त कराने वाली विद्या का उपदेश दिया। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की साधन रूप इस विद्या के विस्तार से मनुष्य में देवत्व का उदय होगा और स्वर्ग धरती पर ही उतर आएगा। मृत्यु के देवता ने उन सूत्रों का उपदेश दिया। श्रीराम ने उन्हें दोहरा लिया। यम ने कहा, इन सूत्रों से भविष्य में होने वाली किन्हीं भी समस्याओं को सुलझाया जा सकेगा। घोर तमिस्रा में भी प्रकाश उत्पन्न करने की सामर्थ्य विकसित होगी।

काल के अधिष्ठाता ने कहा, अब तीसरा वर माँगो। श्रीराम ने कहा, 'तीसरा आशीर्वाद मैं उस आत्मविद्या की प्राप्ति के रूप में चाहता हूँ, जिससे समस्त संशय नष्ट हो जाते हैं। जगत् का सत्य क्या है? अस्तित्व क्या है? पदार्थ और चेतना में क्या अंतर है?'

यम ने कहा, 'यह बहुत गूढ़ और सूक्ष्म विषय है। इसे छोड़कर चाहो, तो कुछ भी माँग लो, वैभव ले लो, सत्ता का सुख माँग लो। ख्याति और प्रतिष्ठा के लिए कामना करो।'

श्रीराम ने कहा 'नहीं। मुझे आत्मविद्या का ही उपदेश दीजिए। यदि मैं इस विद्या का अधिकारी नहीं हूँ, तो वह अर्जित करूँगा। उसके लिए पात्रता विकसित करूँगा।'

'ब्राह्मण कुमार। तुम इस विद्या के बिना ही मोक्ष प्राप्त कर सकते हो। मोक्ष चाहिए तो कहो लेकिन विद्या के लिए आग्रह छोड़ दो।' यम ने कहा। श्रीराम अपनी बात से जरा भी नहीं डिग रहे थे। उन्होंने दृढ़ता का परिचय दिया।



मोक्ष चाहे न मिले। मैं केवल विद्या ही प्राप्त करना चाहता हूँ। इस विद्या का समाज में प्रचार करूँगा। सैकड़ों वर्ष से जिस विद्या को विद्वानों ने अपने तक ही सीमित कर रखा है, उसे बाँध रखा है और सामान्य लोगों को वंचित किया हुआ है, उसे मुक्त करूँगा।'

श्रीराम का यह संकल्प सुनकर यमराज के चेहरे की तनी हुई पेशियाँ ढीली पड़ी। क्षण भर पहले झिझक और संकोच के भाव थे। अब संतोष और उल्लास झलक रहा था। उन्होंने कहा, 'मैं तुम्हारे मुख से ही इस महा विद्या का संजीवन विद्या उपदेश करूँगा। सबके लिए। सबके भले के लिए।'

दृश्य पूरा हुआ। श्रीराम के सामने कठोपनिषद् के पन्ने खुले हुए थे। लेकिन वे उन्हें नहीं पढ़ रहे थे। उन्होंने अपनी आँखें मली और कुछ सोचते हुए पुस्तक बंद करने लगे। आसन से उठ ही रहे थे कि द्वार पर दस्तक हुई। दरवाजा खोला गाँव से चाचा आए थे। उन्हें प्रणाम किया और कुशल क्षेम पूछने लगे। चाचा ने कहा 'तुम्हारी माँ तुम्हें याद करती है। यह सब धंधे छोड़ते क्यों नहीं?

'अब बहुत आगे आ गया हूँ चाचा,' श्रीराम ने कहा। 'पहली बात तो छोड़ना ही नहीं है। दूसरी बात यह कि छोड़ना चाहूँ तो भी नहीं छोड़ सकता।'

चाचा किसी काम से आगरा आए थे। ताईजी ने कहा था कि उस मतवाले का हाल भी पूछते आना। इसीलिए वे श्रीराम के पास आ गए। उन्होंने बात आगे बढ़ाई, ओमप्रकाश भी साल भर का हो चला है। उसके भविष्य के बारे में नहीं सोचना है क्या? क्या वह गाँव में पढ़ लिख सकेगा?

'हम लोग भी तो गाँव में ही पढ़े हैं,' श्रीराम ने कहा। चाचा ने मुँह बिचकाते हुए कहा 'खाक पढ़े हैं और आगे यही समय थोड़े रहना है। फिरंगियों के तेवर बदल रहे हैं। वे गाँवों को चौपट करने पर तुले हुए हैं। जिस पाठशाला में तुम पढ़े थे सुनते हैं, वह बंद होने जा रही थी। कलेक्टर का कहना है कि स्कूलों में बच्चे बदमाशियाँ सीख रहे हैं। वहाँ सरकार से टकराव लेने की शिक्षा पा रहे हैं।'

देर तक इधर उधर की बातें होती रहीं। फिर समय मिलते ही गाँव आने का निश्चय व्यक्त किया। यह भी तय हुआ कि ताई जी जब तक चाहें बच्चे को अपने पास रखें। उनका मन हुआ कि ओमप्रकाश की शिक्षा दीक्षा शहर में होनी चाहिए तो, वैसा प्रबंध भी हो जाएगा। सुनकर चाचा ने उलाहना सा

विश्व जहाँ आश्रय पाये

दिया था, खुद अपना तो ठिकाना नहीं है। बच्चों को यहाँ लाकर क्या खिलाओगे। उन्हें यहाँ रखने के लिए जगह भी है।

चाचा के इस उलाहने का श्रीराम ने कोई उत्तर नहीं दिया। उत्तर था भी नहीं। चाचा चाहते थे कि वह कुछ बोले। उलटा सीधा कुछ भी जवाब दे। इसलिए उन्होंने दोबारा वही बात कही। इस बार यह भी जोड़ दिया कि मेरी बात का जवाब दो।

श्रीराम ने कहा, 'मेरे पास कोई उत्तर नहीं है। सिर्फ विश्वास है कि जिसने जीवन दिया है, वही निर्वाह भी चलाता है। हम लोग उस व्यवस्था में निमित्त भर बनते हैं। श्रीराम का यह उत्तर चाचा को संतुष्ट नहीं कर सका था, लेकिन उन्हें लग गया था कि समझा बुझाकर राह पर लाने का प्रयत्न करने में कोई सार नहीं है। वे यह कहकर उठ गए तुम्हें जो समझ आए करो। जिस दिन लगे कि हम लोग सही कह रहे थे, उस दिन वापस आ जाना।'



महर्षि रमण के आश्रम में

पूना पैक्ट, महात्मा गाँधी की रिहाई और तत्कालीन राजनैतिक दबावों के चलते १९३३ के बाद वातावरण ठंडा होने लगा। जेल से छूटने के बाद गांधी जी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन वापस लेने की घोषणा की। अपने अंतरंग सहयोगियों के बीच उन्होंने कहा कि कोई भी आंदोलन देर तक नहीं खींचना चाहिए। लोग थक जाते हैं। आरोह और अवरोह क्रम से उसमें तेजी लानी चाहिए।

दूसरे विश्वयुद्ध के बादल मंडराने लगे थे। जर्मनी में हिटलर का उदय हो ही रहा था। ऐसे कोई लक्षण तो दिखाई नहीं दिए थे कि दो चार महीनों में ही युद्ध छिड़ जाएगा, लेकिन राजनीति के जानकार अनुभव करने लगे थे कि हिटलर ने जर्मनी में अपने पाँव जमा लिए, तो वह ब्रिटिश शासन के लिए चुनौती बन सकता है। सन् १९३४ में महात्मा गाँधी ने अवज्ञा आंदोलन वापस लेने की घोषणा की। उससे भी कार्यकर्ताओं का ध्यान बंटता। गाँधी जी ने जन उत्साह को रचनात्मक दिशा देने की पहल की थी। उन्होंने दलितों और अछूतों के लिए 'हरिजन' शब्द का प्रयोग शुरू कर दिया था। इस नाम से एक पत्र भी निकालने लगे थे, जो आगे चल कर राष्ट्रीय आंदोलन का मुख पत्र बना। छुआछूत मिटाने और समाज में बराबरी का वातावरण बनाने के लिए उन्होंने हरिजन उद्धार कार्यक्रम शुरू किया। शहरों और गाँवों में भी इस कार्यक्रम का अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव हुआ। लोग इस विचार के समर्थन में भी आगे आए और विरोध में भी। आगरा में कांग्रेस कार्यकर्ताओं की बैठक हुई तो इस कार्यक्रम को आगे बढ़ाने के लिए युवकों की निगाहें श्रीराम पर टिकी। उस बैठक में छपको वाली घटना का उल्लेख आया।

श्रीराम ने कहा, 'सौंपी गई जिम्मेदारी से पीछे नहीं हटूंगा। लेकिन अभी मुझे दो सप्ताह का समय चाहिए।'

साथियों ने प्रश्रवाचक दृष्टि से देखा। श्रीराम ने कहा, 'मैं कुछ समय के लिए यात्रा पर जाना चाहता हूँ।'

साथियों ने कहा, 'हरिजन सेवा का काम यात्रा के साथ भी चलता रह सकता है। उसके लिए अलग से समय निकालने की आवश्यकता नहीं है।' श्रीराम ने कहा, 'उस रूप में तो काम चलता रहेगा। लोगों को संगठित कर स्थानीय स्तर पर कुछ कर पाना कठिन होगा। श्रीराम ने इससे ज्यादा कुछ नहीं कहा।' वे यात्रा की तैयारी में जुट गए। गंतव्य या तिरुपति के पास एक गिरिस्थल है—अरुणाचल। यहाँ तिरुवण्णमलै के पास एक आश्रम तेजी से विकसित हो रहा था। उस आश्रम के अधिष्ठाता संत महर्षि रमण की ख्याति दूर-दूर तक फैल चली थी। भारत ही नहीं बाहर के जिज्ञासु और मुमुक्षु भी वहाँ पहुँच रहे थे। वहाँ आश्रम आरंभ हुए कुछ वर्ष ही हुए थे, लेकिन ऋषि-लोक का वैभव अरुणाचल पर चारों ओर फैलने लगा था।

अरुणाचल जाने की प्रेरणा एक विलक्षण अनुभूति से जागी। जिस दिन उन्होंने यात्रा का निश्चय किया, उस दिन प्रातः संध्या के समय उन्हें ध्यान में एक पर्वत शिखर दिखा। पर्वत बहुत ऊँचा नहीं था। वह हिमालय या कोई अन्य परिचित गिरिप्रदेश भी नहीं था। ढाई तीन हजार फुट ऊँची, उस पहाड़ी के चारों ओर पत्थर बिखरे हुए थे। पत्थर इस तरह फैले थे, जैसे कुछ समय पहले ही वहाँ युद्ध हुआ हो और योद्धाओं ने इन पत्थरों से एक दूसरे पर जम कर प्रहार किए हों। पहाड़ी के चारों ओर छायादार वृक्ष, नागफनी और कांटेदार झाड़ियाँ, धूल भरी सड़कें और पथरीली जमीन का फैलाव था।

ध्यान की अवस्था में ही उस पर्वत की यात्रा आगे बढ़ती है। एक विशाल मंदिर दिखाई देता है। मंदिर में कई उत्तुंग गोपुर हैं। उनके कारण पूरा मंदिर ही गोपुरों का एक समूह प्रतीत हो रहा है। एक गोपुर दस मंजिला है। उन्हें पार करते हुए मंदिर के गर्भगृह में प्रवेश होता है। पांच द्वारों वाले उस गर्भगृह में शिवलिंग प्रतिष्ठित है। श्रद्धालु पांचों द्वारों पर शिव की आराधना कर रहे हैं। परिक्रमा में पार्वती, कार्तिकेय, गणेश, नवग्रह, दक्षिणामूर्ति और कई पौराणिक शिवभक्तों की प्रतिमाएँ स्थापित हैं। वे पहचान नहीं पा रहे हैं कि यह वैभवशाली तीर्थ किस प्रदेश में है।

पूजा-अर्चा में भक्तगण जिन स्तुतियों का पाठ कर रहे हैं, उन्हीं से बोध हुआ कि यह स्थल द्रविड़ देश (तमिलनाडु) में स्थित अरुणाचल है। शिव के

वाहन नंदीश्वर ने पृथ्वी पर कैलाश के कुछ शिखर स्थापित किए थे। उनमें एक यह अरुणाचल है। उसी स्तुति में एक स्वर श्रीराम को संबोधित करता हुआ निर्देश दे रहा है, यहाँ की यात्रा करो। अरुणाचल ज्ञान, भक्ति और योग रूप है। शिव का भक्ति रूप यहाँ व्यक्त हुआ है। ज्ञान और योग की झांकी लेने के लिए अरुणाचल की परिक्रमा में स्थित रमण आश्रम में आओ। वहाँ महर्षि प्रतीक्षा कर रहे हैं। उद्बोधन कुछ क्षणों के लिए रुकता है। वापस स्तुतिगान गूँजने लगता है। फिर वही स्वर सुनाई देने लगता है। रमण महर्षि उन गिने चुने व्यक्तियों में हैं, जो पृथ्वी पर ईश्वर का वैभव प्रकट करने के लिए प्रयत्नशील हैं। यथासमय उन विभूतियों से भी संपर्क करना है। अभी अरुणाचल की यात्रा के लिए तैयारी करो।

ध्यानावस्था में इस प्रेरणा के बाद ही श्रीराम ने हजार काम छोड़कर अरुणाचल जाने का निश्चय कर लिया था। उस दिन युवा कार्यकर्ताओं की बैठक में नया दायित्व आया, तो कुछ समय के लिए स्थगित करने का कारण भी वही अंतः प्रेरणा थी। कोई और समय होता, तो श्रीराम आगे बढ़कर उसे ग्रहण करते। उसे पूरा करने में तुरंत जुट जाते। नए दायित्व से कुछ दिन का अवकाश लेकर श्रीराम दो दिन बाद तिरुवण्णमलै (अरुणाचल का तमिल नाम) के लिए रवाना हो गए।

दायित्व से अवकाश

अंतर्दृष्टि से जैसा देखा था, वैसा ही पाया। अरुणाचल भगवान का मंदिर। शिव के पंचतत्व विग्रहों में प्रमुख अग्रितत्व का प्रतीक, यह मंदिर समूह पच्चीस एकड़ जमीन में फैला हुआ है। मंदिर क्षेत्र में सौ से ज्यादा गोपुरम हैं। छोटे बड़े उतने ही मंदिर हैं। अरुणाचल पर जहाँ-तहाँ जलाशय हैं। विभिन्न मंडपों के बीच स्थित दक्षिणामूर्ति का मंडप पहाड़ी के दक्षिण भाग में स्थित है। वे मानो उपदेश दे रहे हैं। मंदिर के एक पुरोहित ने टूटी फूटी हिन्दी में श्रीराम को उस स्थान का महत्व समझाया। कहने लगा, 'यह पवित्र स्थान है। सब स्थानों में सर्वाधिक पवित्र। यह विश्व का हृदय है। इसे शिव का गुप्त और पवित्र हृदय केन्द्र जानें।' पुरोहित ने एक पौराणिक प्रसंग भी सुनया। उसके अनुसार जिस प्रकार चंद्रमा और ग्रह नक्षत्र सूर्य से अपना प्रकाश ग्रहण करते हैं, उसी तरह अन्य पवित्र स्थान भी अरुणाचल से ही अपना आलोक पाते हैं। पर्वत स्वयं ओम् के आकार का है।

महर्षि रमण के आश्रम में

जनश्रुति है कि वैदिक काल में महर्षि गौतम ने इसी पहाड़ी पर तप किया था। श्रीराम की अंतर्दृष्टि जिस विभूति से मिलाने के लिए उन्हें यहाँ खींचकर लाई थी, उसने पिछले छत्तीस वर्षों से यहाँ अपना निवास बनाया हुआ था। महर्षि रमण ने वैराग्य लिया, तो लंबे समय तक अरुणाचल के किसी न किसी मंदिर में निवास करते रहे। उनकी माँ उन्हें मनाने के लिए आई थीं और उन्होंने अरुणाचल छोड़कर कहीं भी जाने से मना कर दिया था। माँ से मिलने के बाद वे एक कंदरा में चले गए। सन् १९२२ तक कंदराओं में रहे। फिर वे नीचे पहाड़ी की तलहटी में आ गए। उस जगह रहने लगे, जहाँ आश्रम बना। श्रीराम को ये बातें अरुणाचल का भ्रमण करते हुए पता चलीं। यह भी कि आश्रम में सबसे पहले फूस की एक झोंपड़ी बनी थी। महर्षि महीनों तक उस झोंपड़ी में रहे। भक्तों की संख्या बढ़ने लगी, तो धीरे-धीरे आश्रम का विस्तार भी होता गया।

श्रीराम ने आश्रम में प्रवेश किया, तो यह देखकर गदगद से हो गए कि वहाँ कोई प्रवेश द्वार ही नहीं है। चारों तरफ से खुला हुआ है। कुटियाओं के बाहर नारियल के पेड़ लगे हुए हैं। उनके पत्ते जैसे आश्रम को ढकने की कोशिश कर रहे हैं। महर्षि जिस कुटिया में रहते थे, उसके पश्चिम में कुछ साधुओं ने अपने लिए भी छप्पर डाल लिये थे। बीस पच्चीस लोगों की चहल पहल दिखाई दी। इनमें भारतीयों के अलावा यूरोपीय और अमेरिकी भी थे। हिंदू, पारसी, यहूदी, ईसाई और मुस्लिम आदि सभी विश्वासों के अनुयायी आश्रम में आ जा रहे थे। श्रीराम ने आश्रम के भीतर दृष्टि दौड़ाई। उस दृष्टि में किसी अधिकारी—आश्रमवासी से संपर्क करने की इच्छा थी।

एक भक्त दिखाई दिए। श्रीराम जिस तरह किसी आश्रमवासी को ढूँढने की चेष्टा सी कर रहे थे, उसी तरह वे भक्त भी किसी जिज्ञासु की तलाश में थे। गणपति शास्त्री नामक यह सज्जन बनारस के रहने वाले थे। उनकी आयु साठ पैंसठ वर्ष की होगी। श्रीराम को देखते ही उन्होंने पूछा, 'कैसे हो?' श्रीराम ने उन्हें प्रणाम कहा। अपना परिचय दिया और आने का उद्देश्य बताया। वे महर्षि रमण से मिलना और आश्रम को निकट से देखना चाहते हैं, यह जानकर वे प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, 'भगवान कुछ देर में कुटिया से बाहर आने वाले हैं। तब तक स्नानादि से निवृत्त हो लो और भोजन भी ले लो।'

भोजन के लिए सब लोग पंक्ति बनाकर बैठे थे। एक बड़ी हालनुमा छायादार जगह थी। टीन छप्पर तानकर वह बनाई गई थी। उस भवन का एक



हिस्सा अलग किया हुआ था। गणपति शास्त्री ने बताया कि सब लोग एक साथ भोजन करते हैं। कोई किसी से जाति नहीं पूछता। वर्ण, धर्म और देशी, विदेशी का भी कोई विचार नहीं किया जाता। फिर भी कुछ कट्टरपंथी ब्राह्मण हैं जो अलग भोजन करना चाहते हैं। उनके लिए चौके में वहाँ अलग व्यवस्था की गई है। शास्त्री जी ने अलग छोड़े गए उस स्थान के बारे में बताया।

श्रीराम ने कहा जब जातिभेद नहीं मानना है, तो नहीं मानना है। सब लोगों के एक स्थान पर ही बैठने की व्यवस्था क्यों नहीं की गई? गणपति शास्त्री ने कहा, 'भवन के तीन चौथाई हिस्से में सभी लोग बैठते हैं। ब्राह्मण भी बैठते हैं। वह स्थान ज्यादा जिद्दी लोगों के लिए है। भगवान ने सबके लिए एक सी व्यवस्था करने के लिए कहा है। वे न तो जाति नियमों का पालन करने के लिए कहते हैं और न ही उन्हें तोड़ने के लिए।'

गणपति शास्त्री ने श्रीराम से भोजन के लिए फिर आग्रह किया। वे आश्रम में आए दूसरे भक्तों के साथ बैठे। नारियल के पत्तों पर भोजन परोसा गया। भोजन शुरू होने के मिनट भर पहले रमण महर्षि छप्पर के नीचे आकर बैठे। अपने बैठने के लिए उन्होंने दोनों पंक्तियों के बीच वाली जगह चुनी थी। दूसरी पंक्ति में बैठे अन्य लोगों ने महर्षि का उठकर अभिवादन करना चाहा। उन्होंने हाथ उठाकर बैठे रहने का संकेत किया। स्वयं चुपचाप भोजन करते रहे। उस दिन सांभर और चावल बना था। महर्षि चुप थे और लोग भी उनका अनुसरण कर रहे थे। सन्नाटा छाया हुआ था।

भोजनालय के अलावा आश्रम में कट्टरपंथी लोगों के लिए किसी और जगह अलग व्यवस्था बनी थी। महर्षि की कुटिया के सामने सब लोग एक साथ बैठते थे। जाति-पांति और संपन्न-विपन्न का वहाँ कोई भेद नहीं किया जाता था। दोपहर बीतने के बाद महर्षि अपने स्थान पर आकर बैठ गए। वहाँ अगरबत्तियाँ जल रही थीं। कुछ लोग आँखें बंद कर बैठे। महर्षि के आने के बाद उन लोगों ने आँखें खोल लीं और अपने श्रद्धेय की ओर टकटकी लगाकर देखने लगे। श्रीराम अपने स्थान से उठे। महर्षि के सामने गए। उन्हें प्रणाम किया और उनके चरणों में कुछ फूल चढ़ाए। महर्षि ने पास रखी टोकरी से एक फल उठाया और श्रीराम को दे दिया। यह फल नाशपाती था। आध्यात्मिक दृष्टि से नाशपाती एक कठोर व्यक्तित्व का परिचायक है, जो एक साथ अत्यंत मृदु और रस से भरा हुआ भी है और लोग भी अपने स्थान से उठे और महर्षि को प्रणाम कर बैठ गए।

महर्षि रमण के आश्रम में

सब लोगों के यथास्थान बैठ जाने के बाद एक ब्रह्मचारी ने वेदमंत्र का सस्वर पाठ आरंभ किया। बाहर से आए आगंतुकों में से एक ने पूछा, 'क्या ही अच्छा हो, यदि इन मंत्रों का अर्थ भी समझाया जाए।'

महर्षि ने कहा, 'वेदमंत्रों का अर्थ जन सामान्य के लिए जानना आवश्यक नहीं है। वह विद्वानों का काम है। जो साक्षात्कार के लिए इनका जप करते हैं, उनके लिए यही पर्याप्त है। मंत्रों का पाठ शांति और चिंतन में सहायक है। इनका पाठ शिक्षा नहीं, एक विधि है। मार्ग है।'

उस दिन महर्षि रमण ने श्रीराम से कुशल क्षेम ही पूछा। वहीं बैठे रहने के लिए कहा। बार-बार उनकी ओर देखकर मुसकराते रहे। भेंट का यह क्रम पूरा हुआ, तो महर्षि ने श्रीराम से विशेष तौर पर कहा, कल सुबह आना। महर्षि एक तख्त पर बैठते थे। उसके चारों ओर एक जंगला लगा होता था। ऐसा समझा जाता था, कि वे चरण स्पर्श करना पसंद नहीं करते थे। जब भी कोई उनके पाँव छूने के लिए आगे बढ़ता, तो वे पीछे हट जाते थे। उनके ज्यादा निकट के अनुयायियों ने ऐसा अनुमान लगाया था। वैसे महर्षि ने इस सम्बंध में कभी कोई स्पष्ट निर्देश नहीं दिया था।

अगले दिन साढ़े आठ बजे श्रीराम महर्षि की कुटिया के सामने बैठ गए। और आगंतुक भी वहाँ बैठे हुए थे। महर्षि आए तो उठकर सबने उनका अभिवादन किया। प्रणाम आदि के बाद महर्षि ने पहला प्रश्न श्रीराम से ही पूछा, 'क्या करते हो?' इस प्रश्न की श्रीराम को अपेक्षा नहीं थी, फिर भी उन्होंने उत्तर दिया, 'राष्ट्र और संस्कृति के प्रति समाज में गौरव जगाता हूँ। इसके लिए लेखनी और वाणी का उपयोग होता है।'

यही पर्याप्त नहीं है। अपनी आत्मा में बल जगाओ। आत्मतेज की उपासना करो, 'इतना कहकर उन्होंने श्रीराम की आँखों में झाँका। उन्हें जैसे वहाँ कुछ दिखाई दिया।' उन्होंने कहा वह तो तुम कर ही रहे हो। तुम्हें सिद्ध योगियों की कृपा प्राप्त है। तुम तेज की उपासना करते चलो। तुम एक कदम बढ़ाने की चिंता करो। वह उठाओगे, तो अगले पग के लिए स्थान अपने आप प्रकाशित हो उठेगा।

महर्षि ने कहा, 'लोग समझते हैं, आंदोलन वगैरह करने से ही सब कुछ हो जाता है। उनका अपना महत्त्व है, लेकिन उसमें शक्ति आध्यात्मिक उपायों से ही आती है। वशिष्ठ और विश्वामित्र दोनों ने तप किया था, तब रावण का आसुरी आतंक समाप्त हुआ। कंस को मारने के लिए विष्णु अपने आप ही चले आए थे

क्या? ऋषियों ने उन्हें बुलाने के लिए तप किया था। तप की शक्ति हो, तो मामूली दिखाई देने वाले लोग भी चमत्कार कर सकते हैं।'

चमत्कारों की प्रकृति

'प्रभु आप चमत्कारों को मानते हैं क्या? प्रकृति के नियमों का उल्लंघन कर सचमुच चमत्कार होता है?' श्रीराम ने पूछा इस पर महर्षि ने कहा, 'संसार में कुछ भी चमत्कार नहीं है। जिन्हें देखकर हम भौचक रह जाते हैं, वे घटनाएँ प्रकृति के नियमों को नहीं समझ पाने के कारण हैं।'

वहाँ बैठे लोगों में कई को चमत्कारी अनुभव हुए थे। वे उन्हें महर्षि की कृपा मानते थे। उनके चेहरे पर कुछ कहने की आतुरता दिखाई दी, जैसे वे कुछ कहना चाह रहे हों। महर्षि ने उनके भाव समझ लिए और कहा, 'मनुष्य के जीवन में अप्रत्याशित और अनायास भी कुछ न कुछ घटता रहता है। वह कहीं और से नहीं आता। मनुष्य का अपना प्रारब्ध ही होता है। योगीजन अपने तेज से सिर्फ इतना करते हैं, कि वह समय से पहले प्रकट हो जाता है।'

देश दुनिया की और भी बातें होती रहीं। लेकिन मुख्य विषय अध्यात्म और साक्षात्कार के लिए साधना ही होते थे। वे सिर्फ प्रश्नों के उत्तर देते। कभी कभी सिद्धांत की चर्चा भी छिड़ जाती, लेकिन वह थोड़े ही समय के लिए होती।

श्रीराम को भोजनालय का अनुशासन बहुत पसंद आया था। भोजन अत्यंत सादा होता। उसमें मसाले वगैरह का उपयोग नहीं किया जाता था। उस दिन के भोजन सत्र में अनोखी घटना घटी। नारियल के पत्तों पर चावल, सब्जी और चटनी परोसने के बाद छाछ, फल और मिठाई का वितरण होने लगा। एक यूरोपीय महिला अपने साथ चम्मच लाई थी। उसे भारतीय ढंग से भोजन का अभ्यास नहीं था। आश्रम के सेवक ने कुछ कहना चाहा। शायद वह चम्मच के उपयोग के लिए रोकना चाह रहा था। महर्षि की दृष्टि उस पर पड़ गई। उन्होंने संकेत से कहा कि उस महिला को चम्मच का उपयोग करने दें। रोकें नहीं। भोजनालय में बैठे भक्तों की आवश्यकता और स्थिति का महर्षि बहुत बारीकी से ध्यान रख रहे थे। परिवार का मुखिया अपने स्वजनों के साथ बैठकर भोजन करते हुए जैसे प्रत्येक व्यक्ति के आहार के प्रति सजग रहता है, महर्षि की निगाहें उसी तरह सबको देख रही थीं।

उस दिन महर्षि रमण ने श्रीराम को अपनी कुटिया में बुलाया। वे भक्तों से आमतौर पर एक साथ ही मिलते थे। सामूहिक रूप से, सबके सामने ही व्यक्तिगत समस्याओं पर भी चर्चा हो जाती। श्रीराम के लिए जब संदेश आया, कि महर्षि एकांत में मिलना चाहते हैं, तो उन्हें आश्चर्य हुआ। यह संदेश वर्षों से आश्रम में रह रहे गणपति शास्त्री के सामने दिया गया था। शास्त्री भी सुनकर विस्फारित नेत्रों से देखने लगे। उन्होंने श्रीराम से इतना ही कहा, 'आप पर भगवान की कृपा होने वाली है। महान कृपा।' यह युवा साधक जब महर्षि की कुटिया में पहुँचा तो उन्होंने प्रणाम से पहले ही हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया। बैठने के लिए संकेत करते हुए स्वयं भी बैठ गए। बिना किसी भूमिका के उन्होंने कहना शुरू किया, 'तुम्हारे यहाँ आने का विशेष लौकिक प्रयोजन नहीं है। मार्गदर्शक सत्ता ही तुम्हें यहाँ ले आई है। ठीक है न।

श्रीराम ने हाँ में सिर हिलाया। महर्षि ने कहा, 'अब पहचानो' वह मार्गदर्शक सत्ता कौन है? तुम्हारा अपना आत्मन् ही तुम्हें मार्ग दिखाता है। वही गुरु है और वही शिष्य है। 'कुछ क्षण रुककर उन्होंने कहा, 'तुम्हारे आत्मन् ने कुछ समय तक साधना रोककर स्वतंत्रता के काम में नियोजित किया। दोनों का कोई तालमेल दिखाई देता है भला? नहीं न। लेकिन इसकी इच्छा करना और अपने आपको उसमें लगा देना भी साधना है। महर्षि कहे चले जा रहे थे।'

'क्या स्वतंत्रता के लिए काम करते रहने से ही साक्षात्कार हो सकता है?' श्रीराम ने पूछा। इस पर महर्षि ने कहा, 'लोगों को यह काम करते हुए भी साक्षात्कार हुआ है। गांधी ने सिर्फ इस साधना से ही आध्यात्मिक लक्ष्य प्राप्त किया है। उनके भजन पूजन अलग हैं। वह सब नहीं करते, तो भी सिद्धि को प्राप्त हो जाते। लक्ष्य के प्रति निरंतर ध्यान व्यक्ति के दृष्टिकोण को व्यापक बना देता है। वह अपने लक्ष्य में लीन हो जाता है। वह लक्ष्य मात्र निष्काम कर्म से ही प्राप्त होता है।'

श्रीराम ने पूछा, 'स्वतंत्रता के लिए जो लोग भी काम कर रहे हैं, उनके लिए फिर क्या आध्यात्मिक उपाय आवश्यक नहीं?'

यह प्रश्न पूछकर वे स्वतंत्रता सेनानियों के आत्मिक विकास के संबंध में निश्चित हो जाना चाहते थे। महर्षि ने उन्हें आश्चस्त नहीं किया। कहने लगे, 'आवश्यक नहीं है। संघर्ष के दौरान जो व्यक्ति अपने आपको उच्च सत्ता के प्रति समर्पित रखेगा, वह उतना ही विकास करेगा। उच्च सत्ता के प्रति अपने आपको सदा खुला रखना चाहिए।' इस प्रसंग में महर्षि ने यह व्यक्त किया था, कि काम

कोई भी किया जाए, उसका परिणाम दिव्य चेतना पर निर्भर है। साधक को अपना काम शुद्ध और निस्वार्थ भाव से करते रहना चाहिए।

वहाँ एकांत में अन्य विषयों पर भी चर्चा होती रही। अरुणाचल आने के दिनों के कुछ अछूते प्रसंग उन्होंने सुनाए। इनमें एक प्रसंग जातिभेद से संबंधित था। साधना के प्रारंभिक दिनों में महर्षि रमण अरुणाचल पर घूमते रहते थे। कभी शिखर पर चढ़ जाते, कभी परिक्रमा करने लगते, कभी तेजोतिगम परिसर में यहाँ वहाँ बैठ जाते। वे हमेशा कौपीन धारण किए रहते थे। कभी कभार कोई अपिचिंत श्रद्धालु उन्हें याचक समझकर कुछ सिक्के भी दे जाता था। महर्षि उसे चुपचाप रख लेते।

पहाड़ी पर प्रेरणा

अधिक समय वे पहाड़ी पर घूमने में ही बिताते। एक दिन वे किसी कंदरा के पास से निकले। कंदरा में एक जहरीला सांप रहता था। महर्षि उस गुफा के सामने ही ध्यान लगाकर बैठ गए। ध्यान की अवस्था इतनी प्रगाढ़ थी कि उन्हें समय का पता ही नहीं चला। यह भी पता नहीं चला कि कंदरा में बने बिल से निकलकर वह सांप उनकी पीठ, पेट और कमर को लपेट कर बैठ गया है। पहाड़ी पर लकड़ियाँ इकट्ठी कर रही एक वृद्ध स्त्री ने यह देखा। उसने शोर मचाया।

महर्षि का ध्यान उससे भी नहीं टूटा। उस महिला ने लकड़ी काटने वाले हंसिए की नोक से सांप को छेड़ा और हुश हुश कर चिल्लाई। छेड़ने से सांप ने महर्षि को छोड़ दिया और रेंगता हुआ अपने बिल में चला गया। शरीर पर सांप जहाँ जहाँ लपेटा मारे हुए था, वहाँ निशान पड़ गए थे। उस स्त्री ने अबकी बार हंसिए की नोक महर्षि के शरीर में चुभाई। उससे ध्यान टूटा। वे महिला की ओर देखने लगे। महिला ने रोष के साथ कहा, 'तुम मर जाओगे। कहीं के नहीं रहोगे। इस गरमी में कहीं एक जगह टिक कर क्यों नहीं बैठते।'

महर्षि ने कहा, 'वह महिला अस्पृश्य लगती थी, लेकिन साधारण नहीं थी। उसके भीतर दिव्य चेतना विद्यमान थी। कभी यह भी लगा, कि वह तिरुवण्णमलै में पहले कभी साधना कर चुकी सिद्ध आत्मा थी।' इस घटना के बाद महर्षि रमण ने जहाँ तहाँ विचरण करना रोक दिया। पहाड़ी की तलहटी में कुटिया बनाकर रहने लगे। कभी कभी जब मन होता तो वे घूमने जरूर जाते थे, लेकिन पहले जैसी चर्चा नहीं रहीं।

महर्षि रमण के आश्रम में

सांप के लपेटे क्या थे? वह महिला के हुश-हुश करने पर चला क्यों गया? यदि वह अपने स्वभाव के अनुसार चलता, तो उसे महर्षि को या महिला को डंस लेना चाहिए था। इन बातों का खुलासा करते हुए महर्षि ने सांप और उस महिला को योग के प्रत्ययों से समझाया। सांप कुंडलिनी शक्ति का स्थूल रूप था, वह महिला दिव्य ऊर्जा थी और एक जगह बैठ जाने का उपालंभ—अपनी शक्ति को बांटने का निर्देश था।

रमण आश्रम में श्रीराम चार दिन और रहे। उन्होंने देखा कि दर्शन और सन्निधि के समय सभी धर्मों और साधना पद्धतियों पर चर्चा होती है। महर्षि का मुख्य संदेश अद्वैत वेदांत से मिलता जुलता ही था। वे जो कहते थे, वह उनके अपने अनुभव से आया था। उसे किसी शास्त्रीय पदनाम से स्पष्ट करना ठीक नहीं होगा। महर्षि आश्रम के प्रत्येक क्रिया कलाप में रुचि लेते थे। यहाँ तक कि भोजन में भी। पाकशाला में क्या बन रहा है, इसका वे पूरा ध्यान रखते थे। भोजन बन जाने के बारे में पूछते थे। प्रत्येक व्यंजन को पहले स्वयं चखते। उसमें कोई कमी होती तो बताते। श्रीराम के सामने ही एक आगंतुक ने सिर्फ इसी बात के लिए महर्षि की कटु आलोचना कर दी थी। अन्य अधीर और अल्पज्ञ व्यक्तियों ने भी समय-समय पर इस बात के लिए आलोचना की, लेकिन महर्षि को इससे कोई अंतर नहीं पड़ा। श्रीराम के सामने जब वह नव आगंतुक आलोचना कर रहा था, महर्षि मुस्करा रहे थे। बीच-बीच में वे श्रीराम की ओर भी देख लेते। महर्षि रमण ने इस तरह देखकर क्या संप्रेषित किया, यह श्रीराम ने ही समझा होगा।

जिस दिन श्रीराम आश्रम से खाना हो रहे थे, उस दिन महर्षि ने एक कार्यकर्ता को किसी बात के लिए डांटा। वह डांटना क्या था, उसकी गलती को इंगित किया था। उसने आश्रम के एक बंदर को डंडे से मारा था। महर्षि बंदरों को अपने हाथ से चने और दूसरे खाद्य पदार्थ खिलाते थे। उन्होंने पूछा, 'इसे मारने की आवश्यकता नहीं है, बच्चों को घुड़की दिखा रहा था, तो तुम भी घुड़क देते। भविष्य में ध्यान रखना।' इतनी सी बात में कार्यकर्ता को फटकार लगी। उसने अनुभव किया कि कोई भारी भूल हो गई है। इसका प्रायश्चित्त करना चाहिए। उसने महर्षि के सामने अपने मन की बात रखी, भगवान मैं उपवास करूंगा। कहते-कहते वह रुआँसा हो गया।

महर्षि ने इस प्रसंग को विनोद भाव से लिया और कहा, 'उपवास की आवश्यकता नहीं है। सचमुच ही तुम हिसाब बराबर करना चाहते हो, तो उस

बंदर को ढूंढो और उससे कहो, कि वह भी तुम्हें डंडा मारे।' यह कहकर महर्षि हँस दिए। औरों को भी हँसी आ गई। श्रीराम भी हँसे, लेकिन बाद में उन्होंने इस घटना को अपनी डायरी में लिखा। संवेदना, पश्चाताप, न्याय, व्यवस्था और विवेक जैसे कई भावों की उन्होंने इस घटना से व्याख्या की।

अरुणाचल-तिरुमण्णवलै से पांडिचेरी बहुत दूर नहीं था। श्री अरविंद आश्रम वहाँ आकार ले चुका था। देश विदेश के बुद्धिजीवी, दार्शनिक, चिंतक और राजनेता वहाँ आने जाने लगे थे। गणपति शास्त्री ने श्रीराम से चलते समय कहा था, कि वहाँ भी होते जाएँ। श्रीराम ने उत्तर दिया 'वहाँ आगे कभी जाऊंगा। मना करने का कारण अंतस् में मात्र रमण आश्रम की स्फुरणा होना ही था।'



निर्मलीकरण का पुरुषार्थ

रास्ते भर श्रीराम को महर्षि रमण के आश्रम में बिताए क्षणों की, वहाँ चल रही गतिविधियों की याद आती रहीं। याद क्या आती रही, मन में उनका विश्लेषण चलता रहा। यात्रा में वे दूसरे लोगों से बहुत कम बोले। सहयात्रियों में किसी ने पहल की, तो अनमना सा जवाब देकर चुप हो गए। रमण आश्रम का चिंतन चलते चलते उन्हें महात्मा गाँधी के साबरमती आश्रम का ध्यान आया। फरवरी १९३१ में वे तीन दिन के लिए अपने मित्र रावत जी के साथ वहाँ गए थे। महात्मा गाँधी का समय तब देशव्यापी दौरों में ही ज्यादा बीतता था। साबरमती आश्रम उनका मुख्यालय था। बीच-बीच में वे यहाँ आ जाते थे उन तिथियों में भी वे अपने व्यस्त कार्यक्रमों में से समय निकाल कर कुछ दिन पहले आए थे। गाँधी जी तब जेल से छूटे ही थे और दिल्ली में लार्ड इरविन से बातचीत के लिए जाने की तैयारी में थे। इस बीच वे आश्रम की व्यवस्थाएँ भी देख रहे थे। रावत जी तो वहाँ जाकर कांग्रेस कार्यकर्ताओं से संपर्क और चर्चा में व्यस्त हो गए। श्रीराम अलग ही उद्देश्य लेकर आए थे। वे गाँधी जी को निकट से देखना चाहते थे और आश्रम के जीवन को भी।

रमण आश्रम वहाँ की तुलना में बहुत शांत था, मंथर गति से कलकल बहने वाली नदी की तरह। साबरमती आश्रम में जीवन उद्दाम वेग से चल रहा था। भारत का भाग्य भविष्य यहाँ जैसे प्रसव पीड़ा से गुजर रहा था और किसी गंभीर आपरेशन के समय होने वाली चहल पहल वहाँ प्रतिक्षण अनुभव होती थी। महात्मा गाँधी को देखने की ललक में श्रीराम दूसरे दिन रात डेढ़ बजे से सेवा कुटीर के सामने बैठे रहे।

पिछले दिन आश्रम में जो कुछ देखा था, लोगों से जैसी चर्चाएँ सुनी थीं वे सब विस्मृत हो चली थीं। तड़के ही वे तैयार हो गए थे। डेढ़ बजे से एक ही धुन सवार थी, कि बापू कब कुटी से बाहर निकलें और वे उनके पीछे-पीछे हो



चल दें। सुबह पांच बजे के लगभग गाँधी जी बाहर आए। प्रातःकालीन प्रार्थना के लिए आश्रम में तैयारी चल रही थी। बाहर खड़े किसी कार्यकर्ता को उन्होंने प्रार्थना के संबंध में कुछ निर्देश दिए और राजस्थान से आए एक कांग्रेसी नेता के साथ भ्रमण के लिए चल पड़े। श्रीराम उन्हें टकटकी लगाकर देख रहे थे। गाँधीजी के थोड़ा आगे निकलते ही वे भी पीछे चल दिए। उन्होंने दूरी बनाए रखी, लेकिन कदम कुछ तेजी से उठा रहे थे, ताकि दूरी धीरे-धीरे कम हो। किसी तरह गाँधीजी का ध्यान आकर्षित हो जाए। वे उन्हें देख लें।

तीस पैंतीस मिनट में वह दूरी कम हुई। यों भी कह सकते हैं, कि गाँधी जी का ध्यान श्रीराम की ओर गया। उन्होंने पीछे मुड़कर देखा। कहा, 'सुबह के मुलाकातियों में तुम्हारा नाम तो नहीं है। फिर भी कुछ कहना चाहते हो क्या?'

श्रीराम ने बापू को प्रणाम किया। उनके बुला लेने से लगा कि मुँह माँगा वरदान मिला। तुरंत हाँ कह दिया। बापू ने कहा, 'आश्रम में प्रातःकालीन कार्यक्रमों की तैयारियाँ चल रही होंगी। तुमने यहाँ की प्रार्थना में भाग लिया।' श्रीराम ने स्वीकृति में सिर हिलाया। बापू ने पूछा, 'क्या अच्छा लगा?'

'सभी कुछ अच्छा लगा,' श्रीराम ने कहा, 'लेकिन ईशावास्य उपनिषद् के मंत्रों ने बहुत तरंगित किया। वह प्रार्थना प्रतिदिन दोहराऊंगा।'

'प्रार्थना दोहराने से क्या होगा?' बापू ने प्रश्न किया। तुरंत इसका कोई उत्तर नहीं दिया जा सका। श्रीराम सोचने लगे। उन्हें विचार में पड़ा देखकर गाँधी जी ने कहा, 'आदमी को चिड़ियाओं की तरह होना चाहिए। उनका न घर होता है, न कपड़े लते। उनके पास एक जून चलने लायक खाना भी नहीं होता।'

श्रीराम ने कहा, 'लेकिन मनुष्य के पास चिड़ियाओं की तरह पंख नहीं हैं। वह उनकी तरह पेड़ पर भी नहीं रह सकता।' गाँधी जी को इस बात पर हँसी आ गई। उन्होंने हँसते हुए कहा, 'मजाक करते हो। चिड़िया का आदर्श सामने रखने का अर्थ है, अपनी आवश्यकताएँ घटाकर कम से कम करना चाहिए। जितने कम से काम चले, उतना अच्छा। आवश्यकता से अधिक रखने वाला चोर है।'

महात्मा गाँधी जब यह कह रहे थे, तो श्रीराम को आश्रम में कल सुनी चर्चाओं का स्मरण आ रहा था। एक बार आश्रम में चोरी हुई। चोर काफी सामान ले गए। कस्तूरबा की संदूक भी चोरों ने उड़ा ली। इस घटना की रिपोर्ट थाने में नहीं लिखाई गई। गाँधी जी ने कहा कि इस घटना के लिए मैं स्वयं जिम्मेदार हूँ। चोरों का यह विश्वास सही है कि आश्रम में चुराने लायक सामान है। इसके



निर्मलीकरण का पुरुषार्थ

अलावा मैं यहाँ रहने वाले लोगों को आश्रम की भावना से एकाकार नहीं कर सका हूँ। चोर भी तो यहीं रहते हैं।

गाँधी जी ने ज्यादा आश्चर्य इस बात पर किया कि कस्तूरबा के पास कोई संदूक था। उसमें सामान सहेज कर रखा था। उन्होंने बा की खबर ली। कस्तूरबा ने बताया कि संदूक में कुछ नहीं, पोते पोतियों के कपड़े थे। गाँधी जी को इससे संतोष नहीं हुआ। वे बिफर उठे, 'तो क्या हुआ। अपने कपड़े लत्तों की सार संभाल वे स्वयं करें या उनके माँ बाप करें। तुम्हें क्यों करना चाहिए।'

इस घटना के बाद कस्तूरबा ने अपना संदूक छोड़ दिया। गाँधी जी के साथियों में बा का सामान ही सबसे कम होता था। आश्रम में सुनी गई बातें श्रीराम के मस्तिष्क में बिजली की तरह कौंध रही थीं। गाँधी जी के साथ चलते हुए वे अनुभव कर रहे थे कि यहाँ का वातावरण कठोर अनुशासन का है। आश्रम का जीवन किसी मठ या अखाड़े की तरह नहीं है। वह कसकर काम लेने वाले कार्यकर्ता या कुलपति की छत्रछाया में पल रहे एक परिवार की तरह है। कुलपति के सीने में करुणा और आत्मीयता से लबालब एक हृदय भी है, जो दिखाई नहीं देता। उसे अनुभव ही किया जा सकता है।

चिड़िया के आदर्श पर हुए संक्षिप्त से विनोद के बाद गाँधी जी ने कहा, 'तुम क्या कांग्रेस का काम करते हो। श्रीराम ने कहा, 'नहीं मैं कांग्रेस का सदस्य नहीं हूँ।'

'क्या करते हो?' उन्होंने फिर पूछा। उत्तर दिया, 'देश सेवा का मेरा मन है। जीवन भर वही करूँगा।'

गाँधी जी ने मुद्दे की बात छोड़ी, 'मुझसे क्या चाहते हो? मैं तुम्हारे किस काम आ सकता हूँ?'

'मैं आपकी तरह बनना चाहता हूँ,' श्रीराम ने अत्यंत सरलता से कहा।

'मेरी तरह बनना चाहते हो, तो सत्याग्रह आश्रम को देखो। वहाँ जैसे और लोग रहते हैं, उनकी तरह रहना सीखो। किसी भी काम को छोटा मत समझो और न ही किसी व्यक्ति को।'

जीवन में आश्रम का प्रवेश

कहते कहते गाँधी जी रुके, 'एक आसान उपाय है। जहाँ तक हो सके, इन दो नियमों का पालन करना। एक तो अपने पास आवश्यकता से अधिक वस्त्र, भोजन और रुपये पैसे मत रखना। मैं भी नहीं रखता हूँ। तुम्हें रखना पड़े तो



उसे समाज की अमानत समझना और दूसरा नियम यह निभाना कि अपना काम अपने हाथों से ही करना। दैनिक जीवन में दूसरों की सहायता मत लेना। अपना काम स्वयं करना।'

बातचीत करते हुए आश्रम आ गया। वहाँ लोग सफाई के काम में जुटे हुए थे। सुबह का समय प्रायः जप ध्यान का होता है। आश्रम में भी यह सब होता था। लेकिन शौचालय और स्नानगृहों के साथ अपने ठहरने की जगह और आसपास के स्थान भी साफ करना होते थे। अंदर आते-आते बापू ने श्रीराम से पूछा, 'तुमने अपने लिए कौन सी जगह चुनी है। कहां कहां की सफाई करोगे?'

श्रीराम ने कहा, 'मुझे जहाँ भी बताया जाएगा।' बापू ने कहा, 'अच्छा। उसके अलावा गौशाला की सफाई भी करना। गाँव से आए हो। तुम्हें तो अच्छा अनुभव होगा।'

उन्हें याद आया महात्मा गांधी से भेंट के बाद वे आश्रम की सेवा में जुटना चाह रहे थे। उन्हें सफाई का काम दिया था। साथ में जुटे एक स्वयंसेवक को सफाई के काम से असुविधा हो रही थी। मौका देखकर वे भागना चाह रहे थे। उस स्वयंसेवक ने श्रीराम से अपनी व्यथा कही, हम तो आये थे यहाँ महात्मा बनने के लिए। सोचा था बापू कोई जिम्मेदारी देंगे। उनके लोगों ने यहाँ पाखाना साफ करने का काम सौंप दिया। यह बात आश्रम के एक वरिष्ठ कार्यकर्ता ने सुन ली थी। उसने समझाया आश्रम जीवन में यह सबसे पहला कर्म है। बापू स्वयं सफाई करते हैं। हम अपने आसपास की मलीनताएँ साफ नहीं कर सके तो समाज में फैली गंदगी कैसे मिटाएंगे।? उन कार्यकर्ता का समाधान नहीं हुआ वे दूसरे तीसरे दिन आश्रम से चले गए।

श्रीराम को एक और प्रसंग याद आया। सुबह उठकर वे दातौन कर रहे थे। कुल्ला करने और मुँह धोने में आधी बालटी पानी खर्च हो गया वहीं वरिष्ठ कार्यकर्ता पास से निकले। उन्होंने टोका, पानी का उपयोग संभल कर करें। कुल्ला करने के लिए एक लोटा पानी बहुत है। बापू को पता चलेगा तो वे दुखी होंगे। वे कहते हैं पृथ्वी पर पानी बहुत है तो क्या हुआ? उसका अपव्यय नहीं होना चाहिए। सायंकालीन प्रार्थना सभा में बापू ने इस संदेश से मिलती जुलती बात कही भी थी। रेलगाड़ी में बैठै-बैठे श्रीराम को इस तरह के कई दृश्य याद हो आए। गाँधी जी ने उन्हें महात्मा बनने का जो सूत्र बताया था, उसे मन में गुनते हुए उन्हें महर्षि रमण की याद आ गई। वे जीवन्मुक्त प्रतीत हुए थे। गाँधी जी की

निर्मलीकरण का पुरुषार्थ

तुलना में उनकी आध्यात्मिक ऊँचाई बहुत ज्यादा थी, लेकिन उस ऊँचाई तक पहुँचने का मार्ग साबरमती आश्रम से होकर ही जाता था, उन्होंने अनुभव किया। चिंतन फिर उसी दिशा में आगे चल पड़ा। साबरमती आश्रम की गति और रमण आश्रम की शीतल शांति में कोई सामंजस्य हो सकता है क्या? आगरा पहुँचते तक कई संकल्प-विकल्प मन में उभरे। एक तरंग यह भी आई कि साबरमती आश्रम, शांति निकेतन और रमण आश्रम की तरह देश में और भी संस्थान हो सकते हैं। उनकी यात्रा भी करनी चाहिए।

आगरा पहुँचते ही घर पर सामान रखकर श्रीराम सीधे बेलनगंज स्थित सैनिक कार्यालय पहुँचे। पालीवाल जी प्रेस के अन्य सहयोगियों और आंदोलन के कार्यकर्ताओं के साथ बैठे विचार विमर्श में व्यस्त थे। श्रीराम को देखते ही वे चहक से उठे। उल्लास और विनोद से उनका अभिवादन करते हुए बोले, 'आइए, आइए महात्मा जी। सबके लिए गाँधीजी महात्मा हैं। हमारे लिए आप हैं।' यह कहते कहते वे हँस दिए। वहाँ उपस्थित दूसरे साथी भी हँसे।

वापसी पर अभिनंदन और कुशलक्षेम की सामान्य औपचारिकता ने कुछ मिनटों के लिए विषय बदला। इसके बाद चर्चा की कड़ी जहाँ टूटी थी, वहीं से वापस शुरू हो गई। श्रीराम के मन में रमण आश्रम की अनुभूतियाँ अभी ताजा ही थीं। सैनिक कार्यालय में महात्मा गाँधी के छोड़े हरिजन उद्धार कार्यक्रम की चर्चा चल रही थी। जेल से रिहा होने के बाद उन्होंने साल भर तक किसी भी राजनैतिक आंदोलन में भाग नहीं लेने और केवल हरिजन सेवा ही करते रहने का निर्णय लिया था।

साबरमती आश्रम को इसी काम के लिए समर्पित कर वे वर्धा (महाराष्ट्र) आ गए। सत्रह अठारह साल पहले धार्मिक जीवन के सामूहिक अभ्यास की प्रयोगशाला के तौर पर बनाया गया वह आश्रम अब समाज सुधार की प्रवृत्तियों के लिए सुरक्षित कर दिया था। वर्धा आते ही उन्होंने अपने उद्देश्य के लिए व्यापक दौरा आरंभ कर दिया। सैनिक कार्यालय में जिस समय चर्चा चल रही थी, गाँधी जी संयुक्त प्रांत (अब उत्तरप्रदेश) के दौरे पर थे। वे उन गाँवों में भी जा रहे थे, जहाँ अभी तक कोई कार्यकर्ता भी नहीं पहुँचा था। सवर्णों से अपनी जिद छोड़ने और हरिजनों से अपनी आदतें सुधारने का आग्रह उनके संपर्कों और चर्चाओं का मूल स्वर होता था। मिर्जापुर के पास एक गाँव की यात्रा के समय गाँधी जी के साथ रहे कांग्रेस कार्यकर्ता ने वहाँ चल रही बैठक में बताया। बापू



गाँव के लोगों से कह रहे थे, कि वे अपने कुँओं पर हरिजनों को पानी भरने दें। बापू की इस बात का किसी ने अनादर नहीं किया। दो चार लोगों ने कहा कि उन लोगों का रहन सहन गंदा है, वे साफ सुथरे रहना शुरू कर दें।

गाँधी जी ने उत्तर दिया था कि हम लोग उनसे भी बात कर रहे हैं, लेकिन अपने आपको जो लोग ऊँची जाति वाले कहते हैं, उन्हें मन में गुंजाइश बनाना चाहिए।

अपने आप सुधार

वह कार्यकर्ता अपने अनुभव सुना ही रहा था कि श्रीराम ने बीच में ही टोका। वे बोले, 'बापू कुछ ज्यादा ही मनुहार कर रहे हैं। हरिजन उद्धार का एक आसान तरीका और है।' कार्यकर्ताओं की दृष्टि उनकी और उठी। श्रीराम ने कहा, 'हरिजन यदि साफ सुथरे रहने लगे और अपना गाँव छोड़कर दूसरी जगह जा बसें, तो उन्हें कोई नहीं पहचानेगा? वे वहाँ के समाज में आसानी से रच बस जाएँगे। यह जरूर है कि इस तरह लोगों में घुल मिल जाना छद्मरीति से होगा। लेकिन आने वाले दिनों में यह सब अपने आप भी होगा।'

'कैसे?' 'पालीवाल जी ने पूछा। उत्तर था, 'यातायात के साधन बढ़ जाएँगे। व्यापार और रोजगार बढ़ेगा, तो लोग एक जगह से दूसरी जगह जाना शुरू करेंगे। अपनी जगह से सौ दो सौ कोस दूर जाने पर कौन पहचानेगा, कि अमुक व्यक्ति अमुक जाति का है। किसी के माथे पर लिखा नहीं है, कि फलां बिरादरी का है।'

इस संभावना को उज्ज्वल बताते हुए पालीवाल जी ने कहा 'जो बात कल परसों होने जा रही है, उसके लिए समाज में आज से ही चेतना जगाने का काम अपने आपमें उपयोगी है।' श्रीराम ने इस पर सिर हिलाया। उस स्वीकार में यह भी व्यक्त हो रहा था, कि पालीवाल जी नहीं कहते, तो भी वे पहले से ही इस बात को माने हुए थे। गांधी जी के हरिजन उद्धार कार्यक्रम में उनका पूरा विश्वास था और वे उनके विचारों का प्रचार करने, में लग जाएँगे। साल भर का समय उनके लिए भी राजनीति से परहेज का समय होगा।

यात्रा के दौरान गाँधी जी सवर्णों से कहते थे कि हरिजनों के संबंध में अपने पूर्वाग्रह छोड़ें। जाति भगवान की बनाई हुई नहीं है। शास्त्रों और प्राचीन ग्रंथों में भी इसका उल्लेख नहीं है। काम के बटवारे और पीढ़ी दर पीढ़ी एक ही रोजगार बने रहने के कारण वह दिनोंदिन मजबूत हुई है। काम जिस तरह कोई



निर्मलीकरण का पुरुषार्थ

भी ऊँचा या नीचा नहीं है, उसी तरह जाति भी छोटी या बड़ी नहीं मानना चाहिए। इन व्यावहारिक तर्कों के आधार पर वे लोगों से अपील करते कि हरिजनों को मंदिरों में आने दें। सार्वजनिक स्थानों पर वे उसी तरह प्रवेश करें जैसे और लोग करते हैं। हरिजनों को वे सलाह देते कि मांस खाना, शराब पीना छोड़ दें। पढ़ना लिखना शुरू करें। साफ सुथरे रहें। यह बातें हरिजनों की जीवन व्यवस्था सुधारने के लिए ही कही जाती थीं। उनकी निंदा करने या इस आधार पर सवर्णों को श्रेष्ठ ठहराने के लिए नहीं।

कई जगह हरिजनों के साफ नहीं रहने की दलील दी जाती। गाँधी जी उन दलीलों की जबर्दस्त काट करते। किसी वंश या कुल में जन्म लेने से कोई अच्छूत कैसे हो सकता है? किसी व्यक्ति की छाया पड़ जाने से ऐसा क्या दोष आ जाता है कि व्यक्ति को नहाना पड़े। यह ठीक है कि भगवान का मंदिर पवित्र आत्माओं के लिए ही है। वहाँ ईश्वर के प्रति श्रद्धा रखने वालों को ही जाना चाहिए। लेकिन यह फैसला कौन करेगा कि हम लोगों में कौन व्यक्ति पवित्र है और कौन पापी? एक जगह उन्होंने छोटी जाति वालों के नहीं नहाने की दलील का बहुत तीखा जवाब दिया। उन्होंने कहा, 'नहाने से क्या होता है? मछली अपनी पूरी जिंदगी पानी में गुजार देती है। वह पवित्र हो जाती है क्या?'

गाँधी जी के ये संवाद और हरिजन उद्धार के उनके कार्यक्रमों की सूचनाएँ सैनिक कार्यालय में पहुँचती रहती थीं। उन घटनाओं और क्षणों को 'सैनिक' में शब्द मिलते। उनके यात्रा कार्यक्रम और संदेश समाचारों के रूप में छपते और घटनाएँ संस्मरणों के रूप में। यात्रा के समय गाँधी जी हरिजन फंड के लिए चंदा मांगने से नहीं चूकते थे। कार्यकर्ता भी इसके लिए माहौल बनाते और सभाओं में गाँधी जी को अच्छी राशि मिल जाती थी। इस काम के लिए कोई धनवान, उद्योगपति या मिल मालिक भी बहुत बड़ी रकम दे सकता था। लेकिन गाँधी जी ने उनसे अपेक्षा नहीं की। वे हरिजन सेवा के लिए ज्यादा से ज्यादा लोगों को सक्रिय करने के पक्ष में थे। सभा में आने या अन्य अवसरों पर संपर्क में आने वालों ने उन्हें खुले हाथ से सहयोग दिया। इस आधार पर विरोधियों ने उन्हें भला बुरा भी कहा।

हरिजनों को बराबरी का दर्जा देने के कार्यक्रमों से चिढ़ने वाले रूढ़िवादी सनातनियों ने उन्हें धर्मद्रोही, धंधेबाज, बनिया और समाज को भ्रष्ट करने वाला कहा। इन आक्षेपों का उत्तर 'सैनिक' अखबार में दिया जाता। श्रीराम ने उस युग



में शास्त्रों और संतवाणियों के ऐसे उद्धरण ढूँढ़े, जिनसे गाँधी के विचारों की पुष्टि होती थी। संपादकीय पृष्ठ पर एक स्तंभ भी शुरू किया। उसमें उद्धरणों और प्रसंगों से गुंथा हुआ एक छोटा सा लेख नियमित छपने लगा।

शिवमंदिर में हरिजन

समाचार पत्र के काम से समय मिलते ही श्रीराम भी हरिजन उद्धार के कार्यक्रम को गति देने के लिए निकल पड़ते। उन्होंने भी संपर्क और विचारों के आदान प्रदान की पद्धति अपनाई। जहाँ आवश्यक हुआ, वहाँ सक्रिय पहल भी की। हरिजनों को सवर्णों के मंदिर में जाना मना है। वे दूर से ही प्रणाम कर सकते हैं। मंदिर का शिखर दिखाई देना ही उनके लिए देवदर्शन है। इस मान्यता को तोड़ने के लिए उन्होंने आगरा की ही एक सवर्ण बस्ती में एक शिवमंदिर चुना। मंदिर मध्यम श्रेणी का ही था। बीस पच्चीस लोग ही वहाँ दर्शन के लिए आते जाते थे। सोमवार के दिन कुछ ज्यादा लोग पहुँचते। यहीं हरिजनों के मंदिर प्रवेश का कार्यक्रम बना। बड़ा मंदिर इसलिए नहीं चुना कि विरोध और टकराव की स्थिति बनने पर वहाँ की स्थिति ज्यादा विस्फोटक हो जाती। इतने कार्यकर्ता उपलब्ध नहीं थे। कार्यकर्ताओं की वैसे कमी नहीं थी, लेकिन हरिजन उद्धार के नाम पर ज्यादातर बगलें झाँकने लगते। सिद्धांत और उपदेश में वे फिर भी थोड़ा साहस दिखाते। पहल करने के नाम पर उसी तेजी से पीछे हट जाते।

शिव मंदिर में रुद्राभिषेक की खबर गिने चुने लोगों तक ही पहुँची थी। छह हरिजन कार्यकर्ता अभिषेक के लिए तैयार हुए। शिवमंदिर में कोई परंपरागत पुजारी नहीं था। लोक मान्यता के अनुसार शिव की नियमित अर्चना आराधना और मंदिर की देखभाल का दायित्व संन्यासी को ही दिया जाना चाहिए। वहाँ कोई संन्यासी नहीं था। मंदिर की व्यवस्था स्वयंसेवक स्तर पर ही चल रही थी। बीस पच्चीस लोगों को पता चला कि श्रीराम मंदिर में हरिजनों से अभिषेक कराने वाले हैं। उनमें से चार व्यक्ति इसका विरोध करने के लिए आगे आए। जुझारू किस्म के ये कार्यकर्ता 'ब्राह्मण समाज' नामक संगठन चलाते थे।

श्रावण महीने का वह आखिरी सोमवार था। चार व्यक्तियों के विरोध की भनक लगी, तो श्रीराम ने उससे निपटने का उपाय ढूँढ़ निकाला। विरोध का मंसूबा बांधे कार्यकर्ता सोमवार की सुबह मंदिर में जाने की तैयारी किए हुए थे। उनकी योजना थी, कि सुबह चार बजे शिवालय पर अधिकार कर लेंगे।

निर्मलीकरण का पुरुषार्थ

पूजापाठ और कीर्तन आदि आरंभ कर देंगे। उस स्थिति में दूसरे लोगों को पहल करने की गुंजाइश ही नहीं बचेगी। श्रीराम ने रविवार की शाम को ही स्तुतिपाठ आरंभ कर दिया। तीन बजे शिवपुराण की कथा होने लगी। कथा में चारों हरिजन युवकों को यजमान बनाया गया। ब्राह्मण समाज के लोग चार बजे पूजा पाठ शुरू करना चाहते थे, वे अपने समय पर पहुँचे, तो देख कर दंग रह गए।

कुछ करें, इससे पहले ही श्रीराम आगे आए। उन्होंने कार्यकर्ताओं का अभिवादन किया और कथा सत्र में भाग लेने के लिए कहा। उन युवकों को इस आमंत्रण के आगे कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। मन में पल रहा प्रतिरोध जैसे हवा हो गया। विरोध को यथासंभव टालते हुए अपना काम कर जाने की नीति से प्रेरित इस घटना का पता दूसरे आंदोलनकारियों को लगा। उन्होंने भी यही तरीका अपनाने की कोशिश की। अकेले आगरा संभाग में एक महीने के भीतर इस तरह आठ जगह हरिजनों का मंदिर प्रवेश संभव हो सका।

‘सैनिक’ पत्र में राजनैतिक घटनाओं के अलावा सामाजिक आंदोलनों के समाचार भी विस्तार से छपते थे। इनमें अच्छी-बुरी सभी तरह की खबरें होती थीं। गाँधी जी हरिजन उद्धार कार्यक्रम को गति देने के लिए धुंआधार दौरा कर रहे थे। उनका आगरा आने का कार्यक्रम बना। दिसम्बर १९३३ में निश्चित हुआ, कि वे मार्च १९३४ में आएँगे। उनके स्वागत के लिए हरिजन फंड में इक्कीस सौ रुपए देने का लक्ष्य बनाया। आने दो आने की मजदूरी वाले दिनों में इक्कीस सौ रुपए की राशि काफी बड़ी होती थी। इस रकम को इकट्ठा करने के लिए सोलह कार्यकर्ताओं की एक समिति बनी।

श्रीराम भी इस समिति के वरिष्ठ सदस्य थे। हरिजन फंड के लिए चंदा उगाहने में उन्होंने प्रचार और संपर्क के अनोखे तरीके अपनाए। सैनिक पत्र में गाँधी जी की यात्राओं के विविध प्रसंग छपे। इन प्रसंगों में एक यह भी था कि किसी लड़की ने अपनी सोने की चूड़ियाँ हरिजन फंड में दीं। गाँधी जी ने कहा तुम्हारा सच्चा आभूषण तो वह त्याग है, जो तुमने गहना देते हुए दिखाया। एक अवसर पर सभा में दी गई चीजें बंटोरने लगे तो उन्होंने देखा कि कान का एक बूँदा भी है। गाँधी जी ने कार्यकर्ताओं को तुरंत टोका, दूसरा बूँदा भी होगा। दूढ़ों। कहीं गिर गया है शायद।

किसी ने कहा, हो सकता है इस महिला ने एक ही बूँदा दिया हो। गाँधी जी ने कहा, ‘ऐसा हो नहीं सकता। कोई महिला एक बूँदा नहीं पहनती।’ एक



अवसर पर गांधी जी ने एक ज्योतिषी को फटकारा था। वह गाँधी जी का हाथ देखने के लिए कह रहा था। उन्होंने झिड़कते हुए से कहा, कोई आवश्यकता नहीं। मैं हरिजन कार्यकर्ता हूँ। मेरे पास फालतू समय नहीं है और फिर मुझे छुओगे, तो तुम भी अछूत हो जाओगे।

इस तरह की छिटपुट घटनाओं की सूचना उसी दिन नहीं मिल जाती थी, कुछ समय लगता था लेकिन समाचारों के मामले में श्रीराम तत्परता बरतते थे। रेडियो से, डाक में और गाँधी जी से मिलकर आ रहे या किन्हीं और कार्यक्रमों में होकर आए कार्यकर्ताओं से जो सूचनाएँ मिलती, उन्हें समाचार का रूप दे दिया जाता। रेडियो से समाचार लिखने में श्रीराम गजब की फुर्ती दिखाते थे। समाचार वाचक वाक्य पूरा करने के बाद आधा क्षण के लिए रुकता नहीं था, कि श्रीराम अपना वाक्य पूरा नोट कर चुके होते। वे अगली पंक्ति लिखने के लिए तैयार हो जाते।

परिवार में एक और संतान का आगमन हो गया था। वह संतति पुत्री थी। नाम रखा था दयावती। पुत्र ओमप्रकाश, चाचा या परिवार के किन्हीं और सदस्यों के साथ आगरा आ जाते। श्रीराम को अपने पुत्र या परिवार के सदस्यों पर ध्यान देने की फुरसत नहीं होती। घर के लोग आ उनसे मिल जाते और आगरा घूम घामकर अपना काम निपटा कर वापस चले जाते। श्रीराम उनका ठीक से कुशलक्षेम भी नहीं पूछ पाते।

उन दिनों हरिजन फंड की जिम्मेदारी भी श्रीराम ने ले रखी थी। वह दायित्व और सैनिक का दैनंदिन काम उनके लिए श्वास प्रश्वास की तरह हो गया। हरिजन फंड में इक्कीस सौ रुपए के अंशदान में से एक सौ ग्यारह रुपए श्रीराम ने अकेले ही इकट्ठा करने का संकल्प लिया। लोगो से संपर्क करने के लिए और कार्यकर्ता भी निकले थे।

भागवत कथा से संचय

श्रीराम ने अलग तरीका अपनाया। पिता के समय कई बार सुनी भागवत कथा के प्रसंग अपनी स्मृति में टटोले। उन प्रसंगों को सिससिलेवार मन में बिठाकर यमुना तट पर स्थित सनातन धर्म मंदिर में भागवत मास की घोषणा कर दी। आमतौर पर भागवत का साप्ताहिक पारायण कथा सत्र होता है। मास परायण का विधान भी है, लेकिन श्रद्धालु इसे निजी स्तर पर करते हैं। श्रीराम ने

निर्मलीकरण का पुरुषार्थ

सामूहिक प्रयोग की ठानी। सैनिक और राजनैतिक कार्यक्रमों में व्यस्त रहने के कारण छह घण्टे प्रतिदिन बैठने की स्थिति नहीं बन रही थी। आयोजन को महीने भर तक फैला देने के पीछे यह भावना भी थी कि इस तरह लम्बे समय तक उद्बोधन दिया जा सके।

सनातन धर्म मंदिर के प्रबंधकों ने आयोजन के लिए स्वीकृति दे दी। वे प्रबंध में सहयोग भी देने लगे। किंतु जैसे ही पता चला कि मास पारायण में आने वाली दक्षिणा हरिजन फंड में दी जायेगी तो वे बिफर उठे। उन्होंने छल का आरोप लगाया। अनुमति रद्द कर दी और कुप्रचार भी करने लगे कि श्रीराम सनातन धर्म को भ्रष्ट करने की साजिश रच रहे हैं। फिरंगियों ने उन्हें इस काम के लिए धन दिया है। कुछ लोगों ने महात्मा गाँधी पर भी आक्षेप किए। वैसे इन दिनों सनातन धर्मियों द्वारा इस तरह के आरोप लगाना सामान्य बात थी। श्रीराम ने उन आरोपों की परवाह नहीं की। मंदिर में कथा की अनुमति निरस्त हो जाने से असुविधा हुई। उन्होंने मंदिर के बाहर यमुना तट पर खुले में कथा प्रवचन की तैयारी शुरू कर दी। कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं ने भी इसमें सहयोग दिया और तीन दिन में व्यासपीठ के साथ डेढ़ सौ लोगों के बैठने की व्यवस्था कर ली।

व्यासपीठ के लिए एक तख्त का उपयोग किया गया था। उसके चार कोनों पर चार बांस बांध दिए गए। उन्हें केले के पत्तों से ढक दिया। छत की कोई चिंता नहीं की गई। खुले में ही बैठने की तैयारी रहती। माघ शुक्ल प्रतिपदा को प्रवचन आरंभ हुआ। पहले दिन तीस लोग आये। उन्हें संबोधित करते हुए श्रीराम ने आरंभ किया। भागवत सबको पवित्र करने के लिए है। उपनिषद आदि शास्त्र जिन लोगों को बोधगम्य नहीं होते, उन्हें भी धर्म का तत्त्व समझाने के लिए भगवान वेदव्यास ने इसकी रचना की। प्रेत पिशाच (धुंधुकारी) योनि के जीव भी इसे सुनकर मुक्त हो जाते हैं। सामान्य जनों के लिए फिर चिंता करनी ही नहीं चाहिए। अपने प्रतिपादनों से उन्होंने परंपरावादी सनातनियों की खबर ली। यद्यपि उन लोगों का नाम नहीं लिया। इस भूमिका के बाद उन्होंने ने डेढ़ घण्टा प्रतिदिन क्रम बनाया।

कथा सुनने के बाद लोग पैसे, दो पैसे या आना, चार आना चढ़ावा चढ़ाते। इस चढ़ावे को संभालने का कार्य मांगीलाल करता था। वह दलित जाति का था। उसे पाठशाला जाने का अवसर नहीं मिला था, पर उसकी मेधा तीक्ष्ण थी। अनपढ़ होते हुए वह हिसाब-किताब में तेज था। स्वतंत्रता आंदोलन में वह



सक्रिय हिस्सा लेता था। भागवत प्रवचन के आयोजन में बाधाएँ आती दिखीं तो वह आगे आया। श्रीराम के साथ अपने आपको प्रस्तुत करते हुए उसने कहा, श्रम और जरूरी सामान के प्रबंध का दायित्व हम उठाएंगे। उसके साथ चार कार्यकर्ता और थे। भागदौड़ और शारीरिक श्रम की आवश्यकता वाले कामों में कोई कठिनाई नहीं हुई।

मांगीलाल को अर्थ प्रबंध का दायित्व दिया गया, तो वह थोड़ा सकुचाया। श्रीराम ने समझाया, कि कथा का आयोजन पिछड़े और दबे कुचले जनों की सेवा सहायता के लिए हो रहा है। यह उचित ही होगा, कि प्रबंध का काम समाज के उसी वर्ग का कोई व्यक्ति उठाए। मांगीलाल ने इस परामर्श के बाद ननुच नहीं की। वह चुपचाप काम में लग गया।

प्रवचन नियत समय पर आरंभ हो जाते। कथा कहने के लिए श्रीराम ने भागवत की पोथी का सहारा लिया। वे कथा प्रसंग पढ़ते जाते और प्रसंगों के बीच में उनका आशय भी स्पष्ट करते जाते। प्रवचन शैली बहुत प्रभावपूर्ण नहीं थी, लेकिन नौसिखियों जैसी अनगढ़ भी नहीं थी। छोटी मोटी राजनैतिक सभाओं में भाषण देने का अनुभव काम आया। उसका संस्कार श्रीराम के कथा प्रवचनों में झलकता था। आठ दस दिन में ही प्रवचन जमने लगेगा। सामान्य लोगों के अलावा कार्यकर्ता स्तर के व्यक्ति और साहित्यकार पत्रकार भी बीच-बीच में आने लगे। कथा प्रवचन की सूचना देने का काम सैनिक पत्र में काम करने वाले संगी साथी करते थे। उन्हीं में कुछ लोगों ने साहित्यिक रुचि के व्यक्तियों से भी संपर्क शुरू किया। साहित्यकारों और बुद्धिजीवियों ने इस तरह कभी कदा आना शुरू किया।

एक दिन बाबू गुलाबराय भी प्रवचन सुनने आए। साहित्य जगत में उनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। वे श्रीराम को पत्रकार के रूप में जानते थे। कथावाचक का यह अवतार उनके लिए नया और अपरिचित किस्म का था। प्रवचन पूरा हुआ, तो वे उठे और व्यासपीठ के पास जाकर दो शब्द कहने लगे। उन्होंने श्रीराम की कथा शैली को हिमालय से उतर कर मैदान में आती गंगा की तरह बताया, जो वेगवती है, अनगढ़ है और अल्हड़ भी है, लेकिन वह स्वच्छ और निर्मल है। बाबू गुलाबराय ने इस शैली में अल्हड़ता पर जोर दिया था। उनके व्याख्यान का महत्वपूर्ण संदेश इस प्रकार था, हम अभी तक श्रीराम जी मत्त को पत्रकार, लेखक और सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में जानते हैं। कथाव्यास का

उनका यह रूप नया है। मैं उन्हें इस अवसर पर पंडित जी कहूँगा। आगे भी इसी नाम से पुकारूँगा। आप लोगों में जिन्हें रुचे वे यदि इस संबोधन को अपनाएँ तो मुझे प्रसन्नता ही होगी।

और अब पंडित श्रीराम

बाबू गुलाबराय की घोषणा का वहाँ उपस्थित लोगों ने हर्षध्वनि से अनुमोदन किया। श्रीराम मत्त, श्रीराम शर्मा मत्त को अब पंडित श्रीराम शर्मा मत्त की मान्यता मिली। उस समय पंडित संबोधन किसी को सेंटमेंट ही नहीं मिल जाता था। शास्त्रों पर अधिकार और धर्म की समझ के साथ पवित्रता का निर्वाह होने पर ही किसी को पंडित कहा जाता था। समाज में कोई प्रगल्भ प्रतिष्ठित व्यक्ति ही इस तरह की मान्यता देता था। बाबू गुलाबराय की यह घोषणा उसी प्रचलन के अनुसार आधिकारिक मान्यता थी। आयोजन स्थल पर आने वालों ने भी उन्हें मत्त जी या श्रीराम के स्थान पर पंडित जी कहना आरंभ किया। वरिष्ठ कार्यकर्ता, वयोवृद्ध और अतिनिकट लोगों के लिए वे बाद में भी श्रीराम रहे। जिनने उनके व्यक्तित्व को आदर और मान्यता से देखा उनके लिए श्रीराम अब मात्र व्यक्तिवाचक संज्ञा नहीं रह गए। उनके कृतित्व को ध्वनित करने वाला विशेषण भी उनके साथ जुड़ गया था।

मास पारायण संपन्न होने तक पंडित श्रीराम का संकल्प भी पूरा हो गया था। भागवत की पोथी पर चढ़ाई दक्षिणा एक सौ इकहत्तर रुपए हो गई थी। आयोजन का खर्च उन्होंने स्वयं और मांगीलाल आदि कार्यकर्ताओं ने उठाया था। निश्चय किया गया कि निर्धारित लक्ष्य से ज्यादा इकट्ठी हुई राशि भी फंड में ही दे दी जाए। संकलित राशि पूरी हो जाने का उल्लास ज्यादा नहीं था। वह अपने गाँव जाकर या बीस पच्चीस संपन्न लोगों से संपर्क करने से भी पूरी हो जाती थी। ढाई तीन सौ लोगों तक समाज के निर्मलीकरण का संदेश पहुँचाना ही असल उपलब्धि थी। यह उद्देश्य प्राप्त कर लेने से पंडित श्रीराम प्रसन्न दिखाई दे रहे थे। सैनिक कार्यालय में मिलने वाले वेतन से उन्होंने पहली बार ताईजी और पत्नी के लिए एक एक साड़ी खरीदी। यह उपहार खरीदने के लिए उन्होंने पालीवाल जी से चार रुपए अग्रिम लिए थे। कारण सुनकर पालीवाल जी मुसकराए थे। उपहार लेकर वे आँवलखेड़ा दौड़े गए।



भागवत कथा की सूचना ताई जी को पंद्रह बीस दिन पहले ही मिल गई थी। उन्हें प्रसन्नता हुई थी कि बेटा अपने पिता के मार्ग पर आ रहा है। उन्होंने ठाकुर जी के सामने माथा टेका और कहा, 'प्रभु अपने लाडले को बाप दादाओं के रास्ते पर चलाना।' उनका मन बदला। मन में भरी हुई उमंग के कारण यह भाव आ तो गया। तुरंत उन्हें पछतावा भी हुआ। ठाकुर जी क्या नहीं जानते कि श्रीराम के लिए क्या भला है? अपने रास्ते पर वे स्वयं खींच लेंगे। मुझे अधीरता नहीं जतानी थी। इसी भावबोध से भरकर वे द्वारकाधीश के सामने से तुरंत उठ भी गई थीं। उस मनुहार के दो सप्ताह बाद ही आगरा से खबर आई कि समाज उनके दुलारे को पंडित जी कहने लगा है। जानकर वे विभोर हो उठीं। श्रीराम के पिता को भी तो लोग इसी नाम से पुकारते थे। उनके चरण छूते और आशीर्वाद लेते। कल्पना लोक में वे अपने श्रीराम के लिए भी वही संबोधन सुनने लगीं। देखने लगीं कि लोग उन्हें प्रणाम कर रहे हैं। वह हाथ उठाकर आशीर्वाद दे रहे हैं। कल्पना लोक में रमते हुए ही वे अनुभूतियों में डूब गईं।

माँ की प्रतीक्षा

उस दिन श्रीराम की उन्हें सचमुच प्रतीक्षा थी। कथा प्रवचन की सूचना मिलने के दिन से उत्कंठा हो रही थी कि पंडित श्रीराम को देखें। अपने चिरंजीव को पंडित कह कर पुकारे। जिस दिन श्रीराम को आगरा से आना था, वे सुबह से कई बार हवेली के मुख्य द्वार तक हो आई थीं। तीन चार बार पहले जेल से छूटकर आने के बाद अपने साथियों में ही रम गया था, बावरा है ना। इस बार भी कहीं ऐसा ही न हो। इस आशंका से उन्होंने कहला भेजा था कि श्रीराम सीधे घर आएँ। यहाँ आने के बाद ही जहाँ जाना हो जाए। साथियों को भी कह दिया था कि मेरे लला को रास्ते में नहीं घरे। पहले अपनी माँ से मिल लेने दें।

ताई जी के इन भावोद्वेगों के अलावा एक अव्यक्त, मौन किंतु वैसे ही आवेग हवेली के भीतर एक चित्त में और चल रहे थे। उन आवेगों को झेल रही थीं पंडित श्रीराम की अर्धांगिनी। हवेली में उन्हें बहुरानी कहा जाता था। पंडित जी के संगी साथी भाभी जी कहते थे। स्वयं पंडित जी उन्हें अपने पुत्र ओमप्रकाश के नाम से पुकारते थे। पुत्री का जन्म होने के बाद दया की माँ या दया कहते थे। उस मूक साधिका ने अपना परिचय और नाम (सरस्वती देवी) जैसे तिरोहित

कर दिया था। गृहस्थ आश्रम की साधना अपने आपको विसर्जित कर देने से कम में सिद्ध भी नहीं होती। उस समय प्रचलित परंपरा के अनुसार बहू जी भी पंडित श्रीराम को अपने चिरंजीव की ओट लेकर ही पुकारती थी। अभी तक प्रकट में ऐसे अवसर कम ही आए थे, जिनमें पुकारना पड़े। विवाह के बाद पंडित श्रीराम घर पर कम ही रहे थे। ज्यादा समय स्वराज्य आंदोलन और 'सैनिक' के कामों में बीतता। जब कभी आना होता और बोलने या बुलाने की जरूरत पड़ती तो बहू जी अपने समय की मर्यादा का पालन करती। मन में भी वे संपूर्ण गृहस्थी को आने वाली पीढ़ी के प्रतिनिधि प्रतीक के संदर्भ से ही याद करती। उन्हें भी अपने आराध्य की प्रतीक्षा थी और संभव है ज्यादा व्यग्र भी रही हों। लेकिन वे अपने चित्त और भाव को संभाले हुए थीं।

मुख्य द्वार पर हुई चहल पहल से ही बहू जी ने समझा कि पंडित श्रीराम जी पधार चुके हैं। ताई जी के चेहरे पर छाया उल्लास देखते ही बनता था। वैधव्य और वार्धक्य भारतीय नारी के व्यक्तित्व को जिस तरह कुम्हला देता है, वह ताई जी की चाल ढाल में उस समय सर्वथा लुप्त हो गया था। संतान के अपने सुनिश्चित मार्ग पर चलते हुए पहली सफलता प्राप्त करने, संतान के पहली कमाई घर लाने जैसी इठलाहट ताई जी के हावभाव में दिखाई दे रही थी। वे कहती आ रही थीं, 'अब तो हमारा श्रीराम भी पंडित हो गया। सुना है, बड़े विद्वानों ने तुम्हें अपने आप ही पंडित कहकर पुकारा। मेरे लिए क्या लाया है? बहू के लिए भी कुछ लाया कि नहीं? ओम और दया के लिए तो खिलौने लाया ही होगा?'

प्रश्नों की जैसे झड़ी लग गई थी। माँ के लिए लाई हुई साड़ी सौंपते ही ताई जी की आँखों से हर्ष की बूंदें छलक आईं। इन प्रेमाश्रुओं के साथ ही बहू और बच्चों के लिए लाए गए उपहारों को देखने की ललक भी व्यक्त हो गई थी। वे अपने उल्लास को संभाल नहीं पा रही थीं। अपने लाड़ले को लेकर वे सीधी पूजागृह में गईं। ठाकुर जी के सामने सिर नवाया और श्रीराम की पीठ थपथपा कर अपने इष्ट की ओर से जैसे आशीर्वाद का संदेश पहुँचाया।

पूरे दिन श्रीराम घर पर रहे। बच्चों को दुलारा, पत्नी से कुशलक्षेम पूछा। वहाँ कोई शिकायत या अपेक्षा नहीं थी। हालचाल पूछने पर यही उत्तर आया कि यहाँ किसी बात की कमी नहीं है। मुझे आपकी सेवा करने का मौका मिला होता, तो अपने भाग्य को और भी सराहती। जैसी स्थिति अब है, उसमें भी कोई शिकायत नहीं है।

श्रीराम ने कहा, 'ताईजी आदेश देंगी तो तुम्हें तुरंत बुला लूंगा। बीच-बीच में आना जाना लगा रह सकता है। ओम कुछ और बड़ा हो जाए। इसे शहर की पाठशाला में ही पढ़ाएँगे। वहाँ अपनी नजरों के सामने रहेगा।' सुनकर बहू जी चुप रहीं। उनका चुप रहना ही स्वीकृति थी।

ताई जी की व्यवस्था का न श्रीराम ने उल्लंघन किया और न ही उनके साथियों ने। बड़े दिनों से समेटा हुआ लाड़ दुलार उड़ेल कर माँ संतुष्ट हो गई तब बाहर जाने दिया। श्रीराम के संगी साथी हवेली के बाहर ही चक्कर काट रहे थे। अपने नेता के बाहर आने का इंतजार करते हुए। श्रीराम की यह यात्रा पांच छह महीने बाद हुई थी। इस बीच हरिजन फंड के लिए काम करते और उसी उद्देश्य से भागवत कथा कहने की सूचनाएँ आई। इन सूचनाओं ने गाँव में श्रीराम को अलग तरह की प्रतिष्ठा दे दी थी। वे आंवलखेड़ा के उत्तरदायी, प्रतिष्ठित और गाँव का नाम ऊँचा करने वालों की श्रेणी में आ गए थे। साथियों का व्यवहार भी उनके प्रति विशिष्टता व्यक्त करता हुआ लगता था। जहाँ भी ऐसी झलक देखी, श्रीराम ने अपने साथियों को टोका। जैसे एक प्रसंग में उन्होंने साथियों द्वारा पंडित जी कहने पर आपत्ति की। कड़ाई से कहा कि मैं तुम्हारे लिए वही श्रीराम हूँ। उसी नाम से मुझे पुकारो।

जेब में रखा यह सिक्का भी

महात्मा गाँधी का कार्यक्रम कचहरी रोड पर रखा गया था। वे आगरा में सिर्फ चार घंटे रुकने वाले थे। कार्यकर्ताओं से बातचीत और शाम को जनसभा, बस दो ही कार्यक्रम निश्चित थे। कार्यकर्ता गोष्ठी कांग्रेस कार्यालय में ही रखी गई। गांधी जी ने वहाँ कहा, कि एक साल के लिए स्वतंत्रता आंदोलन को मैंने भुला दिया है। हमारे समाज में अस्सी प्रतिशत लोग हरिजन आदिवासी और पिछड़ी जाति के दबे कुचले लोग हैं। उन्हें ऊपर लाए बिना स्वतंत्रता मिल गई, तो उसका कोई अर्थ नहीं है। वैसी स्वतंत्रता दस पंद्रह प्रतिशत लोगों के काम की ही होगी। बहुसंख्यक लोग फिर भी दीन हीन और दास ही रहेंगे।

गोष्ठी में ही पंडित श्रीराम का परिचय भी कराया गया। गाँधी जी को देखते ही याद आ गया कि चार महीने पहले कुछ देर के लिए साबरमती आश्रम में हुई भेंट का स्मरण हो आया। उन्होंने पूछा 'अपना काम अपने ही हाथों से करना शुरू किया या नहीं?' श्रीराम ने कहा, 'वह क्रम आपसे भेंट के पहले से

चल रहा है। दैनंदिन कार्यों में हम किसी भाई या बहिन को कष्ट नहीं देते।' बापू ने कहा कि पत्नी से सेवा तो लेते ही होंगे।

श्रीराम ने कहा 'वह गाँव में माँ के साथ है। हम यहाँ अकेले ही हैं।' इस उत्तर के बाद गाँधी जी मुद्दे की बात पर आए। उन्होंने पूछा, 'हरिजन फंड के लिए क्या किया है?' इसके उत्तर में श्रीराम चुप हो रहे। उनके योगदान की चर्चा पालीवाल जी ने की। भागवत प्रवचन की दक्षिणा के बारे में बताया, तो गाँधी जी हँसे, पोथी पर चढ़ाई रकम भगवान की होती है। भगवान की रकम उनके बंदों के लिए लगाने की सूझ अनोखी है। शाम की सभा के लिए अच्छा विचार मिल गया। यह कहते कहते गांधी जी हँस दिए।

कचहरी रोड पर गाँधी जी को सुनने के लिए करीब एक हजार लोग आए। आगरा की जनसंख्या तब पच्चीस तीस हजार रही होगी। उसके अनुपात में उपस्थिति अच्छी थी। बापू ने श्रीराम के भागवत प्रवचन का उल्लेख किया। उनकी प्रेरणा थी, कि मंदिरों और धार्मिक कार्यक्रमों में लगाया जाने वाला धन भी कुछ समय के लिए रोक लिया जाए। इसे हरिजन उद्धार के काम में लगाएँ। पंडित श्रीराम ने भागवत की कथा कहकर कुछ राशि इकट्ठी की। उससे मुझे बड़ी खुशी हुई। वह कितनी रकम है, यह मायने नहीं रखता। मायने रखने वाली बात यह है कि उन्होंने धर्म के काम में लोगों को भी रास्ता बताया। जिन सज्जन ने उन्हें पंडित कहा है, ठीक ही कहा है।

बापू ने अपने संदेश में हरिजन उद्धार के लिए किए जा सकने वाले विभिन्न कामों के बारे में बताया। उन्हें मंदिर में जाने देने, सार्वजनिक कुओं से पानी भरने देने, सभा सम्मेलनों में बराबरी से बिठाने और उनके घर आना जाना शुरू करने पर भी जोर दिया। हरिजन फंड में चढ़ावा देने की बारी आई, तो कार्यकर्त्ताओं ने श्रीराम को आगे कर दिया। गाँधी जी ने कहा, 'इस शहर की ओर से एक पंडित दान देने आ रहा है। यह खुशी की बात है। हम लोग जो अपने आपको सवर्ण कहते हैं, इस तरह की पहल करें। हमारे पुरखों ने जो गलती की है, उसे सुधारने लगे तो हरिजनों का उत्थान होने में एक साल भी नहीं लगेगा।'।

पंडित जी (श्रीराम) जब हरिजन फंड में आगरा का अंशदान देने के लिए बापू के पास पहुँचे, तो वे भावाविष्ट से हो गए। उठकर उन्होंने श्रीराम के दोनों हाथ अपने हाथ में थाम लिए। उनकी बंधी हुई मुट्ठी को अपनी नाक से छुआ। वयोवृद्ध लोग जिस तरह बच्चों का मस्तक सूँघते हैं, उसी तरह पंडित जी के प्रति स्नेह व्यक्त किया। फिर बोले, 'भागवत शास्त्र तो सबके लिए है न। मैंने



सुना है कि उन लोगों के लिए उसका उपदेश किया गया है, जिनके पास सिर्फ हृदय है। उनके लिए नहीं, जो बुद्धि, तर्क और अपने बड़े होने का अभिमान लिए घूमते हैं। क्या यह सही है?’

गाँधी जी के इस व्यवहार से श्रीराम अभिभूत हो उठे थे। उनसे कुछ उत्तर देते नहीं बना। वे कहना चाहते थे, कि आप सही कह रहे हैं, लेकिन सिर्फ सिर ही हिला पाए। बापू ने इसके बाद एक सवाल और किया। उन्होंने पूछा, ‘आपने अपने पास से फंड में क्या कुछ दिया है। एक सौ इकहत्तर रुपए की राशि तो भागवत जी की है। तुम्हारा अपना क्या है?’

‘मैं वह गुप्त रखना चाहता हूँ।’ पंडित जी कुछ सामान्य हुए और बोले, यदि आपका आदेश हो, तो बता सकता हूँ लेकिन आपके कान में ही। वह भी वचन देने पर कि आप उसकी घोषणा नहीं करेंगे, बापू ने हामी भरी। श्रीराम ने उनके कान में ही कहा। सुनकर गाँधी जी खिल उठे। उन्होंने धीरे से श्रीराम के गाल पर चपत लगाई।

उस घटना के कई साल बाद पूज्य गुरुदेव ने बताया था। पिताजी के कुर्ते में लगने वाले सोने के बटन उन्होंने बापू के फंड में दे दिए थे। ये बटन लेने के लिए ही वे आंवलखेड़ा गए थे। ताई जी ने अपने चिरंजीव के हिस्से आया यह स्वर्ण बहूरानी को संभालने के लिए दे दिया था। ताई जी को बाद में पता चला और वे अपने पुत्र की त्यागवृत्ति से गदगद हुई थीं।

बापू ने कहा, ‘लेकिन अब भी तुम्हारे पास कुछ रह गया है। तुमने उसे छुपा कर रखा हुआ है। उसे भी दे दो।’

पंडित जी गाँधी जी का मुँह देखने लगे। उन्होंने कहा, ‘छुपा कर कुछ नहीं रखा है। गाँधी जी ने कहा, ‘अपने कुर्ते की जेब में देखो। मुझे यहाँ बैठे हुए दिखाई दे रहा है। देखो तुम्हारे कुर्ते की जेब में रखा हुआ सिक्का चमक रहा है। शायद एक रुपए का कलदार है।’

श्रीराम ने अपनी जेब में हाथ डाला। बापू की तीक्ष्ण दृष्टि, विनोदवृत्ति और वेबाक बातचीत ने उन्हें हँसा दिया। हँसते हुए रुपया निकाला और बापू के चरणों में रख दिया। गाँधी जी ने हाथ उठाकर कहा, ‘अब ठीक है। ब्राह्मण को भगवान पर विश्वास करना चाहिए। अपने निर्वाह की चिंता छोड़ देनी चाहिए। मैं अपने पास कुछ भी नहीं रखता। कपड़ों में जेब तक नहीं रखी है। मैं तो बनिया हूँ, फिर भी अपरिग्रह का व्रत लिया हुआ है।’

पंडित जी ने तत्क्षण कहा, ‘अपरिग्रह मेरा भी व्रत है बापू। मैं भी अपनी चिंता भगवान पर छोड़ता हूँ। वही निभाएँ।’



तैयारियों का दौर

भागवत प्रवचन की दक्षिणा हरिजन फंड में दे देने पर ब्राह्मणों ने रोष जताया। पंडित दुलीचंद शास्त्री का कहना था कि शास्त्र, मंदिर और कथा कीर्तन में जो दान दिया जाता है, चढ़ावा आता है वह ब्रह्मभोज में ही काम आना चाहिए। उनके नेतृत्व में दूसरे ब्राह्मणों ने भी कहा कि शूद्रों (हरिजनों) के लिए शास्त्र का पैसा देकर धर्म का अपमान किया गया है, इस आशय के पत्र 'सैनिक' कार्यालय में आने लगे। पालीवाल जी उन पत्रों को श्रीराम के सामने रख देते और हँसने लगते। श्रीराम ने उन पत्रों का कुछ समय तक तो उत्तर दिया लेकिन विरोध थमा नहीं। एक ही बात घुमा फिरा कर कही जाती थी।

आपत्तियों का उत्तर व्यक्तिगत रूप से देने के बाद भी शिकायतें बंद नहीं हुईं तो श्रीराम ने सैनिक पत्र में एक छोटा सा लेख लिखा। उस लेख से पहले भागवत कथा पर आपत्ति वाले आठ पत्र रखे गए। उन पत्रों का उत्तर देते हुए लेख का शीर्षक था 'हरि को भजै सो हरि का होई' लेख में शास्त्रीय उद्धरणों और संत चरित के आधार पर निरूपित किया गया था कि भगवान तक पहुँचने के लिए जाति, वंश, शरीर, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि के कारण कोई अयोग्यता नहीं आ जाती। गिरे से गिरे व्यक्तियों ने ईश्वर की आराधना कर मुक्ति पाई है। ईश्वर का अनुग्रह जब हर किसी को निर्बाध रूप से मिल सकता है तो उनके नाम पर आई छोटी मोटी रकम दबे कुचले लोगों के काम आ सकती है। इसमें बुराई कुछ नहीं है। बल्कि यह उपयोग गर्व और संतोष करने योग्य ही मानना चाहिए।

शास्त्रीय उद्धरणों के आधार पर लिखा गया लेख पंडित दुलीचंद, गौरांग शर्मा और नलिनी गौड़ को और कुपित कर गया। ये तीनों लोग सैनिक कार्यालय में पहुँच गए। सीधे युवा पंडित श्रीराम शर्मा के सामने पहुँचे और अकड़कर खड़े हो गए। बोले, 'शास्त्रों का अध्ययन भी किया है या सिर्फ पढ़े ही पढ़े हैं।'



श्रीराम ने कहा, 'अपनी बुद्धि और समझ के अनुसार अध्ययन किया है मान्यवर। मुझसे कहाँ त्रुटि हुई है, बताइए।' यह कहते-कहते उन्होंने विनम्रता से हाथ जोड़ लिए थे। पंडितों ने समझा कि श्रीराम उनका उपहास उड़ा रहे हैं। वे और ऐंठ गए। बोले, 'अपनी विद्वत्ता पर इतना अभिमान ठीक नहीं है युवा पंडित। यदि अभिमान है तो हमसे शास्त्रार्थ करो और अपने प्रतिपादन को शास्त्रसम्मत सिद्ध करो।'

सुनकर श्रीराम उठे और खड़े हो गए। उन्होंने कहा, 'मैं आपके पांडित्य और अवस्था को प्रणाम करता हूँ। शास्त्रार्थ में मेरी कोई रुचि नहीं है। मेरे विवेक को जो उचित लगा वह लिख दिया। जिन्हें वह गलत लगता है, उनसे मैं क्षमा प्रार्थी ही होऊंगा। उनसे मेरा कोई हठ नहीं है।'

पंडितों ने समझा कि श्रीराम शास्त्रार्थ से कतरा रहे हैं। उनका अध्ययन अधिकचरा है और वे पराजय के डर से उनकी चुनौती स्वीकार नहीं कर रहे हैं। इस स्थिति को अपनी जीत मानकर उन्होंने ठहाका लगाया और जैसे आए थे, उससे ज्यादा अकड़ भरी चाल चलते हुए वापस चले गए। पालीवाल जी को इस घटना का पता चला। उन्होंने कहा, 'श्रीराम तुम क्या उन लोगों से डर गए थे या अपनी बात के पक्ष में पर्याप्त प्रमाण नहीं हैं।'

श्रीराम ने कहा 'न संकोच है और न ही प्रमाणों की कमी। लेकिन वे लोग हठधर्मी दिखाई दिए। उनसे विवाद का अर्थ है अनावश्यक तनाव। मुझे लगा कि वे लोग सिर्फ झगड़ा करने आए हैं। कलह को टालने के लिए ही मैंने उनसे विनम्रता पूर्वक क्षमा मांग ली।'

पालीवाल जी इस समझ से परिचित होकर दंग रह गए। उन्होंने महात्मा गाँधी का एक किस्सा सुनाया। इलाहाबाद में एक शास्त्री जी उनसे भी टकराए थे। कहने लगे कि आप क्या निम्न जाति के लोगों को यज्ञोपवीत भी पहनाएंगे। उन्हें संध्या गायत्री का जप सिखाएंगे। बापू ने उत्तर दिया यज्ञोपवीत और संध्या गायत्री में हर उस व्यक्ति का अधिकार है जो वेदशास्त्रों में आस्था रखता हो। हरिजनों के लिए जनेऊ और संध्या गायत्री का अधिकार नहीं है तो ये चीजें दूसरी जाति वालों के लिए भी आवश्यक नहीं हैं। यह उत्तर सुनकर शास्त्री जी उलझने के भाव से बोले थे कि शास्त्रार्थ कर लो। गाँधी जी ने विचित्र ढंग से कहा इसकी आवश्यकता ही नहीं है। मैं आपके सामने अपनी पराजय स्वीकार करता हूँ। यह प्रसंग सुनाने के बाद पालीवाल जी ने कहा 'श्रीराम तुमने भी बापू की तरह समझदारी से काम लिया है।'

तैयारियों का दौर

चालीस के उस दशक में शास्त्रार्थों की धूम थी। सनातन धर्मी और आर्य समाजी विद्वानों में खूब शास्त्रार्थ होते थे। स्वामी दयानंद ने वेदों को प्रमाण मानकर धर्म और परंपरा की जैसी प्रगतिशील व्याख्या की थी, उसने रुढ़िवादी लोगों को कुपित कर दिया था। ये लोग सनातन धर्म की संकीर्ण व्याख्या करते हुए पुराणों, परंपराओं और मूढ़ मान्यताओं में ही उसे समेट रहे थे। सनातन धर्म अपने मूलरूप में बहुत व्यापक, उदार और सर्व समावेशी धर्म है। वेदशास्त्रों के सत्य, महापुरुषों, विद्वानों और अंत में साधकों की निर्मल बुद्धि में जैसी स्फुरणा हो वही सनातनधर्म की व्याख्या के रूप में मान्य है।

आर्य समाज की धार्मिक क्रांति से जिन लोगों के निहित स्वार्थ पर चोट आती थी, उन्होंने विरोध के लिए सनातन धर्म की संकीर्ण व्याख्या कर ली। उसे ही पकड़ कर बैठ गए। उन लोगों और आर्यसमाजी कार्यकर्ताओं विद्वानों में तब तर्क-वितर्क, विवाद और टकराव के बड़े दौर चलते थे। उनमें कोई निष्कर्ष नहीं निकलता था। प्रत्युत कलह और द्वन्द्व के क्षुब्ध करने वाले दृश्य ही सामने आते थे।

शास्त्रार्थ में जय पराजय के बाद की शर्तें बहुत बार मूर्खतापूर्ण होती थी। उदाहरण के लिए बनारस में एक शास्त्रार्थ के दौरान महात्मा वेदभिक्षु ने पंडित जगन्नाथ से शास्त्रार्थ किया। तय हुआ कि जो हारेगा वह अपना सिर मुंडाएगा और प्रमाण ग्रंथों को सिर पर रखकर नंगे पांव गंगा तक जाएगा। यहाँ तक तो फिर भी ठीक था। इलाहाबाद के एक शास्त्रार्थ में हारने वाले विद्वान के लिए अपनी कन्या का विवाह जीतने वाले विद्वान से करने की शर्त रखी गई। दोनों विद्वान विवाहित थे। दोनों ही समवयस्क थे। कोई भी जीतता या हारता, प्रतिपक्षी की पुत्री से विवाह करता तो वह बेटी से विवाह करने जैसा ही था। शर्त का पता लगने के बाद कुछ धार्मिक नेताओं ने हस्तक्षेप किया और यह आयोजन रुकवाया। अवंतिका में हुए एक शास्त्रार्थ में हारे हुए विद्वान द्वारा अपने इष्ट प्रमाण पर जूते बरसाने की शर्त रखी गई। शास्त्रार्थ का विषय मूर्ति पूजा था। सनातनी विद्वान शिव के उपासक थे। वे हारते तो मंदिर में जाकर पराजय की घोषणा करते। आर्य समाजी विद्वान को हारने की स्थिति में वेदों के प्रति यही व्यवहार करना था।

किसी समय शास्त्रार्थ का उद्देश्य सदाशयता पूर्ण रहा होगा। शास्त्र का अर्थ समझने के लिए दो विद्वान या विद्वानों के समूह मंच पर आते थे। बौद्धिक



चर्चा होती थी उससे लोगों के मन मस्तिष्क खुलते थे। स्वामी दयानंद का उदय होने के बाद यह प्रक्रिया प्रखर हुई लेकिन कुछ दशक तक ही सही ढंग से चल पाई। बाद में यह कलुषित होती गई और सुलझे हुए लोग इससे परहेज करने लगे। हरिजन उद्धार के लिए छपे लेख पर आपत्तियों के उत्तर विमर्श का एक स्वस्थ रूप था। पंडितों की दी हुई चुनौती शास्त्रार्थ के विद्रूप का ही आह्वान थी। अगले दिन उन लोगों ने संदेश भेजा कि अखबार में अपनी पराजय की घोषणा करें। श्रीराम ने इसके लिए मना कर दिया। उत्तर भिजवा दिया कि हमने चुनौती स्वीकार नहीं की तो जय पराजय कैसी? उन लोगों ने तीन चार पत्र लिखे। हर बार यही उत्तर होता था। अंततः उन लोगों ने अपनी ओर से एक पर्चा छापकर बटवाया। श्रीराम ने उसका कोई उत्तर नहीं दिया। न अखबार में और न ही अलग से पर्चा छपवाकर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त की।

थियोसोफी में बिखराव

एनी बीसेंट का निधन हुए अभी साल भर ही बीता था कि उनकी संस्था थियोसोफिकल सोसायटी बिखरने लगी थी। भारतीय धर्म या सनातन धर्म को उन्होंने जिस तरह आत्मसात किया था, उसकी होड़ एक बारगी समाज भी नहीं कर रहा था। उस समय के दो सशक्त धार्मिक आंदोलन भारतीय धर्म पर छाई मलीनता को दूर करने में लगे हुए थे— एक ब्राह्म समाज और दूसरा आर्य समाज। लेकिन ये जिस धर्म संस्कृति का प्रचार कर रहे थे, उसमें समग्र भारतीयता की गूंज नहीं थी। दोनों आंदोलन वेद वेदांग को भारतीय धर्म का मूल स्रोत मानते थे। लेकिन अवतार, मूर्तिपूजा, भक्ति, बहुदेववाद, साकार उपासना और व्रत उपवास आदि साधनों को दोनों ही मान्यता नहीं देते थे। दोनों आंदोलनों ने जातिपाति, ऊंचनीच, अन्धविश्वास और रूढ़ियों के विरुद्ध आवाज उठाई। स्त्री शिक्षा का समर्थन किया और छोटी उम्र के विवाह को धर्मविरुद्ध बताया। इन संशोधनों के साथ उन्होंने एक अति भी की। वह अति सनातन धर्म के आकाश को सीमाओं में बांधने के रूप में थी। ब्राह्म समाज के पास सिर्फ विद्वानों का जमावड़ा था। सामान्य लोगों पर उसकी पकड़ नहीं थी लेकिन आर्य समाज ने व्यापक समाज को छुआ था। उसका प्रभाव दिखाई दे रहा था।

आर्य समाज और ब्राह्म समाज के विचार दर्शन की मीमांसा करते हुए पंडित श्रीपाद जोशी ने लिखा था, ब्राह्म समाज का परिमार्जित सनातन धर्म का

तैयारियों का दौर

आभास देता था जैसे वह ईसाइयत का भारतीय संस्करण हो। उसी तरह आर्य समाज भी प्रचलित हिंदुत्व से बहुत अलग दिखाई देता था। वह भारतीय धर्म की वीर भुजा और तेजस्वी मुद्रा तो है लेकिन समग्र नहीं है। एनी बीसेंट ने जिस सनातन धर्म की व्याख्या की वह मोटे तौर पर समग्र हिंदुत्व की प्रतिपादक थी। एक अंग्रेज महिला के मुँह से योग, भक्ति, अनुष्ठान, अवतार, पूजा और पुनर्जन्म आदि की बातें सुनकर भारतीय ही क्या पाश्चात्य विद्वान भी भौंचक रह गए। उन भारतीयों का अपने धर्म में विश्वास फिर से दृढ़ हो गया जो किसी कारण डगमगा रहे थे।

एनी बीसेंट अपने समय की प्रख्यात विदुषी और प्रभावशाली वक्ता थीं। वे एक अत्यंत कुलीन परिवार से आई थीं। इंग्लैण्ड में वे फेबियन सोसायटी नामक संस्था में काम करती थीं। जार्ज बर्नार्ड शॉ जैसे लेखक उनके सहयोगी थे। अंग्रेजी पर एनी बीसेंट का असाधारण अधिकार था। बर्नार्ड शॉ ने लिखा है कि इंग्लैण्ड में उनके समान ओजस्वी भाषण देने वाला कोई नहीं था। इंग्लैण्ड ही नहीं संभवतः पूरे यूरोप में भी उनके समान बोलने वाला कोई नहीं था। उनका मानना था कि भारत के पास दुनिया को देने के लिए बहुत कुछ है। वह जो दे सकता है वह सिर्फ सनातन धर्म से ही आएगा। सनातन धर्म पर आपदा विपदाओं के बादल छाये हुए हैं। उन बादलों को छितराने का अनुष्ठान सिर्फ भारतीय ही संपन्न कर सकते हैं। अपने स्तर पर वे एक प्रयोग में लगी भी थीं, लेकिन वह प्रयोग बुरी तरह विफल हुआ। उस विफलता ने धर्म क्षेत्र में कलुष को जन्म दिया जिसके कारण थियोसोफिकल सोसायटी बिखरने लगी। उस बिखराव के सदमे से और कुछ अवस्था भी हो गई थी। दोनों ही कारणों से एनी बीसेंट की इहलीला १९३३ में पूरी हो गई।

एनी बीसेंट के उत्तराधिकारी

एनी बीसेंट नहीं रही लेकिन उनके समय जो विवाद उत्पन्न हुआ वह अब भी चर्चा में था। आगरा में थियोसोफिकल सोसायटी की शाखा खुली तो विवाद की गूंज वहाँ भी आई। श्रीराम शर्मा थियोसोफिकल सोसायटी और ब्राह्मसमाज से अच्छी तरह परिचित थे। कोई सक्रिय संगठन नहीं था इसलिए थियोसोफी आंदोलन की गतिविधियां प्रकट नहीं होती थीं। श्रीराम उसके दर्शन और विचार से तो सहमत थे लेकिन कार्यक्रमों की दृष्टि से वे आर्य समाज के



ज्यादा निकट थे। राजनैतिक क्षेत्र में वे कांग्रेस के मंच पर थे तो सांस्कृतिक क्षेत्र में आर्यसमाज के मंच पर। १९३४ में थियोसोफिस्ट आगरा में सक्रिय हुए। इस समाज के इक्का दुक्का साधक या सदस्य पहले भी थे लेकिन एनी बीसेंट के निधन के बाद उन्होंने अपना काम फैलाना शुरू किया।

पंडित अनंत नारायण जुत्शी नामक साधक ने आगरा में ब्रह्मविद्या समाज की कमान संभाली। सितंबर १९३४ में उन्होंने एक उत्सव आयोजित किया। संभवतः आश्विन नवरात्रियों का समय था। जुत्शी जी ने चार दिन का एक साधना शिविर लगाया। उसमें बारह साधकों ने हिस्सा लिया। ध्यान धारणा के अतिरिक्त दोपहर और संध्या समय शिविर में प्रवचन भी होते थे। जुत्शी जी ने शिविर में श्रीराम शर्मा को भी आग्रहपूर्वक बुलाया था। साधकों से चर्चा और प्रवचनों के दौरान श्रीराम ने ब्रह्मविद्या समाज के विचारों और विश्वासों का व्यावहारिक परिचय प्राप्त किया। दार्शनिक पक्ष से अवगत होने की अपेक्षा वे समाज की अंतर्धारा के ज्यादा निकट आए। उन्होंने थियोसोफी आंदोलन के बिखराव के कारणों को जाना।

जिस विवाद ने थियोसोफी आंदोलन को आहत किया था वह जे कृष्णमूर्ति नामक एक प्रतिभाशाली युवक से संबंधित था। मदनपल्ली (चित्तूर, तमिलनाडु) में जन्मे कृष्णमूर्ति को कतिपय विशिष्टताओं के कारण एनी बीसेंट और थियोसोफी आंदोलन के एक अन्य वरिष्ठ नेता लेड बीटर ने बचपन से ही अपने संरक्षण में ले लिया था। कृष्णमूर्ति के बड़े भाई को वे पहले ही अपने संरक्षण में ले चुके थे, लेकिन उनकी आशाएँ कृष्णमूर्ति पर टिकी हुई थीं।

एनी बीसेंट का विश्वास था कि इस बच्चे पर विशिष्ट प्रयोग किए जाएं तो यह संसार को आध्यात्मिकता का संदेश देने वाला मसीहा बन सकता है। उन्होंने कृष्णमूर्ति के लिए अच्छी से अच्छी शिक्षा का प्रबंध किया। भारत से बाहर ले गईं और लंदन में थियोसोफी के पहुँचे हुए साधकों के सान्निध्य में रखा। आहार विहार वातावरण और संस्कारों पर पूरा ध्यान दिया। लगभग पंद्रह वर्ष तक तैयारी की गई। एनी बीसेंट ने कृष्णमूर्ति के संबंध में अनेक व्याख्यान भी दिए। उन व्याख्यानों का सार यह था कि भगवान बुद्ध ने महानिर्वाण में जाने से पूर्व अपने शिष्यों को वचन दिया था कि वे एक बार और जन्म लेंगे। उनकी चेतना ढाई हजार वर्ष बाद उपयुक्त शरीर को अपना वाहन बनाएगी। उस समय लुप्त होते जा रहे सम्यक मार्ग को उस वाहन के माध्यम से एक बार फिर

तैयारियों का दौर

परिभाषित करेगी। एनी बीसेंट ने १९२६-२७ में ब्रिटेन और अमेरिका में कई जगह यात्राएँ की। कृष्णमूर्ति को अपने साथ रखा। सभाओं में उनका परिचय दिया और कहा कि इस युवक के माध्यम से भगवान बुद्ध अपना संदेश मानवता को एक बार फिर देंगे।

सभाओं में कृष्णमूर्ति भी बोलते थे। उनके व्याख्यान 'अप्य दीपो भव' (अपने दीपक आप बनो) और 'सर्वम् दुखम् दुखम्' (सर्वत्र दुख ही दुख है) के संदेश पर ज्यादा केन्द्रित होते थे। दो साल तक ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस, इटली और जापान आदि देशों में बीसियों सभाएँ संबोधित करने के बाद एनी बीसेंट भारत वापस आ गई। कृष्णमूर्ति को भी वापस बुला लिया। कृष्णमूर्ति के भारत लौटते ही एक विडंबना हुई। उनके माता पिता ने पुत्र पर अपना अधिकार जताया। अधिकार वे पहले भी जता रहे थे लेकिन कृष्णमूर्ति भारत के बाहर थे, इसलिए कोई कानूनी कार्रवाई नहीं कर पा रहे थे। सन् १९२७ में भारत आते ही उन्होंने थियोसोफी सोसायटी पर मद्रास में मुकदमा ठोक दिया। कहा कि एनी बीसेंट और लेडबीटर आदि उनके पुत्र को बचपन में अपहृत कर ले गए थे। उसे बरगला कर, डरा धमकाकर अपने पास रखा और भिन्न संस्कारों में पाला पोसा।

मुकदमा लंबे समय तक चला। बहस के दौरान कई तरह के आक्षेप उभर कर आए। सामान्य स्थिति में उनका भले ही कोई महत्त्व न हो लेकिन एनी बीसेंट जैसी विदुषी के लिए वे आक्षेप बुरी तरह आहत कर देने वाले थे। 'इंडियन होमरूल लीग' जैसी सामाजिक राजनैतिक संस्था की अध्यक्ष रह चुकी एनी बीसेंट के लिए किसी बच्चे के अपहरण का आरोप ही काफी था। उस आरोप के साथ बच्चे का व्यक्तित्व नष्ट भ्रष्ट करने के आक्षेपों ने उन्हें भीतर से हिला दिया।

मुकदमे में एक स्थिति ऐसी आई जब कृष्णमूर्ति के बयानों की आवश्यकता हुई। तब वे बत्तीस वर्ष के तरुण थे और थियोसोफी सोसाइटी से संबद्ध रहने के कारण उनकी अच्छी प्रतिष्ठा हो गई थी। अपने वक्तव्य में जे कृष्णमूर्ति ने अपने आपको पूर्व परिवार और थियोसोफी आंदोलन दोनों से अलग घोषित कर दिया। उन्होंने दोनों में किसी के प्रति कोई शिकायत नहीं की लेकिन किसी से रुझान भी नहीं दिखाया। मुकदमे का अंत एक तरह से विचित्र ही हुआ। फैसले के हिसाब से वह किसी के विरुद्ध नहीं गया लेकिन एनी

बीसेंट उस आघात को सह नहीं सकी। वे बीमार रहने लगी और पांच वर्ष के भीतर ही उनका निधन हो गया।

आगरा में लगे साधना शिविर में साधकों के बीच इस विवाद पर भी चर्चा होती थी। लोगों की सहानुभूति एनी बीसेंट और लेडबीटर आदि के प्रति थी। उनके अनुसार कृष्णमूर्ति का जो भी आत्मिक विकास हुआ है, वह थियोसोफी के कर्त्ताधर्त्ताओं के कारण ही संभव हो सका है। उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए ही सही, कृष्णमूर्ति को ब्रह्मविद्या समाज से अलग नहीं होना चाहिए। उसी में रहते हुए आंदोलन को नया तेवर देते रहते।

जहां चूक हुई

शिविर का तीसरा दिन था। साधकों में चर्चा थी कि कृष्णमूर्ति ने अपना अलग संगठन बना लिया है। वे स्वतंत्र रूप से काम करेंगे। श्रीराम उस दिन भी हमेशा की तरह तीन बजे उठकर जप ध्यान में लग गए थे। ध्यान पूरा होते-होते उन्हें अपनी मनःस्थिति में 'बोध' का उदय होते हुए अनुभव किया। यह बोध थियोसोफी सोसायटी को लेकर हो रही चर्चाओं के संबंध में था। साढ़े सात बजे तक वे प्रातःकालीन कृत्यों से निवृत्त हो गए और सामूहिक साधना में बैठ गए। उस दिन का विषय था 'अध्यात्म मार्ग पर मिलने वाली अदृश्य सहायता।' थियोसोफी सोसायटी की प्रमुख धारणाओं में से एक इस विश्वास पर बोलने के लिए स्वामी निखिलानन्द आमंत्रित किए गए थे। स्वामी जी का अपना आश्रम था। चिंतन की दृष्टि से वे ब्रह्मविद्या समाज से बहुत प्रभावित थे।

प्रवचन आरंभ करते हुए उन्होंने कहा कि साधना के मार्ग पर चलने का संकल्प भी पर्याप्त है। संकल्प कर लेने के बाद मुक्त आत्माएँ सहायता के लिए दौड़ी चली आती हैं। जिस तरह बुरी शक्तियाँ अथवा आत्माएँ लोगों को पतन के मार्ग पर धकेलती हैं, उसी प्रकार मुक्त आत्माएँ भी संकल्पवान साधकों की मुमुक्षा तीव्र करती हैं। प्रवचन समाप्त हो हुआ था कि योगेन्द्र माथुर नामक एक साधक ने तपाक से प्रश्न कर दिया, 'स्वामी जी, मुक्त आत्माएँ सहयोग करती हैं तो साधकों को साधे और संभाले भी रहती होंगी।'।

स्वामी जी ने कहा, 'अवश्य ही'। इस पर माथुर का अगला प्रश्न था, 'यदि यह सही है तो कृष्णमूर्ति उस समूह से विचलित क्यों हुए जिसमें उनका विकास हुआ था?'

माथुर के इस प्रश्न का स्वामी जी के पास कोई उत्तर नहीं था। वे अवाक रह गए। फिर संभले और निष्कपट भाव से बोले, 'मेरे पास इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है। आप लोगों में कोई कुछ कहना चाहें तो स्वागत है।' 'साधक एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। माथुर के प्रश्न का उत्तर किसी के पास नहीं था। श्रीराम ने हाथ खड़ा किया और स्वामी जी का संकेत मिलते ही उठ कर खड़े हो गए। उन्होंने कहना आरंभ किया, 'केवल संकल्प ही पर्याप्त नहीं है। साधना भी चाहिए। उसके बिना अदृश्य शक्तियाँ, यहाँ तक कि परमात्मा भी कुछ करने में असमर्थ है। माननीय कृष्णमूर्ति के साथ परम विदुषी एनी बीसेंट और अन्य सिद्ध मनीषियों ने एक चूक की। वह चूक यह थी कि उनके हिस्से की साधना भी स्वयं करते रहे। इससे कृष्णमूर्ति का स्तर तो बढ़ा पर उनके पास साधना का बल संचित नहीं हो सका। इसीलिए जब औरों के विकास का दायित्व सौंपा जाने लगा कृष्णमूर्ति विचलित हो गए। उन्होंने दायित्व लेने से इन्कार कर दिया।'

स्वामी निखिलानंद को लगा कि श्रीराम अपनी अनुभूति या अंतर्दृष्टि से देखकर उत्तर दे रहे हैं। उन्होंने पूछा, 'तो क्या सचमुच भगवान बुद्ध की चेतना उनके व्यक्तित्व में उतरने वाली थी।'

श्रीराम ने कहा, 'निश्चित रूप से क्योंकि परम विदुषी एनीबीसेंट और थियोसोफी के संचालकगण उन पर सोलह वर्ष से श्रम कर रहे थे। वह श्रम कृष्णमूर्ति को उपयुक्त माध्यम बनाने के लिए था।'

स्वामी जी ने पूछा, 'फिर चूक कहाँ हुई? बुद्ध की चेतना अवतरित क्यों नहीं हो सकी?'

'इसलिए कि कृष्णमूर्ति की अपनी कोई तैयारी नहीं थी। उनसे भी तैयारी कराई जाती तो एनीबीसेंट का यह महान प्रयोग सफल होता,' श्रीराम ने कहा। कुछ रुककर वे फिर बोले 'लेकिन ऐसा नहीं है कि संभावना मिट गई है। वह अभी भी कायम है। बुद्ध की चेतना किसी और उपयुक्त माध्यम को चुनेगी।'

'आप बता सकते हैं कि वह शुभ समय कब आएगा? क्या हम लोग उस घटना के साक्षी बन सकेंगे?' स्वामी जी उत्सुक हो उठे थे। श्रीराम ने कहा, 'अगर एक अवसर चूक गया है तो दूसरा जल्दी ही आना चाहिए। उपयुक्त समय यही है। तथागत किस शरीर को अपना माध्यम बनाएंगे, कह नहीं सकता लेकिन संभव है उन्होंने किसी को अपना माध्यम बना ही लिया हो। यह भी



संभव है कि निकट भविष्य में बनाने वाले हो। उस माध्यम को किसी के प्रमाण की आवश्यकता नहीं होगी। समय अपने आप उसे पहचान लेगा।'

ब्रह्मविद्या समाज की स्वाध्याय कक्षा और ध्यान कार्यक्रम आगरा में शुरू हुए तो चलते ही रहे। साधक हर रविवार को जुत्शी जी के निवास पर इकट्ठा होते। वहाँ तत्वज्ञान की चर्चा होती। सप्ताह में जो अध्ययन किया है, उसका सार सुनाया जाता। साधक अपने विचारों का आदान प्रदान करते। कभी कभार समाज की अंदरूनी घटनाओं पर भी चर्चा होती। बाहरी गतिविधियों की चर्चा से लोग यथासंभव बचते। इनमें राजनैतिक घटनाओं से तो पूरी तरह बचने की कोशिश होती। ध्यान और कक्षा के कार्यक्रम कुछ ही समय में नियमित से हो गए। बाद में जुत्शी जी के अलावा अन्य साधकों के निवास पर भी आयोजन होने लगे। दो कक्षाएं श्रीराम के निवास पर भी हुईं। उन्हें समाज की सभी बातें पसंद थीं लेकिन राजनैतिक घटनाओं से परहेज अच्छा नहीं लगता था। इसे वे पलायन के रूप में देखते थे। ध्यान कक्षाओं, बैठकों में उन्होंने चर्चा छेड़ने की कोशिश की। समाज के कार्यकर्ताओं ने उन्हें निरुत्साहित ही किया।

चर्चा नहीं करें वहाँ तक भी क्षम्य है लेकिन समाज का कोई सदस्य इस संबंध में सुनने को भी राजी नहीं था। एक बार श्रीराम ने दृढ़ता से कहा, 'हम लोग अपने देश के वर्तमान और भविष्य पर चर्चा से बचते हैं। हम यह क्यों भूल जाते हैं कि थियोसोफिकल सोसाइटी की संस्थापक स्वयं एक राजनैतिक कार्यकर्ता रही हैं। उनसे हजारों लोगों ने अपने देश और संस्कृति पर गर्व करना सीखा है।'

बुद्धिवल्लभ नामक साधक ने इसका प्रतिवाद किया। वह बोला, 'मैडम वह सब करने में समर्थ थीं। हमारी सामर्थ्य सीमित है। हम वह सब नहीं कर सकते।'

'हम साधक हैं। साधना के लिए यहाँ एकत्रित होते हैं।' एक अन्य सदस्य ने कहा, 'यहाँ किसी तरह की राजनीति नहीं कर सकते।'

श्रीराम ने कहा, 'लाखों आंदोलनकारी जो कर रहे हैं वह क्षुद्र किस्म की राजनीति नहीं है। वह अपने खोए हुए आत्मसम्मान को प्राप्त करने का संघर्ष है।'

थियोसोफिकल सोसायटी के स्थानीय संचालक जुत्शी ने कहा, 'क्या ही अच्छा हो श्रीराम यदि आप इस तरह की चर्चाओं से बचें और अपना ध्यान अपने विकास पर केन्द्रित करें। डॉ० एनी बीसेंट की बातें सुनने योग्य थीं। वे अनुकरणीय भी हो सकती हैं। लेकिन हम उस योग्य नहीं हैं।'

श्रीराम को इस उत्तर की अपेक्षा नहीं थी। वे स्तब्ध रह गए। उठे और बोले 'हम लोगों की आस्था है कि हिमालय के गुह्य प्रदेश में रहने वाली ऋषि आत्माएँ पग-पग पर हमारी सहायता करती हैं। इस आस्था के होते हुए भी हम इतने दुर्बल हैं तो मुझे लगता है कि हमारी आस्था ही दीन हीन है।' कुछ क्षण रुककर वे बोले, 'स्वतंत्रता के बिना कोई आध्यात्मिक विकास संभव नहीं है। उसके लिए संकल्प और साहस चाहिए लेकिन मैं अनुभव करता हूँ कि हम लोग तो उसकी चर्चा तक से भी कतराते हैं।'

'फिर क्या किया जाए?' जुत्शी ने कहा। श्रीराम ने कहा, 'मैं यहाँ से लौट जाने के लिए उठा हूँ। कम से कम इतने दीन दुर्बल समुदाय का सदस्य तो नहीं ही रहूँगा।' यह कहकर वे बाकी सदस्यों की प्रतिक्रिया जाने या देखे बगैर ही कक्षा में से निकल गए।

महात्मा गाँधी से असहमति

१९३४ बीत जाने पर भी महात्मा गाँधी राजनीति में पहले की तरह सक्रिय नहीं हुए थे। बल्कि वे कांग्रेस से भी अलग हो गए थे। उस वर्ष गाँधी जी ने हरिजन उद्धार के लिए जनचेतना जगाई। फिर गाँवों के उत्थान की बात करने लगे। वे कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं से चरखा चलाने की बात कहने लगे। उन्होंने अखिल भारत ग्रामोद्योग संघ की स्थापना की। इसके लिए कहा कि गाँवों के उत्कर्ष के बिना स्वराज नहीं सधेगा। जो लोग पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं वे चरखा अपनाएँ। चरखा और इस प्रतीक से ध्वनित होने वाले ग्रामोद्योगों के विकास के लिए गाँधी जी ने तीन वर्ष का समय मांगा। अक्टूबर १९३४ में कांग्रेस के बंबई अधिवेशन में गाँधी जी की बात मान ली गई। वहाँ 'ग्रामोद्योग संघ की स्थापना' का प्रस्ताव भी पास हो गया। प्रस्ताव भले ही पास हो गया हो लेकिन कांग्रेस के बहुत से कार्यकर्त्ता गाँधी जी से इसी बात पर अप्रसन्न रहने लगे थे। वे बापू का विरोध करते, उपहास उड़ाते और कहते कि इस तरह आजादी प्राप्त करने में कम से कम सौ साल लगेंगे।

'सैनिक' पत्र में श्रीराम ने भी टिप्पणी की थी। उन्होंने लिखा कि गाँवों के उत्थान के लिए प्रयत्न किए जाने चाहिए लेकिन राजनीति में रहते हुए। गाँधी जी यदि तीन साल के लिए अलग हो रहे हैं तो उससे हजारों युवकों के मन में गिरावट आएगी। बापू इन युवकों को तो कम से कम राजनीति में ही बने रहने के लिए कहें।

स्वयं उन्होंने भी राजनीति से अल्प या पूर्णकालिक संन्यास नहीं लिया। आंदोलन को गति देने के लिए वे अपनी तरह से प्रयत्न करते रहे। गाँधी जी द्वारा तीन वर्ष के लिए सक्रिय राजनीति से अलग होने की घोषणा पर सैनिक में छपी टिप्पणी पर प्रतिक्रिया हुई। दरअसल कई लोग आंदोलन से थक रहे थे और कुछ समय अपने उजड़े या अस्तव्यस्त हुए कारोबार को संभालने में लगाना चाहते थे। उनके लिए गाँधी जी की घोषणा वरदान सिद्ध हो रही थी। सैनिक में छपी टिप्पणी ने उन्हें थोड़ा क्षुब्ध किया और उन्होंने लिखा कि महात्मा गाँधी के आदर्शों को समर्पित यह पत्र क्या अपनी दिशा धारा बदल रहा है। पालीवाल जी ने भी लगभग इसी तरह की प्रतिक्रिया की। इस पर श्रीराम ने कहा, 'बापू के प्रति हमारे मन में जो आदर है, वह जरा भी कम नहीं हुआ है। लेकिन उनके निर्णय से स्वतंत्रता आंदोलन में शिथिलता आ सकती है। इस संभावना को रेखांकित करना आवश्यक था।'

पालीवाल जी ने पूछा, 'बापू ने क्या इस बात पर ध्यान नहीं दिया होगा। वे कोई भी निर्णय लेने से पहले उसके हर पहलू को अच्छी तरह ठोक बजा लेते हैं।'

श्रीराम ने कहा, 'ठीक है। किंतु हमें दूसरे पहलुओं को अनदेखा क्यों करना चाहिए। अगर यह आकलन गलत सिद्ध हुआ तो हम अपनी त्रुटि मान लेंगे। उसमें कोई आपत्ति नहीं है।' उत्तर देते हुए उनके मन में कोई संकोच नहीं था। पालीवाल जी महात्मा गांधी के प्रति भक्ति भाव रखते हैं। कही गई बातें उन्हें अप्रिय भी लग सकती हैं। यह सोचे बिना श्रीराम ने अपनी बात निर्भीकता से रखी। पालीवाल जी ने उनकी पीठ थपथपाई और कहा, 'हमें भी गांव के बारे में कुछ विचार करना चाहिए। कुछ सोच कर बताओ।'

श्रीराम को सोचने की आवश्यकता ही नहीं हुई। पहले से जैसे निर्धारित किए हुए थे। उन्होंने कहा, 'हमें एक गांव को स्वराजी ढंग से गोद लेना चाहिए। वहां दो काम शुरू किए जाए। एक तो यह कि गांव को साफ सुथरा रखने की व्यवस्था करें। दूसरे वहां पाठशाला खोली जाए। इसके लिए चार पांच कार्यकर्ताओं का वहां बस जाना पर्याप्त होगा। बाकी व्यवस्था यहां का संगठन करता रह सकता है।'

गिने चुने वाक्यों में बापू के ग्रामोद्योग कार्यक्रम का स्थानीय स्वरूप स्पष्ट हो गया था। सुनकर पालीवाल जी की बाँछे खिल गईं। वे बोले, अगले रविवार की बैठक में यह योजना मंजूरी के लिए रख देनी चाहिए। क्या विचार है?

तैयारियों का दौर

श्रीराम ने हामी में सिर हिलाया। महात्मा गांधी के फैसले पर की गई टिप्पणी पर कार्यकर्ताओं का रोष फिर भी कम नहीं हुआ। उस बैठक में सदस्यों ने फिर से जबरदस्त विरोध किया। पालीवाल जी ने कहा कि ग्राम उत्थान के लिए जिस प्रस्ताव पर हम चर्चा कर रहे हैं वह श्रीराम का ही सुझाव है। इतना होते हुए भी हमें क्या उनकी निंदा करनी चाहिए।

पालीवाल जी की यह बात सुनकर भी कई कार्यकर्ताओं का रोष कम नहीं हुआ। वे विरोध पर अड़े रहे। उनकी जिद थी कि श्रीराम अपनी टिप्पणी के लिए क्षमा मांगें और अपने शब्द वापस लें। श्रीराम की बारी आई। वे बोलने के लिए खड़े हुए तो उन्होंने कार्यकर्ताओं ने शोर मचाया। श्रीराम ने जोर से कहा, 'मैं जो कहने जा रहा हूँ, मेहरबानी कर उसे सुनने का धीरज रखें।'

उन लोगों ने समझा कि श्रीराम शायद झुक रहे हैं। अब वे अपनी गलती मानने और पश्चाताप करने ही वाले हैं। बैठक में कोलाहल कम हुआ तो श्रीराम ने कहा, 'माना कि आप लोग सही ही कह रहे होंगे लेकिन मुझे भी अपनी समझ के अनुसार कहने का अधिकार है। विचार की इतनी भी स्वतंत्रता आप लोग नहीं देना चाहते तो मेरा मानना है कि जिस आजादी की लड़ाई हम लड़ रहे हैं, वह छलावा ही है। हम लोग शायद अंग्रेजों को हटाकर अपना प्रभुत्व लादना चाहते हैं.....।' उनकी बात का असर हो रहा था। लोग उनकी बात ध्यान से सुन रहे थे। उन्होंने अपना वक्तव्य इन शब्दों के साथ पूरा किया, 'फिर भी आप मानते हैं कि मुझे क्षमा मांगनी चाहिए तो मैं मांगता हूँ। लेकिन अपनी कही या लिखी हुई बात के लिए नहीं, उस समूह में रहने के लिए जो असहमति को जरा भी सहने के लिए तैयार नहीं है। मैं कांग्रेस का साथ छोड़ दूंगा लेकिन गलत दबाव के आगे नहीं झुकूंगा।'

पालीवाल जी, जगन प्रसाद रावत, गोपाल पारीक आदि कार्यकर्ता सन्न रह गए। पालीवाल जी ने उठकर कहा श्रीराम यदि यह आंदोलन छोड़ कर जाते हैं तो और भी कई लोग कांग्रेस से अलग होंगे। यही नहीं हम अपनी बात बापू के सामने भी रखेंगे। वहाँ उपस्थित सदस्यों को इस तरह के उत्तर और अभिव्यक्ति की उम्मीद नहीं थी। वे चुप हो गए। सर्वाधिक मुखर हो रहे कार्यकर्ता मणिलाल जैन ने कहा, 'अच्छा हो यह अध्याय यहीं समाप्त कर दिया जाए। हम आगे की बात करें।'



ग्राम देवता की आराधना

पच्चीस तीस परिवारों का एक गांव था आगरा के पास करावल। यहां दो परिवार ब्राह्मणों के और आठ परिवार ठाकुरों के थे। बाकी सभी परिवार मध्यम या पिछड़ी जातियों के थे। आबादी रही होगी ढाई सौ से तीन सौ के बीच। पालीवाल से विमर्श के दौरान श्रीराम ने एक गांव को स्वराजी ढंग से अपनाने की बात कही थी तब उनके ध्यान में यही बस्ती थी। गांधी जी के निर्णय पर टिप्पणी से उपजा बवाल शांत होने के बाद बैठक में चर्चा चली। करावल को संभालने के लिए पांच कार्यकर्ताओं को आगे आने का आह्वान किया गया। बैठक में सन्नाटा छा गया जैसे सबको सांप सूंघ गया हो। टिप्पणी पर जो लोग माफी मांगने और शब्द वापस लेने की बातें बढ़ चढ़कर कर रहे थे, वे भी चुप लगाए बैठे थे, जैसे मुँह में जबान ही नहीं हो।

श्रीराम ने कहा, 'चार कार्यकर्ता और चाहिए। मिले नहीं, मिले। लेकिन मैं अपना काम दीपावली से शुरू कर दूंगा।' उस घोषणा के बाद भी कोई कुछ नहीं बोला। कृपानिधि नामक कार्यकर्ता ने कहा, 'आप अकेले पूरे गांव को कैसे संभालेंगे?'

पालीवाल जी ने पहल की, 'साथ देने के लिए दूसरे लोगों को आना चाहिए। मेरा विश्वास है कि श्रीराम मौजूदा काम करते हुए भी करावल की जिम्मेदारी उठा लेंगे।'

'हां, हां' श्रीराम ने पालीवाल जी की बात को वजन दिया। 'अखबार, सभाएं आंदोलन और अन्य काम करते हुए मैं करावल में तीन घंटे प्रतिदिन लगाऊंगा। इतना समय कम है लेकिन मैं उसी गांव से कार्यकर्ता तैयार कर लूंगा।'

'यही ठीक होगा,' कृपानिधि ने कहा, 'गांव से ही कार्यकर्ता तैयार किए जाएं। श्रीराम जी के साथ तीन घंटा प्रतिदिन लगाने के लिए मैं भी तैयार हूँ। मैं इतना समय निकाल ही लूंगा।'

'फिर आपकी दूकान का क्या होगा?' श्रीराम ने विनोद से पूछा, 'सफाई और पढ़ाई का काम करते हुए आपको अपनी दूकान याद आएगी।' इस प्रश्न का उद्देश्य ग्राम सेवा में लगने के बाद की व्यवस्था जानना भी था। बात को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने फिर कहा, 'अगर गांव में जाकर आप अपनी दूकान और कारोबार याद करेंगे तो आपके हिस्से का काम भी मेरे सिर आ जाएगा।'

तैयारियों का दौर

‘नहीं भैया, नहीं’ कृपानिधि ने कहा, ‘मैं बड़े लड़के को दूकान पर बिठा कर चलूंगा आपके साथ। मौका मिला तो पूरे दिन भी रह लूंगा।’

दीवाली से पहले ही काम शुरू कर दिया। करावल आगरा से लगभग ढाई मील की दूरी पर था। अब तो वह शहर का ही हिस्सा बन गया है लेकिन तब वहाँ तक जाने के लिए ढंग की सड़क भी नहीं थी। श्रीराम और कृपानिधि ने एक एक साइकिल कसी और सुबह छह बजे अपने घर से निकल गए। गुलाबी जाड़ा शुरू हो चुका था। रात की छाया तब छह बजे तक फैलने लगी थी। उस समय रवाना होने के लिए थोड़ा जल्दी उठना पड़ता। श्रीराम को वैसे भी तीन बजे उठने का अभ्यास था। कृपानिधि को शुरू दिन उठाना पड़ा। बाद में भी कुछ समय तक ध्यान रखते। कुछ दिन में उन्हें भी अभ्यास हो गया।

पहले दिन करावल पहुँचने में करीब आधा घंटा समय लगा। गांव में पहुँच कर उन्होंने ठाकुर महान सिंह के घर पर दस्तक दी। वह श्रीराम को पहचानता था। आगे बढ़कर स्वागत किया। भीतर पलंग पर बिठाया और पत्नी से कह कर रोली चाँवल मंगवाए। श्रीराम ने कहा, ‘यह सब किसलिए।’

‘सुबह सुबह ब्राह्मण देवता के चरण घर में पड़े हैं। वह भी आप जैसे ऋषि के। मुझे अपने सौभाग्य का आदर करने दीजिए।’

ठकुराइन इस बीच पूजा सत्कार की सामग्री लेकर आ गई थी। दोनों ने ब्राह्मण अतिथि का चरण वंदन किया। कुशल क्षेम की औपचारिकता के बाद श्रीराम ने सीधे कहना शुरू किया, ‘हम लोग गांधीजी के रचनात्मक आंदोलन का एक चरण पूरा करने यहां आए हैं। उस चरण में पहले गांव को साफ सुथरा बनाना है। इसके बाद शिक्षा और घरेलू उद्योग शुरू करने और चलाने के बारे में सोचेंगे।’

‘गांव को साफ सुथरा रखना कौन बड़ी बात है,’ ठाकुर ने कहा, ‘अभी जमादारों को डांटते हैं। दो दिन में गांव चमक जाएगा। वैसे गांव में क्या कोई बड़ा आदमी आने वाला है?’

‘नहीं,’ अंत में पूछे गए प्रश्न का उत्तर पहले देने के बाद श्रीराम ने कहा, ‘जमादारों या दूसरे लोगों को लगाकर गांव साफ सुथरा रखना तो मामूली बात है। बापू का संदेश है कि गांव का प्रत्येक व्यक्ति अपने गांव को स्वच्छ रखने की जिम्मेदारी अनुभव करे। इसके लिए आज से और अभी से शुरुआत करनी है।’

गांव वालों की बैठक बुलाने और उन्हें कहने समझाने से पहले काम शुरू कर देना ज्यादा सुकर लगा। श्रीराम ने ठाकुर से दो झाड़ू और टोकरियां मंगाई। उन्हें लेकर बाहर चले ही थे कि ठाकुर ने कहा, 'इन्हें लेकर कहां चले देवता।'

'गांव की सफाई करने। जिन्हें अपने गांव से प्रेम है, वे हमारा साथ दें', कहते हुए श्रीराम हवेली से बाहर निकल गए। एक झाड़ू कृपानिधि को थमाई, दूसरी स्वयं हाथ में ली। टोकरियां बाहर बने चबूतरे पर रखी। कंधे पर पड़ा हुआ गमछा अपने सिर पर डाला और चेहरे पर इस तरह लपेट लिया कि नाक और मुँह में धूल नहीं जाए। कृपानिधि ने भी इसका अनुसरण किया। इतनी तैयारी के बाद वे काम में जुट गए।

हवेली के बाएं कोने से झाड़ू लगाना शुरू किया। उन्हें देखने के लिए ठाकुर और उनकी पत्नी भी बाहर तक आए थे। श्रीराम को झाड़ू लगाते देख वे भीतर दौड़े गए और एक झाड़ू खुद भी उठा लिए। उन्होंने हवेली के सामने सफाई शुरू की। ठाकुर जब अपनी हवेली के बाहर वाली सड़क साफ कर रहे थे तो श्रीराम बीच में रुके। वे चलकर ठाकुर के पास आए। बोले, 'मुझे पता था कि आप भी मेरा साथ देने के लिए बाहर आएंगे। हम लोगों ने इसीलिए हवेली के सामने वाली सड़क छोड़ दी और उसके आगे से काम शुरू कर दिया। सुनकर ठाकुर के चेहरे पर उत्साह झलक आया।'

आगरा से आए दो अजनबी और ठाकुर साहब सड़क पर झाड़ू लगा रहे हैं। यह खबर हवा के झोंके की तरह फैल गई। गांव वालों के लिए यह आठवां आश्चर्य था। जिन ठाकुर के सामने पिछड़ी जाति के लोग जूते पहन कर नहीं चल सकते थे, क्योंकि उनकी सड़क गंदी हो जाएगी, वही ठाकुर सफाई के काम में जुटे हुए हैं। लोग उन्हें देखने के लिए घर से बाहर निकले लेकिन हवेली के मोड़ तक आकर फिर ठिठक गए। ठाकुर को सफाई करते देखना कहीं उनकी शान में गुस्ताखी न हो जाए। यह सोचते हुए सावधानी के रूप में वे मोड़ पर बने मकानों की ओर से देखते रहे। ठाकुर को सफाई करते देख विस्मित होने के बाद वे एक दूसरे की ओर भी ताकने लगते। निगाहें मिलने पर अपने चेहरे पर आया विस्मय दूसरे की आँखों में संप्रेषित कर देते।

ताकझांक के इसी वातावरण में ठाकुर की गरजदार आवाज गूंजी, 'दीवार की ओर से क्या झांकता है रे गनपतिया। झाड़ू और टोकरी लेकर

तैयारियों का दौर

आ। तू भी इस काम में लग और दूसरों को भी लगा। पूरा गाँव साफ होने के बाद मंदिर में सब लोग मिलेंगे।'

ठाकुर की यह आवाज श्रीराम के कानों में भी पड़ी। उन्होंने कृपानिधि की ओर देखा। कृपानिधि ने भी नजरें उठाई। वह आह्लादित था और आँखों में श्रीराम की सराहना के भाव भी थे। गांव छोटा सा ही था। सड़कें साफ होने में एक घंटा भी नहीं लगा। झाड़ू लग जाने भर से वातावरण चमक उठा था। ठाकुर के फरमान से सब लोग मंदिर में इकट्ठे हुए। वहाँ आए लोग धूल और कचरे से सने थे। एकत्रित लोगों के सामने श्रीराम ने अपना उद्बोधन गांव वालों के हुलिये की चर्चा से ही शुरू किया। उन्होंने कहा गाँव भी भगवान का ही मंदिर है, मंदिर के भीतर देवता की जितनी जगह है, उसी का फैलाव है गांव। इसे साफ-सुथरा रखना हम सबकी जिम्मेदारी है। हम सबने जो काम आज किया, वह प्रतिदिन होते रहना चाहिए, तभी भगवान प्रसन्न होंगे। मंदिर में जैसे रोज झाड़ू बुहारी होती है, उसी तरह गांव में भी प्रतिदिन होनी चाहिए।'

कृपानिधि ने कौतुक वश पूछा, 'मंदिर की सफाई से प्रसन्न होकर भगवान मुरादें पूरी करते हैं। गांव की सफाई से हमें क्या मिलेगा?'

'गांव में बीमारियाँ नहीं फैलेगी। लोग स्वस्थ रहेंगे। उनका मन प्रसन्न रहेगा और बुद्धि निर्मल बनेगी,' श्रीराम ने स्वच्छता के लाभ गिनाए। अपने आप आने वाली इन फलश्रुतियों की श्रीराम ने आध्यात्मिक व्याख्या कर दी थी।

अगले दिन घरों के बाहर नालियाँ खोदने का काम शुरू किया। लोगों को समझाया गया कि वे घर में निकलने वाली धोवन पुछावन सड़कों पर ही न फेंक दिया करें। घरों के भीतर ही बर्तन चौका साफ करने के लिए एक जगह निश्चित करें और वहीं से मोरी बनाकर गंदा पानी नालियों में बहा दें। नालियाँ बनाने में मुश्किल से आठ दिन लगे। नाली खोद कर ईंट खड़ंजा लगाने की विधि श्रीराम ने ही सिखाई थी।

करावल को संवारने संभालने के लिए श्रीराम सुबह साढ़े नौ बजे तक वहाँ रहते। स्वच्छता और व्यवस्था का शिक्षण देने में दो सप्ताह भी नहीं लगे। ठाकुर साहब स्वयं इस काम में रुचि ले रहे थे। दूसरे लोग भी उनके कारण आगे आने लगे। बाद में यह उनका अपना दैनिक कार्य ही हो गया। घर की देहरी से बाहर वाली सड़क और पीछे की जमीन को भी वे अपने परिवार का दायित्व मानने लगे।



दीवाली के एक दिन पहले श्रीराम पूरे दिन करावल में रुके। दो सप्ताह से भी कम समय में गांव का कायाकल्प हो गया। ठाकुर साहब से श्रीराम ने कहा, 'इस बार हम लोग यहीं दीवाली मनाएंगे। ठाकुर साहब के यहाँ से गांव वालों को मिठाइयाँ जाएगी। शाम को पूजन के बाद हम लोग एक घोषणा भी करने वाले हैं।'

'घोषणा किस बारे में होगी?' ठाकुर ने पूछा, 'घोषणा उसी समय करेंगे, लेकिन निश्चित रहिए उसका जिम्मा भी आप को ही संभालना है।' सुनकर ठाकुर के मन में उत्सुकता जगी। वह आतुर होकर बोला, 'अभी बताइए न, अभी बताइए।'

श्रीराम छेड़ने के अंदाज में हँसने लगे। शाम को कृपानिधि के साथ वापस जा रहे थे। रास्ते में उसने भी ठाकुर वाली जिज्ञासा उठाई। श्रीराम ने कहा, 'ठाकुर से कमरों की व्यवस्था के लिए कहेंगे। वहाँ गांव के बच्चों की पढ़ाई होगी। पाठशाला चलाएंगे।'

'आपने ठाकुर को बता दिया होता तो अच्छा रहता। वह रात को चैन से सो तो सकता', कृपानिधि ने कहा। श्रीराम बोले इन दो सप्ताहों में ठाकुर को मन की बड़ी शांति मिली है। वह स्वयं कह रहे थे एकाध दिन के लिए थोड़ी सी बेचैनी भी सेहत के लिए आवश्यक है।



दक्षिण में प्रवास

आंदोलन और जागृति के उस दौर में भी 'सैनिक' पत्र में ज्यादा स्टाफ नहीं था। बड़े अखबारों में भी तब गिने-चुने लोग रखे जाते थे। सजावट और प्रसार संख्या पर ध्यान कम ही होता था। समाचार और जागरूकता जगाने वाली दृष्टि लोगों तक पहुँच जाए, इतना ही ध्यान रखा जाता था। सैनिक पत्र में तब चार या पाँच लोग थे। रेडियो से समाचार लिखने, उन्हें संपादित करने, कंपोज के लिए भेजने और फ्रूफ पढ़ने का जिम्मा श्रीराम पर था। इस काम में एक व्यक्ति और सहायक थे। उनका नाम था शिरोमणि जी। वे पहले 'साहित्य संदेश' नामक पत्र में काम करते थे। पत्र अपना खर्च भी नहीं निकाल पा रहा था। पालीवाल जी उन्हें यह कहकर सैनिक में ले आए थे कि अपनी साहित्यिक रुचियों को यहाँ तृप्ति देना। शिरोमणि जी के आने के बाद श्रीराम का काम थोड़ा कम हो गया। पिले रहने की स्थिति उनके साथ चार-छह महीने ही रही।

करावल को गोद लेने और वहाँ विकास की गतिविधियाँ आरंभ कर देने के बाद श्रीराम ज्यादातर समय अखबार को ही देते थे। आँवलखेड़ा भी कभी-कभी जाना जाता। पत्नी कभी कभी आगरा आ जाती थीं। कुछ समय वहाँ रहकर वापस चली जातीं। पुत्र ओमप्रकाश पाँच-छह वर्ष के हो गए थे और अपनी माँ के साथ वह भी आगरा आ जाते। श्रीराम का जीवनक्रम कुछ महीनों तक व्यवस्थित चला। वे अक्सर दस ग्यारह बजे दफ्तर पहुँच जाते और डाक वगैरह देखकर खबरों को संपादित करते।

समाचार एजेंसियाँ उन दिनों बहुत सक्रिय नहीं हुई थीं। उनका तंत्र जगह-जगह फैल नहीं पाया था। हर जगह संवाददाता रखने का रिवाज शुरू नहीं हुआ था। बड़े अखबार भी बहुत हुआ, तो राज्यों की राजधानियों में ही अपने संवाददाता रखते थे। वे भी अक्सर अंशकालिक ही होते थे। सैनिक का



काम रेडियो से चल जाता। श्रीराम स्वयं दोपहर के और शाम के समाचार बुलेटिन सुनते। उन खबरों को नोट करते और बाद में अखबार के हिसाब से खबरों की प्रति तैयार करते। रेडियो पर प्रसारित खबरें लोगों को अगले दिन पढ़ने को मिलतीं। उन खबरों में अखबार अपनी नीति के अनुसार थोड़ा सा रंग जरूर दे देते। श्रीराम बड़ी तेजी से लिखते थे। रेडियो से समाचार जिस गति से प्रसारित होते, उसी गति से वे नोट कर लेते थे। शार्टहैंड जानने वाले भी शायद इस तेजी से नहीं लिख पाएँ। श्रीराम जो लिखते वह सुवाच्य, सुडौल और सुंदर होता था। उनकी लिखावट कोई भी पढ़ सकता था। वर्षों बाद और तेजी से लिखने का अभ्यास बढ़ने के कारण उनकी लिखावट अस्पष्ट होने लगी थी; लेकिन यह 'सैनिक' में काम करने के करीब तीस-पैंतीस साल बाद की बात है।

बोलने के साथ लिखने की विशेषता से प्रभावित होकर बाबू गुलाबराय भी उन्हें समय-समय पर बुलाने लगे। उम्र बढ़ने के कारण गुलाबराय को हाथ से लिखने में कठिनाई होती थी। श्रीराम ने उनके बुलाने पर आशुलिपिक की तरह जाना शुरू किया। इसका एक कारण विद्यार्थी भाव भी था। श्रीराम सोचते थे कि बाबू गुलाबराय के पास जाने या उनका काम करने से अपनी योग्यता भी बढ़ेगी। वे सप्ताह में दो-एक दिन जाने लगे। लौटते तो 'सैनिक' के लिए उनकी कोई रचना, टिप्पणी या प्रतिक्रिया भी लेते आते। बाबू गुलाबराय की टिप्पणियाँ सामाजिक और सांस्कृतिक विषयों पर अधिक केन्द्रित होती थीं।

सैनिक में रोचक प्रसंग

कार्यालय में श्रीराम के आसपास रोचक स्थितियाँ भी बन जाती थीं। उनके पुत्र ओमप्रकाश जब कभी आगरा आते, तो सैनिक कार्यालय भी पहुँच जाते। उनकी उम्र छोटी थी और गांव से कोई न कोई उन्हें ले ही आता था। ओमप्रकाश अपने ढंग से खेलने लगते। 'सैनिक' कार्यालय में खेलने के लिए विशेष साधन तो थे नहीं। पाँच-सात साल का बच्चा अखबार के बंडलों, रूलों और कागज-कलम से ही अपना मन बहलाता। श्रीराम की मेज के पास ही रेडियो सेट रखा होता था। वह सेट काफी बड़ा था। जमीन पर रखा होने पर उसकी ऊँचाई करीब ढाई फुट होती थी। वह एक छोटी तिपाई पर रखा रहता। जब समाचार सुनने होते तो स्विच आन कर दिया जाता। उसकी आवाज काफी

दक्षिण में प्रवास

तेज थी। रेडियो चालू होता और ओमप्रकाश को उसकी आवाज सुनाई देती, तो वह झूम उठते। दौड़कर रेडियो के पास आते। जाँचने की कोशिश करते कि आवाज कहाँ से आ रही है। पिता के इधर-उधर आने पर कभी-कभार वे मेज के ऊपर भी चढ़ जाते। रेडियो के पीछे झाँकते। उस व्यक्ति को देखने के लिए बेचैन से हो जाते, जिसकी आवाज सुनाई देती।

कुछ मिनट के लिए इधर-उधर गए श्रीराम अपनी जगह लौटते, तो ओमप्रकाश की ये हरकतें देखकर मुसकरा देते। चिरंजीव को मेज से नीचे उतार कर चुप-चाप अपने काम में जुट जाते, जैसे उन्हें बेटे की इस बाललीला ने जरा भी नहीं गुदगुदाया हो। पुत्र अपनी दूसरी क्रीडाओं में व्यस्त हो जाता। गाँव से आए एक अन्य व्यक्ति ने भी रेडियो में ताक-झाँक की कोशिश की। उसके बारे में पूछा-ताछा। श्रीराम ने अपनी ओर से पूरी जानकारी दी, उसे इतना ही समझ आया कि बटन घुमाने से रेडियो चालू होता है।

कुछ देर बार श्रीराम उठकर प्रेस में गए, तो उसने रेडियो चलाकर देखना चाहा। उसने बटन घुमाया। रेडियो से आवाज नहीं आई क्योंकि वह प्रसारण का समय नहीं था। उसने दोबारा बटन घुमाया। फिर भी कोई असर नहीं हुआ, तो अगली बार जोर से उमैठ दिया। बटन हाथ में आ गया। उसे लगा कि कुछ गड़बड़ हो गया है। बटन श्रीराम की मेज पर रखकर वह दफ्तर से खिसक गया। श्रीराम लौटकर आए, तो वहाँ कोई नहीं था। बटन को मेज पर रखा देखकर उन्हें स्थिति का अंदाज लग गया। बिना खीझे उन्होंने उसे यथावत् लगाने का प्रयत्न किया। प्रयत्न सफल नहीं हुआ, तो अपने सहयोगी से मैकेनिक को बुलाने के लिए कहकर चुपचाप काम में लग गए।

आगरा में श्रीराम जितने दिन भी रहे, ताई जी उनके पास कभी नहीं आई। वे गाँव में ही रहतीं। उनसे जो हो सकता था, कामकाज देखतीं और परिवार सँभालतीं। श्रीराम ही बीच-बीच में उन्हें देखने जाते। एक बार गाँव में उन्हें तीन-चार बुजुर्गों ने घेर कर बिठा लिया। उनमें एक तो करीबी रिश्ते में चाचा ही थे। ताई जी को अपनी भाभी को घर और खेती बाड़ी के कामों में उलझते देखकर उन्हें खीझ होती थी।

श्रीराम को घेरने की सूझ भी उन्हें ही आई थी। ताई जी एक पौत्री की और दादी बन चुकी थीं। कन्या का नाम श्रीराम ने ही रखा था 'श्रद्धा'। चाचा को खीझ यह हो रही थी कि तीन बच्चों का पिता बन जाने के बाद भी श्रीराम को



पारिवारिक जिम्मेदारियों का ख्याल नहीं आ रहा। वह अपने स्वतंत्रता आंदोलन में ही रमा हुआ है। इस बार श्रीराम आये तो चाचा उन्हें समझाने और सही रास्ते पर लाने का मन बनाये बैठे थे। उन्होंने अपने साथियों को भी मदद के लिए बुला लिया था।

उन बुजुर्गों ने श्रीराम से जवाब तलब शुरू किया। चाचा ने पूछा, 'अखबार में काम करने से आदमी बहुत बड़ा इन्सान बन जाता है, है न।'

'ऐसा तो नहीं है,' श्रीराम ने कहा, 'लेकिन आप कहना क्या चाहते हैं?'

'कहना कुछ नहीं है? हम सिर्फ यह समझना चाहते हैं कि अखबार निकालने से, खबरें छापने, लोगों से, नेताओं से मेलजोल बढ़ाने पर क्या मिलता है?' चाचा ने अपनी बात स्पष्ट की। श्रीराम उनकी बात समझ तो रहे थे लेकिन यह नहीं जान पा रहे थे कि वे चाहते क्या हैं? कोई बहस शुरू किए बिना उन्होंने कहा, 'आप आदेश करो चाचाजी। घुमा फिरा कर मत कहो। मैं आपकी आज्ञा मानूँगा।'

'हम यह कहना चाहते हैं कि घर में तुम ही सबसे बड़े हो। पंडित जी के जमाने में तुम्हारी माँ ने हवेली की देहली नहीं लाँधी। वे अब भी बाहर नहीं जातीं। कोई संभालने वाला नहीं है। तुम्हारा फर्ज बनता है कि बाहर के गोरखधंधे छोड़कर उनका बोझ हलका करो।' दूसरे बुजुर्ग ने कहा। चाचा ने भी उनकी हाँ में हाँ मिलाई। श्रीराम सोचने लगे कि क्या उत्तर दें। कुछ देर रुककर वे बोले, 'लेकिन मैं जो भी कर रहा हूँ, माँ से पूछकर ही कर रहा हूँ। उनका आशीर्वाद ले कर ही मैंने देश सेवा की राह अपनाई है।'

'तुमने जिद की होगी, तो भाभी ने मन रखने के लिए कह दिया होगा। सोचो कोई भी माँ अपने कलेजे के टुकड़े को अलग करना चाहेगी क्या?'

चाचा ने कहा फिर यह भी सोचो कि वह तुम्हारी पत्नी और बच्चों की देखभाल कब तक करेगी? बल्कि तुम्हें अपनी माँ की देखभाल नहीं करना चाहिए क्या? श्रीराम के पास इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं था। कुछ देर तक बातचीत चलती रही। श्रीराम अपनी ओर से सिद्ध करने की कोशिश करते रहे कि वे माँ की मर्जी से ही स्वतंत्रता आंदोलन में गए हैं। बुजुर्ग यह समझाने में लगे रहे कि माँ ने अपने पुत्र की भावना और उत्साह का निर्वाह करने के लिए ही अनुमति दी है। उसके अभाव में वह बहुत कष्ट उठा रही है। अगर श्रीराम वापस आने की तैयारी दिखाएँ, तो वह खुश होगी। ताई जी के मन में यह साध

दक्षिण में प्रवास

है लेकिन वे उसे व्यक्त नहीं कर रहीं। दोनों प्रश्नों में बातचीत लम्बी खिंचने लगी। कोई समाधान निकलता नहीं दिखाई दिया। अंत में पाँचों लोग ताई जी से ही फैसला कराने पर सहमत हुए।

दान के साथ दक्षिणा

श्रीराम को इन चारों ने मना लिया था कि वे ताई जी के पास रहने का हठ करें। ताई जी यदि प्रसन्नता व्यक्त करें, तो मान लिया जाए कि सुराजी बनने के लिए उन्होंने ऊपरी मन से अनुमति दी थी। उन्होंने संपूर्ण हृदय से अपने चिरंजीव को देश के लिए समर्पित किया है तो वह भी पता चल जाएगा।

चारों-पाँचों ताई जी के पास एक साथ गए। वायदे के अनुसार श्रीराम ने कहा, 'माँ अब देश सेवा बहुत हो चुकी। मैं घर में रहकर ही आपकी सेवा करना चाहता हूँ। अब आगरा वापस नहीं जाऊँगा।' सुनकर ताईजी ने पहले श्रीराम को और फिर बाकी लोगों को बड़े गौर से निहारा। कुछ देर तक अपलक देखती रहीं। फिर बोलीं, 'बहुत खूब क्या नाटक सोचकर आए हो और रामकिशोर (चाचा) भैया, तुम लड़के पर दबाव क्यों बना रहे हो?'

'नहीं भाभी,' चाचा ने कहा, 'मैं दबाव कहाँ बना रहा हूँ। वह तो श्रीराम ने ही मुझसे कहा।'

ताई जी ने कुछ नहीं सुना। उन्होंने एक-एक शब्द पर जोर देकर कहा, 'जब कोई किसी को कुछ दान करता है न, तो उसके बाद दक्षिणा भी देता है। उस दान को वापस नहीं लेता। मैंने अपने बेटे को गाँव-समाज के लिए दान कर दिया है। उसे किसी कीमत पर वापस नहीं लूँगी। रही दक्षिणा की बात तो उस बारे में भी सोच रखा है।'

चारों-पाँचों लोग ताई जी का यह संकल्प सुनकर चौंके। दक्षिणा के बारे में वे कुछ साफ नहीं समझ पाए थे। उनके कान कोई नई बात सुनने के लिए उत्सुक थे। ताई जी इतना कहकर चुप हो गईं, तो उन्होंने पूछा, 'दक्षिणा के बारे में क्या सोचा है भाभी?'

'श्रीराम के साथ यह जमीन-जायदाद समाज को दक्षिणा दे दूँगी। जिस दिन वह चाहे इसे ग्राम समाज के लिए काम में लगा दे,' ताई जी ने कहा। वहाँ मौजूद लोगों के मुँह खुले रह गए। वे बोल नहीं पाए। उन्हें लगा कि श्रीराम को वापस लाने के प्रयास में हवेली और खेती-बाड़ी की जमीन भी गई। वे



कभी ताई जी की तरफ और कभी श्रीराम की ओर देखने लगे। ताई जी वहाँ कुछ और कहने या उन लोगों की प्रतिक्रिया सुनने के लिए रुकी नहीं रहीं। कहने के कुछ ही क्षण बाद वे भीतर चली गईं। श्रीराम के चहरे पर गर्व और हर्ष के मिले-जुले भाव थे। स्तब्ध चाचा के मुँह से इतना ही निकला, 'धन्य हो भाभी। आपने तो अपने गाँव का नाम दुनिया भर में रोशन कर दिया।' दो तीन दिन आँवलखेड़ा में रुककर श्रीराम आगरा आ गए। ताई जी ने इस बार बहू को भी कुछ समय के लिए शहर भेज दिया था। यह उनका दूसरी बार आना था।

स्वराज सुनिश्चित दिखा

१९३५ और उसके बाद के दो साल स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में नया मोड़ लेने वाले साल थे। ब्रिटिश संसद ने १९३५ में भारत के लिए नया विधान पास किया। इसके अंतर्गत भारत को क्रम से स्वशासन देने की योजना थी। स्वराज्य की दिशा में यह एक कदम था। समीक्षकों ने इसे स्वतंत्रता संग्राम की एक महत्वपूर्ण सफलता भी माना है। यह भी कहा है कि इससे हम १९४७ की दिशा में कई पग आगे बढ़े। नये विधान में 'वायसराय' और गवर्नरों को असीमित अधिकार दिये गए थे। उस नाते भारतीय समाज ने इसे विशेष सफलता के रूप में नहीं देखा। फिर भी विधान में चुने हुए जन प्रतिनिधियों को कुछ अधिकार दिए गए थे। अंग्रेज उसे भारतीयों को फिलहाल संतुष्ट रहने के लिए पर्याप्त मानते थे। ब्रिटेन के अखबारों ने इस विधान को ऐसी व्यवस्था बताया, जो भारतीयों को स्वशासन और अंग्रेजों को भारत में ब्रिटिश राज मालूम हो सके।

प्रमुख राजनैतिक पार्टी कांग्रेस ने शुरू में इस विधान को मानने से एकदम मना कर दिया। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने इसे गुलामी का परवाना कहा। उन्होंने घोषणा की कि इसमें भारतीयों को जिम्मेदारियाँ तो सौंपी गई हैं, लेकिन अधिकार नहीं दिए हैं। नये विधान के अनुसार कौंसिलों के चुनाव होने की बारी आई तब भी कांग्रेस का एक बड़ा वर्ग उनमें भाग लेने के पक्ष में नहीं था। सरकार फिर भी चुनाव कराने के लिए आमादा थी। वे उनमें भाग लें या न लें, इस विषय पर काफी मंथन हुआ और नेतृत्व इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि विधान से असहमति जताते हुए भी चुनाव में भाग लिया जाए। चुनाव में हिस्सा नहीं लेंगे तो कौंसिलों पर उन लोगों का वर्चस्व हो जाएगा, जो देश को

दक्षिण में प्रवास

किसी भी दिशा में घसीट ले जा सकते हैं। वह दिशा राष्ट्र, समाज के लिए आत्मघाती भी हो सकती है।

चुनाव हुए। फरवरी १९३७ में परिणाम घोषित हुए तो कांग्रेस ने संयुक्त प्रांत, बिहार, ओड़ीशा, मध्यप्रदेश और मद्रास में स्पष्ट बहुमत प्राप्त किया। बंबई से वह करीब आधी सीटों पर विजयी हुई और समान विचारों वाले दलों से मिलकर सरकार बनाने की स्थिति में पहुँची। पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत और असम में वह सबसे बड़ा दल बनकर उभरी थी।

कांग्रेस क्योंकि नये विधान के विरुद्ध थी, इसलिए धर्मसंकट उत्पन्न हुआ कि राज्यों में सरकारें बनाये या नहीं। नये विधान के दायरे में कुछ किया तो जा नहीं सकता। जो कुछ करना है वह वायसराय और गवर्नर को ही करना है। इसलिए कुछ नहीं कर पाने या कोई उलटा फैसला हो जाने की स्थिति में अपयश ही हाथ लगेगा। कांग्रेस में इस विषय पर भी गहरा विमर्श हुआ। महात्मा गांधी उन दिनों सक्रिय राजनीति से विरत थे। फिर भी वे अपने विचार व्यक्त करते रहते थे। उनसे मार्गदर्शन पाने के लिए कांग्रेसी नेता भी उनके पास अक्सर जाते थे।

धर्मसंकट की इस स्थिति से उबारते हुए महात्मा गांधी ने परामर्श दिया कि कांग्रेस को कौंसिलों में जाना चाहिए। कुछ नहीं कर सकने की स्थिति में भी नए विधान के अंतर्गत कांग्रेस सरकार बहुत कुछ कर सकती है। उसे रचनात्मक कार्यों को गति देने और लोगों के सामने एक आदर्श सरकार का स्वरूप रखने का अवसर मिल रहा है। इस अवसर को छोड़ना नहीं चाहिए। कुछ भी नहीं करे, तो भी कांग्रेस मंत्रिमंडल अपने-अपने प्रांतों में ग्रामोद्योगों को प्रोत्साहन देने, मद्यनिषेध लागू करने, खादी और स्वदेशी को बढ़ावा देने, किसानों के सिर पर देनदारियों का बोझ कम करने के और अस्पृश्यता दूर करने की दिशा में पहल कर सकती है। कम से कम इसके लिए माहौल तो बना ही सकती है। बापू के इस परामर्श और अपने राजनैतिक समीकरणों के चलते कांग्रेस ने बंबई, संयुक्त प्रांत, बिहार, मध्यप्रांत, ओड़ीशा और मद्रास में सरकारें बनाई।

ऊपरी तौर पर यह एक विडंबना थी कि जो राजनैतिक दल ब्रिटिश राज को खतम कर देने के लिए कटिबद्ध थे, वही उसकी छत्रछाया में सरकार चलाने पर राजी हो गया, लेकिन सचमुच ऐसा नहीं था। कांग्रेस सरकारों ने रचनात्मक कामों पर जोर देना शुरू किया। उसके मंत्रियों ने गांधी के बताए

अनुशासन को हृदय से स्वीकार किया। औसत भारतीय जीवन स्तर को अपनाते हुए मंत्रियों के लिए सादगी और मितव्ययिता पर जोर दिया। शिक्षा प्रसार और शराबबंदी पर गांधी जी का विशेष आग्रह था। कांग्रेस मंत्रिमंडल उस दिशा में भी सक्रिय दिखाई दिए।

राजनीति के क्षेत्र में हो रही इन घटनाओं पर श्रीराम की लेखनी निर्द्वन्द्व, निष्पक्ष और स्पष्ट चलती थी। वातावरण में कुछ समय के लिए तब निश्चित आश्वासन भाव आ गया था। श्रीराम ने अपने लेखों में इसे कहीं कहीं 'प्रमाद' भी बताया था और कार्यकर्ताओं को सावधान रहने के लिए कहा था। पत्रकार और स्वतंत्रता सेनानी के रूप में वे पहले की तरह ही सक्रिय थे, लेकिन कुछ दिनों से उन्हें अपने भीतर अकुलाहट महसूस होने लगी थी। अचानक वे गुमसुम होकर बैठ जाते। रात में सोते हुए वे चौंक कर जाग जाते और बिस्तर पर बैठे-बैठे ही पता नहीं क्या सोचते लगते। उनकी पत्नी उन्हें जागता देखकर स्वयं भी बैठ जातीं। उठकर पानी लाती। कुल्ला करने और पानी पीकर सो जाने का अनुरोध करतीं। उनकी बात श्रीराम अनमने भाव से मान लेते और सोने की कोशिश करने लगते। उनके भीतर कोई गहरा मंथन चल रहा था। वह किस विषय पर था, कुछ कहा नहीं जा सकता। विचार के स्तर पर चित्त में कोई प्रक्रिया नहीं चल रही थी, भावदशा ही बन और बिगड़ रही थी।

आंदोलन का अतिक्रम

जून १९३७ की कोई तारीख थी। प्रतिदिन की तरह उस दिन भी तड़के तीन बजे उठे। स्नानादि से निवृत्त होकर नियमित उपासना के लिए बैठे। जप और ध्यान पूरा हुआ, तो फिर उसी भावदशा ने घेर लिया। वे सामने स्थापित अखण्ड दीपक की ज्योति को ध्यान से देखने लगे। कितनी देर टकटकी लगाए देखते रहे, कुछ प्रतीत नहीं हुआ। दीपक की ओर देखते हुए चित्त एकाग्र हो गया। द्रष्टा का ध्यान प्रगाढ़ हुआ। भाव समाधि की अवस्था आने लगी। पहले द्रष्टा लीन हुआ, फिर ज्योति भी लुप्त हो गई। द्रष्टा और दृश्य दोनों लुप्त हो गए। यह अवस्था देर तक रही। श्रीराम को इतना ही याद है कि पत्नी ने झिंझोड़ कर जगाया था। लगा था जैसे नींद टूटी हो। जब वे जागे तो पूजा कक्ष में आसन लगाए बैठे थे। उन्हें इस अवस्था से पहले के दृश्य याद आने लगे।

दक्षिण में प्रवास

पहले जैसी असमंजस और संशय की स्थिति नहीं रही थी। आगे क्या करना है ? यह साफ दिखाई दे रहा था।

उठकर उन्होंने आसन समेटा। पत्नी ने पूछा छाछ ले आऊं। दूसरे दिनों की तुलना में आज देर हो गई थी। नियमित क्रम में जप ध्यान के दो घंटे बाद श्रीराम दूध या छाछ लेते थे। आज देर तक बैठना हुआ था। पत्नी ने इसलिए दो घंटे तक रुके बिना ही प्रातराश प्रस्तुत करने लगी। श्रीराम कुछ रुकने के लिए कहकर अपनी पुस्तकें देखने लगे। उन्होंने श्वेताश्वतर उपनिषद् की प्रति निकाली और उसके पन्ने उलटे, किसी प्रसंग पर उनकी दृष्टि अटकी। बहुत बाद में चलकर उन्होंने अपनी डायरी में लिखा कि इस उपनिषद् को उन्होंने एक बार में पूरा ही पढ़ लिया था। जप ध्यान के बाद चित्त में आई स्थिरता तो यथावत थी ही, उपनिषद् में उसे अभिव्यक्ति मिली।

उपनिषद् पढ़ लेने के बाद उन्होंने अपनी अर्धांगिनी से सुबह नाश्ता माँगा उसके बाद वे बोले 'दया'। दया उनकी पुत्री का नाम था। उत्तर भारत के कुलीन परिवारों में तब पत्नी को उसके नाम से बुलाने का चलन नहीं था। सरस्वती देवी उनकी ओर देखने लगीं। उन्हें सुनने के लिए उत्सुक देखकर श्रीराम ने कहा, 'हम लोग आज गाँव चलेंगे। तुम वहाँ रहना। मैं कुछ दिन के लिए दक्षिण भारत की यात्रा पर जा रहा हूँ।' पत्नी ने तुरंत तैयारी शुरू कर दी। उसी दिन दोपहर को वे अपना परिवार आँवलखेड़ा छोड़ आए और दक्षिण भारत की यात्रा का प्रबंध करने लगे। प्रेरणा उभरी थी कि पुरी, तिरुपति और कांचीपुरम् होते हुए पांडिचेरी की यात्रा की जाए। रास्ते में आने वाले नगरों या तीर्थों में रुकना नहीं है। यह यात्रा तीन सप्ताह में पूरी कर लेनी थी। आवश्यक तैयारी और व्यवस्था के साथ उनका प्रवास आरंभ हुआ।'

जगत पसारे हाथ

पुरी में उन्होंने लगभग सभी महत्त्वपूर्ण दर्शनीय स्थानों को देखा। जगन्नाथ मंदिर और शांकर मठ में उन्होंने कुछ विशेष ध्यान दिया। पुरी के मंदिर के संबंध में प्रसिद्ध है कि यह आठ सौ वर्ष से पुराना है। ब्रह्महत्या के पाप से बचने के लिए राजा अनंग भीमसेन ने इसे बनवाया था और बाद में दूसरे राजा, सामंत, जागीरदार मंदिर की शोभा समृद्धि में अपनी ओर से कुछ न कुछ बढ़ाते



रहे। श्रीराम ने जिस समय पुरी की यात्रा की, उस समय मंदिर में 'नव कलेवर' उत्सव की तैयारियाँ चल रही थीं। मंदिर में स्थापित विग्रह किसी धातु या मिट्टी से नहीं लकड़ी से बनाया जाता है। वह लकड़ी समुद्र से संकलित की जाती है। लोकश्रद्धा है कि कलेवर उत्सव के समय से यथेष्ट पूर्व ब्रह्मदारु वृक्ष का तना समुद्र की तहरों पर तैरता हुआ मिल जाता है। नियत मुहूर्त घड़ी में उस लकड़ी से बलराम, सुभद्रा और जगन्नाथ (कृष्ण) की मूर्तियाँ बनाई जाती हैं। मूर्तियों के सिर और धड़ ही खचित किए जाते हैं, कान नहीं।

अनुश्रुति के अनुसार मंदिर की स्थापना के समय देवतागण स्वयं मूर्तियाँ बनाने आये थे। उन्होंने द्वार बंद कर तीन सप्ताह में विग्रह तैयार करने का निर्णय किया था, लेकिन यह शर्त भी लगाई थी कि इस बीच उन्हें छेड़ा न जाए। न ही निर्माण शाला के द्वार को खटखटाया जाए। इक्कीस दिन पूरे होने से पहले ही राजा अधीर हो उठे। उन्हें अपना दिया वचन याद नहीं रहा और निर्माण शाला का द्वार खुलवाकर अंदर चले गए। उस समय तक अधूरी मूर्ति बनी थीं। अपनी शर्त के अनुसार देवताओं ने विग्रह बनाना रोक दिया। राजा को अपनी अधीरता पर बड़ी ग्लानि हुई लेकिन अब कुछ नहीं किया जा सकता था। अधबनी मूर्तियाँ ही प्रतिष्ठित की गई, प्रति चौदहवें वर्ष मूर्तियाँ बदलने का क्रम निश्चित हुआ। उस समय भी नई मूर्तियाँ पहले की तरह अधूरी ही रखने का निर्धारण हुआ।

जगन्नाथ के वैभव, परंपरा और महिमा देखकर श्रीराम मुग्ध हो गए। वहाँ की प्रसाद व्यवस्था ने उन्हें सबसे ज्यादा अभिभूत किया। जगन्नाथ जी का पूजा प्रसाद सभी लोगों को बिना किसी भेदभाव के मिलता है। १९३६-३७ के जमाने में जब और जगहों पर पिछड़ी और निम्न जाति कहे जाने वाले लोगों को मंदिर की चौखट के पास भी नहीं आने दिया जाता था, उस समय भी पुरी के मंदिर में हरिजनों को बराबरी से दर्शन करने देने और प्रसाद देने का परंपरा गद्गद कर देने वाली थी। समाज में स्वस्थ परंपराओं-प्रचलनों को महत्त्व देने के इच्छुक कार्यकर्ताओं या मनीषियों के लिए यह प्रचलन आदर्श उदाहरण था।

गुंडिचा मंदिर और कपालमोचन होते हुए श्रीराम शंकराचार्य मठ गए। पुरी के मंदिर से निकलकर समुद्र तट की ओर जाने पर कुछ दूर आगे दाहिने ओर मुड़ने पर शांकर मठ आता है। मठ की प्रतिष्ठा जगत् विख्यात है। आर्ष

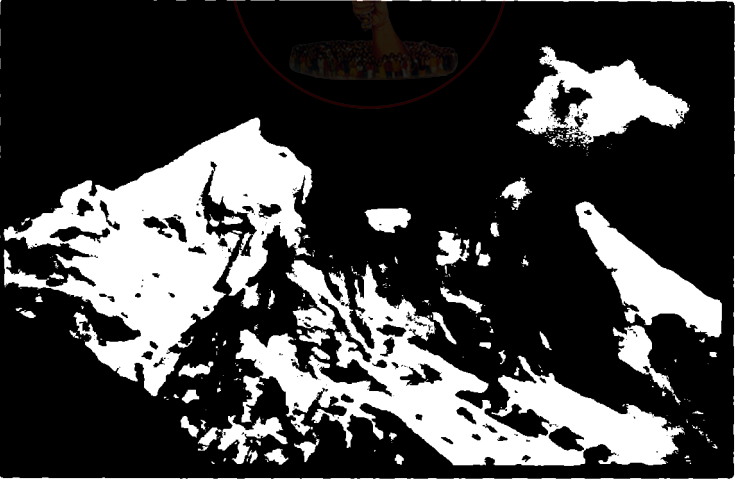


उनके कण-कण से औसत भारतीय ग्रामीण परिवेश के
एक किसान की राष्ट्रनिष्ठा, एक साधक की सत्ता
प्रकाशित होती है।

(XIII)



हिमालय उनके लिए पारस बना, जिसे स्पर्श कर वे कुन्दन बनते चले गए।



दुर्गम हिमालय जहाँ, वे अपनी गुरुसत्ता से मिलने पहुँचे।

(XIV)



हमारी आराध्यसत्ता ऋषियुग्म
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
माता भगवती देवी शर्मा ।



सहधर्मिणी का सन्निध्य मिला-माता भगवती देवी की तप साधना में
सहभागिता हुई।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org



ऋषियुग की आतिथ्य की परम्परा से खड़ा हुआ एक विराट् संगठन।

(XVI)

दक्षिण में प्रवास

संस्कृति के क्षेत्र में सामान्य रुचि रखने वाले लोग भी जानते हैं कि आदिशंकर के स्थापित किए चार मठों में गोवर्धन पीठ का स्थान अन्यतम है। श्रीराम ने भी इस मठ के बारे में पढ़-सुन रखा था। यहाँ आकर देखा तो मठ की दशा देखकर जी खिन्न हुआ। साधारण से दो मंजिले मकान में सिमटे मठ को देखकर कोई नहीं कह सकता था कि इस केन्द्र से पूर्वी भारत में सनातन धर्म की विजय दुंदुभि सुनाई देती थी।

मठ की दुर्दशा

मठ के आचार्य स्वामी भारती कृष्ण तीर्थ से भेंट का आग्रह किया। श्रीराम समझ रहे थे कि शंकराचार्य की जैसी पद प्रतिष्ठा है, उसे देखते हुए शंकराचार्य से मिलना कठिन होगा। दूसरे कई मठों और आश्रमों में ऐसा ही अनुभव हुआ था। उनकी धारणा बन गई थी कि बड़े नाम और पद वाले लोग अभिमान से ही जीते हैं। संभव है गोवर्धन मठ के शंकराचार्य इस तरह के न हों। लेकिन सावधानी तो बरतना ही चाहिए। यह सोचकर उन्होंने एक सेवक से महाराज श्री के पास संदेश भेजने के लिए कहा। मठ में गिने चुने सेवक ही दिखाई दे रहे थे। कुछ बटुक भी यहाँ-वहाँ काम करते दीख रहे थे। श्रीराम ने अनुमान लगाया कि ये आश्रम के ब्रह्मचारी होंगे। वे उस इमारत को भी गौर से देखने लगे। जिसमें मठ स्थित था या जिसमें आचार्य रहते थे। देखकर लगता था कि कई वर्षों से भवन की रंगाई-पुताई नहीं हुई है। दीवारों पर जगह-जगह पपड़ियाँ उखड़ी हुई थीं। छूने से ही वह फर्श पर गिरने लगतीं।

मठ की दशा पर गौर करते हुए श्रीराम किसी उधेड़बुन में लगे हुए थे। एक युवा संन्यासी हठात् द्वार पर प्रकट हुए और बोले 'आइए' 'आइए'। उनके स्वर में उत्साह भरा आवेग था। श्रीराम समझे कि यह संन्यासी उन्हें लिवाने आए हैं। महाराज श्री के निकट रहने वाले कोई संन्यासी होंगे। उन्होंने कहा, मैं श्रीराम शर्मा हूँ। ब्रज क्षेत्र से आया हूँ। महाराज श्री के दर्शन करने की इच्छा से यहाँ आया हूँ।

यह परिचय पाकर संन्यासी ने प्रसन्नता व्यक्त की। उनके चेहरे पर यह भाव आए और वे बोले, मुझे विदित है। जिनसे आप भेंट और विमर्श करने आए हैं, वह व्यक्ति आपके सम्मुख ही खड़ा है। आइए, भीतर आइए। सुनकर

श्रीराम ने महाराज श्री के चरणों में तुरंत प्रणाम किया। यह सादगी और सरलता विलक्षण थी। श्रीराम के मन में इसकी प्रतिध्वनियाँ गूँजने लगीं। वे महाराज श्री के पीछे-पीछे चल दिए। भीतर एक कक्ष में जाकर बैठे। महाराज श्री से बातचीत के दौरान पता चला कि मठ की आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय है। इतिहास और परंपरा के विद्वान् शांकरमठों का उल्लेख बड़े गर्व से करते हैं। उनके योगदान को भी सराहते हैं, लेकिन उनकी स्थिति सुधारने के लिए कहीं कोई प्रयास नहीं होते।

गोवर्धन मठ के पास बेहिसाब संपत्ति है, राजा, सामंत और श्रीमंत लोग धार्मिक संस्थाओं को मुक्तहस्त से दान दिया करते थे। शांकर मठ के पास उस दान से अच्छा संचय हो गया था, लेकिन उसका कोई उपयोग नहीं था। संपत्ति की मालकियत कागजों में ही थी। व्यवहार में उस पर दूसरे लोगों ने कब्जा किया हुआ था। ये वही लोग थे, जिन्हें राजसत्ताओं ने जमीन जायदाद की देखभाल के लिए नियुक्त करते हुए मठ को सौंप दिया था। मठ के पास अब चार एकड़ जमीन ही रह गई थी। उस पर भी बटाई से काम होता था। जो पैदावार होती थी, उसका आधा-तिहाई हिस्सा ही मठ के पास आता था।

श्रीराम ने महाराज श्री से पूरा विवरण जानने के बाद कहा, लोगों की इस मनमानी का क्या कारण हो सकता है? मुझे लगता है कि आश्रम के पास समर्पित कार्यकर्ताओं की कमी है?

‘कमी’ महाराज श्री ने कहा, ‘कमी छोड़िए कार्यकर्ता है ही नहीं। कुल सात-आठ ब्रह्मचारी हैं। वे सभी किशोर अवस्था के हैं। उन्हें अध्ययन से ही समय नहीं मिलता। उन कोमलगात बच्चों से अपेक्षा भी क्या की जाए?’

‘इन बच्चों के अभिभावकों से सहयोग के लिए कहा जा सकता है।’ श्रीराम ने सुझाव दिया। महाराज श्री ने इस सुझाव के संबंध में कहा कि यह संभव नहीं है। यहाँ पढ़ रहे बच्चे निर्धन परिवारों से आए हैं। माता-पिता उनकी शिक्षा का खर्च ही नहीं उठा सकते, आश्रम की सहायता करना तो बहुत दूर की बात है।

ब्रह्मचारियों की शिक्षा-दीक्षा का भार आश्रम पर ही है। यह जानकर श्रीराम ने कहा, ‘तब तो स्थिति और जटिल है। क्या यह संभव नहीं है कि समाज में निकलकर लोगों से सहयोग जुटाया जाए।’

‘लेकिन उसके लिए भी कार्यकर्ता चाहिए।’ महाराज श्री ने कहा, ‘हम स्वयं भिक्षा के लिए निकल नहीं सकते। भगवान् शंकराचार्य का बनाया हुआ अनुशासन इसके लिए रोकता है। यहाँ आने वाले लोगों से कहकर जो

दक्षिण में प्रवास

सहयोग जुटाया जा सकता है, वह जुटा रहे हैं। उससे आश्रम की वर्तमान आवश्यकताएँ पूरी होती हैं।'

बातचीत से कोई समाधान नहीं निकला। श्रीराम यह दृष्टि लेकर आश्रम से बाहर आए कि परंपरागत धार्मिक संस्थाओं में विचारशीलता नहीं है। लोकोपयोगी क्रियाकलाप नहीं चलते, इसलिए समाज का उन पर ध्यान नहीं जाता। उनके पास शक्ति भी नहीं होती। तपस्या और विद्वत्ता में असाधारण होते हुए भी मठाधीशों, आचार्यों या महात्माओं का समाज पर सीधे प्रभाव नहीं पड़ता। शांकरमठ के गौरव-गरिमा से भरे इतिहास के बावजूद उसकी दयनीय स्थिति का कारण समाज साधना का अभाव ही समझ आ रहा था। उन्हें यह भी अनुभव हुआ कि पहले कार्यकर्ताओं का निर्माण आवश्यक है। कार्यकर्ता तैयार हो जाए, तभी मंदिर या मठ बनाए जाए। इन्हीं विषयों पर चिंतन करते हुए श्रीराम पुरी से खाना हुए। वे गोवर्धन मठ के साथ जगन्नाथ मंदिर की दशा दुर्दशा और उसके कारणों पर भी सोच विचार कर रहे थे।

जलाहारी बाबा से भेंट

तिरुपति के रास्ते में श्रीराम की कुछ संतों से भेंट हुई। इनमें एक जलाहारी बाबा भी थे। वे अथिरला नामक तीर्थ में मिले थे। यह तीर्थ क्षेत्रीय स्तर पर ही प्रसिद्ध है। चेन्नई (उस समय मद्रास) उस समय मद्रास से करीब सौ किलोमीटर दूर पड़ने वाले इस तीर्थ में एक सरोवर है। सरोवर के बारे में लोगों का विश्वास है कि भगवान् परशुराम ने उसमें स्नान किया था। स्नान के बाद उन्हें मातृहत्या के पाप से मुक्ति मिल गई। सरोवर के पास एक शिव मंदिर है। जलाहारी बाबा मंदिर के पास ही एक कुटिया में रहते थे। वे सिर्फ कौपीन पहनते थे। शरीर पर उसके अलावा कोई वस्त्र नहीं होता। वे धूनी तापते रहते थे। उनका वास्तविक नाम कुछ और था लेकिन जल पर ही निर्भर रहने के कारण उनका नाम जलाहारी पड़ गया था। लोगों ने उन्हें पानी के अलावा कुछ और ग्रहण करते हुए कभी नहीं देखा। बाबा के पास पहुँच कर श्रीराम ने परिचय देने की कोशिश की। उन्होंने अनमने भाव से सुना।

श्रीराम ने कहा कि मेरी एक जिज्ञासा है। उसका समाधान आप ही कर सकते हैं। जलाहारी बाबा ने प्रश्न को फिर टाल दिया। कहा कि कोई भी साधक

किसी की जिज्ञासा पूरी करने में समर्थ नहीं है। वह जहाँ से उठती है, वहाँ पूरी होती है या परमात्मा उसे तृप्त करता है।

श्रीराम ने भी हार नहीं मानी। उन्होंने कहा, 'मैं आपके बारे में कुछ पूछना चाह रहा हूँ। लोग कहते हैं कि आप जलाहारी हैं। क्या सिर्फ जल पीकर ही जीवित रहा जा सकता है। शरीर की आवश्यकताएँ इससे पूरी हो जाती हैं।' सुनकर बाबा ने धूनी पर से ध्यान हटाया और प्रश्नकर्ता की ओर देखा। कुछ पल निहारते रहने के बाद कहा। 'तुम भी तो छाछ और जौ की रोटी से ही निर्वाह कर रहे हो न। तुम्हारे शरीर की आवश्यकता इससे पूरी हो जाती है?'

बाबा का यह उत्तर सुनकर श्रीराम अवाक् रह गये। उनकी साधना-तपश्चर्या के बारे में जलाहारी बाबा को कैसे पता लगा? अपने मूल स्थान में ही बहुत लोगों को नहीं मालूम। अतिनिकटवर्ती स्वजन परिचितों से आगे किसी को उनके व्रत-संकल्प के बारे में नहीं पता था। श्रीराम को स्तब्ध देखकर बाबा ने कहा, 'व्यथित मत होओ। तुम्हारी साधना और उद्देश्य के बारे में मुझे ही नहीं और भी कई साधकों को पता है। यह चमत्कार नहीं है। जिस सत्ता ने तुम्हें तप के लिए कहा है, उसी ने कई और साधकों को तुम्हारा सहयोग करने के लिए भी प्रेरित किया है।'

अपनी साधना के बारे में यह एक नये तथ्य का उद्घाटन था। श्रीराम ने कुछ और अधिक पूछना आवश्यक नहीं समझा। उन बाबा ने कहा वेंकटेश्वर भगवान् के दर्शन के बाद पांडिचेरी में महायोगी के आश्रम जा रहे हो ना, वहाँ से सीधे वापस जाना है। थोड़ा सा रुककर बाबा ने अपनी बात पूरी की, अब मुझसे ज्यादा और न कहलाओ। लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं।

श्रीराम ने पीछे मुड़कर देखा। कुटिया के बाहर कुछ श्रद्धालु हाथ जोड़े खड़े थे। ये लोग जलाहारी बाबा को प्रणाम करने आए थे। श्रीराम ने प्रणाम किया और वहाँ से उठ गए। वे बाबा द्वारा उद्घाटित तथ्य के बारे में सोच रहे थे।

तिरुपति की कठिन यात्रा

आश्चर्य अब अहोभाव में बदल रहा था। प्रतीत हो रहा था कि आगे बड़े काम संपन्न करना है। स्वतंत्रता आंदोलन में भागीदारी उस काम का एक छोटा सा हिस्सा है। जिस पृष्ठभूमि और मनःस्थिति ने इधर आने के लिए प्रेरित

दक्षिण में प्रवास

किया था, वह भी राजनैतिक और सामाजिक गतिविधियों से अपने आपको थोड़ा अलग करने के लिए कह रही थी।

तिरुपति के रास्ते वेंकटेश्वर भगवान् के बारे में तरह-तरह की कथाएँ, अनुभव और भावनाएँ सुनने में आईं। तिरुमलै पर्वत पर स्थित वेंकटेश्वर या बालाजी का मंदिर सर्वाधिक संपन्न देवस्थान है। किसी अतिरंजना में नहीं, सचमुच और सरकार के राजस्व विभाग द्वारा इकट्ठे किए गए आंकड़ों के अनुसार यह स्थान संसार का सर्वाधिक संपन्न देवालय है। जिस पर्वत पर यह स्थित है, उसका नाम 'श्रीसंपन्न' है। तेलगू में तिरुमलै का अर्थ यही होता है। तिरु अर्थात् श्रीमंत और मलै अर्थात् पर्वत।

कहते हैं कि साक्षात् शेष नाग यहाँ पर्वतरूप में स्थित हैं। इसे शेषाचल भी कहा जाता है। ऊपर जाकर वेंकटेश्वर भगवान् के दर्शन करने से पदाघात होता है इसलिए कुछ श्रद्धालु पर्वत के नीचे से ही प्रणाम कर चले जाते हैं। ऐसे भक्तों की संख्या गिनी चुनी है, लेकिन है। पुराण संदर्भों के अनुसार राजा अंबरीष और भक्त प्रह्लाद पर्वत पर नहीं गए थे। वे तलहटी में ही पूजा-आराधना कर वापस लौट गये थे। रामानुजाचार्य ने इस श्रद्धा के निर्वाह का एक उपाय निकाला। वे पर्वत पर दंडवत प्रणाम करते हुए वेंकटेश्वर मंदिर तक गए थे। बाद में श्रद्धालु इस मार्ग का अनुकरण करने लगे।

अब तो सात पहाड़ियों से घिरे शेषाचल या तिरुमलै पर तिरुपति के दर्शन के लिए बस मार्ग बन गया है। घुमावदार पहाड़ी रास्ता करीब बाईस मील लंबा है, लेकिन उन दिनों पर्वत पर सीधे चढ़कर जाना होता था। करीब आठ किलोमीटर की चढ़ाई थी। इसमें ढाई किलोमीटर तो बहुत कड़ी होती थी। थोड़ी-थोड़ी दूर चलकर रुकना और विश्राम करना पड़ता था, पर यात्रा पूरी करने में सात-आठ घंटे लगे होंगे। बीच में विश्राम के अलावा उन स्थानों पर भी रुके थे, जहाँ श्रद्धालु कुछ व्रत-संकल्प लेकर डेरा डाले हुए थे।

शेषाचल का परिवेश अत्यंत मनोरम था। आम और चंदन के वृक्षों से आवृत पहाड़ी पर छाया और सुगंध व्याप्त है। भाव से यात्रा करने पर रामायण और महाभारत में वर्णित ऋषियों के आश्रमों जैसी अनुभूति होती है। उन ग्रंथों को पढ़ा हो, तो उनमें आये वर्णनों का अनायास ही स्मरण हो आता है। उनकी तुलना होने लगती है कि यज्ञभाग और पूजापाठ के परिवेश से युक्त ऋषि-मुनियों की बहुलता वाले क्षेत्र इसी प्रकार के रहे होंगे।



मंदिर से करीब आठ किलोमीटर दूर पाप विनाशक तीर्थ है। यात्री दर्शन से पहले उस तीर्थ में जाते हैं। उस स्थान पर एक झरना बहता है। लोगों का मानना है कि उसमें स्नान करने से पाप नष्ट होते हैं। वहाँ पहुँच कर श्रीराम ने स्नान किया। झरने का पानी शीतल और सुस्वादु था। स्नान करते हुए प्रतीत हुआ कि पानी में कुछ औषधीय गुण हैं। स्नान कर बाहर आये, तो स्फूर्ति का अनुभव हो रहा था। शरीर से क्लान्ति मिट जाती है। थकान मिटने और रोगों पर किंचित् शामक प्रभाव होने के कारण ही मान लिया गया था कि झरने में पापों को नष्ट करने की शक्ति है। तीर्थ में रहने वाले श्रद्धालुओं का विनोद सुना। वे कहते सुनाई दिए कि हम कितने ही पाप करें, चिंता करने की जरूरत नहीं है। तीर्थ देवता उसे स्वयं ही नष्ट कर देंगे। इस तरह के भाव व्यक्त करते हुए लोग हँस देते थे।

पाप विनाशक तीर्थ से वेंकटेश्वर मंदिर जाते हुए रास्ते में पांडु गुफा भी देखी। वहाँ पांचों पांडवों की मूर्तियाँ और विष्णु के पादचिह्न थे। श्रीराम ने यहाँ थोड़ा ही समय व्यतीत किया। उन्हें लगा कि गुफा में तप साधना से उद्भूत चैतन्य भाव है। स्थान जाग्रत है। यहाँ-वहाँ घूमने से बच कर उन्होंने आधा घंटा बैठ कर ध्यान किया। इसके बाद बिना रुके तिरुपति मंदिर पहुँचे। लगभग दो मीटर ऊँची विष्णु की दंडायमान प्रतिमा देखते ही उल्लास का भाव जाग उठता है। चतुर्भुज विष्णु के दो हाथों में शंख और चक्र है। एक हाथ अभय मुद्रा में उठा हुआ है, बाँया हाथ कमर पर रखा है। गौर से देखने पर ही यह दिखाई देता है अन्यथा वस्त्र-आभूषणों से सज्जित देवता की यह भंगिमा उनके शृंगार में ही छुपी रह जाती है। अब तो विग्रह की सिर्फ एक झलक ही दिखाई देती है। पीछे से आ रहे भक्तों का रेला गर्भगृह के सामने कुछ पल भी नहीं टिकने देते। मंदिर के अर्चक और सेवक भी खीचखाँच कर हटा देते हैं, लेकिन उन दिनों यह आवेग नहीं था। लोग धीरज से खड़े रहते और अपनी बारी का इंतजार करते थे। यह धीरज मीलों पैदल चल कर, कष्ट उठाते हुए यहाँ तक पहुँचने से स्वयमेव उद्भूत होता था।

देव प्रतिमा का शृंगार

मंदिर कितना प्राचीन है? इस बारे में लोगों की अलग-अलग धारणा है। श्रीराम ने यह सब जानने में समय नष्ट नहीं किया। करीब दस मिनट भगवान् वेंकटेश्वर के विग्रह के सामने खड़े रहे और अपलक निहारते रहे।

शिव और विष्णु के समन्वित स्वरूप वेंकटेश्वर के विग्रह पर आभूषणों की दीप्ति दपक रही थी। उन्होंने ध्यान से देखा, वह दीप्ति आभूषणों की नहीं थी, बल्कि भगवान् के विग्रह से ही निकल कर आ रही थी। भीतर से उद्बोधन आया, प्रतिमा चैतन्य और स्फूर्त हो तो यह दीप्ति सहज ही आनी चाहिए। उसे आवृत रखने के लिए शृंगार किया जाता है। सामान्य दर्शनार्थियों को विग्रह का तेज विचलित कर सकता है। वह अपना धर्म कर्तव्य छोड़कर उस सेवा-पूजा में लग सकता है, जिसके लिए चेतना अभी विकसित नहीं हुई है।

भव्य वैभव और राजसी व्यवस्था को देखकर यह भाव भी आया कि लाखों-करोड़ों लोगों के इष्ट आराध्य तिरुपति का ठाठबाट भी तो उसी तरह का होना चाहिए। इन गवेषणाओं में नहीं जाकर श्रीराम ने पूजा विधि में विशेष रुचि ली। ग्यारहवीं शताब्दी से पहले का विधान कुछ और था। उसके बाद स्वामी रामानुजाचार्य की नियत विधि से पूजा हो रही है। विधि में कर्मकाण्ड और उपचारों की बहुलता थी। अष्टयाम आरती, शयन, भोजन, स्नान आदि कृत्य विधिपूर्वक संपन्न किये जाते थे। उन उपचारों का रहस्य जानने के लिए वे कुछ समय पुष्कर के पास बैठे और अपने चित्त में पैठने लगे। विधियों और उपचारों का स्वरूप से स्मरण किया।

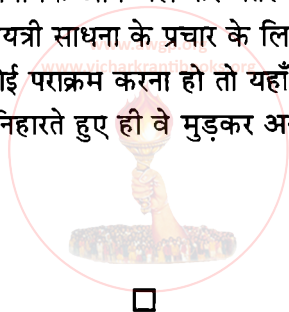
उपचारों को मानसिक जगत् में संपन्न करते हुए श्रीराम जाग्रत और संबुद्ध थे। उन्हें अनुभव हो रहा था कि प्रत्येक उपचार चित्त में विशिष्ट भाव जगा रहा है। आचमन के लिए वेंकटेश्वर को जल प्रस्तुत किया, तो प्रतीत हुआ कि विग्रह से पवित्रता की पहली किरण प्रकट हुई और आशीर्वाद की तरह अपने भीतर प्रवेश कर गई। प्रक्षालन, स्नान, आहार, विश्राम, विधान, शयन मंगला आदि उपचारों से भी कोई न कोई विशेष भाव आ रहा था। पुष्करणी के तट पर क्षौरकर्म कराकर बहुत से लोग स्नान कर रहे थे। यह प्रचलन तिरुपति में ही है। मान्यता है कि मनोकामना पूरी होने के बाद लोग यहाँ अपने केश कटाते हैं। श्रीराम को लगा कि यह देवऋण से मुक्त होने का प्रतीक है।

विशिष्ट स्थिति के साधकों को संभवतः पूजा-उपचारों की आवश्यकता नहीं हो, लेकिन सामान्य और औसत स्तर के साधकों के लिए वह आवश्यक है। इस बोध के साथ वे पुष्करणी से चलने लगे। लौटते हुए उन्होंने मंदिर के शिखर की ओर देखा। वह खिली हुई धूप से चमक रहा था। उस चमक ने श्रीराम के मन को बाँध लिया। वे ठिठक कर खड़े हो गए और शिखर को



निहारने लगे। वे अपलक देखे जा रहे थे, पीछे से किसी ने आवाज लगाई, क्या ताक रहे हो। लोगों को अपना भविष्य दिखाई देता है। तुम्हें भी कुछ दीख रहा है क्या?

श्रीराम ने इन शब्दों को सुना। न कोई उत्तर दिया और न ही पीछे मुड़कर देखा। शिखर पर उन्हें हिमालय की बर्फीली चौटी दिखाई दे रही थी। वह चौटी जिसे उन्होंने अपनी मार्गदर्शक सत्ता के सान्निध्य में बिताए समय में देखा था। कुछ क्षण के लिए उन्हें अपने गुरुदेव के श्वेत धवल केश और दाढ़ी भी दिखाई दी। फिर उनका स्मित वदन दिखाई दिया। कुछ ही क्षण में वह दृश्य लुप्त हो गया। ध्यान से देखा तो मंदिर शिखर पहले की तरह ही अपनी संपूर्ण आभा से चमक रहा था। दृश्य में निहित संदेश को समझने के लिए श्रीराम को अपने मानस में उलझना नहीं पड़ा। वह स्पष्ट था। शिखर को एक बार भरपूर दृष्टि से निहार कर उन्होंने दोनों हाथ जोड़ दिए। फिर मंदिर के द्वार की ओर देख कर प्रणाम किये। उन्हे लगा कि आगे चल कर 'तिरुपति' उत्तर और दक्षिण के मध्य एक सेतु बनेगा। गायत्री साधना के प्रचार के लिए और राष्ट्र को एक और अखंड रखने के लिए कोई पराक्रम करना हो तो यहाँ के कंपन सबसे श्रेष्ठ हैं। यही सोचकर मंदिर को निहारते हुए ही वे मुड़कर अगली यात्रा पर चल दिए।



नये आलोक का संकल्प

आदि शंकराचार्य के स्थापित मठों में काँची कामकोटि मठ की प्रतिष्ठा और वैभव सबसे अधिक है। यहाँ की परंपरा प्रायः अविच्छिन्न रही है। यहां के मठ के आचार्यों की विद्वत्ता और तपस्या भी अन्यतम है। दूसरे मठों के आचार्य भी कम विद्वान् या सामान्य तपस्वी नहीं हैं। काँची मठ की ख्याति या वैभव का बड़ा कारण शायद वहाँ कम से कम विक्षेप होना ही है। बाकी और मठों में किसी न किसी समय और कुछ में बहुधा आततायी धर्मांध शासकों के अत्याचार होते रहे। उनके कारण मठों में तोड़-फोड़ होती रही। जब तब आचार्य भी नहीं रहे।

काँचीमठ के संबंध में उल्लेखनीय बात यह भी है कि कई विद्वान् उसे आदि शंकराचार्य का स्थापित किया हुआ नहीं मानते। विख्यात तथ्य यही है कि आदि शंकर ने बद्रीनाथ, द्वारका, जगन्नाथपुरी और भृंगेरी में चार मठों की स्थापना की। वहाँ अपने चार प्रमुख शिष्यों को आचार्य बनाया और उन्हें अपने-अपने क्षेत्र में धर्म संस्कृति की विजय पताका फहराने का दायित्व सौंपा। इन चार मठों के अलावा कई विद्वान् पाँचवे मठ का अस्तित्व ही नहीं मानते। लेकिन प्रकट तथ्य यह है कि काँची मठ का अस्तित्व वर्तमान में भी है और इतिहास में भी। मठ की परंपरा मानती है कि आदि शंकर ने चारों स्थानों पर अपने शिष्यों को विराजित किया और वे स्वयं इस जगह रहने लगे। जीवन के अंतिम कुछ वर्ष यहीं व्यतीत किये। एक मान्यता यह भी है कि आदि शंकर ने अपनी इहलीला का संवरण यहीं किया था। इस मत को मानने वालों की संख्या कम ही है।

श्रीराम ने काँची में प्रवेश किया तो वे इन तथ्यों से परिचित थे। तिरुपति से यहाँ आते तक रास्ते में उन्हें इस तीर्थ के बारे में कई विलक्षण बातें विदित हुईं। उत्तर भारत में उनकी चर्चा नहीं सुनाई देती थी। इन चर्चाओं में काँची नगर का निर्माण आध्यात्मिक दृष्टि से करने का उल्लेख विशेष रूप से

आता था। तिरुपति से साथ आ रहे महात्मा शिवानंद स्वामी ने कई गूढ़ आध्यात्मिक रहस्य बताए। वे कामाक्षी के अन्यतम उपासक थे। दक्षिण के किसी वन्यक्षेत्र में रहते और तप साधना करते थे। उन्होंने पूर्णिमा के दिन काँची में कामाक्षी देवी के दर्शन का व्रत लिया हुआ था। उसी संदर्भ में काँची आ रहे थे। उन्हीं ने बताया कि यह नगर आदि शंकराचार्य निर्दिष्ट रचना पद्धति के अनुसार बसाया गया था। उस वास्तुविद्या का उल्लेख किन्हीं शास्त्रों में नहीं मिलता। आचार्य ने अपनी अंतर्दृष्टि से स्वयं ही उसका स्वरूप निर्धारित किया था। उसके कारण और नगर में धार्मिकता, आध्यात्मिकता का वातावरण निर्मित रहने के कारण वहाँ जाने वालों के मन में सात्विक भावों का उदय होने लगता है। यात्रियों का चित्त अनायास ही धर्म-कर्म में प्रवृत्त हो उठता था।

काँची नगर का केन्द्र कामाक्षी मंदिर है। उसे आधार मानकर आचार्य ने बस्ती की रूपरेखा बनाई। योग और तंत्र में श्रीचक्र के नाम से प्रसिद्ध यंत्र का ध्यान में रखते हुए नगर का शिल्प रचा। पूरा नगर ही श्रीयंत्र के आकार का बनाया। उस तीर्थ को आध्यात्मिक दृष्टि से जीवंत रखने के लिए कई स्थापनाएँ कीं, प्रचलन आरंभ किए। कामाक्षी आदि शक्ति पार्वती का ही एकरूप है। उसकी पूजा आराधना मनोकामनाएँ पूरी करते हुए आत्मिक लक्ष्य की ओर प्रेरित करती है। आदिशंकर ने कैलाश मानसरोवर से लाये शिवविग्रह 'योगलिंग' की स्थापना यहीं की थी। इस विग्रह की पूजा का अधिकार नैष्ठिक ब्रह्मचारी के लिए ही निश्चित किया। उस निर्धारण का निर्वाह करने के लिए आचार्य ने अपने एक नये शिष्य को मठ का अध्यक्ष बनाया। लोगों का अनुमान था कि आदि शंकर अपने प्रधान शिष्य सुरेश्वराचार्य को यहाँ का अधिपति बनायेंगे। सुरेश्वर ने चूँकि गृहस्थ से संन्यास लिया था। बाल ब्रह्मचारी नहीं थे। इसलिए आचार्य ने उन्हें यहाँ का अधिपति नहीं बनाया।

सात मोक्षपुरियों में एक काँची के संबंध में यह भी विख्यात है कि आदि शंकर ने यहाँ एक हजार मंदिरों का निर्माण कराया था। उन मंदिरों में दस हजार से ज्यादा शिवलिंगों की स्थापना हुई थी। अब मुश्किल से दो सौ मंदिर होंगे। काल और राज्य के थपेड़ों ने अधिकांश मंदिरों को ध्वस्त कर दिया। श्रीराम ने इन देवस्थानों में ज्यादा समय नहीं लगाया। वे कैलाशनाथ मंदिर गए। यह भारत के प्राचीनतम मंदिरों में है। आठवीं शताब्दी में पल्लव राजा द्वारा बनवाये गये इस मंदिर में शिव-पार्वती की मनोहारी प्रतिमा है। नृत्य करते हुए

नये आलोक का संकल्प

गौरीशंकर को विष्णु और ब्रह्मा देख रहे हैं। लगता है जैसे प्रतियोगिता हो रही है और दोनों देव उसमें निर्णायक की भूमिका कर रहे हैं। मंदिर का वास्तुशिल्प दृष्टि को बांध लेता है। वह नजरों को हटने ही नहीं देता।

संसार ईश्वर का नृत्य

कैलाशनाथ मंदिर के दर्शन कर श्रीराम कामाक्षी की ओर जा रहे थे। रास्ते में उन्हें एक भक्त मधुर कंठ से कोई स्तवन गाता सुनाई दिया। स्तवन का संदेश यह था कि संसार ईश्वर की कृति नहीं रचना है, नृत्य की भाँति। वह जब नृत्य करता है तो क्रीड़ा दिखाई देती है। ठहर जाता है तो सत्ता स्थिर हो जाती है। कृति को कृतिकार से अलग किया जा सकता है, मूर्ति से जैसे शिल्पी अलग होता है। लेकिन सृष्टि ईश्वर से अलग नहीं है जैसे नृत्य उसके नर्तक से। स्तवन का संदेश गूढ़ गंभीर था। उससे भी ज्यादा मन को छूता था वह कंठ और उससे आ रहे सुर।

श्री कामाक्षी मंदिर में भगवती पार्वती के सामने खड़े होकर श्रीराम ने उसी स्तवन के भाव दोहराये। वहाँ से निकल कर वे मठ में गये। मठ के आचार्य स्वामी चंद्रशेखरेन्द्र सरस्वती के पास संदेश पहुँचाया। कुछ ही देर में बुलावा आ गया। लोग उन्हें दूर से प्रणाम कर रहे थे। मठ में आने-जाने वाले लोग उनके लिए स्वामिगल संबोधन का प्रयोग करते थे। स्वामिगल किसी को अपने चरण स्पर्श नहीं करने देते थे। वे लोगों के समीप भी नहीं जाते थे। उनके दुबले-पतले, लंबे और तपःपूत व्यक्तित्व से आभा चमकती थी और लोगों की तरह श्रीराम ने भी उन्हें प्रणाम किया। स्वामिगल ने उन्हें संकेत से बैठ जाने के लिए कहा। उन्होंने संस्कृत में ही कुशल क्षेम पूछी। हिंदी उन्हें आती थी लेकिन वे अपने आपको संस्कृत में ज्यादा अच्छी तरह व्यक्त कर पाते थे। कुशलक्षेम पूछने के बाद स्वामिगल ने श्रीराम के वेश-विन्यास की ओर गौर से देखा और कहा, 'आप भी मोहनदास के अनुयायी हैं क्या?'

मोहनदास से उनका आशय महात्मा गांधी से था। देश की स्वतंत्रता के लिए आंदोलन छेड़ने से पहले बापू ने स्वामिगल से भेंट की थी। भारत को समझने के लिए वे देश के कोने-कोने में घूमे थे। स्वामिगल से चर्चा के दौरान बापू ने अपनी भावी योजना के बारे में चर्चा छेड़ी थी। स्वामिगल ने उन्हें कहा था कि आंदोलन मात्र सत्ता हस्तांतरण के लिए ही न हो। स्वतंत्रता का अर्थ



अपने राष्ट्र और धर्म का गौरव होना चाहिए। महात्मा गाँधी ने भारत लौटने के तुरंत बाद वाले वर्षों में यह भेंट की थी। वे भेंट के समय मोहनदास ही थे। स्वामिगल उन्हें इसी नाम से याद करते थे। गाँधीजी के आंदोलन में आगे चल कर स्वदेशी, भारतीयता, स्वधर्म जैसे भावों का समावेश हुआ। यह समावेश उनकी अपनी आत्मीय प्रेरणा से ही आया था। इसमें कोई संदेह नहीं है; लेकिन जिन विभूतियों ने उनकी आस्था को छुआ था, उनमें स्वामी चंद्रशेखरेंद्र सरस्वती भी थे। महात्मा गाँधी ने स्वयं अपनी आत्मकथा में इस तथ्य का परोक्ष उल्लेख किया है। श्रीराम से जब स्वामिगल ने गाँधी जी का अनुयायी होने की बात पूछी तो वे 'हाँ' या 'ना' कुछ नहीं कह पाये। सामाजिक और राजनीतिक कर्म के पीछे तप और साधना की प्रबल धाराएँ भी उनके चित्त में बहती थीं। यह सोचकर वे चुप रहे।

स्वामिगल ने असमंजस समझ लिया था शायद। वे बोले, 'मोहनदास के लिए राजनीतिक कर्म पहले था। धर्म और साधना उनका निजी और आंतरिक पक्ष था; लेकिन आपके साथ ऐसा नहीं है शायद। नियति ने आपके लिए भीतर और बाहर, निजी और सामाजिक दोनों क्षेत्रों में धर्मधारणा की ही प्रधानता रखी है।

स्वामिगल की आस्था ने श्रीराम को पुलकित किया। यह तो वे जानते ही थे कि उनकी साधना और भावी महत्कार्य को सिद्धयोगियों का समर्थन प्राप्त है। सूक्ष्म जगत् में इस उद्देश्य के लिए सहयोग और समर्थन बरस रहा है। स्वामिगल से विभिन्न विषयों पर खुलकर चर्चा हुई। इनमें परंपरा के साथ शास्त्र की मीमांसा और आधुनिक परिस्थितियों के अनेक संदर्भ थे। महात्मा गाँधी का हरिजन या अछूत उद्धार कार्यक्रम उन दिनों विवाद का विषय था। इस विषय में स्वामिगल का मत जानने की दृष्टि से श्रीराम ने पूछा, 'मनुष्य क्या किसी कुल वर्ग में जन्म लेने के कारण ऊँच-नीच होता है?'

परंपरा की दृष्टि

श्रीराम ने इसलिए भी पूछा कि स्वामिगल उच्च कोटि के संत और तपस्वी थे। इन सामाजिक मुद्दों पर उनकी राय परख रखती थी। उन्होंने उत्तर दिया, 'जिन कारणों से व्यक्ति उच्च अथवा निम्नकोटि का गिना जाता है, उनमें वंश और जाति भी एक है।'

नये आलोक का संकल्प

‘किसी परिवार में जन्म लेने के कारण ही व्यक्ति शूद्र या महान् हो सकता है। इसके पीछे क्या रहस्य है?’ श्रीराम ने पूछा। इस पर उनने उत्तर दिया, ‘आज की परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए इसका मर्म नहीं समझा जा सकता। हमारे ऋषि मुनि जिन दिनों आत्मिक उन्नति के लिए तरह-तरह के प्रयोग कर रहे थे, उन दिनों चेतना को निरंतर या कहें जन्मांतर तक संस्कारित करने के लिए वर्ण और जाति के रूढ़ नियम बनाये गये। किसी समय उनकी उपयोगिता थी। आज नहीं है।’

‘वर्ण या जाति के आधार पर ऊँचनीच मानने की किसी भी समाज में क्या उपयोगिता हो सकती है?’ श्रीराम के इस प्रश्न पर स्वामिगल बोले ‘ऊँचनीच और उस आधार पर किसी को मानित या अपमानित करने की तो कभी कोई उपयोगिता नहीं थी। समाज में जब तक स्वस्थ वातावरण रहा तब तक आध्यात्मिक दृष्टि से ही इसका महत्व था। एक ही स्वभाव, संस्कार और प्रवृत्ति के लोग अपने लिए अनुकूल परिवेश में रहे। परिवारों या जाति-समूहों में संरक्षण और वातावरण ही मिलता है।’ स्वामिगल ने विषय को विराम देते हुए कहा, ‘लेकिन यह बीते युग की बातें हैं। नई शिक्षा और शासन के संसर्ग से स्थितियाँ बहुत बदल गई हैं। उन बातों को फिर से दोहराया नहीं जा सकता।’

गायत्री उपासना, वेद के अध्ययन अधिकार, शौचाचार और कर्मकाण्ड आदि के संबंध में स्वामिगल की अपनी मान्यताएँ थीं। श्रीराम ने उनमें से कुछ पर चर्चा की और पाया कि उनके विचार रूढ़िवादी हैं, लेकिन निराधार नहीं हैं। गायत्री उपासना के संबंध में ही जैसे उन्होंने कहा यह सिर्फ ब्राह्मणों की ही है। चर्चा के दौरान ही स्पष्ट हो सका कि ब्राह्मण का अर्थ इस जाति में उत्पन्न होना ही नहीं है। प्रवृत्ति ब्राह्मणत्व की होनी चाहिए। वह अर्जित भी किया जा सकता है। नहीं हो तो किया जाना चाहिए। सात्विक और जिज्ञासु प्रवृत्ति हो तो ही शास्त्रों का अध्ययन परिणाम देता है, अन्यथा अधिकारी व्यक्ति शास्त्र और विद्या का उपयोग अपने विनाश में ही करता है। वह असुरों की भाँति न अपना भला कर सकता है, न ही दूसरों का। मंदिरों में पूजा आरती नियत विधि-विधान से सम्पन्न होनी चाहिए। विधान का उद्देश्य उस कर्म में जीवन और ऊर्जा उत्पन्न करना है।’

नये विधान की रचना भी की जा सकती है, स्वामिगल ने कहा ‘परंपरा और व्यवस्था में संशोधन भी किये जा सकते हैं। लेकिन उसके लिए अधिकार

चाहिए। वह अधिकार ऋषि सत्ताओं से ही प्राप्त होते हैं। हर कोई संशोधन या नये निर्धारण करता रहे, तो उससे विश्रृंखलता ही आयेंगी।'

उन्होंने उदाहरण दे कर कहा, 'शासन के नियम शासक ही बनाते हैं न। वे ही उनका पालन कराने में समर्थ भी हैं। दूसरा कोई व्यक्ति नहीं बना सकता। धार्मिक क्षेत्र में भी नई परंपराओं या सुधारों को ऋषिगण ही नियत कर सकते हैं।'

'वह अधिकार अर्जित किया जाता है या प्राप्त होता है?' श्रीराम ने पूछा। स्वामिगल ने कहा, 'समय और समाज की आवश्यकता के अनुसार परमसत्ता ही यह अधिकार देती है। अधिकार की कसौटी उस परंपरा या विधान के निर्वाह की सामर्थ्य है। एक नियम बनायें और उसके अनुसार चलने पर परिणाम उत्पन्न नहीं हो सके तो नियम का कोई लाभ नहीं है। वह बच्चों का खेल है। भगवान शंकराचार्य ने विविध पूजा-अनुष्ठानों का गठन किया। उनमें परिणाम उत्पन्न करने की सामर्थ्य भी उन्हीं ने उत्पन्न की। परंपरा ने बाद में उसका पोषण किया। अब भी नये विधान की रचना की जा सकती है। किसी भी समय की जा सकती है। उसके लिए सिर्फ अधिकार की ही आवश्यकता है।'

मार्ग का निर्धारण

चर्चा बहुत चली। स्वामिगल ने कई बार संकेत किया कि नये सूत्रपात का समय आ गया है। देशकाल की स्थितियों के अनुसार ऋषिसत्ताओं ने लोगों के आभ्यंतर विकास के लिए उपयुक्त मार्ग का गठन कर लिया है। किसी अधिकारी व्यक्ति से उसका प्रवर्तन होना ही शेष है। उन्होंने यह नहीं बताया कि वह अधिकारी व्यक्ति कौन है? किन लक्षणों से उसे पहचाना जा सकेगा। उसकी सत्ता को कौन प्रमाणित करेगा? श्रीराम ने इन बातों को पूछना आवश्यक नहीं समझा। एक आशंका या जिज्ञासा अवश्य रखी कि प्रवर्तक होने का मिथ्या दावा करते हुए भी तो कुछ लोग उभर सकते हैं। उनमें सही और गलत की पहचान कैसे होगी?

उत्तर में स्वामिगल ने कहा 'लोक ही प्रमाण होगा। यह भी प्रमाण होगा कि प्रवर्तन या परिवर्तन आकाश से नहीं आएगा। उसके पीछे परंपरा का बल भी होगा। परंपरा (ऋषि प्रणीत व्यवस्था)की अवमानना करते हुए कोई संशोधन नहीं होना है। जहाँ इस तरह की धृष्टता होती दिखाई दे तो समझना

नये आलोक का संकल्प

चाहिए प्रवंचना हो रही है।' इतना कहकर स्वामिगल उठते हुए बोले, 'इन बारीकियों में जाना आवश्यक नहीं है। अम्मा (कामाक्षी) और महाकाल स्वयं नियत और प्रमाणित कर देंगे।'

चर्चा को विराम मिलने के बाद श्रीराम भी उठ गए। स्वामिगल ने मठ की यात्रा कराने के लिए कुछ अधिकारियों को संकेत कर दिया। मंदिर, पाठशाला, गुरुकुल, यज्ञस्थल और वहाँ से चल रहे सेवाकार्यों को उन्होंने मनोयोग से दिखाया। श्रीराम ने भी एकाग्र चित्त होकर देखा। कुछ स्थापनाओं के बारे में बहुत कुरेद कर पूछा। वह पूछना इस तरह था जैसे स्वयं भी उस तरह की गतिविधियाँ चलानी हो और यहाँ उसकी विधि-व्यवस्था समझ रहे हों।

कामकोटि मठ से विदा लेने के पूर्व श्रीराम एक बार फिर स्वामिगल के पास गये। उन्होंने रुद्राक्ष की एक माला दी और श्रीयंत्र भी दिया। कहा कुछ नहीं। श्रीराम ने निवेदन किया, 'आपके आशीष ग्रहण करता हूँ। मुझे बल प्रदान करते रहिए।' स्वामिगल ने माला और श्रीयंत्र की ओर बारी-बारी से संकेत किया 'अपना आत्म और भगवती का वैभव ही आपको सफल बनायेगा।' माला से उनका आशय अपने आत्म को जगाने के लिए किये जाने वाले जप-तप से था। श्रीयंत्र का अर्थ दिव्य-सत्ताओं के अनुग्रह से मिलने वाली उपलब्धियाँ थीं। यह यंत्र श्री, समृद्धि और वैभव की कामना से सिद्ध किया जाता है। स्वामिगल ने मंत्र की पूजित और सिद्ध रचना ही श्रीराम को प्रसाद रूप में दी थी। वे प्रणाम करते हुए उठे और बाहर आ गए। बाहर निकल कर उन्होंने एक बार फिर मठ के शिखर को निहारा।

अरविंद आश्रम की ओर

श्री अरविंद आश्रम तब कुछ ही मकानों और खुले मैदान तक सीमित था। अब तो यह करीब छब्बीस वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला हुआ है। चालीस के दशक में श्री माँ और श्री अरविंद के अलावा पैंतीस-चालीस साधक और रहते थे। उनमें भी कुछ आश्रम से बाहर पांडिचेरी में अलग से खरीदे या किराये पर लिए मकानों में थे। यद्यपि देश-विदेश से लोगों का आना-जाना बना रहता था। इनमें श्री अरविंद के शिष्यों की संख्या ज्यादा होती थी। पांडिचेरी घूमने आये लोग तब आश्रम में ज्यादा नहीं थे। वहाँ उनके देखने लायक कोई जगह नहीं थी। साधना और स्वाध्याय का वातावरण था। निश्चित समय पर माताजी

अभ्यर्थियों से मिलने के लिए बैठती थीं। कभी-कभार आध्यात्मिक विषयों पर चर्चा छिड़ जाती थी। तब कुछ देर लग जाती थी। इन चर्चाओं में सामान्य यात्रियों की क्या रुचि हो सकती थी?

यात्रा के समय श्रीराम गंतव्य स्थान के बारे में यथासंभव जानकारीयाँ जुटा लेते थे। यह उनका स्वभाव बन गया था। सहयात्रियों से इधर-उधर की गप हाँकने के स्थान पर वे उस क्षेत्र के अतीत, रीति-रिवाज और लोगों में स्वभाव को समझने की कोशिश करते हुए चर्चा छेड़ते थे। इन विषयों पर लोगों से जो जानकारी मिलती उसमें बहुत सी सूचनाएँ व्यर्थ भी होती। सुनी-सुनाई बातों में कुछ अपनी ओर से जोड़कर कहना कई लोगों का स्वभाव है। उन जानकारीयों को छाँटने और उपयोगी को ही ध्यान में रखने की कला भी श्रीराम ने सीख ली थी।

अरविंद आश्रम पहुँचने तक श्रीराम ने आश्रम और पांडिचेरी के बारे में बहुत कुछ जाना। यह स्थान ब्रिटिश भारत का हिस्सा न होकर फ्रांस के अधिकार में आता था। यहाँ कुछ पैदा नहीं होता था। पांडिचेरी में अपने उत्पादन के नाम पर प्याज के सिवा कोई विशेष फसल नहीं होती। समुद्र में होने वाली पैदावार के रूप में सिर्फ मछलियाँ ही थीं। पांडिचेरी का शेष भारत अथवा ब्रिटिश राज से कोई संबंध नहीं था। इसलिए खाने-पीने की चीजें फ्रांस से ही आती थीं। खाद्य सामग्री डिब्बा बंद होती थी और अपेक्षाकृत सस्ती होती थी। श्री अरविंद जब यहाँ आए तो डबलरोटी और दूध के सहारे रहे। श्रीमाँ के आने के बाद उनके और साधकों के आहार में थोड़ी विविधताएँ आईं। उन्होंने आश्रम में मकानों के साथ लगी जमीन पर, दीवार के सहारे फूलों के पौधे बनवाये, खाली पड़ी जमीन पर क्यारियाँ बनवाई और वहाँ शाक भाजी उगाना शुरू किया। गायें पालना शुरू किया। धीरे-धीरे एक गौशाला ही विकसित हो गई। श्री माँ ने यह काम १९२६ से शुरू कर दिया था और बारह-तेरह साल में यह काफी फैल गया था।

श्रीराम को सहयात्रियों से यह जानकारी आश्रम पहुँचने के पहले ही मिल गई थी। स्पष्ट है उन सहयात्रियों में ऐसे लोग ही थे जो आश्रम में नियमित रूप से यहाँ आया करते थे। उन्हीं लोगों से पता चला कि आश्रम में आवश्यकतानुसार मशीनों का उपयोग भी किया जाता है। भोजन में सात्विकता

नये आलोक का संकल्प

पर पूरा ध्यान दिया जाता है। आत्मिक प्रगति के लिए आहार के महत्व को मानते हुए ही गाय के दूध को प्रमुख रूप से चुना गया था।

पांडिचेरी की वर्तमान स्थापना अठारहवीं शदी में फ्रांसीसी स्थापत्यविद् मार्टिन ने की थी। उसी का विस्तार १९४० में और उसके बाद अब तक दिखाई देता है। तमिल में 'पुंडु' का अर्थ नया और 'चेरी' का अर्थ शहर है। शहर का पुराना या तमिल नाम 'पुंडुचेरी' ही था। उच्चारण क्रम में वह पांडुचेरी हो गया। इससे पहले शहर का नाम मेदापुरी था जिसका अर्थ होता है, ज्ञान का शहर। पांडिचेरी पहुँचने के बीच ही जानने में आया कि अतिप्राचीन काल में अगस्त्य मुनि ने यहीं बैठकर तपस्या की थी। उन्होंने यहाँ आश्रम बनाया था और एक टिटहरी को न्याय दिलाने के लिए इसी स्थान पर बैठकर समुद्र का जल पी लिया था। इन सूचनाओं से अवगत होते हुए श्रीराम ने आश्रम में प्रवेश किया। दोपहर का बारह-एक बजे का समय रहा होगा।

स्वागत कार्यालय में रजनी भाई नामक कार्यकर्ता नियुक्त थे। उनके माता-पिता हरिद्वार में थे। तीस-पैंतीस साल पहले वे गंगा किनारे जा बसे थे। रजनी भाई की उम्र चालीस से ऊपर रही होगी। उन्होंने बचपन के कुछ वर्ष हरिद्वार में ही व्यतीत किए थे। मथुरा-वृंदावन भी आये-गये थे। पिछले तीन वर्ष से रजनी भाई अरविंद आश्रम में थे। उन्हें पता चला कि गंगा-यमुना के क्षेत्र का एक साधक आया है, तो बड़े प्रसन्न हुए। यह जानकर और भी प्रसन्नता हुई कि श्रीराम साधक हैं; लेकिन श्री अरविंद के शिष्य नहीं हैं। उनसे कोई आध्यात्मिक मदद लेने नहीं आये हैं। कुछ सीखने ही आये हैं।

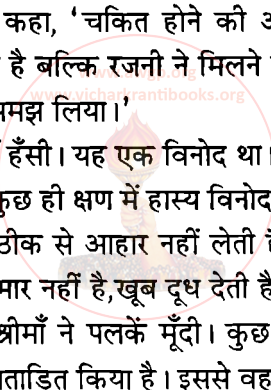
दिव्य चेतना का आश्वासन

श्री अरविंद उन दिनों एकांत में थे। सन् १९२६ में आरम्भिक दिनों से ही आश्रम और साधकों का दायित्व माताजी को सौंपने लगे थे। श्री माँ की उम्र तब लगभग पचास वर्ष रही होगी। २४ नवंबर को एक बैठक में सम्मिलित साधकों को दिव्य अनुभूति हुई। साधकों का ध्यान लग गया था। वे समाधि की अवस्था में पहुँच गये थे। यह अनुभूति पैंतालीस मिनट तक बनी रही। नीरव और निस्तब्ध शांति जब पूरी हुई और साधक अपनी सहज मनोदशा में आये तो लगा कि जैसे कोई दिव्य स्वप्न देखा हो। इस सामूहिक अनुभूति और उसके पार्श्व में काम कर रहे दिव्य अदृश्य घटनाक्रमों के कारण घोषित किया गया कि



यह सिद्धि दिवस है। श्री अरविंद इस दिव्य घटना के बाद लगभग पूरी तरह एकांत में चले गये।

रजनी भाई ने श्रीराम को इन बातों की जानकारी दी। यद्यपि उन्हें यह सब पहले भी मालूम था। रजनी भाई ने आश्रम में ही उनके लिए ठहरने का प्रबंध किया और भोजन आदि से निवृत्त होने के बाद यहीं आ जाने के लिए कहा। उनके लिए श्रीमाँ से मिलने का समय भी तय कर दिया। तीसरे पहर वे भी श्रीमाँ से मिलने वाले थे। यह समय आश्रम के कार्यकर्त्ताओं और नैष्ठिक साधकों के लिए ही सुरक्षित रहता है। शाम के दर्शन में दस-बारह लोग थे। इनमें कुछ साधक भी थे।

श्रीमाँ ने आशीष देते हुए दायां हाथ उठाया और नये आगंतुक पर दृष्टि डाली। यह नये आगंतुक श्रीराम ही थे। उन्होंने अपना परिचय देने की कोशिश की, इससे पहले ही श्रीमाँ ने नाम लेकर पुकारा। श्रीराम के चेहरे पर थोड़ा विस्मय आया तो उन्होंने कहा, 'चकित होने की आवश्यकता नहीं है। मैंने किसी सिद्धि से नहीं जाना है बल्कि रजनी ने मिलने वालों की सूची में तुम्हारा नाम लिखा था। उसी से समझ लिया।' 

इतना कहकर माँ हँसी। यह एक विनोद था। श्रीराम भी हँसे और वहाँ उपस्थित अन्य लोग भी। कुछ ही क्षण में हास्य विनोद थम गया। एक कार्यकर्त्ता ने शिकायत की कि रमा ठीक से आहार नहीं लेती है। (रमा गौशाला में एक गाय का नाम था) वह बीमार नहीं है, खूब दूध देती है, लेकिन चारा-पानी नहीं लेती। क्या किया जाए। श्रीमाँ ने पलकें मूँदी। कुछ देर चुप रही और बोली ग्वाले ने उसके शिशु को प्रताड़ित किया है। इससे वह नाराज है। ग्वाले से कहो कि रमा से अपने किये के लिए खेद व्यक्त करे। आश्रम में एक मकान में खिड़कियाँ ठीक से बंद नहीं होती। उनकी मरम्मत कराई थी। दरवाजे फिर भी जस के तस थे। पूछने वाले का आशय शायद यह रहा हो कि श्रीमाँ इसका भी कोई आभ्यंतर कारण सुझाए। ऐसा कुछ नहीं हुआ। श्री माँ ने दरवाजे की दोबारा रिपेयरिंग के लिए कहा। यह भी कि बढ़ई ने ध्यान से काम नहीं किया होगा उस पर निगरानी रखी जाए।

छोटी-छोटी बातें भी लोग श्रीमाँ से कर रहे थे। श्रीराम को आश्चर्य हो रहा था। वे सोच रहे थे कि इस तरह की बातें स्वयं ही तय कर लेनी चाहिए। वहीं किसी ने महात्मा गाँधी के बारे में चर्चा छेड़ी। सेवाग्राम में जवाहरलाल

नये आलोक का संकल्प

नेहरू, सरदार पटेल और कुछ दूसरे नेता स्वतंत्रता आंदोलन के किसी कार्यक्रम के बारे में चर्चा कर रहे थे। समस्या कार्यकर्त्ताओं में सामंजस्य नहीं बैठने को लेकर थी। इस कारण आंदोलन पर फर्क पड़ रहा था। बापू भी उस चर्चा में पूरे मनोयोग से हिस्सा ले रहे थे।

वे बातचीत कर ही रहे थे कि बकरी का एक बच्चा दौड़ता हुआ उन नेताओं के बीच आया और बापू के पास बैठ गया। बापू की निगाह उसके पाँव पर पड़ी। वहाँ चोट आई हुई थी। मेमना कुछ बैठा भी इस तरह था कि पाँव की तरफ बापू का ध्यान जाए। जैसे वह अपनी तकलीफ कहने आया हो। गाँधी जी ने कहा आप लोग इस मसले पर बात कीजिए तब तक मैं इस मेमने को मिट्टी का लेप लगाकर आता हूँ। यह कहते हुए बापू उठ गए। चर्चा कर रहे नेता एक-दूसरे का मुँह देखते रह गए। नेहरू तो शायद खीझे भी कि मेमने की चोट आंदोलन की गुत्थी से ज्यादा महत्वपूर्ण हो गई है शायद। घटना सुनकर श्रीमाँ पहले तो हँसी। फिर बोली चेतना के एक स्तर पर पहुँच जाने के बाद तुरंत सामने आया कर्त्तव्य ही महत्वपूर्ण हो जाता है, काम का स्वरूप या आकार ज्यादा अर्थ नहीं रखता।

उपस्थित सभी साधकों की बात पूरी होने को आई तब श्रीमाँ ने श्रीराम की ओर देखा। उनसे कहा, 'आप नये हैं लेकिन हम लोगों के लिए नहीं। किसी मंत्रणा के लिए आपका यहाँ आना आवश्यक नहीं था, वह पराभौतिक स्तर पर भी संपन्न होती रहती। इस मिलन का उद्देश्य कुछ ज्यादा गहन है, इसलिए आपको रोके रखा।'।

श्रीराम ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे चुपचाप श्रीमाँ की ओर देखते रहे। और साधक भी तब वहाँ उपस्थित थे। माँ ने दर्शन पूरा होने का संकेत करते हुए उन्हें वहाँ से उठने का संकेत किया। उन्होंने श्रीराम को रोक लिया। चर्चा आरंभ करते हुए उन्होंने कहा 'श्री अरविंद एकांत में हैं। वे कहीं आ-जा रहे होते तो संभव है, आप लोगों का मिलन किसी और जगह भी हो जाता; लेकिन वे एक नये मनुष्य के जन्म की दिशा में प्रयत्न कर रहे हैं। जिन शक्तियों ने उन्हें इस कार्य के लिए नियुक्त किया है, उन्हीं ने आपको भी यहाँ बुलाया है।'।

'लेकिन मुझे इस तरह की कोई स्फुरणा नहीं है। मैं अपने इष्ट से प्रेरित होकर ही शायद यहाँ आ गया हूँ श्रीमाँ!' श्रीराम ने कहा। इस पर माँ का उत्तर था, 'आपने और क्षेत्रों की यात्रा भी की है, लेकिन यह महत्वपूर्ण नहीं है।

श्री अरविंद मानते हैं कि यह आश्रम एक प्रयोगशाला है। यहाँ भविष्य के लिए परीक्षण होने चाहिए। वे चल रहे हैं। आप से उनकी कुछ अपेक्षाएँ हैं।'

सुनकर श्रीराम के चेहरे पर उत्सुकता के भाव आ गए। जैसे वे आगे की बात सुनने के लिए अपने आपको तैयार कर रहे हों। श्रीमाँ ने कुछ रुकने के बाद कहा, 'संसार के संबंध में मुख्य रूप से तीन धारणाएँ हैं। एक शंकर और बुद्ध से मेल खाती हैं कि संसार एक भ्रान्ति है, अविद्या है और इस कारण यहाँ दुःख ही दुःख है। यहाँ करने योग्य एक ही काम है कि इसमें से निकल जाओ, छुटकारा पा लो और अव्यक्त ब्रह्म में लीन हो जाओ। दूसरी धारणा वेदांत की है कि ईश्वर सर्वव्यापी है। मूलतत्त्व के रूप में वह हर जगह विद्यमान है; लेकिन उसका व्यक्त रूप विकृत है, तमस से आच्छादित है। उससे छुटकारा पाने के लिए आत्म चेतना में स्थिर होकर रहो। जगत् के बारे में चिंता मत करो। तीसरी दृष्टि आधुनिक या नवीन है। यह श्री अरविंद ने उन्मीलित की है। उनके अनुसार संसार जैसा अभी है, वह अपूर्ण है। उसे जो होना है, उसका धुंधला और विकृत रूप है। वह दिव्य चेतना की निर्देश्य अभिव्यक्ति नहीं है; लेकिन उसे वही बनना है। उसकी रचना भगवान् के सभी रूपों और पहलुओं में विकसित होने के लिए है।'

श्रीमाँ के इस संदेश के अनुसार एक नये जगत् का आविर्भाव होना है। जिन लोगों को भी अध्यात्म की दिशा में प्रयास करने हैं, उन्हें भगवान् की यह इच्छा समझना चाहिए। उस वार्तालाप में ही श्री माँ ने श्रीराम को 'योगी' कहकर संबोधित किया। अगली सुबह श्री अरविंद से भेंट निश्चित हुई। वे पूर्णतः एकान्त में थे। सिद्धि दिवस और दर्शन की तिथियों के अलावा सार्वजनिक या निजी रूप से सामने नहीं आते थे।

एक अविख्यात प्रसंग

विशेष संदर्भों में अपवाद की गुँजाइश सभी अवसरों पर होती है। श्री अरविंद से एकांत में भेंट भी अपवाद ही थी। उन दोनों में क्या चर्चा हुई? किस तरह दोनों ने आपस में अभिवादन किया और क्या निश्चय निर्धारण हुए? इस बारे में कोई अधिकृत जानकारी नहीं है। वर्षों बाद श्रीराम ने उस विमर्श के बारे में संकेत ही दिये थे। उस विमर्श के अनुसार १९३७ में हुई इस भेंट में श्रीराम के लिए व्यक्तियों की प्रयोगशाला बनाने का काम आया। अरविंद आश्रम संस्था के



नये आलोक का संकल्प

रूप में ऐसा वातावरण उत्पन्न करने के प्रयत्न में लगा हुआ था कि लोगों में अनायास ही दिव्यभाव जागे। श्रीराम के लिए दायित्व निश्चित हुआ कि वे व्यक्तियों के गठन का प्रयास शुरू करें। ऐसे व्यक्ति तैयार करें, जिनका बाह्य स्वरूप भले ही अत्यंत साधारण हो लेकिन वे भीतर से समर्थ और ऊर्जावान बनें। वैयक्तिक और संस्थागत रूप से ऐसे प्रयत्न चलें कि चारों ओर दिव्यचेतना का आविर्भाव होता दिखाई दे।

काँची कामकोटि मठ में शंकराचार्य स्वामी चंद्रशेखरेन्द्र सरस्वती से जिन विषयों पर चर्चा हुई थी, उनका प्रसंग यहाँ भी छिड़ा। स्वामी चंद्रशेखरेन्द्र सरस्वती एक सीमा तक जाति-पाँति के रूढ़ नियमों को उचित ठहराते थे। वे यद्यपि इसे बीते युग का विषय घोषित कर चुके थे, जो मानना चाहे माने न माने। श्री अरविंद ने स्वामिगल के इस विचार को पुरानी भाषा में उदार भाव का समावेश बताया। उनके अनुसार स्वामिगल कह रहे थे कि यदि आप किसी से बचना चाहते हैं तो उसे दुरदुराने के बजाय स्वयं ही अलग हट जाना चाहिए। अध्यात्म भाव जाति-पाँति को यहीं तक अनुमति देता है।

अध्यात्म के संबंध में उन्होंने कहा कि यहाँ जाति-पाँति, ऊँच-नीच, धन और दरिद्रता का विचार नहीं किया जाता, क्योंकि आज के युग में गुफा में बैठकर साधना नहीं की जा सकती। आने वाले दिनों में जीवन और जटिल होगा। तब और अधिक समस्याओं का सामना करना पड़ेगा। चर्चा के समय उन्होंने परिवार के प्रति थोड़ी उदासीनता को भी साधना में अपरिहार्य बताया। उपेक्षा करनी नहीं चाहिए, लेकिन मोह और आसक्ति में डूबे रहकर परिवार के लिए मरना-खपना नहीं चाहिए। मनुष्य जब आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करता है, तो पारिवारिक संबंध झड़ने लगते हैं। नये संबंध विकसित होने लगते हैं। पुराने संबंधों से बँधे रहने का अर्थ है, सामान्य प्रकृति से बंधे रहना।

यह भेंट लगभग चालीस मिनट चली। श्रीराम आश्रम में दो दिन और रुके। श्रीमाँ ने चर्चा में आश्रम के संबंध में कुछ और तथ्य उद्घाटित किये। ये तथ्य श्री अरविंद के विचारों की ही झलक थे। उनके अनुसार आश्रम का उद्देश्य ही जीवन में योग का समावेश होना चाहिए। इसके लिए जीवन को भी स्वीकार करना होता है। उसे स्वीकारेंगे तो विसंगतियों को भी स्वीकार करना पड़ेगा। योग की आवश्यकता उन विसंगतियों को दूर करने के लिए ही तो है; अतः आश्रम में ऐसा कोई काम नहीं होना चाहिए जो जीवन का विरोध करता हो।

‘उल्लास आश्रम का प्रेरक भाव होना चाहिए। श्रीमाँ ने कहा, ‘वह जीवन के प्रति स्वीकार से आता है। पुराने ढंग के आश्रमों में जीवन का विरोध किया जाने लगा था। उन्होंने संसार से नाता तोड़ लिया था। जब बौद्ध धर्म सारे देश में छा गया तो यह तिरस्कार और बढ़ा। उसकी प्रतिक्रिया क्या हुई? आश्रमों, मठों और संघारामों में जीवन का अतिरेक होने लगा। वे विलास के केन्द्र बन गए और उसी के दूसरे अतिवादी छोर ने आश्रमों में उदासी भर दी।’

‘पुराने आश्रम इस तरह के नहीं थे। वहाँ रहने वाले साधक, शिक्षा पाने वाले बालक और साधक जीवन संबंधी बहुतेरे विषयों का प्रशिक्षण पाते थे। जीवन और अध्यात्म को आश्रम में एक साथ लाया जा रहा है, तो वहाँ सभी आवश्यक तत्त्वों का समावेश होना चाहिए।’

बदलता हुआ क्रम

ध्यान, उपासना या प्रार्थना आश्रम जीवन का अनिवार्य अंग रहे। एक अनुशासन का निर्धारण भी किया जाए। यथासंभव उन नियमों का पालन किया जाए। कम से कम प्रमादवश तो किसी नियम का उल्लंघन नहीं किया जाए। दो दिन तक वहाँ रहने और आश्रम जीवन का अध्ययन करने के बाद श्रीराम ने अपने अनुभवों और प्रतिक्रियाओं को लिपिबद्ध किया। इस लेख में ये पंक्तियाँ मोटे अक्षरों में लिखी थीं। लेख ‘सैनिक’ के साप्ताहिक संस्करण में प्रकाशित भी हुआ था। ‘नये युग का वितान’ शीर्षक से छपे इस लेख के कुछ अंश बाद में जहाँ-तहाँ और भी प्रकाशित हुए हैं। अध्यात्म और जीवन के समन्वय की जो उत्कट लगन अरविंद आश्रम में अनुभव हुई, उसे साधकों में कैसे जगाया जाए? मन इस उधेड़बुन में लग गया। एक परत पक्ष में बैठी दूसरी परत विपक्ष में और मन की विभिन्न परतों में विचार विमर्श चलने लगा। रास्ता इस मंथन में ही कट गया।

आगरा लौटने के बाद श्रीराम पहले की तरह अपने कामों में जुट गए। लेकिन मन में कुछ नया करने की उमंग उठ रही थी। राजनैतिक वातावरण में छाये अवसाद और दक्षिण की यात्रा के बाद उन्हें और भी तेजी से अनुभव होने लगा कि समाचारों के संसार में ही सिमटे नहीं रह जाना है। इसका कोई अर्थ नहीं है। समाचार सिर्फ सूचनाएँ देते हैं, कुछ देर के लिए आवेश भी जगा सकते हैं। लेकिन उनसे उद्देश्य पूरा नहीं होता।

नये आलोक का संकल्प

किस उद्देश्य को प्राप्त करना चाहते हो श्रीराम? भीतर बैठे हुए एक अन्य श्रीराम ने पूछा। कोई उत्तर नहीं आया। देर तक चुप्पी छाई रही। यह द्वन्द्व कई दिन चला। उधर राजनैतिक गतिविधियाँ ठंडी पड़ी हुई थीं। एक मायावी उत्साह ही दिखाई देता था। उसमें रिपोर्ट करने जैसा कुछ नहीं था। प्रांतों में कांग्रेस ने सरकारें बना रखी थीं। इस दशा को कैसी भी सफलता समझा जाए, सच्चाई यह थी कि ब्रिटिश राज और कांग्रेस दोनों ही एक दूसरे के सहारे चल रहे थे। यों कहें कि किंकर्तव्यविमूढ़ स्थिति में थे। इसलिए कि दोनों में से किसी को भी इस साझेदारी के परिणामों के बारे में पता नहीं था।

अखबार लिखने लगे थे कि दोनों पक्षों को अपना पुराना इतिहास भुला देना चाहिए। उसमें पारस्परिक झगड़ों और उससे उपजी कड़ुआहट के सिवा कुछ नहीं है। दोनों के साथ काम करने से अब दीवारें ढहने लगी थीं। महात्मा गाँधी के निजी सचिव घनश्यामदास बिड़ला को एक चिट्ठी लिखी। उसमें कहा कि जरा सोचिए तो सही कि अहमदाबाद का कमिश्नर गैरेट मुरारजी भाई का स्वागत करने के लिए स्टेशन आता है। उनके साथ रेल के तीसरे दर्जे में काफी दूर तक यात्रा करता है।

यह पत्र अखबारों में छपा। कांग्रेस कार्यकर्ता इस तरह के वर्णन पर गद्गद होते। श्रीराम को यह सब अच्छा नहीं लगा। उन्हें इस तरह की सफलता मायावी लग रही थी, जिसे किसी भी क्षण रेत के महल की तरह ढह जाना है। सितंबर आते तक वे बहुत उद्विग्न से हो गए। आश्विन का पहला नवरात्र आरंभ हुआ। पूर्व संध्या को नवरात्र की विशेष पूजा का संकल्प लेकर सोये। उसमें अपने इष्ट से यह प्रार्थना भी सम्मिलित थी कि अब इस द्वन्द्व से उबर आना है। सुबह उठे स्नानादि से निवृत्त होकर साधना के लिए बैठे तो बारह वर्ष पहले प्रदीप्त किये दीपक पर दृष्टि टिकी। अपने आपको उसके प्रकाश में विलीन किया। उपासना पूरी हुई तो दृष्टि फिर वहीं केंद्रित थी दीपक.....अखण्ड दीपक और इसके बाद चित्त में जो शब्द उभरे उनका क्रम इस प्रकार था। ज्योति-दीपक की ज्योति-अखंड दीपक-दीपक की 'अखंड ज्योति'। फिर यह भाव गहराया गया। इसी नाम एक पत्रिका आरंभ करनी है। पूजा गृह में स्थापित दीपक वहाँ के वातावरण को प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से अवलोकित करता है। उसी की प्रेरणा से उभरा नाम 'अखण्ड ज्योति' जगती को आलोकित करे।



आलोक उद्घाटित हुआ

समाचारों की दुनिया से लगभग उपराम होते हुए श्रीराम ने 'अखण्ड ज्योति' निकालने का निश्चय कुछ ही दिनों में अपने साथियों को बता दिया। सैनिक पत्र में काम करते हुए वेतन भत्तों के रूप में इतना कुछ नहीं मिलता था कि बचाया भी जा सके। स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेते समय मार्गदर्शक सत्ता ने अनुष्ठान महापुरश्चरण साधना में कुछ वर्षों के लिए जो छूट दी थी, वह भी पूरी हो गई थी। अब पहले की तरह ही कठोर अनुशासन अपना लिया था। जप-तप तो पहले भी चल रहा था, भोजन, शयन, जागरण और लोकसंपर्क में ज्यादा कड़ई बरत ली थी। इस कारण भी संसाधन जुटाने के लिए अतिरिक्त कुछ करने की गुंजाइश नहीं थी।

श्रीराम अपने गाँव आँवलखेड़ा गए और वहाँ ताई जी से अपनी बात कही। उन्होंने इतना ही पूछा कि 'क्या यह तुम्हारे गुरुदेव ने कहा है?' श्रीराम ने हाँ में सिर हिलाया। ताई जी ने मीठा सा उलाहना दिया, 'अब स्वराज का क्या होगा? क्या तुम उसके लिए काम नहीं करोगे।'

'स्वराज तो कुछ वर्षों में मिल ही जाएगा माँ। अब मुझे रामराज्य के लिए काम करना है। गुरुदेव इसी के लिए कह रहे हैं,' श्रीराम ने उत्तर दिया। सुनकर ताई जी रामराज्य का उल्लेख करने वाली चौपाई गुनगुना उठीं, 'दैहिक दैविक भौतिक तापा, रामराज नहि काहुहि व्यापा।' फिर बोलीं 'यही वाला रामराज न।'

कहते हुए उन्होंने श्रीराम की बलैया लीं और पत्रिका के लिए तैयारी की अनुमति दे दी। वे इस कारण भी प्रसन्न थीं कि श्रीराम अब आंदोलनों-धरनों में नहीं उलझेगा। पहले जो भागदौड़ लगी रहती थी, वह खत्म हो जाएगी और छापों, गिरफ्तारी से बचने की चिंता भी नहीं करना पड़ेगी। ताई जी ने कहा, 'भगवान ने तुम्हें जो काम सौंपा है, उसके लिए मेरा भी आशीर्ष है। मेरी कामना बहुत छोटी सी है, वह तुम्हें मालूम ही है।'

आलोक उद्घाटित हुआ

‘हाँ हाँ मालूम है,’ श्रीराम ने कहा, ‘न तो मैं आपको छोड़कर जा रहा हूँ और न ही आपको ठाकुर जी के प्रदेश से बाहर ले जाऊँगा। जब भी कोई नया विषय उठता, जिसमें कहीं आने-जाने की संभावना होती, तो ताई जी का एक ही आग्रह रहता था। वे जोगी-बैरागी नहीं बने। इस बार भी उन्होंने याद दिलाना चाहा तो उनकी बात शुरू होने से पहले ही श्रीराम ने अपनी बचनबद्धता दोहरा दी। आँवलखेड़ा दिन में तीन दिन और रुकना हुआ। गाँव में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं था, जिससे नई योजनाओं के बारे में चर्चा की जा सके। विमर्श की दृष्टि से यह प्रतिकूल स्थिति थी। लेकिन एकांत चिंतन के लिए आदर्श थी। विचार आत्मसमीक्षा और मौलिक सूझबूझ के लिए इससे ज्यादा आदर्श स्थिति कोई और हो नहीं सकती थी।

योजना बनाते हुए श्रीराम ने दसियों पन्ने रंग लिये। पत्रिका की विषय सामग्री, चयन, संपादन, वितरण और प्रसार जैसे सभी पक्षों पर सोचना हुआ लगा कि काम आसान नहीं है। साथी-सहयोगियों के बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता। साथी-सहयोगी भी ऐसे चाहिए, जिन्हें थोड़ा बहुत अनुभव हो। नये सूत्रपात के लिए नौसिखियों को साथ लेकर नहीं चला जा सकता। इस का समाधान भीतर से ही आया। आगरा चलकर देखा जाएगा। एक विचार यह भी आया कि प्रेस जगत् में आई शिथिलता के कारण कुछ लोग नया क्षेत्र तलाश ही रहे होंगे। उन्हें साथ लिया जा सकता है। चिंतन-मनन में डूबा देखकर ताई जी ने रोका, कल से देख रही हूँ। न जाने कहाँ खोया रहता है? कोई दिक्कत है क्या?

‘नहीं ताई,’ उन्होंने कहा, ‘ऐसे ही मन थका हुआ है, इसलिए चुप हूँ।’

ताई ने कहा, ‘तो आराम कर। रामराज शुरू करने के लिए ज्यादा परेशान होने की जरूरत नहीं है। सब साधन जुट जाएँगे। मैं जुटाऊँगी बाप-दादों की यह कमाई किस दिन काम आएगी।’ उन्होंने श्रीराम के मस्तक पर हाथ रखा। सिर को थोड़ा सा हिलाया। सामने ही बैठ गई। फिर बोलीं, ‘बहू और ओम को वहाँ ले जाएगा?’

श्रीराम माँ का मुँह देखने लगे। ताई जी ने कहा, ‘अब तक तो अखबार में कई लोग साथ थे। मजे से काम चल जाता था। नया काम शुरू करोगे, तो अकेले पड़ जाओगे। कौन हाथ बटाएगा।’ ताई जी कुछ क्षण के लिए रुकी। फिर बोलीं, ‘ऐसा करो, बहू को ले जाओ और श्रद्धा को भी। ओम और दया को यहीं छोड़ दो। दोनों को संभाल लूँगी। श्रद्धा छोटी है, उसे माँ की जरूरत होगी।’

ताई जी की बात का उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया। वे ही बोलीं, 'सोच रहे होंगे कि स्वराज मिलने तक मैंने तुम्हें बच्चों को यहीं छोड़ने के लिए कहा था। अब मैं बदल रही हूँ। नहीं, मैं अपनी बात पर कायम हूँ। बहू तुम्हारी देखभाल के लिए आगरा में रहेगी। मेरी नुमाइंदगी करेगी।'

यह बात भी श्रीराम ने चुपचाप सुन ली। कोई प्रतिवाद नहीं किया। उनके चुप रह जाने का अर्थ स्वीकार ही लगाया गया। उसी के अनुसार ताई जी ने आगरा में रहने के लिए राशन, पानी, बर्तन, बिस्तर, कपड़े और घर-गृहस्थी के लिए आवश्यक सामान एक जगह रखना शुरू कर दिया। श्रीराम ने समझ लिया कि उनके सपरिवार जाने की तैयारी हो रही है। आगरा में जहाँ वे रहते थे, पर्याप्त स्थान नहीं था। 'अखंड ज्योति' पत्रिका शुरू करने के लिए एक अलग कमरे की आवश्यकता थी। पत्नी और बच्ची को साथ रखने की ताई जी की दी हुई व्यवस्था भली तो लगी थी, लेकिन जगह की दृष्टि से कुछ प्रबंध भी करना था। उन्होंने कुछ दिन रुकने के लिए कहा। ताई जी ने बात मान ली।

जीवन समग्र रूप में

आगरा लौटकर श्रीराम ने बाबू गुलाब राय, जगन प्रसाद रावत और काशी के वेणी प्रसाद शर्मा को नई योजना के बारे में बताया। वेणीप्रसाद जी उन दिनों आगरा आये हुए थे। कल्याण के संपादक हनुमान प्रसाद पोद्दार और कल्पवृक्ष के संपादक दुर्गाशंकर नागर को भी अपनी योजना लिख भेजी। धर्म, अध्यात्म, साधना, संस्कृति, योग, भक्ति आदि विषयों पर हिंदी में तब 'कल्याण' और 'कल्पवृक्ष' दो पत्रिकाएँ ही निकलती थीं। व्यवसायवाद का बोलबाला आज की तरह रहा होता, तो संभव है वे विभूतियाँ निरुत्साहित करती, लेकिन उक्त विद्वानों का विचार था कि इस प्रकाशन की आवश्यकता है। पोद्दार जी ने अपने उत्तर में कल्याण के अब तक के अनुभवों का सार भी बताया।

कल्याण के संपादक ने लिखा कि हम लोग संत-महात्माओं के उपदेशों को प्रधानता देते हैं। उनके विचारों में पुरानी मान्यताओं, रूढ़ियों और व्यर्थ हो चुके रीति-रिवाजों का पुट हो सकता है। आवश्यक नहीं कि हम उनसे सहमत हों, लेकिन वह संतों की वाणी है। इसलिए हम उन्हें ज्यों का त्यों प्रकाशित करते हैं। आप यदि आज के समय के अनुरूप कुछ संशोधन कर सकें, तो उत्तम रहेगा। बहुत सी परंपराएँ आज के लिए उपयुक्त नहीं रह गई



आलोक उद्घाटित हुआ

हैं। आपका यह विचार उत्तम है कि उन्हें परंपरा होने के कारण ही महत्त्व नहीं दिया जाना चाहिए। उनमें विवेक और युक्ति का समावेश भी किया जाना चाहिए।

श्रीराम ने पत्र की इन पंक्तियों को अपनी डायरी में नोट कर लिया। अन्य विद्वानों ने भी सुझाव दिये। सभी अभिभूत थे कि धर्म-अध्यात्म की व्यावहारिक मीमांसा करने वाली एक मासिकी प्रकाशित होने जा रही है। श्रीराम ने अपनी योजना के साथ जो पत्रक भेजा था, उसमें उनका अपना परिचय भी था। वे स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भाग लेते रहे हैं और पत्रकारिता से भी जुड़े हैं। इस तथ्य से अवगत होने के बाद विद्वज्जनों ने शुभकामनाओं के साथ आशा-अपेक्षाएँ भी व्यक्त की। श्रीराम ने उन पत्रों और अभिव्यक्तियों का समुचित उत्तर दिया।

उज्जैन के दुर्गाशंकर नागर ने सुझाव दिया था कि 'अखण्ड ज्योति' में परलोक और मरणोत्तर जीवन के बारे में भी पर्याप्त सामग्री रहे। शरीर के जन्म लेने और निष्प्राण हो जाने तक ही जीवन सीमित नहीं है। जन्म और मृत्यु के बीच का समय तो जीवन का एक छोटा सा भाग है। उसे उपेक्षित कर जीवन की चर्चा समग्र नहीं होती। दुर्गाशंकर नागर उच्चकोटि के आध्यात्मिक व्यक्ति थे। साधना और आत्मविद्या के अलावा वे प्रेतात्माओं से संपर्क की कला भी जानते थे। दिवंगत व्यक्तियों को आत्माओं से संपर्क करने और संबंधियों से बात करा देने के लिए वे विख्यात थे। उनकी पत्रिका 'कल्पवृक्ष' में इस विषय पर पर्याप्त जानकारी रहती थी। उन्होंने श्रीराम से भी अपेक्षा की थी कि 'अखण्ड ज्योति' में इस विषय पर कुछ न कुछ छपता रहे। श्रीराम ने उत्तर दिया अध्यात्म का नब्बे प्रतिशत भाग लोकोत्तर विषयों से संबंधित है। इस विषय पर चर्चा के खतरे हैं। लोग व्यर्थ भ्रमजंजाल में उलझ सकते हैं। अतः 'अखंड ज्योति' में इस विषय पर सीमित चर्चा ही करेंगे।

पुराना कमरा छोड़कर श्रीराम ने नया मकान ले लिया था। इसमें तीन कमरे थे। सहधर्मिणी सरस्वती देवी भी वहाँ आकर रहने लगी थीं। बेटा दया छोटी थी। उसे माँ की गोद की आवश्यकता थी। इसलिए वह भी साथ आ गई। ओमप्रकाश ताई जी के पास आँवलखेड़ा में ही रह गये। परिवार के यहाँ आकर रहने लगने का उद्देश्य श्रीराम की दैनंदिन जिम्मेदारियों में हाथ बँटाना था। अपनी और घर की सार-सँभाल में लगने वाला समय-श्रम बचे।



नया मकान आगरा के फ्रीगंज मोहल्ले में लिया था। तीन कमरों में से एक में अखण्ड ज्योति के कार्यालय की तरह इस्तेमाल होना था। दूसरा कमरा पूजापाठ और बैठक की तरह था। तीसरा कमरा भी निजी उपयोग और अतिथियों के लिए था। तीन कमरों के उस मकान में रसोई आदि की व्यवस्था अलग से की थी। मार्च १९३९ तक फ्रीगंज में ये सब व्यवस्थाएँ बन गई थीं। खर्च और जिम्मेदारियाँ पहले से चार गुना बढ़ गई थी। आमदनी का कोई अच्छा स्रोत था नहीं। 'सैनिक' में काम करने तक वहाँ से मिलने वाले वेतन का थोड़ा सहारा था। अब पूरी व्यवस्था स्वयं ही सँभालनी थी। ताई जी ने आश्वस्त किया था कि खेती-बाड़ी से होने वाली आय से गुजारा चलता रहेगा। श्रीराम के मन में उसके लिए थोड़ा संकोच था, लेकिन नई व्यवस्था जमने तक उसे ऋण के रूप में स्वीकार करने का मन बनाया। ताई जी ने इस पर एतराज किया कि ऋण क्यों मान रहे हो? श्रीराम का उत्तर था कि वह संपदा आप दक्षिणा के रूप में पहले ही समाज को सौंप चुकी हैं।

ताई जी के पास इस उत्तर की कोई काट नहीं थी। श्रीराम ने कहा। पत्रिका से जो आमदनी होगी, उसी से एक अंश वेतन की तरह लेकर अपना काम चलाएँगे। बाकी आय अखंड ज्योति के विस्तार में लगाएँगे। 'अखंड ज्योति' से उनका आशय आद्यशक्ति वेदमाता की प्रेरणाओं का निरंतर विस्तार करते जाने से था।

जनवरी १९३८ में अखंड ज्योति का पहला अंक प्रकाशित हुआ। उन दिनों विमोचन उदघाटन का प्रचलन नहीं था। पत्रिका की पहली प्रति वेदमाता के चरणों में रख दी। वसंत पंचमी का दिन था। ताई जी को प्रणाम किया और उन्हीं के हाथों से आदिशक्ति के सामने प्रज्वलित 'अखंड दीपक' के पास स्थापित कराई। इस दीपक से विकीर्ण हो रहा आलोक पत्रिका के मुख पृष्ठ पर पड़ रहा था। लगता था जैसे भगवती गायत्री का आशीर्वाद बरस रहा हो। उपासना कक्ष में इस समर्पण के बाद पत्रिका मित्रों और विचारशील व्यक्तियों में वितरित कर दी।

प्रवेशांक के साथ ही दूसरे अंक की तैयारियाँ भी शुरू कर दी थीं लेकिन असीम बाधाएँ रास्ता रोक रहीं थीं। बाजार में मंदी का दौर था। दूसरा विश्व युद्ध आरंभ हो गया था और मुद्रा के साथ वस्तुओं के अभाव की समस्या भी विकट होने लगी थी। पहली समस्या कागज की ही आई। पहले अंक के



आलोक उद्घाटित हुआ

लिए तो प्रबंध हो गया था। जिस व्यापारी ने कागज के प्रबंध का आश्वासन दिया था, वह टालमटोल करने लगा। आठ दस गुना मंहगे दाम पर देने की बात कर रहा था लेकिन निरंतर उपलब्ध कराने का आश्वासन फिर भी नहीं था। दूसरे व्यापारियों के यहाँ भी यही हालत थी। प्रेस की भी यही दशा थी। मजदूर मिल रहे थे लेकिन पत्रिका मजदूरी से तो नहीं निकलती। जिन सदस्यों ने 'अखंड ज्योति' के लिए शुल्क और सहयोग उपलब्ध कराने का वचन दिया था वे भी पीछे हट गए।

पत्रिका का दूसरा अंक समय पर प्रकाशित नहीं हो सका। व्यवस्था संभालने के प्रयत्न करते-करते वह और बिखर जाती। तीन महीने तक अनवरत प्रयत्न करने के बाद श्रीराम ने नए सिरे से सरंजाम जुटाने का मन बनाया। तय किया कि एक एक अंक के लिए व्यवस्था बनाने के स्थान पर पूरे वर्ष की व्यवस्था एक साथ बना ली जाए। कम से कम बारह अंक नियमित निरंतर छप सकने लायक सरंजाम जुटे तभी प्रकाशन फिर आरंभ किया जाए। इस व्यवस्था में साल दो साल लग जाए तो कोई बात नहीं। लेकिन आरंभ होने के बाद अगले अंक के लिए ही जी जान जुटाने जैसी स्थिति नहीं आए।

तैयारी में डेढ़ पौने दो साल लगे। साल भर छपने लायक कागज इकट्ठा कर लिया। सदस्यों से शुल्क जमा करने का आग्रह किया। जून १९३९ तक दो सौ सदस्यों ने वार्षिक शुल्क जमा करा दिया। उससे एक छोटा सा कोष बन गया था। नवंबर आते तक यह संख्या पाँच सौ हो गई थी। प्रातःकालीन उपासना संपन्न होने के बाद श्रीराम लेखन के लिए बैठ जाते थे। ढाई तीन हजार शब्दों का एक लेख प्रतिदिन लिखने का नियम बनाया। पत्रिका के लिए एक वर्ष तक पर्याप्त होने लायक लेख भी तैयार हो गए। नवंबर १९३९ में घोषणा की गई कि आगामी वसंत पर्व में 'अखंड ज्योति' पुनः प्रकाशित होने जा रही है।

सुदर्शनधारी श्रीकृष्ण

जिस समय घोषणा की गई उस समय पहला अंक लगभग तैयार हो चुका था और दूसरे अंक की सामग्री प्रेस में भेज दी गई थी। जनवरी १९४० में पुनः प्रकाशित 'अखंड ज्योति' के पहले अंक पर सुदर्शन चक्र धारण किये भगवान श्रीकृष्ण का रंगीन चित्र मुख पृष्ठ पर छपा था।

पत्रिका समय से पहले ही छपकर तैयार हो गई। वसंत पंचमी से दो तीन दिन पहले श्रीराम ने ताई जी को आँवलखेड़ा से बुलाया। माघ शुक्ल पंचमी

(वसंत पंचमी) को प्रातःकाल उन्हीं के हाथों पत्रिका की पहली प्रति उपास्य भगवती गायत्री के विग्रह के सामने स्थापित कराई। ताई जी ने उस पर रोली अक्षत चढ़ाए, देवी सरस्वती ने भी समर्पण का उपक्रम किया। श्रीराम ने आरती गाई और इस तरह अखंड दीपक के प्रकाश में उसी की दिव्य आभा का दैवी लोकार्पण संपन्न हुआ।

डाक से पहली प्रति महात्मा गाँधी के पास, उनकी गतिविधियों के केन्द्र सेवाग्राम भेजी। अपने हाथों से बाबू गुलाबराय और कृष्णदत्त पालीवाल को एक एक प्रति दी। 'कल्याण' के संपादक हनुमान प्रसाद पोद्दार, रामकृष्ण मिशन, कलकत्ता, अरविंद आश्रम, पुरी और कांची के शंकरमठ भी उनकी डाकसूची में थे। इतने स्थानों पर आरंभिक प्रतियाँ भेजने के बाद प्रवेशांक का सामान्य वितरण किया गया। प्रत्येक सदस्य के पास यह अनुरोध भी भेजा गया था कि वे पत्रिका के बारे में अपनी निष्पक्ष राय दें। वह राय विषय सामग्री, वितरण व्यवस्था और छपाई के स्तर पर और यहाँ तक कि कागज और चित्रों के चुनाव पर भी पाठकों से प्रतिक्रियाएं माँगी गईं।

पहले अंक की पाँच सौ प्रतियाँ छपी थीं। वह बाइंड होने से पहले ही दूसरे अंक की सामग्री प्रेस में भेज दी गई। करीब साढ़े तीन सौ प्रतियाँ डाक से भेजी गईं। उनके पते लिखने का काम श्रीराम ने स्वयं किया। पते हाथ से लिखे गए थे। कार्बन लगाकर उनकी कई प्रतियाँ बना ली थीं। उन्हें काट-काट कर पत्रिका के रैपर पर चिपकाने का काम सरस्वती ने किया। वे बच्ची और घर को सँभालने के बाद पत्रिका की व्यवस्था में भी थोड़ा हाथ बँटाने लगीं। दूसरा अंक तैयार होते समय उन्होंने पत्रिका को रैपर में लपेटने का काम भी किया।

शुरुआती महीनों में श्रीराम ने पत्रिका का वितरण स्वयं अपने हाथों से किया। तीसरे-चौथे महीने हाथ बटाने के लिए एक कार्यकर्ता भी साथ हो लिया। स्वराज की लड़ाई के दिनों से ही वह साथ रह चुका था। श्रीराम के उद्देश्य में उसकी प्रबल आस्था थी, स्वराज आन्दोलन में भी वह उन्हीं के कारण था। अखंड ज्योति के रूप में नया आरंभ देखा तो यहाँ भी साथ आ गया। वह हिसाब किताब लिखता, चिट्ठी पत्री करता और पत्रिका की डेढ़-दो सौ प्रतियाँ घर-घर जाकर बाँटता भी सही। पत्रिका का दूसरा अंक प्रकाशित हो जाते तक पाठकों के ढेर सारे पत्र आ गए। जिन विद्वानों और विभूतियों को पत्र लिखे थे, उनके उत्तर भी आने लगे थे। महात्मा गाँधी का पत्र आया था। उसमें



आलोक उद्घाटित हुआ

उन्होंने पत्रिका को खंडन- मंडन से बचने की सलाह दी थी। कहा था कि सबको साथ लेने और तालमेल बिठाने का ध्यान रखें। भगवान की इस दुनिया में कोई किसी का विरोधी नहीं है। जहाँ विरोध दिखाई देता है, वहाँ भी वास्तव में अविरोध ही है।

कल्याण के संपादक हनुमान प्रसाद पोद्दार ने भी 'अखण्ड ज्योति' को आशा का आलोक देने वाला प्रयास बताया था। उनका पत्र तब बीस हजार से ज्यादा छपता था। कल्याण की गणना हिंदी के प्रथम श्रेणी के पत्रों में होने लगी थी। उन्होंने 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका से आशाएँ बाँधी थीं। पहले अंक में ही भारतीय धर्म परंपरा की आदि और अनिवार्य उपास्य गायत्री संदेश को लोगों तक पहुँचाने का संकल्प व्यक्त किया गया था। सनातन धर्म के विद्वानों ने इसकी सराहना की। आर्यसमाजी विद्वानों ने कुछ परहेज जताया, क्योंकि वे मूर्तिपूजा के विरोधी थे।

समाज के विभिन्न वर्गों से विविध प्रतिक्रियाएँ आईं। सशक्त प्रतिक्रिया 'ताईजी' की थी। उन्होंने अखंड ज्योति का पहला अंक भगवती गायत्री के सम्मुख रखने के तुरंत बाद तो कुछ नहीं कहा। लगभग महीने भर बाद वे एक दिन अचानक बोली, 'श्रीराम तुमने गायत्री जी की पत्रिका आगरा से छापी। उस पर सुदर्शनधारी कृष्ण का फोटो भी है। यह पत्रिका उन्हीं के धाम से निकलती, तो कितना अच्छा रहता?'

ताई जी की बात ने श्रीराम के मन में पहले से चल रहे एक विचार को बल दिया। वे भी सोच रहे थे कि आगरा साहित्यिक, प्रशासनिक और राजनैतिक गतिविधियों के अलावा पर्यटकों का शहर है। उसका ऐतिहासिक महत्त्व है; लेकिन धार्मिक-सांस्कृतिक कार्य के लिए मथुरा की ही महत्ता है। सामान्य स्थानों में धार्मिक गतिविधियों को जो महत्त्व मिलता है, वह आगरा, ग्वालियर, भोपाल या दिल्ली जैसे ऐतिहासिक महत्त्व के शहरों को नहीं मिल सकता। ताई जी का मन मथुरा वृंदावन के लिए वैसे भी आकर्षित रहता था।

माता की भावना या तीर्थस्थल की महत्ता ही मथुरा की ओर नहीं खींच रही थी। उन्हें लगा कि 'अखण्ड ज्योति' को मथुरा ले जाना, आने वाले समय की आवश्यकता भी है। एक स्वप्न दृश्य ने उनके इस विचार को युग गायत्री से भी जोड़ा। स्वप्न दृश्य आश्विन नवरात्रियों के समय का था। सुबह नवरात्र पूजा का संकल्प होना था। उसी रात स्वप्न दिखाई दिया। श्रीराम ने देखा पूज्य पिताश्री



व्यासपीठ पर बैठे हैं। भागवत प्रवचन कर रहे हैं। व्यासपीठ के पार्श्व में अखंड ज्योति के मुखपृष्ठ पर छपा सुदर्शन चक्र धारण किए श्रीकृष्ण का चित्र लगा हुआ है। उनके सामने बैठे पंडित रूपकिशोर शर्मा 'गायत्री भागवत' शीर्षक से व्याख्यान दे रहे हैं। वे व्याख्यान के आरंभ में ही स्पष्ट कर देते हैं कि अभी तो है ही, अगले दिनों भागवत कुछ समय के लिए मात्र विद्वानों तक ही सीमित रह जाना है। उसके बाद एक समय ऐसा भी आएगा, जब यह शास्त्र रस राग का ग्रंथ ही रह जाएगा। इसके विद्यमान धर्म और भक्ति के भाव लुप्त होने लगेंगे। उस युग में गायत्री के माध्यम से ही भागवत का मर्म समझा जाएगा।

सुदर्शन चक्रधारी श्रीकृष्ण के सामने गायत्री की प्रतिमा स्थापित थी। श्रीराम ने देखा कि श्रीकृष्ण की पूजा के साथ पिताश्री भगवती आराधना भी कर रहे हैं। प्रत्यक्ष कथा सप्ताहों में पिताश्री 'सत्यं परं धीमहि' पद की जैसी व्याख्याएँ किया करते थे, वैसी ही व्याख्या स्वप्न दृश्य में होती प्रतीत हो रही थी। समापन के समय उन्होंने कहा शुकदेव जी महाराज ने ब्रजक्षेत्र में भागवत की कथा कही। गायत्री की कथा का व्याख्यान भी ब्रजक्षेत्र में ही होना चाहिए। यह कहते हुए वे उठकर चले। पूजा-आरती के मंच से उतरे और श्रीकृष्ण जन्मस्थल से वृंदावन की ओर जाने लगे। जन्मस्थान पर तब कटरा केशवदेव नाम से एक छोटा सा मंदिर था। वह मंदिर मस्जिद की ओट में आ जाता था। पिताश्री को उठकर जाते देखा, तो श्रीराम को प्रतीत हुआ कि श्रीकृष्ण भी उनके पीछे-पीछे जा रहे हैं।

स्वप्न दृश्य के कुछ दिन बाद उन्हें ध्यान अवस्था में एक और अनुभूति हुई। लगा कि मार्गदर्शक सत्ता भी मथुरा को ही केन्द्र बनाने के लिए कह रही है। भागवत की प्रेरणाओं से ओतप्रोत 'सनातन धर्म' और गायत्री मंत्र में बीज रूप से विद्यमान भगवान का संदेश। यह अनुभूति दीपवली के आसपास हुई और श्रीराम ने निश्चय कर लिया कि मथुरा को ही केन्द्र बनाया जाए। आगरा से जल्दी ही स्थान बदल लिया जाए।

ताई जी को इस निर्णय की सूचना दी। उन्होंने कहा, 'मथुरा में रहने की बड़ी साध थी। तुम्हारे पिता से भी कहा करती थी कि वहाँ रहें। उनसे न सही, ठाकुर जी ने सुनली। वही तुम्हारे जरिए सब करा रहे हैं।' माँ की यह प्रतिक्रिया श्रीराम के लिए आशीर्वाद की तरह थी। अगले दिन ही उन्होंने 'अखंड ज्योति' के पाठकों के लिए संदेश लिखा। इसमें मथुरा को केन्द्र बनाने

आलोक उद्घाटित हुआ

की घोषणा करते हुए वहाँ से साधना और संस्कार के नये कार्यक्रम चलाने की सूचना भी थी। देवोत्थान एकादशी के बाद वे नई व्यवस्था जमाने के लिए मथुरा गये।

आगरा में श्रीराम के एक साहित्यिक मित्र थे, शिरोमणि जी। उनका वास्तविक नाम कुछ और था, लेकिन इसी नाम से विख्यात थे। आगरा में एक पत्र निकालते थे 'साहित्य संदेश'। कुछ समय तक वे सैनिक से भी जुड़े थे। अखंड ज्योति का प्रकाशन आरंभ हुआ, तो उन्होंने साथ देने की ठानी। उत्साह दिखाया कि 'साहित्य संदेश' पत्र बंद कर अखंड ज्योति से ही पूरी तरह जुड़ जाएँ। परिवार संपन्न था। निर्वाह की कोई चिंता नहीं थी। श्रीराम ने उनके सहयोग को तो स्वीकार किया, लेकिन अपना पत्र चलाते रहने के लिए कहा। उनका कहना था कि अखंड ज्योति एक प्रयोग है। भविष्य में यह क्या रूप लेगा? कुछ कहा नहीं जा सकता। अगर कुछ अप्रिय हुआ, तो 'साहित्य संदेश' का छोटा-मोटा मंच भी खिसक जाएगा।

कोई बात नहीं साहब, शिरोमणि जी ने कहा 'जहाँ एक डूबेगा, वहाँ दो डूब जाएँगे। हम आपके साथ जीने-मरने की ठाने हुए हैं।'

श्रीराम ने कहा, 'अभी छह महीने रुक कर देखिए। इस अवधि में पत्रिका का भविष्य तय हो जाएगा।'

उन्होंने असंतोष जताया, 'क्या मतलब? तब तक 'अखंड ज्योति' की एक किरण भी हमारे भाग्य में नहीं होगी क्या?'

श्रीराम ने समाधान दिया कि इस अवधि में आप पत्रिका के सदस्य बनायें। जितने अधिक सदस्य बना सकेंगे, उतना ही हमारा परिवार समृद्ध होगा।

शिरोमणि जी पत्रिका के सदस्य बनाने में जुट गए। उन्होंने अकेले अपने प्रयास से सत्तर सदस्य बनाए। इस बीच स्थान परिवर्तन का निर्णय हो गया था। शिरोमणि जी का उत्साह थोड़ा शिथिल हुआ। वे निष्क्रिय तो नहीं हुए अखंड ज्योति के लिए पहले की तरह प्रयत्न करते रहे, लेकिन उन्होंने सब कुछ छोड़कर 'स्वाहा' हो जाने की जिद छोड़ दी। श्रीराम के मथुरा आने में भी उन्होंने सहयोग दिया। रहने के लिए जगह की तलाश में वे तीन-चार बार श्रीराम के साथ मथुरा आये थे।

ब्रजधाम में स्थापना

मथुरा में 'अखंड ज्योति' का पहला पड़ाव होलीगेट के पास एक गली में था। उस गली का तब कोई निश्चित नाम नहीं था। वल्लभराम नामक एक चतुर्वेदी ब्राह्मण किसी जमाने में वहाँ रहते थे। कहते हैं कि द्वारकाधीश मंदिर लूटने आये अधर्मियों से उन्होंने डट कर मुकाबला किया था। उस संघर्ष में वे मारे गये थे। गली को लोग तब उन्हीं के नाम से पहचानते थे। अब गली का वास्तु ही बदल गया है। जिस घर में श्रीराम ने आकर डेरा डाला था, वह भी अब ज्यों का त्यों नहीं है। अखंडज्योति का मार्च १९४१ अंक यहीं से प्रकाशित हुआ। संवत् १९९८ की वर्ष प्रतिपदा को श्रीराम ने वहाँ यज्ञ किया। नगर के धार्मिक, साहित्यिक और सामाजिक क्षेत्र से जुड़े व्यक्ति उस आयोजन में आये थे।

समारोह में आर्यसमाज के लोग भी आये थे। तब मथुरा का समाज दो शाखाओं में बटा हुआ था। आर्यसमाज होलीगेट और आर्यसमाज चौक के नाम से विभक्त दोनों ही शाखाओं के लोग उस यज्ञ में आये थे। यज्ञ-अग्निहोत्र के बाद श्रीराम ने संक्षेप में अपनी योजनाओं का परिचय दिया। उनका उद्बोधन पूरा होते ही आर्यसमाज होलीगेट के मंत्री सत्यप्रकाश आर्य ने हाथ उठाया। हाथ खड़ाकर वे कुछ कहने की इच्छा व्यक्त कर रहे थे, लेकिन किसी अनुमति या संकेत की उन्होंने प्रतीक्षा नहीं की। हाथ उठाते ही वे बोले श्रीराम की भावनाएँ बहुत उज्ज्वल हैं। अगर वे स्वीकार करे, तो हमारे सभी कार्यकर्ता उनके साथ काम करने के लिए तैयार हैं। मैं उनके लिए होलीगेट आर्यसमाज का प्रधान पद संभालने की पेशकश करता हूँ। उस शाखा के दूसरे सदस्यों ने भी उनका समर्थन किया।

चौक आर्यसमाज के लोग भी पीछे नहीं रहे। उसके मंत्री दिव्यानंद आर्य ने पूरी मथुरा का ही नेतृत्व करने का प्रस्ताव रखा। इस प्रस्ताव में दोनों समाजों के विलय की भावना निहित थी। होलीगेट के सत्यप्रकाश आर्य ने बात की अगली कड़ी खोली। वे कहने लगे, 'मूर्तिपूजा को लेकर श्रीराम की मान्यताएँ आर्यसमाज के मूल सिद्धांतों से मेल नहीं खातीं। वे अपनी मान्यता में संशोधन करें, तो हम उन्हें सिर आँखों पर बिठाएँगे।'।

दिव्यानंद ने भी इस पर कुछ कहा। सनातन धर्म के कुछ विद्वान् भी वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने आर्यसमाज के विद्वानों का प्रतिवाद करना चाहा। दो



आलोक उद्घाटित हुआ

चार संवाद-प्रतिसंवाद हुए ही थे कि श्रीराम ने हस्तक्षेप किया। उन्होंने कहा, 'समाज का दायित्व ग्रहण करने या नहीं करने का प्रश्न अभी नहीं उठता। मुझे सोचने का समय दीजिए। फिलहाल हम लोग वर्ष प्रतिपदा मनाने के लिए एकत्रित हुए हैं। अखण्ड ज्योति अब आगे मथुरा से ही प्रकाशित होगी। मेरी विनम्र भावना है कि इसके माध्यम से हम भारतीय समाज में सामंजस्य का भाव स्थापित कर सकेंगे। परमात्मा की इस दुनिया में कई विरोधी सत्ताएँ हैं। कुछ तो इतनी विरोधी कि एक स्थान पर एक साथ रह ही नहीं सकती, जैसे अग्नि और जल। फिर भी परमात्मा की इस सृष्टि में दोनों के लिए स्थान है। मैं मतभेदों को संघर्ष और विवाद से सुलझाने के पक्ष में नहीं हूँ। मेरा आग्रह सामंजस्य के लिए है। हो सके तो आप उसमें सहयोग दीजिए।'

इस उद्बोधन के बाद आर्यसमाज का दायित्व सौंपने और शर्तें लादने का प्रकरण स्थगित हो गया। शिरोमणि जी भी इस कार्यक्रम में आये थे। वे उपस्थित लोगों में 'अखंड ज्योति' का सदस्यता शुल्क देने का आग्रह करने में लगे हुए थे। उसी प्रतिपदा को श्रीराम ने चैत्र नवरात्रियों में साधना और संस्कार का एक छोटा सा उपक्रम और किया। वहाँ उपस्थित श्रद्धालुओं से कहा कि इन नौ दिनों में गायत्री मंत्र की बारह माला प्रतिदिन जाप करें। नवरात्रियों में इस तरह एक सौ आठ मालाएँ पूरी हो जाएँगी।

नवमी के दिन इस संक्षिप्त अनुष्ठान की पूर्णाहुति कर ली जाए। अखण्ड ज्योति के मथुरा से प्रकाशन के साथ साधना को भी आंदोलन का रूप देने की छोटी सी शुरुआत हो गई। उद्बोधन के तुरंत बाद श्रीराम ने उन साधकों से अपने नाम लिखाने का अनुरोध किया, जो इस उपक्रम में सम्मिलित हो रहे थे। सात लोगों ने नाम लिखाए। इनमें चार आर्यसमाजी थे। उन्हें नाम लिखवाते देख होलीगेट आर्यसमाज के मंत्री ने कहा, 'आप लोग मूर्तिपूजा करेंगे क्या? स्वामी दयानंद के सिद्धांतों के विपरीत आचरण करेंगे?'

आपत्ति का सिरा थामते हुए श्रीराम ने कहा, 'आर्य साहब इन लोगों को पौराणिक ढंग से जप और पूजा नहीं करना है। हमने यहाँ सिर्फ गायत्री मंत्र के जप का अनुरोध किया है। उस मंत्र के नियमित जप पर तो दयानंद जी महाराज ने भी जोर देकर कहा है। सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी जी ने दो बार प्रातः-सायं संध्यावंदन के लिए कहा है। आप इनकी साधना को स्वामी जी के निर्देशों के

विरुद्ध कैसे मान सकते हैं? बल्कि हम तो कहेंगे कि आप भी नौ दिन तक बारह माला प्रतिदिन जप करें।'

आर्यसमाज के प्रधान के पास अपने आक्षेप पर टिके रहने का आधार नहीं बचा था। उन्होंने अनुभव किया कि मूर्ति पूजा को लेकर मन में एक आग्रह जमा हुआ है। वह दुराग्रह बन गया है। उससे छुटकारा पाना चाहिए। पश्चात्ताप होने लगा। अनुभव किया कि दुराग्रह ने आँखों के आगे पर्दा डाल दिया था। वह सच को देखने नहीं दे रहा था। उस अनुताप को दूर करने के लिए प्रधान ने भी नौ दिन के संक्षिप्त अनुष्ठान का संकल्प ले लिया।

परिचर्या और स्वाध्याय

मथुरा आये अभी ज्यादा दिन नहीं हुए थे। 'अखंड ज्योति' का प्रकाशन व्यवस्थित करने और आगंतुकों से मिलने जुलने में तो समय व्यतीत हो जाता था। परिवार के लिए अधिक समय नहीं निकल पाता था। पत्नी सरस्वती देवी पर भी काम का काफी दबाव था। पारंपरिक ढंग की घरेलू महिला थीं। बाहर आना-जाना नहीं होता था। घर के कामों और अभ्यर्थियों के लिए पानी, दूध, लस्सी आदि के प्रबंध में ही लगी रहती। नई जगह और बढ़ी हुई जिम्मेदारियों से वे थकने लगीं। बीच-बीच में उन्हें विश्राम की आवश्यकता अनुभव होने लगी। उन्हें थकते देखकर श्रीराम भी उनके काम में हाथ बटाने लगे। सरस्वती देवी उन्हें रोकने के लिए आराम की आवश्यकता होने पर भी काम करती रहतीं। इसी बीच उन्हें जोर की खाँसी उठने लगी। खाँसी बहुत तेज थी। श्रीराम ने उस आवाज को सुना तो तुरंत कामकाज बंद कराया और चिकित्सा पर ध्यान दिया। घरेलू कामों के लिए उन्होंने एक सेवक रख लिया।

उपचार आरंभ करते ही पता चला कि क्षय रोग हुआ है। फेफड़ों पर असर हो गया है। अस्पताल में भरती कराने से ही आराम होगा। मथुरा में क्षय के उपचार की अच्छी व्यवस्था नहीं थी। पास ही एक कस्बे 'हाथरस' में एक चिकित्सा केन्द्र का पता चला। वहाँ स्वजन संबंधी भी थे। उनसे सहयोग की अपेक्षा की जा सकती थी। श्रीराम ने तीन चार दिन में ही हाथरस जाने की व्यवस्था बना ली। मथुरा में ताई जी और बच्चों को छोड़ा। खुद पत्नी को लेकर हाथरस के उपचार केन्द्र चले गए।

करीब दो महीने तक इलाज चला। पंद्रह दिन तो अस्पताल में ही रहे। बाकी समय बीच-बीच में हाथरस जाना पड़ता। जितने दिन वे अस्पताल में



आलोक उद्घाटित हुआ

रहीं, श्रीराम भी वहीं रहे। मुँह अंधेरे आ जाते और देर रात तक पत्नी के पास रहते। रात में वहाँ ठहरने की व्यवस्था नहीं थी। अपने एक संबंधी के यहाँ रात बिता लेते थे। दिनचर्या उन्होंने पहले दिन ही तय कर ली। बीमार पत्नी अस्पताल में रहते हुए भी श्रीराम की सेवाएँ लेने में संकोच करती थीं। उन्होंने संकोच के लिए अधिकार पूर्वक मना कर दिया था। कहा था कि बीमार को डॉक्टर और तीमारदार के अनुसार चलना चाहिए। श्रीराम की व्यवस्था ही चली। वे औषधि और पथ्य का प्रबंध करते। अपने हाथ से दवा देते। भोजन कराते। प्रतिदिन वस्त्र बदलवाते और धुलाते थे। धुलाने की व्यवस्था नहीं होती तो स्वयं धोते।

परिचर्या पर पूरा समय देते हुए भी श्रीराम के पास काफी समय बचता। उस खाली समय में क्या करें? पूछताछ की और पता चला कि तहसील में दो अच्छी लाइब्रेरियाँ हैं। समय मिलते ही वे पंचायत की लाइब्रेरी पहुँचे और वहाँ के सदस्य बन गए। वहाँ से पुस्तकें इशू कराई और सरस्वती देवी के पास बैठकर पढ़ने लगे। पत्नी सोई रहती और वे पढ़ते रहते। बीच में पत्नी की आँख खुलती या औषधि देने का समय होता तो वे पुस्तक पढ़ना रोक देते थे। वह जागती रहती तो बात भी करते। जब थक जाती या आराम करने लगती तो वापस पढ़ने लगते। पढ़ने के साथ नोट्स लेने का क्रम भी चलता रहा। पंद्रह दिन में दोनों पुस्तकालयों की लगभग सभी महत्वपूर्ण पुस्तकें पढ़ लीं। दोनों पुस्तकालयों में दो हजार से ज्यादा किताबें थीं।

पंद्रह दिन बाद सरस्वती देवी को अस्पताल से छुट्टी मिल गई। उन्हें दबाएँ देकर और आवश्यक सावधानियाँ बता कर घर भेज दिया गया। श्रीराम ने लगभग छह महीने तक जब तक पत्नी ठीक नहीं हो गई, उन परहेजों का ध्यान रखा और बाद में भी संभाल करते रहे। साल भर बाद वे घर गृहस्थी का काम पूरी तरह संभालने लायक स्थिति में आ गई।

विचित्र आपत्ति

वल्लभराम की गली में ही श्रीराम ने कुछ दिन बाद एक कमरा और लिया। यह कमरा दूकान नुमा था। सड़क की ओर बड़े-बड़े दरवाजे खुलते थे। यहाँ वे एक आयुर्वेदिक औषधालाय शुरू करने जा रहे थे। आँवलखेड़ा में भी वर्षों पहले वे औषध उपचार का प्रयोग कर चुके थे। पास-पड़ौस के लोगों को पता चला तो उन्होंने विरोध किया। कारण यह था कि होलीगेट से द्वारकाधीश

के मंदिर की तरफ जाने वाली सड़क पर तीन आयुर्वेदिक औषधालय थे। उनमें से दो औषधालयों के वैद्य आसपास की गलियों में ही रहते थे। श्रीराम के संकल्प का विरोध उन्हीं परिवारों से शुरू हुआ था। उनके प्रभाव से दूसरे घरों में भी लोग विरोध के लिए उतारू हो गए।

श्रीराम ने उन लोगों से कहा कि हम लोगों की सेवा के लिए औषधालय आरंभ कर रहे हैं। वह व्यवसाय के लिए या दूसरे औषधालयों की प्रतियोगिता में नहीं होगा। यह सही भी था। श्रीराम ने न तो विधिवत् आयुर्वेद पढ़ा था और न ही परिवार में कोई इस आरोग्य शास्त्र का ज्ञाता था। जड़ी-बूटी के उपयोग से छोटी-मोटी तकलीफों को दूर करने का विचार मन में था। पास-पड़ोस से विरोध का भाव लेकर आये लोगों से उन्होंने अपने मन की बात कही, किंतु वे अपनी बात से रत्ती भर इधर-उधर नहीं हुए। वैद्यों के परिवार से संदेश आया था कि श्रीराम कोई और काम शुरू करें, तो वे सहयोग देंगे, लेकिन औषधालय नहीं चलाएँ। बार-बार यह स्पष्ट किया गया कि स्वास्थ्य सेवा को व्यवसाय की तरह नहीं चलाना है। वे सिर्फ लोगों की सेवा करना चाहते हैं। उनसे बदले में कुछ नहीं लेंगे। जटिल रोगों का उपचार भी नहीं करना है। ऐसे रोगी तो प्रतिष्ठित औषधालयों में जाते ही रहेंगे। यह स्पष्टीकरण किसी के गले नहीं उतर रहा था।

एक दिन वैद्य भगवानदास मुँह अंधेरे श्रीराम के निवास पर आए। तब वे उपासना कर रहे थे। उपासना पूरी होने तक वे बैठक में प्रतीक्षा करते रहे। ताई जी ने उनसे कुशलक्षेम पूछा। उन्होंने अपने आने का उद्देश्य बताया। साथ ही यह भी कहा कि वे अपने पुत्र को मनायें। उन्हें औषधालय खोलने से रोकें। वरना हम लोगों के लिए बड़ी कठिनाई हो जाएगी।

ताई जी ने कहा, 'वैद्य जी आप परेशान क्यों हैं? श्रीराम को नाड़ी देखना भी नहीं आता। वह तो सर्दी, खांसी, फोड़े फुंसी और पेट के नरम-गरम होने की ही दवा देता है। दवा क्या देता है, घरेलू नुस्खों से काम चलाता है। आपके कारोबार पर कोई असर नहीं आने वाला।'

भगवानदास ने कहा, 'आप नहीं जानती बहिनजी। हमें पता है कि श्रीराम के हाथों में करामात है। माला फेर-फेर कर उन्होंने जो पुण्य कमाया है न, उसके प्रताप से वह किसी को मिट्टी भी दे देंगे, तो वह निहाल हो जाएगा।'



आलोक उद्घाटित हुआ

‘तो आप क्या चाहते हैं कि बीमार लोगों को ठीक नहीं होना चाहिए,’ ताई जी ने पूछा। भगवानदास ने कहा, ‘खूब ठीक हों बहिन जी। आपके चिरंजीव लोगों को दुआ दें, सिर पर हाथ रखें। आशीर्वाद बाँटें लेकिन दवादारू नहीं करें।’

बातचीत चल ही रही थी कि उपासना पूरी होने के बाद श्रीराम भी उस कमरे में आ गए। वैद्यजी के कुछ वाक्य उनके कान में पड़ गये थे। उन्हीं का उत्तर देते हुए वे बोले, ‘मेरे हाथ में कोई सिद्धि-चमत्कार नहीं है वैद्यजी। है भी तो मैं उसका उपयोग लोगों को चंगा करने में नहीं करूँगा। आप निश्चित रहे। दूसरी बात यह कि मैं किसी भी कारण से अपना निश्चय बदलने वाला नहीं हूँ। रोगियों की सेवा का व्रत लिया है, तो वह निभाऊँगा भी सही। इतना वचन अवश्य दूँगा कि किसी सामान्य रोगी में गंभीर बीमारी के संकेत दिखाई दिए, तो उसे आपके औषधालय में अवश्य भेजूँगा। उसे बिना उपचार कराये चुपचाप नहीं बैठने दूँगा।’

यह वचन भगवानदास को संतुष्ट नहीं कर सका। श्रीराम ने कहा, ‘यह भी निश्चित जानिए कि उन्हीं रोगियों का उपचार करूँगा जो बिना दवादारू के ही घर में पड़े तकलीफ सहते रहते हैं। वे किसी भी वैद्य के यहाँ नहीं जाते।’

श्रीराम का यह वचन भी वैद्य समाज के प्रतिनिधि बनकर आये भगवानदास को आश्चस्त नहीं कर सका। वे औषध उपचार पर विराम लगा देने का ही आग्रह करते रहे। श्रीराम भी उसी दृढ़ता से उनके आग्रह में निहित हठ का प्रतिकार करते रहे। अंत में भगवानदास यह अनुरोध करते हुए उठे कि आप इस इलाके से कहीं और चले जाएँ, तो भी बड़ा अनुग्रह होगा। हम उसके लिए आवश्यक व्यवस्था कर देंगे। दूसरे स्थान पर आप लोगों की आरोग्य सेवा करें। उसमें भी सहयोग देंगे। बस यह क्षेत्र हमारे लिए रहने दीजिए। अब मना मत करना।

भगवानदास के इस अनुरोध को मानने में श्रीराम को कोई बुराई नहीं दिखाई दी। यहाँ नहीं, दूसरे स्थान पर ही सही। कुछ देर वे अन्यमनस्क से रहे। फिर ताई जी की ओर देखकर बोले, ‘ठीक है, हम लोग स्थान बदल लेंगे। लेकिन तीन महीने यहाँ सेवा करने दीजिए। उसके बाद स्थान परिवर्तन से आपकी बात भी रह जाएगी और किसी को यह कहने का मौका नहीं मिलेगा कि आपने एक गरीब ब्राह्मण को टिकने नहीं दिया।’ इतना कहकर श्रीराम हँस



दिये। भगवानदास को भी हँसी आ गई। उस हँसी के जोर से जैसे उनके मन की गाँठें खुल गई थीं।

श्रीराम ने उसी जगह औषधालय शुरू किया। क्षेत्र में आयुर्वेदिक दवाएँ देने वाले छोटे-मोटे वैद्य भी उनके पास आए। उन्होंने दबाव बनाने की कोशिश की, तो श्रीराम एक ही उत्तर देते कि हमारी किसी से प्रतियोगिता नहीं है। हम निर्धन रोगियों के लिए देशी पद्धति से उपचार करते हैं। किसी को डरना नहीं चाहिए। कोई डराकर यहाँ से भगाना चाहे तो यह भी नोट कर लें कि किसी दबाव में आकर हम यहाँ से जाने वाले भी नहीं हैं।

श्रीराम सुबह के दो घंटे प्रायः दस से बारह बजे तक ही औषधालय में बैठते थे। उसका नाम 'गायत्री आरोग्य केन्द्र' रखा था। कोई बोर्ड बैनर वगैरह नहीं लगाया था। किसी ने पूछा तो यूँ ही मुँह से निकल गया और यही नाम लोगों की जबान पर चढ़ गया। उस क्षेत्र के वैद्यों को श्रीराम के संपर्कों और विद्वत्ता के बारे में अच्छी तरह मालूम था। इसीलिए वे भयभीत हो रहे थे कि नया औषधालय उनके व्यवसाय को नुकसान पहुँचाएगा, लेकिन उन्होंने देखा कि श्रीराम सिर्फ दो घंटा ही बैठते हैं, तो उनके भय का कुछ निवारण हुआ। वे इस बात से भी आश्चर्य हुए कि श्रीराम की धार्मिक और साहित्यिक गतिविधियाँ पहले की तरह चल रही हैं। उन प्रयोजनों के लिए लोगों का आना-जाना बढ़ रहा है।

तीन महीने बाद-जैसा कि वैद्य भगवानदास को वचन दिया था। श्रीराम ने वह मकान छोड़ दिया। वे चौक के पास एक दूसरा मकान लेकर रहने लगे। यह मकान चौक के पास था। घीयामंडी (इन दिनों जहाँ अखंड ज्योति कार्यालय है) से करीब पाँच सौ मीटर दूर यह मकान यमुना के काफी करीब था। छत पर चढ़कर नदी का प्रवाह देखा जा सकता था। ताई जी ने पसंद किया था। यमुना और इनके आराध्य द्वारकाधीश का मंदिर पास ही पड़ता था, लेकिन यह मकान जल्दी ही छोटा पड़ने लगा। अखंडज्योति पढ़ने वाले लोग अक्सर आने लगे थे। 'गायत्री आरोग्य केन्द्र' का विस्तार भी हो गया था। सर्दी, खाँसी, बुखार आदि से पीड़ित आठ-दस लोग प्रतिदिन आने लगे थे।

पत्नी का निधन

मई १९४२ में परिवार पर जैसे वज्रपात हुआ। सरस्वती देवी अचानक बीमार हुई। हाथरस में उपचार के बाद वे स्वस्थ हो गईं। बीच में कभी शारीरिक



आलोक उद्घाटित हुआ

कष्ट की शिकायत नहीं की थी। यज्ञ, हवन, दवाएँ कूटते-पीसते और अखंड ज्योति की पैकिंग करने और लेबल चिपकाने के काम में वे पूरा हाथ बटाने लगीं थीं। उस दिन भी सब काम किये। दोपहर को मामूली शिकायत हुई। वह भी कोई चिंताजनक स्थिति में नहीं थी। स्वभाव से ही प्रकृति पर निर्भर करती थीं और छोटी-मोटी कठिनाइयों को बिना उपचार ही पार कर जाने के पक्ष में थीं। उदरशूल उठा तो उन्होंने परिवार में किसी से कहा भी नहीं। दो दिन बाद पीड़ा बढ़ने लगी। तब भी नहीं कहा। श्रीराम ने उनके व्यवहार और चेहरे पर उभर आई पीड़ा से पहचाना। पूछा तब कहा, लेकिन औषधि के लिए तब भी मना ही किया।

तीसरे पहर उनकी दशा बिगड़ी। बच्चे अपनी माँ को पीड़ा से कराहते चुपचाप देख रहे थे। स्थिति सुधरती दिखाई नहीं दी, तो श्रीराम वैद्य धनीराम को बुला लाये। वे नाड़ी विशेषज्ञ थे। उनके बारे में प्रसिद्ध था कि रोगी से बिना पूछे नाड़ी देखाकर ही रोम-रोम का हाल बता देते थे। कहते तो यह भी है कि वे सूचना लेकर आये व्यक्ति की नाड़ी देखकर भी रोगी के बारे में बता देते थे। वे दूत नाड़ी भी जानते थे। खैर, धनीराम आये। उन्होंने सरस्वती देवी की नब्ज देखी और कहा पेट में व्रण हुआ था। वह फूटने वाला है। अब ईश्वर स्मरण के सिवा कोई उपाय नहीं है। आप इनकी विदाई की तैयारी करें।

रोगी के संबंध में अशुभ आशंका व्यक्त करना चिकित्सा व्यवसाय की नैतिकता के विरुद्ध है। वैद्य ने यह बात नैतिकता का उल्लंघन करने के लिए नहीं कही थी। वे श्रीराम को बहुत मानते थे और उन्हें अंधेरे में नहीं रखना चाहते थे। उन्होंने कहा, 'भगवान चाहे तो ये ठीक हो सकती हैं।' फिर कुछ रुक कर बोले, 'नहीं मुझे यह सब बातें नहीं करना चाहिए थीं।' वे सिर पकड़ कर बैठ गए। कहने लगे, 'यह मुझे क्या हो गया? क्यों हो गया?'

सुनते ही श्रीराम सन्न रह गये थे। उनके मुँह से आवाज नहीं निकली थी। ताईजी भी स्तब्ध रह गई थीं और दोनों बच्चों की मनोदशा का अनुमान ही लगाया जा सकता है। परिवार में मृत्यु से पूर्व शोक का सन्नाटा देखकर धनीराम विचलित हो गए थे। श्रीराम ने उन्हें संभाला। वे अपने भीतर बह उठे शोक और चिंता की बाढ़ से प्रयत्नपूर्वक बाहर आए और वैद्यजी को संभालने लगे। उन्होंने कहा कविराज जी! आप परेशान मत होइए। आप स्वयं इस तरह दुःखी होंगे तो



हम अपने आपको कैसे संभालेंगे और इन बच्चों को देखिए इनका तो कलेजा ही फट जाएगा। आप इन्हें धीरज बँधाइए।

यह कह कर वे उठ गए और सरस्वती देवी को पुकारने लगे, 'कैसा लग रहा है दया? कुछ आराम हुआ क्या?

वे बोलीं 'हो जाएगा। आप चिंता न करें।' कुछ सामान्य घरेलू बातें और कहीं। उसके बाद चुपचाप लेट गई। थोड़ी देर में उन्हें नींद आ गई। इस बीच श्रीराम ने वैद्य जी को विदा किया। साढ़े आठ-नौ बजे तक बच्चे भी सो गये। श्रीराम और ताई जी जाग रहे थे। ताई जी बच्चों को संभाल रही थीं। श्रीराम सरस्वती जी के बिस्तर के पास बैठे कुछ पढ़ रहे थे। बीच-बीच में उन्हें देखते भी जाते थे। वे चुपचाप सो रही थीं।

रात के साढ़े दस और ग्यारह बजे का समय होगा सरस्वती जी कराह कर उठी। उन्हें उलटी जैसा अनुभव हुआ, लेकिन कुछ हुआ नहीं। वमन का वेग उठा और वे फिर लेट गई उन्होंने श्रीराम की ओर देखा। पूछा 'ओम दया और श्रद्धा कहाँ हैं?'

श्रीराम ने कहा, 'सो रहे हैं।' सरस्वती जी सुनकर चुप हो गई। फिर बोलीं ताई जी को प्रणाम करने का मन हो रहा है। देखा ताईजी पास वाले कमरे से आकर खड़ी हो गई हैं। उनके चरण स्पर्श के लिए उठने की कोशिश की। उठ नहीं पाई। ताईजी ही पास आ गई। सरस्वती ने उन्हें और श्रीराम की ओर कातर भाव से देखा। आहिस्ता से कहा, 'आपसे क्या कहूँ? लेकिन हाथ जोड़कर कहने का मन हो रहा है। कोई अमर्यादा हो तो ध्यान मत देना।' कह कर वे चुप हो गई जैसे भीतर साहस बटोर रही हों। कुछ रुककर वे बोलीं, 'बच्चों को माँ की कमी मत होने देना। तीनों माँ के ही भरोसे हैं। यह उनके अंतिम शब्द थे।'



अभिभावक योग का आरंभ

दुनियादारी या घर गृहस्थी में श्रीराम का मन पहले भी कोई खास नहीं रमता था। वे पारिवारिक दायित्वों की उपेक्षा नहीं करते थे, लेकिन ऐसा भी नहीं था कि उसी की चिंता में व्यस्त रहते हों या बहुत ज्यादा परवाह करते हों। लगाव और उदासीनता में एक स्थिति का चुनाव करना हो तो उनके बारे में कह सकते हैं कि उनकी प्रवृत्ति मध्यमार्गी थी। मध्यमार्गी होते हुए भी वे उदासीनता की ओर झुके हुए थे। पत्नी के निधन ने उनकी उदासीनता को और बढ़ा दिया। अंतिम और मरणोत्तर संस्कार संपन्न होने के बाद ताई जी ने इस स्थिति को अनुभव किया। भोजन आदि के मामले में श्रीराम की दिनचर्या वर्षों से अनुशासित थी। जौ के आटे की रोटी और गाय के दूध से बनी छाछ के अलावा वे कुछ नहीं लेते थे। स्वाधीनता आंदोलन में भागीदारी के दिनों में शिथिलता आई थी। आहार का कठोर व्रत निभाने में कठिनाई और व्यस्तताओं के कारण यह शिथिलता कुछ वर्ष ही चली। 'अखंड ज्योति' का प्रकाशन आरंभ होने के दो साल पहले फिर वैसे ही व्रत नियम निभाये जाने लगे। आशय यह कि उनका जीवन तपस्वी, वैरागियों जैसा पहले ही था। दाम्पत्य जीवन सूना हो जाने के बाद लोगों से बोलना, बातचीत करना कम होने लगा। वे खोये खोये से रहने लगे।

लेखन, सेवा और लोकमंगल की साधना में वे पहले की तरह सक्रिय थे। ताई जी ने इस क्षेत्र में भी एक मामूली बदलाव देखा। लोगों से मिलते जुलते समय वे हास्य विनोद कर लिया करते थे। उनकी चुटकियाँ और हलकी फुलकी बातें रोगियों के चेहरों पर छाई उदासी मिटा देती थी। वे हँसने लगते थे। ताई जी ने देखा कि बहू के नहीं रहने के बाद श्रीराम ने हँसना बोलना कम कर दिया है। वे अपने काम में चुपचाप लगे रहते। मिलने आए लोगों से गंभीर होकर बातें करते। रोगियों को उनके कष्ट पूछकर, लक्षण आदि देख कर दवायें देते। और पथ्य आदि बताकर उन्हें वापस भेज देते। उनके पास आने वाले पहले से आते रहे रोगियों ने भी अनुभव किया कि श्रीराम को उदासी घेर रही है। कुछ ज्यादा मुँह लगे लोगों ने ताई जी से यह बात कही भी सही।

ताई जी यह परिवर्तन बहुत बारीकी और गौर से देख रही थी। तीनों बच्चे दादी के पास ही सोते थे। पिता से घुल मिल नहीं पा रहे थे। एक तो शुरू से उनका सान्निध्य नहीं मिला था और दूसरे माँ के अचानक चले जाने ने भी उन्हें अपनी उम्र से बड़ा बना दिया था। वे देखते थे कि पिता को जप तप और लेखन संपर्क आदि के कामों में ज्यादा व्यस्त रहना पड़ता है। अपने लिए भी उनके पास समय नहीं है। फिर वे पहले भी दादी के पास ही रहते आये थे। पत्नी के नहीं रहने के बाद घर के छोटे-मोटे काम श्रीराम ही देखने लगे थे। ताई जी ने शुरू में रोका। उस समय तो कुछ नहीं कहा। जब वे इधर उधर होती तो अपने और बच्चों के तथा ताई जी के कपड़े रखे होते तो उन्हें भी धो डालते। ओमप्रकाश ने एक दिन उन्हें कपड़े धोते समय थोड़ा थका हुआ देखा और उनके पास जाकर बोले लाइये पिताजी में धुलवा देता हूँ। श्रीराम पुत्र की बात सुनकर थोड़ा रुके और बोले तुम अपनी पढ़ाई पूरी करो। यह काम हो जाएगा। ओमप्रकाश ने कहा, 'लाइए आप थक रहे हैं। मैं चटपट निपटा लेता हूँ।'

माँ की पुत्रवधू कामना

ओमप्रकाश उस समय दस बारह साल के ही रहे होंगे। श्रीराम ने हर बार मना किया। यह भी समझाया कि तुम्हारे हाथ छोटे हैं। इनमें कपड़े नहीं आएंगे। बालक की पितृभक्ति का इससे समाधान नहीं हुआ। वह जिद करने लगा तो श्रीराम ने डपट दिया। ओमप्रकाश रोते हुए ताई जी के पास चले गए। दादी ने पोते को समझा बुझा कर चुप करा लिया।

रात को दस साढ़े दस बजे श्रीराम के कमरे में झांका। देखा वे जाग रहे हैं। आमतौर पर वे साढ़े आठ नौ बजे तक सो जाया करते थे। क्योंकि सुबह जल्दी उठना होता था। साढ़े दस बजे जागते देख ताईजी चौंकी। उन्होंने पूछा भी कि अभी तक क्यों जाग रहे हो। सो क्यों नहीं जाते? श्रीराम ने अनमना सा जवाब दिया। ताईजी ने समझा कोई काम रह गया होगा। इसलिए अभी तक सोना नहीं हो पाया है। वे भीतर चली आई और बिना किसी भूमिका के बोली, 'तुमने ओम को सुबह डांटा। अच्छा नहीं किया।'

श्रीराम ने कहा 'वह जिद कर रहा था। मैंने सिर्फ डपटा था।'

ताई जी ने कहा, 'उसे तुम्हारा ख्याल है। बहू के नहीं रहने के बाद तुम अकेले पड़ गये हो। उसे यह बात महसूस होती होगी। बच्चे बिना माँ के हैं।'

अभिभावक योग का आरंभ

उन्हें भी अकेलापन काटता होगा।' श्रीराम चुपचाप सुने जा रहे थे। ताई जी ने दैनंदिन जीवन में आने वाली कठिनाइयों और गृहस्थी की आवश्यकताओं पर व्याख्यान सा देते हुए कहा, 'मैंने तीनों बच्चों के लिए माँ लाने का फैसला किया है?'

श्रीराम ताई की चतुराई पर हैंसे। वे कहती कि तुम्हारा फिर से विवाह करना है तो शायद मना कर देते। बच्चों के लिए माँ लाने के प्रस्ताव पर निषेध अधिकार का प्रयोग कठिन था। फिर भी श्रीराम ने कहा, 'लेकिन मैं कोई नई जिम्मेदारी ग्रहण करने के पक्ष में नहीं हूँ। एक बार विवाह हो गया काफी है। भगवान ने अकेला रखकर आगे की राह दिखा दी है।' इतना कहना था कि ताईजी फट पड़ी। उनके मन में वर्षों पहले आई और आकर सो गई आशंका हड़बड़ा कर जाग उठी। वे बोली, 'क्या राह दिखा दी सुनू तो मैं भी जरा। अब संन्यासी बनेगा क्या? मुझे दिया वचन तोड़ेगा। वनखंड में जाएगा। इन बच्चों का क्या होगा? मेरा क्या होगा?'

ताई जी ने इतने सारे उलाहने दिए, दुहाई दी और फटकार लगाई कि श्रीराम से उन्हें बीच में रोकते नहीं बना। वे थोड़ी चुप हुई तो बोले कि संन्यासी होने के लिए मैंने कब कहा है।

'अकेला रह कर क्या करेगा फिर?' ताईजी ने कहा, 'देखती नहीं हूँ क्या कि तुम दिनोदिन जिंदगी से दूर होते जा रहे हो। न खाने पीने की सुध है और न ही सोने जागने की। हँसना बोलना भी भूल गये हो। नहीं यह सब नहीं चलेगा।'

ताई जी के इस निर्धारण को न टालते बन रहा था और न ही स्वीकारते। श्रीराम अपने भावी जीवन की रूपरेखा बना चुके थे। उसके अनुसार महापुरश्चरण साधना पूरी होते ही अपनी मागदर्शक सत्ता के प्रत्यक्ष सान्निध्य में चले जाना है। लोकरंजन के लिए जो कुछ करना है, वह इसी अवधि में संपन्न कर लेने की साध बना ली थी। ताईजी इतना कहकर चुप नहीं बैठ गईं। उन्होंने आंवलखेड़ा में अपने देवर रामप्रसाद शर्मा के पास तुरंत संदेश भिजवाया। गाँव में उनकी खेती बाड़ी और जमींदारी का काम वही देखते थे।

संदेश भेजने की बात श्रीराम को बाद में पता चली। वह भी चाचा के मथुरा आने के बाद। उस समय श्रीराम चूना कंकड़ मोहल्ले में रहते थे। ताई जी का फरमान जारी होने के तीसरे दिन ही चाचा वहाँ आ गए। कहने लगे, 'भाभी आपको कहना पड़ा यह हमारे लिए लज्जा की बात है लेकिन हम चुप नहीं बैठे



थे। जगन्नाथ (श्रीराम के छोटे चचेरे भाई) का रिश्ता तय हो चुका था। इसी वैशाख में विवाह तय किया था। आपकी देवरानी कहने लगी बड़े भाई का घर बसाए बिना छोटे का ब्याह करना ठीक नहीं होगा। हमने पहले ही सब फिक्र कर ली है। आप चिंता न करें। जल्दी ही आपके घर में चूड़ियां खनकेंगी।'

चाचा ने श्रीराम से पूछने ताछने की जरूरत नहीं समझी। सिर्फ इतना ही कहा कि विवाह होते तक भाभी (ताईजी) का पूरा ख्याल रखना। उन्हें किसी तरह का कष्ट नहीं हो। लगे हाथों वे यह भी कह गए कि गृहस्थी का काम नहीं संभल रहा हो तो नौकर चाकर का इंतजाम कर ले। श्रीराम ये सब बातें अन्यमनस्क भाव से सुन रहे थे। कुछ समय तक तो उनके मन में द्वन्द्व रहा कि इन स्थितियों से कैसे निपटा जाए? फिर अपने आप समाधान हो गया। द्वन्द्व जब प्रगाढ़ होने लगा तो भीतर से यह भाव जागा कि साधना का योगक्षेम मार्गदर्शक सत्ता ही निभा रही है। जो उचित होगा, वही होगा। उसकी इच्छा आकांक्षा के विपरीत कुछ भी नहीं हो सकता।

साधना में मिले संकेत

सन् १९४३ में मई मास की ही कोई तिथि रही होगी। जप ध्यान में हमेशा की तरह तन्मयता रही। पाँच साढ़े पाँच घंटे के आसन और इष्ट से एकाकार हो जाने वाली प्रगाढ़ स्थिति ने श्रीराम के वर्ण को तपे हुए सोने जैसा कर दिया था। आसन से उठते हुए अपने व्यक्तित्व में भी उन्हें यह आंच अनुभव होती थी। जिन दिनों यह स्थिति बनना आरंभ हुई, उन दिनों थोड़ी असुविधा तो होती थी लेकिन बाद में अभ्यास हो गया। आसन से उठने के बाद वे हाथ मुँह धोते, सिर पर पानी छिड़कते और कुछ देर तुलसी की क्यारी या गाय के पास खड़े रहते।

उस दिन श्रीराम उठने लगे तो उन्हें प्रतीत हुआ कि पूजा कक्ष में वे अकेले नहीं हैं। उनके साथ किसी और साधक ने भी समर्पण किया है। उस साधक की उपस्थिति का बोध हुआ। उन्होंने आसपास देखा लेकिन कहाँ कोई नहीं था। फिर भी उपस्थिति का आभास हो रहा था। बोध के प्रति वे थोड़े जागरूक हुए तो वह प्रतीति तिरोहित हो गई। लेकिन अगले दिन फिर वही अनुभव हुआ। लगा कि समर्पण का मंत्र किसी और ने भी समवेत स्वर में पढ़ा है। स्वर कंठ में ही गूँजा था। मुँह से ध्वनि नहीं हुई थी। वह पश्यंती स्तर तक ही व्याप्त हुआ था। लेकिन अनुभव हो रहा था।

अभिभावक योग का आरंभ

अगले दिन यानी तीसरे दिन प्रतीति और स्पष्ट हुई। अनुभव हुआ कि आसन के पास वाले भाग में एक दुबली पतली किशोरी कन्या बैठी है। वही साथ साथ मंत्र पढ़ती जा रही है और समर्पण का संकल्प करते हुए पृथ्वी पर जल छोड़ रही थी। इन तीन दिनों में यह प्रतीति भी प्रगट हुई कि साधना के अंतिम चरण में जैसी दाहक ऊष्मा अनुभव होती थी, वह शांत शीतल होने लगी है। वैसी गर्मी का अब लोप सा हो गया है। कहीं यह उस किशोरी की उपस्थिति का प्रभाव तो नहीं है? मन में प्रश्न उठा लेकिन ज्यादा देर तक यह टिका नहीं रहा।

उसी दिन चाचा रामप्रसाद मथुरा आये। देहरी पर पांव रखते ही उन्होंने अपनी भाभी को पुकारा और अंदर आते तक घोषणा कर दी कि श्रीराम के लिए बहू मिल गई है। बहुत सुशील और नेक स्वभाव की है। खेलने कूदने में उसका मन कम लगता है। चिड़ियाओं को दाना चुगाने, गाय, बकरी, कुत्ते आदि चौपायोंको चारा, रोटी खिलाने और घर आने वालों के लिए पानी लाने, उनकी सेवा करने में ही मन रमता है। यह सब विवरण देते हुए रामप्रसाद खी खी कर हँस दिए। ताईजी ने कहा, 'कुछ नाम पता बताओगे भी। घर परिवार के बारे में भी कोई पूछ-ताछ की है या नहीं?'

'सब पूछ लिया है भाभी। आप मना नहीं करेंगी। बस लगन की तैयारी कीजिए।' इतना कहकर राम प्रसाद फिर एक बार हँसे और हँसकर चुप हुए तो बच्चों के लिए चुनी गई माँ का ब्यौरा देने लगे। सांवरिया बोहरे (आगरा) के जसवंतराय बोहरे के परिवार में जन्मी भगवती देवी की उम्र लगभग सोलह सत्रह वर्ष की होगी। रिश्ते की बात लेकर आए श्रीराम के चाचा ने रंग रूप के बारे में बताया कि वे सांवली और दुबली पतली हैं। अपने पिता की चौथी संतान हैं और भजन पूजन में ही ज्यादा समय बिताती हैं। चार पाँच वर्ष की होते ही उन्होंने शिव की आराधना शुरू कर दी। बिना सिखाये ही पंचाक्षरी मंत्र का जाप किया। पालथी मारकर मकान के ही एक हिस्से में बने शिवालय में जा बैठी और भगवान शंकर के सामने बैठकर नमः शिवाय पढ़ने लगीं। कुछ दिन बाद उन्होंने पूर्व दिशा में लालिमा लिये उदित हो रहे सूर्य की ओर टकटकी लगाकर देखा। कुछ मिनट निहारती रहीं और पूजा के समय अलग से रखा जल सविता देवता को चढ़ा दिया।



पूजा पाठ में रुचि के बारे में सुनकर ताई जी को भारी संतोष हुआ। श्रीराम के अकेले रह जाने के बाद उन्हें चिंता होने लगी थी, उसका निराकरण हो गया। पुत्र के तपस्वी जीवन में और अधिक कठोरता आने से वे चिंतित रहने लगीं थीं कि वैराग्य भाव और बढ़ा तो श्रीराम कहीं साधु संन्यासी न हो जाए। भगवती देवी के भक्तिभाव को जानकर वे जैसे आश्चस्त हुईं। लगा कि उनका भक्तिभाव श्रीराम के वैराग्य और ज्ञाननिष्ठा को बाँधे रखेगा।

रामप्रसाद जी ने कन्या के बारे में यह भी बताया कि घर में गायों की देखभाल भी वही करती हैं। श्यामवर्ण की एक गाय तो भगवती देवी से इतनी घुली मिली है कि चारा पानी भी कन्या के हाथ से ही लेती है। सुबह के समय सामने पहुँचने में देर हो जाए तो रंभाने लगती है। वह स्वर अलग ही तरह का होता है जैसे पुकार रही हो।

रामप्रसाद ने बताया कि भगवती देवी को घर में सब लोग लाली कहते हैं। सबसे छोटी थी। जब वे पाँच वर्ष की थीं, तभी माँ का निधन हो गया था। तीनों भाई बहिनों ने अपनी छोटी बहन का विशेष ध्यान रखा। पिता ने भी ध्यान रखा कि बेटी को माँ की कमी का आभास न हो। वे भी भगवती देवी को लाली कहते थे। राम प्रसाद ने हँसते हँसते बताया, 'और सुनो भाभी। तुम्हारी बहू को बचपन में खेलने कूदने का भी कोई भाव नहीं था। पंडित जी बता रहे थे कि लाली के पास कपड़े की बनी एक गुड़िया थी। वह अक्सर बीमार पड़ जाती और लाली सेवा टहल करने लगती। गुड़िया के हाथ पाँव जरा भी टेढ़े मेढ़े होते, कपड़ा गंदा हो जाता तो वे चिंता करने लगती। बीमारों की तरह उसकी देखभाल करतीं। एक वैद्यजी बुलाये जाते। वैद्यजी भी कपड़े से बनाये गुड्डे ही होते। वे आते। नब्ब देखते। कोई नुस्खा बताते और लाली नुस्खा तैयार करने में जुट जाती। जड़ी बूटियाँ इकट्ठी करतीं। उन्हें कूटती पीसती। काढ़ा बनाती, लेप करती। इस उपचार में गुड़िया थोड़ी मैली हो जाती तो उपचार पूरा होने के बाद उसे नहलाती धुलाती कपड़े बदलतीं।'।

यह सुनकर तो ताईजी भी हँसे बिना नहीं रहीं कि उनकी होने वाली बहू ने गुड़िया के लिए एक अलग रसोई भी बना रखी थी। वहीं उसका भोजन तैयार होता। उससे मिलने के लिए लोग (गुड्डे, गुड़िया) आते जाते रहते थे। उनका भोजन भी रसोई में तैयार होता। आने वालों को भोजन किए बिना जाने नहीं दिया जाता था।

अभिभावक योग का आरंभ

गुड्डे-गुड़ियाओं से खेलने की उम्र तक लाली यही सब करती थीं। बाद में वे घर आये लोगों की आवभगत में व्यस्त रहने लगीं। उनके लिए पानी लाना, भोजन के लिए पूछना, स्वल्पाहार की व्यवस्था करने जैसे मोर्चे संभाल लिए। छोटी उम्र में गुड्डे गुड़ियाओं की की गई आवभगत आगंतुक अतिथियों के सत्कार में बदल गई।

श्रद्धा भक्ति और अतिथि सत्कार के गुणों ने ताई जी को मुग्ध कर लिया। उन्होंने बिना देखे और पूछताछ किये बिना ही रिश्ते के लिए हाँ कह दिया। संबंध निश्चित करने के लिए जसवंत रायजी सिर्फ एक बार आये। उन्होंने दामाद के बारे में पास पड़ौस या कहीं और छानबीन करने के बजाय जन्मकुंडली देखी। देखकर कह दिया दोनों की जोड़ी बहुत अच्छी जमेगी। शिव पार्वती की तरह। कुडली में ऐसे योग पड़े हैं।

संबंध तय हो गया और फाल्गुन सप्तमी वि०सं० २००२ (१० मार्च १९४६) का दिन विवाह के लिए निश्चित हुआ। उसी समय यह भी निश्चित हुआ कि लाली के साथ उनकी आत्मीय सगी श्यामा गाय भी आयेगी। कन्या धन और गोधन दोनों को मथुरा से विदा किया जाएगा। यह भी कि विवाह में धूमधाम नहीं करना है। बहुत सादगी और बिना शोरशराबे के ही पाणिग्रहण संस्कार संपन्न कर लिया जाए।

माँ को प्रणाम करो

विवाह बहुत सादगी से संपन्न हुआ। श्रीराम ने दहेज में खादी की धोती और कुर्ते का कपड़ा ही स्वीकार किया। कन्या धन के रूप में भी गाय के सिवा कुछ नहीं लिया। वधू के माता पिता ने पहल की तो यह कहते हुए मना कर दिया कि उसे अमानत के तौर पर अपने यहाँ ही रखा जाए। उस भेंट को लेकर जाने से परहेज है। बारात में ताई जी के अलावा चार लोग और गए थे। संस्कार एक पारिवारिक उत्सव की तरह संपन्न हुआ। वधू के मथुरा आने पर एक यज्ञ का आयोजन किया गया था। गायत्री यज्ञ के समय ही श्रीराम के मित्र परिचित इकट्ठे हुए।

वधू ने आते ही घर के वातावरण को आत्मसात कर लिया था। जैसे इस परिवेश में वे वर्षों से रहती आई हों। उन्हें आये हुए दो तीन दिन ही हुए होंगे। तीनों बच्चे अभी दूर ही रहते थे। वे पास नहीं आ रहे थे। अपरिचय का

संकोच ही था वरना वे अपनी नई माँ को दाँये-बाँये से ताक-झांक कर देख लेते थे। उस दिन ताई जी ने बच्चों को घेरा और जर्बदस्ती बहू के पास भेजा।

नववधू आंगन में चटाई पर बैठी थीं। घर का कोई काम कर रही थीं। ताईजी ने पहले ओमप्रकाश को भेजा। फिर दया फिर श्रद्धा को। तीनों बच्चे सहमे सकुचे से पास आ कर खड़े हो गये। ताई जी कमरे से देख रही थीं। बच्चों को चुपचाप खड़ा देखकर बोलीं, ओमप्रकाश देख क्या रहा है। पाँव छू।

उनकी यह रौबीली आवाज सुनकर ओमप्रकाश आगे बढ़े और पाँव छू लिए। बहूरानी ने ओमप्रकाश, दया और श्रद्धा को हाथ पकड़कर अपने पास बिठा लिया। तीनों के सिर पर हाथ रखा। दुलारते हुए पूछा, 'तुम्हारा क्या नाम है?' पढ़ाई लिखाई के बारे में पूछा। बच्चों ने भी सहज कौतूहल से कुछ प्रश्न पूछे। दोनों में किसी को याद नहीं रहा कि क्या पूछा। ताईजी की यह बात बहरहाल जरूर कानों में गूँजती है कि यह तुम्हारी माँ है। इन्हें माँ ही कहना।

माँ ही कहने का निर्देश इसलिए था कि बच्चों ने नववधू को चाची कह दिया था। वे अपनी जननी को भी इसी नाम से संबोधित करते थे। ताई जी ने डपटकर कहा था, 'अब तुम लोग बड़े हो गये हो। चाची चाचा कहना बंद कर सही नाम लिया करो।' बच्चे अपने पिता को भी चाचा कहा करते थे। परिवार के दूसरे बच्चे भी श्रीराम को चाचा कहते थे। उनके देखादेखी वे भी यही कहने लगे। ताई जी ने अपने बेटे की गृहस्थी फिर बसने के बाद संबोधनों में सुधार किया और श्रीराम को पिताजी कहने की हिदायत दी।

भगवती देवी ने तीनों बच्चों को स्नेह से दुलारने के बाद कहा, 'अब ताईजी को परेशान मत करना। कुछ भी चाहिए तो मुझसे कहना। हाँ।'।

ओमप्रकाश ने कहा, हम तो पहले भी परेशान नहीं करते थे। दया ने कहा, कोई चीज चाहिए होती तो जिद करते थे सिर्फ। जिद करना परेशान करने में तो नहीं आता है न माँ। श्रद्धा चुपचाप खड़ी रही थी।

दया की बाल सुलभ अभिव्यक्ति पर नई माँ के चेहरे पर मुस्कान आ गई। वे अपनी दुलारी की मासूमियत पर हँसे बिना नहीं रह सकी थीं। वे बोली, 'जिद करना हो तो भी मुझसे ही करना। ताईजी की सिर्फ सेवा ही करना चाहिए।'।

सुनकर ताईजी बाहर निकल आई, वे बोली 'बच्चों को अपनी तरह से रहने दो बहू। सारी जिम्मेदारियाँ खुद न ओढ़ो। उन्हें दादी से भी उलझा रहने दो।'।

सास की बात का बहू ने कोई जवाब नहीं दिया। वह नजर झुकाकर नीचे देखती रहीं। उस दिन के बाद से ओमप्रकाश अपनी दादी के पास सोते। दया और श्रद्धा माँ के पास। जो भी जरूरत होती, उसे माँ को ही बताते। घूमना फिरना और खेलकूद का इंतजाम दादी के जिम्मे रहा। दादी और नई माँ का दायित्व बंटा तो नहीं। दोनों एक दूसरे का काम संभाल सकते थे लेकिन बच्चों ने दादी से भारी कामों के लिए कहना कम कर दिया। वे सोचते थे कि दादी को थकाना नहीं चाहिए। कुछ ही दिनों में नई माँ से इतने घुलमिल गये जैसे पुराना परिचय हो। इसी माँ की गोद में बड़े हुए हों। यहीं जन्म पाया हो।

सबके लिए ममत्व

भगवती देवी ने बच्चों का ही नहीं 'अखंड ज्योति' और परिवार में आने वाले अभ्यागतों का दायित्व भी संभाल लिया था। शुरू दिन से लग रहा था कि यह घर, परिवार और परिवार के सदस्य परिचित से हैं। ताईजी ने औपचारिक रूप से घर की व्यवस्था और आवश्यकताओं के बारे में समझा दिया था। जो समझाया उसे दोबारा पूछने की जरूरत नहीं हुई। 'अखंड दीपक' का दायित्व ग्रहण करने से आरंभ हुआ। गृहस्थी का पहला काम यही किया। दोनों बच्चों से परिचय उसके बाद हुआ और श्रीराम से तो उसके भी बाद।

उस क्षेत्र और समय की परंपरा के अनुसार वर वधू ने एक दूसरे को विवाह से पहले देखा नहीं था। वधू ने तो विवाह के बाद भी कुछ दिन तक नहीं देखा। यज्ञ में और पूजापाठ में बैठते समय कनखियों से ही अपने जीवन साथी को देखा था। जब परिचय हुआ तो यही अनुभव किया कि श्रीराम केवल पति ही नहीं, इष्ट आराध्य भी हैं। लगा जैसे बचपन से जिस शिव की आराधना करती आई हैं, वही इष्ट लौकिक जीवन में इस रूप में सामने आये हैं।

प्रथम परिचय में श्रीराम ने अनायास ही कहा कि इन बच्चों के लिए तो माता का दायित्व निभाना ही है और बच्चे भी तुम्हें माँ कहेंगे।

भगवती देवी ने असमंजस का भाव जताते हुए मुँह उठाया। वे श्रीराम की ओर देखने लगीं। जैसे पूछ रहीं हों कि आप कहना क्या चाहते हैं। श्रीराम ने भी जो कहा था वह योजना बनाकर या सोच समझ कर नहीं था। अपने आप भीतर से प्रेरणा उठी या कहें कि उमंग जगी और मुँह से वचन निकल आये।

उन्होंने कहा, 'आगे चलकर हम लोगों को हजारों लाखों लोगों तक पहुँचना है। वे लोग भी हमें तलाशते हुए आएँगे। उन सबको तुम्हें माँ की तरह स्नेह देना है।'

भगवती देवी अपने आराध्य का मुँह देखती रह गई थीं। स्तब्ध भी हुई। फिर सोचने लगीं। जितनी देर वे श्रीराम के मुँह की ओर अवाक देखती रहीं, उन्हें प्रतीत होता रहा कि सामने उनका पति एक व्यक्ति के रूप में प्रकाश पुंज खड़ा है। उन्होंने कहा, 'नहीं, सिर्फ अनुभव किया और मन ही मन दोहराया कि आप पति जीवन साथी और भर्तार ही नहीं हैं। गुरु भी हैं, गुरुदेव-गुरुदेव-परब्रह्म। इन भावों का उदय होते हो मन में शिव की स्तुति गूँजने लगी-नमामीशमिशान निर्वाण रूपं' नियमित पूजा उपासना में यह स्तुति गाया करती थीं। श्रीराम के चरणों में आत्मनिवेदन करते हुए उन्होंने अपने आपको योग, ज्ञान, कर्म, विद्या, भक्ति आदि के कारण नहीं मात्र निवेदन और समर्पण भाव के आधार पर ही प्रस्तुत किया। विनत भाव से उस समर्पण को स्वीकार करने का दावा भी जताया।

चूना कंकड़ का वह मकान छोटा पड़ने लगा था। अखंड ज्योति परिवार के सदस्य बढ़ने लगे। उनसे भी ज्यादा जिज्ञासु प्रवृत्ति के लोग आने लगे थे। श्रीराम के यज्ञ अभियान और छोटे-मोटे कार्यक्रमों में आने वालों को किसी विषय में कुछ जानने की उत्कंठा उठती तो वे बेधड़क आ जाते थे। इनमें कुछ व्यक्तिगत समस्याएँ लेकर भी आते थे। श्रीराम यज्ञ का संचालन करते हुए उसका संदेश देते थे कि अग्रिहोत्र में दी गई आहुति और समिधा को अपनी तरह होम देने से ही पुण्य मिलता है इसके साथ बुराईयों की भी आहुति देना चाहिए। अपने आपको दूसरों की सेवा में जितना जला खपा दिया जाएगा, उतना ही पुण्यफल मिलेगा।

संदेश व्यापक अर्थ में ग्रहण करने वाले लोग कम ही होते। पारिवारिक और आसपास के जीवन जगत से जुड़ी समस्याओं के बारे में अधिक लोग आते थे। अपने घर परिवार के माहौल और संबंधों से दुःखी दो तीन लोग तो प्रायः आने ही लगे थे। श्रीराम जिस समय बाहर होते उस समय ताईजी इन लोगों को संभालती। उन्हें जल्दी ही लगा कि संपर्क और परामर्श के लिए बैठना रास नहीं आ रहा है। उन्हें भगवान का भजन करने की सीख ही अच्छी लगती थी। वे इसी में रमी भी रहना चाहती थी। उन्होंने अपने आपको धीरे-धीरे इस दायित्व से मुक्त कर लिया और बहू भगवती देवी को आगे करने लगीं। बहू को संकोच



हुआ तो ताई जी ने और फिर श्रीराम ने भी समझाया कि आगे चलकर दुःखी संतसजनों का आना जाना बढ़ेगा तब तुम्हें ही यह सब संभालना है। वे मुश्किल से लोकसंपर्क के लिए राजी हुई। लोगों से मिलने जुलने की व्यवस्था की बात श्रीराम के बाहर रहने की स्थिति में ही स्वीकार की।

संख्या बढ़ी तो आवश्यक लगा कि नया मकान ढूँढ़ा जाए। डैंपियर पार्क में बारह कमरों की दो मंजिला हवेली के झरे में पता चला। वहाँ का किराया आठ रुपये महीना था। खुलेपन और विस्तार की दृष्टि से वह अच्छा था। श्रीराम उसे देखने गये तो उन्हें पास पड़ौस के लोगों ने बताया कि मकान को लेकर कुछ विवाद चल रहे हैं। दो परिवार दावेदार हैं। दोनों में से कोई भी बेचने या किराए पर उठाने की कोशिश करता है तो झगड़ा शुरू हो जाता है। मकान खाली पड़ा रहता है तो दोनों की निश्चिंत हो जाते हैं। श्रीराम की ख्याति और प्रतिष्ठा से अवगत पड़ौसियों ने यह भी सुझाया था कि आप चाहे तो दोनों परिवारों में समझौता हो सकता है। लड़ना भिड़ना छोड़कर वे किसी एक फार्मूले पर आ सकते हैं। श्रीराम ने मध्यस्थता में रुचि नहीं ली। विवाद में उलझा कोई भी पक्ष इसके लिए पहल नहीं कर रहा था। जो लोग किराये पर देना चाह रहे थे, उनकी रुचि श्रीराम की किराएदारी से ऊर्जा ग्रहण करने तक ही सीमित थी। वह सोचता था कि यहाँ श्रीराम जैसे किराएदार बसेंगे और लोगों का आना जाना बढ़ेगा तो उसका दावा मजबूत होगा।

कुछ और मकान तलाशे। अंत में घिया मंडी का मकान जमा। इसमें नौ कमरे थे। मकान दो मंजिला था। सड़क के किनारे बने इस मकान में जहाँ अब 'अखंड ज्योति' कार्यालय है। उपलब्ध स्थान उस समय पर्याप्त लगा। किराये का अनुबंध तय होते ही पहली मंजिल पर अखंड दीपक और गायत्री के विग्रह की प्रतिष्ठा हुई। शुभारंभ के दिन लगभग चालीस व्यक्ति गृह प्रवेश संस्कार आयोजन में आये।

नये आवास की चुनौती

मकान लेने की बातचीत के दौरान आसपास के लोगों ने श्रीराम को सावधान किया था। वह घर महीनों से खाली पड़ा था। कोई रहने आता भी था तो ज्यादा दिन नहीं टिकता। छोड़छाड़ कर चला जाता। कहा जाता था कि उस घर में प्रेतात्माओं का निवास है। वे किसी को रहने नहीं देती थी। श्रीराम ने



मकान लेने की तैयारी दिखाई तो पड़ौसियों ने इस बारे में उन्हें बताया। वे लोग अपने हिसाब से सत्परामर्श ही दे रहे थे। श्रीराम ने उनकी बात सुनी और कहा कि प्रेतात्माएँ रहती हैं तो रहें। हमें उनसे कोई असुविधा नहीं होगी। उन्हें समझा लेंगे।

सुनने वालों को लगा कि श्रीराम उनके परामर्श का मजाक कर रहे हैं। बात जबकि ऐसी नहीं थी। श्रीराम ने अपनी बात को स्पष्ट किया, हम साधक हैं। गायत्री के उपासक किसी से बैर प्रतिरोध नहीं मानते। परामर्श देने वाले सज्जन को अन्यथा न लगे, इसलिए उन्होंने अतीत में हुए माधवाचार्य का एक प्रसंग भी सुनाया साधन काल में स्वामी माधवाचार्य ने बारह वर्ष तक गायत्री की साधना की थी। जप तप और व्रत अनुष्ठान में तन्मय भाव से लगे रहने पर भी कोई लाभ होता दिखाई नहीं दिया। शारीरिक, मानसिक और आत्मिक स्तर पर उन्हें प्रतीत होता था कि यथास्थिति ही बनी हुई है। वे निराश हो गए।

आत्मिक क्षेत्र में शीघ्र उन्नति के लिए एक प्रसिद्ध तांत्रिक बालयोगी ने माधवाचार्य से भैरव की उपासना के लिए कहा। माधवाचार्य को सिद्धियों, साधन सिद्धि का तीव्र आकर्षण था। उन्होंने भैरव की उपासना आरंभ की। नई उपासना के परिणाम चालीस दिन में ही दिखाई देने लगे। भैरव की आवाज सुनाई दी। पूछा कि वर मांगों। माधवाचार्य ने उन्हें देखने के लिए आँखें खोली। वे दिखाई नहीं दिए। साधक ने कहा आप प्रत्यक्ष दर्शन दीजिए। भैरव ने उत्तर दिया आपने गायत्री की उपासना की है। हम गायत्री उपासक के सामने प्रकट नहीं हो सकते। गायत्री उपासना के तेज के आगे हमारा वश नहीं चलता। माधवाचार्य ने पूछा लेकिन हमें तो गायत्री उपासना का कोई लाभ अनुभव नहीं हुआ।

भैरव ने बताया कि उपासना ने आपके कषाय कल्मषों और पिछले जन्म के पापों का क्षय किया है। उसका आत्मिक लाभ दिखाई देने की बारी आई तो आपने वह मार्ग छोड़ दिया। साधना भले ही छोड़ दी हो लेकिन उसका तेज हमेशा आपके साथ रहेगा। यह प्रसंग सुनाने का उद्देश्य पड़ौसियों की चिंता का निवारण करना था। मकान में नहीं जाने की सलाह देने वालों को फिर भी संतोष नहीं हुआ। एकाध ने कह भी दिया कि आप भी इस मकान में ज्यादा दिन नहीं रह पाएँगे। लोगों के परामर्श या चेतावनी को श्रीराम ने सहज भाव से लिया।

दो तीन दिन बाद लगा कि छत पर धमाचौकड़ी मची हुई है। रात के वक्त लोगों के भागने की आवाजें सुनाई दी। जैसे बहुत से लोग चहल कदमी कर रहे हों या कबड्डी खेल रहे हों श्रीराम एक लालटेन और डंडा लेकर ऊपर



अभिभावक योग का आरंभ

गये। जाकर देखा तो वहां कोई नहीं था। आसपास की छतों पर नजर दौड़ाकर वापस चले आये। कुछ देर बाद फिर वही धमाचौकड़ी मचने लगी। ताई जी ने कहा, श्रीराम अच्छा होता अगर लोगों की सीख मानकर हम यहाँ नहीं आते। वे दुष्ट आत्माएँ ही ऊधम मचा रही हैं। अब हमें नया घर ढूँढ़ना चाहिए। कुछ रुककर वे बोली, सुबह ही लोगों से कहना।

ताईजी की बात पूरी होते तक ऊपर शोरगुल की आवाजें आने लगीं। अपनी जीत की खुशी में जैसे बहुत से लोग चीखने चिल्लाने लगे हों। श्रीराम ने कहा। इस तरह तो हार नहीं मानना चाहिए। वरना ठाकुर जी और गायत्री माता हमें क्या कहेंगी? ताई जी ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे चुप रहीं। ऊपर रह रह कर शोरगुल मच रहा था। श्रीराम यह कहते हुए उठे कि मुझे भी ऊपर ही डेरा लगाना पड़ेगा। देखें तो सही किन लोगों को हम सबसे नाराजी है।

लालटेन और डंडा लेकर वे पिछली बार की तरह ऊपर गये। दरवाजे से उन्होंने बुलंद आवाज में कहा, 'देखिए आप लोग जो भी कोई हों। हमें आपका कोई डर नहीं है। आप लोग यहाँ रहना चाहते हैं, खुशी से रहिए। उपद्रव मत मचाइए। हम आपको तंग नहीं करेंगे लेकिन आपका उपद्रव भी नहीं सहेंगे।'

किसी भी दिशा से कोई उत्तर नहीं आया। श्रीराम आसन बिछाकर बैठ गए। चारों तरफ सन्नाटा छाया रहा। एक बार हलकी सी पदचाप सुनाई दी, जैसे कोई धीमे-धीमे चलता आ रहा हो। श्रीराम ने उस दिशा में देखा। कोई दिखाई नहीं दिया, लेकिन पदचाप फिर भी सुनाई दे रही थी। श्रीराम टकटकी लगा कर उसी दिशा में देख रहे थे। आहट पास तक आती अनुभव हुई फिर लगा कि जैसे आने वाले ने अपना इरादा बदल दिया। आहट दूर जाती हुई अनुभव हुई। आने वाला वापस लौट गया था।

श्रीराम पहले की तरह चुपचाप बैठे रहे। दस पंद्रह मिनट बाद नीचे के कमरे से ताई जी की आवाज आई। वे बुला रहीं थीं। श्रीराम यह कहते हुए उठे कि अगर आपको हमारी बात स्वीकार हो तो उपद्रव न मचायें शान्ति से रहें। आपकी मुक्ति के लिए हम प्रयास करेंगे। माँ से प्रार्थना और यज्ञ अनुष्ठान करेंगे। आपको शांति मिले। आप कुछ और अपेक्षा रखते हैं तो वह भी निभाएँगे। लेकिन उपद्रव न करें। श्रीराम इतना कहकर नीचे चले गए। उस दिन के बाद



से छत पर दोबारा कभी धमा चौकड़ी नहीं हुई। अगली पूर्णिमा को श्रीराम ने उन आत्माओं की शांति के लिए छत पर ही एक यज्ञ किया। पास पड़ोस के लोगों को देखकर आश्चर्य हो रहा था कि श्रीराम अपने परिवार सहित यहीं बसे हुए थे।

स्नेह संकल्प की परीक्षा

उन दिनों विश्वयुद्ध के बादल छाये हुए थे। छह वर्ष से चल रहे इस महासमर ने अर्थव्यवस्था को चौपट सा कर दिया था। उद्योग धंधे ठप पड़ने लगे थे। कई फैक्ट्रियाँ बंद हो गई। वृंदावन रोड स्थित जिस प्रैस में 'अखंड ज्योति' छपती थी, वह भी बंद हो गई। उससे पहले कागज का संकट आया। कागज का प्रबंध जैसे तैरे कर लिया गया लेकिन मुद्रण की व्यवस्था कठिन थी। मथुरा में तब छोटे-मोटे बाईस प्रैस थे। उनमें अठारह बंद हो गए थे। बाकी बचे चारों प्रेसों के पास काम का ढेर लगा हुआ था। वे अपने नियमित ग्राहकों में वयस्त थे। उनसे समय पर पैसा नहीं मिल रहा था। इसलिए संकट में थे। नये आ रहे कामों में अग्रिम मिलने की संभावना कम ही थी। थोड़ा बहुत मिल जाता तो बाकी का भुगतान अटक जाता। इस चक्कर में लोग नया काम नहीं ले रहे थे। बहरहाल 'अखंड ज्योति' की छपाई के लिए दिक्कत आने लगी।

चाहे जैसे भी, पत्रिका समय पर ही निकलना चाहिए। अर्धांगिनी से घर परिवार की समस्याओं पर विचार विमर्श के दौरान श्रीराम ने दृढ़ता से कहा वे बोले 'पत्रिका कागजों पर छपी एक किताब नहीं है। पूजा कक्ष में जो दीपक जल रहा है न, उसका प्रकाश है। वह दीपक जिस तरह निरंतर जलता रहता है, उसका स्नेह (तेल) कभी रीतने नहीं दिया जाता, उसी तरह पत्रिका में भी स्नेह अबाध दिखाई देना चाहिए।'

'हम लोग वात्सल्य और पोषण का धर्म निभा रहे हैं,' माताजी ने कहा। भगवती देवी को पास पड़ोस के बच्चे ही नहीं, अखंडज्योति कार्यालय में आने वाले लोग भी माताजी कहने लगे थे। वे बोली, 'अखंड ज्योति में स्नेह की देखभाल आपने मुझे सौंप रखी है न। अखंड ज्योति की चिंता भी करने दीजिए।'

माताजी यह कह कर उठी और अलमारी में रखी गहनों की पेटिका उठा लाई। श्रीराम के सामने रखकर बोली, 'छोटा मोटा प्रैस शुरू करने के लिए ये गहने शायद काफी हों। आप इन्हें किसी साहूकार के

अभिभावक योग का आरंभ

यहाँ गिरवी रख दीजिए। उन रुपयों को काम में लेते हैं। आगे पैसा आएगा तो गहने वापस ले आएँगे।'

माताजी की यह पहल देखकर श्रीराम चमत्कृत हो गये। प्रस्ताव के बारे में ननुच की कोई गुंजाइश ही नहीं थी। वहीं बैठकर योजना बनाई कि हाथ से चलने वाली मशीन खरीदी जाए। तयशुदा बजट में छोटी ट्रेडिल मशीन मिल जाए तो वह भी खरीदी जा सकती है और पत्रिका समय पर निकाली जाए। योजना और निर्धारण के इसी क्रम में श्रीराम ने कहा तुमने तो अपना पद चरितार्थ कर दिया। स्नेह और वात्सल्य बाँटने का दायित्व पूजाकक्ष में भी और ज्ञानयज्ञ में भी।

ढूँढ़ खोज के बाद नब्बे रुपए में एक छोटी भारतीय ट्रेडिल मशीन का इंतजाम हो गया। सामान्य दिनों में इसकी कीमत चार सौ रुपए के आसपास होती थी। जितने रुपये की जरूरत थी, उतने ही उधार मिल गए। अखंड ज्योति कार्यालय के भूमि तल पर बने कमरों में मशीन लगाई गई। इन कामों के लिए तुरत फुरत और मिलते ही शुरू करने की नीति अपनाई गई थी। मशीन मेन के तौर पर अब्दुल नाम का एक कर्मचारी रखा गया। पहला पन्ना छपने से पहले नारियल तोड़ा गया। अब्दुल के माथे पर तिलक, हाथ में कलावा बाँधा और शगुन के तौर पर तांबे का एक सिक्का देकर पहला पन्ना अब्दुल ने ही निकाला। उस समय गिनती के बारह लोग मौजूद थे। उनमें ही किसी ने कहा बहुत बड़ा साहस है। मंदी के इस दौर में लोग कामकाज समेट रहे हैं। श्रीराम ने नया शुरू किया।

श्रीराम ने सुन लिया। नहीं सुना होता तो भी वे बताने वाले थे कि यह साहस माताजी ने किया है। कैसी ही मंदी हो, अपने परिवार को वह स्नेह दुलार बाँटती हैं। 'अखंड ज्योति' माताजी का स्नेह दुलार है। उस दिन के बाद से 'अखंड ज्योति' का अंक समय पर प्रकाशित होने तक श्रीराम ने यह बात अलग-अलग तरह से कई अवसरों पर बताई। 'अपनो से अपनी बात' रूपी सम्पादकीय में भी लिखी।



प्रतीक्षा में खड़ा भविष्य

कार्यालय के रूप में एक कमरे में श्रीराम लकड़ी की एक मेज कुर्सी में रख ली थी। पत्राचार और हिसाब किताब के लिए एक बुजुर्ग स्वतंत्रता सेनानी आया करते थे। उनका नाम था भूदेव शर्मा। अखंड ज्योति के सदस्यों के नाम एक रजिस्टर में नोट कर लिए थे। पत्रिका की संख्या एक हजार पार कर गई थी। सभी सदस्यों के नाम एक रजिस्टर में आ गये थे। हिसाब किताब के लिए एक दूसरा रजिस्टर था। भूदेव शर्मा भी उसी कमरे में बैठते थे। श्रीराम कार्यालय में कम समय दे पाते थे। जब वे बैठते तो एक और कुर्सी रख लेते। सामान्य स्थिति में वे अपने पूजा कक्ष के पास वाले कमरे में ही जमीन पर आसन लगाकर बैठते थे। सामने एक चौकी रखी होती थी। दाईं तरफ कुछ पुस्तकें होती। मिलने वाले लोग उसी कमरे में बैठते थे। परामर्श और संपर्क की प्रक्रिया उसी कमरे में चलती। जब कोई मिलने नहीं आया होता तो श्रीराम लेखन और अध्ययन में व्यस्त रहते थे। मुलाकातियों की संख्या बढ़ने लगी तो बाद में समय भी निश्चित कर दिया—दो बजे बाद। उससे पहले श्रीराम लिखने पढ़ने और पत्राचार में ही व्यस्त रहते। आवश्यक कामों के लिए बाहर निकलने के लिए भी यही समय था। दो बजे बाद वे प्रायः अपने कक्ष में ही होते। उसका नाम भी 'परामर्श' हो गया था। परामर्श कक्ष।

१९४६ तक यह क्रम बन गया था। 'अखंड ज्योति' की छपाई और प्रकाशन का सिलसिला भी ढर्रे पर आ गया था। इस बीच 'अखंड ज्योति' पत्रिका के कुछ विशेषांक भी प्रकाशित हुए थे। उस निमित्त लिया गया उधार समय पर चुकता हो गया था। साहित्य और संपर्क के क्षेत्र में जो गतिविधियाँ आरंभ की थी, वे छोटे-मोटे रूप में चल पड़ी थीं। यों कहें कि साहित्य और संपर्क के क्षेत्र में गतिरोध लगभग समाप्त हो गए थे। इस बीच एक विवाद खड़ा हुआ। वह अचानक ही था।

श्रीराम तब मथुरा आर्यसमाज के प्रधान भी थे। कुछ माह पहले तक मूर्तिपूजा को ले कर चौक में विवाद हुआ था। श्रीराम ने आर्यसमाजी कार्यकर्त्ताओं का आग्रह मानने से इनकार कर दिया था कि गायत्री को देवी के रूप में नहीं बताए। तब इस विषय पर आपत्ति वापस लेते हुए कार्यकर्त्ताओं ने श्रीराम को आर्यसमाज का मंच सौंप दिया था। अखंड ज्योति का संपर्क क्षेत्र बढ़ने लगा और श्रीराम के आसपास कुछ श्रद्धालु जुटने लगे तो उन्हीं कार्यकर्त्ताओं ने वापस ली आपत्ति को फिर उछाल दिया। रविवारी यज्ञों में पहले दबी जबान चर्चा होती। फिर खुलकर होने लगी। ये चर्चाएँ श्रीराम के कानों तक भी पहुँची। उन्होंने उत्तर देने की पहल करने की अपेक्षा प्रतीक्षा करना उचित समझा। आर्यसमाज के कार्यकर्त्ताओं की टीम आखिर एक दिन अखंड ज्योति कार्यालय आ ही गई।

द्वारका प्रसाद नामक कार्यकर्त्ता के नेतृत्व में आए चार पाँच आर्यसमाजियों ने बिना किसी भूमिका के चर्चा छोड़ी। उनका कहना था कि श्रीराम या तो गायत्री की पूजा का प्रचार छोड़ें अथवा आर्यसमाज की प्रधानी। श्रीराम ने विनीत भाव से कहा, आप किस अधिकार से यह सब कहने आये हैं, मुझे नहीं मालूम। अगर आर्यसमाज आपका निजी संगठन होता तो मैं तुरंत फैसला कर लेता लेकिन ऐसा नहीं है। यह संगठन सैकड़ों हजारों लोगों का पारिवारिक, आध्यात्मिक आयोजन है। मैं अपनी बात उन लोगों के सामने स्पष्ट किये बिना समाज की किसी भी जिम्मेदारी से नहीं हटूंगा।

‘मूर्तिपूजा के संबंध में स्वामी दयानंद के सिद्धांत स्पष्ट हैं। उस संबंध में किसी को स्पष्टीकरण देने की आवश्यकता नहीं है।’ द्वारकाबाबू ने कहा। इस पर श्रीराम ने कहा, ‘मेरा मानना है कि स्वामी दयानंद के सामने मैंने यह पक्ष रखा होता तो शायद वे भी अपनी मान्यता में कुछ संशोधन कर लेते।’

द्वारका बाबू और साथ आए कार्यकर्त्ता यह सुनकर हँस उठे। उनकी हँसी में उपहास का भाव था। एक ने कह भी दिया, ‘आप स्वामी दयानंद से ज्यादा बड़े विद्वान और संत हैं क्या?’

‘नहीं’, श्रीराम ने कहा ‘मैं उनके सामने एक छोटा सा बालक हूँ। लेकिन उनके कंधे पर बैठा हूँ। विनम्रता पूर्वक कहना चाह रहा हूँ कि उनके कंधे पर बैठ कर मुझे उनसे ज्यादा दूर तक दिखाई दे रहा है।’

‘क्या दिखाई दे रहा है?’ उन्हीं कार्यकर्त्ता ने कहा। श्रीराम ने उत्तर देने के स्थान पर कहा कि मैं समाज के लोगों के सामने ही अपनी बात कहूँगा और वही अपना निर्णय भी सुनाऊँगा। प्रतिनिधियों का दल वापस चला गया। एक सप्ताह की सूचना पर चौक आर्यसमाज के कार्यालय में बैठक बुलाई गई। संभवतः उस दिन १६ मार्च थी। पचास साठ कार्यकर्त्ता आये। बैठक का विषय पहले ही बता दिया गया था। इसलिए लोग तैयारी करके आए। कुछ लोग श्रीराम के विरोधियों के साथ में थे, कुछ उनके साथ। वे मानते थे कि श्रीराम साकार उपासना के माध्यम से ज्यादा बड़े क्षेत्र में जागृति लाने का काम कर रहे हैं। लेकिन उन लोगों के पास अपने पक्ष में कोई तर्क नहीं था। स्वामी दयानंद के विधि वाक्यों ने उन्हें मुँह बंद रखने के लिए बाध्य सा कर दिया था।

बैठक की शुरुआत हंगामाई रही। पिछले सप्ताह मिलने गये कार्यकर्त्ताओं में एक ने कहा, ‘ये महानुभाव अपने आपको स्वामी दयानंद से भी बड़ा मानते हैं। उनके कंधे पर चढ़ा हुआ बताते हैं। इनकी निंदा की जानी चाहिए। मैं निंदा प्रस्ताव रखता हूँ।’

कार्यकर्त्ताओं ने आवाजें कसीं। समाज के मंत्री वीरसिंह ने कहा, ‘हमें श्रीरामजी को अपनी बात कहने का अवसर देना चाहिए। आप लोग कृपया शांत रहें।’ उन्हें शांत करने के लिए मंत्री और दूसरे वरिष्ठ कार्यकर्त्ताओं को जोर लगाना पड़ा। बैठक में शांति और संवाद का वातावरण बना तो वीरसिंह ने पूछा ‘श्रीरामजी। सदस्य गण जिस बात से उद्बलित हैं, वह सही है क्या? क्या आपने स्वामी दयानंद के लिए कोई अभद्र बात कही है?’

‘एक बच्चा यदि अपने अभिभावक के कंधे पर बैठा होने और इस कारण ज्यादा आगे तक देखने की बात कहता है और इस कारण वह अभद्र है तो मैं जरूर दोषी हूँ,’ श्रीराम ने ऊँचे स्वर में कहा, ‘मैंने सिर्फ इतना कहा है कि स्वामी जी ने यदि मेरा पक्ष सुना होता तो शायद वे भी सहमत हो जाते। विचार के लिए सहमत होते। श्रीराम ने इसके बाद पिछले सप्ताह हुई बातचीत का पूरा विवरण सुना दिया। हल्ला मचाने वाले सदस्य अब बगलें झाँक रहे थे। समाज के प्रतिनिधियों को लेकर द्वारका बाबू ने उठकर कहा ‘मूर्तिपूजा के संबंध में आप अपनी बात भी कहिए और निर्णय भी बताइए।’

श्रीराम ने जो कहा उसका सार यह था कि हिंदू समाज के नब्बे बल्कि पंचानवे प्रतिशत लोग साकार उपासना में विश्वास करते हैं। उनकी श्रद्धा को

अमान्य करेंगे तो उन्हें ठेस पहुँचा रहे होंगे। उन्हें वैदिक परंपरा से भी निष्कासित कर रहे होंगे। अपने अनुयायियों का तिरस्कार कर कोई भी मंच सही सलामत नहीं रह सकता। हम यदि मूर्तिपूजा के प्रति कट्टरता की हद तक नकार का भाव रखेंगे तो आगे नहीं बढ़ पाएँगे। जो लोग मूर्ति में विश्वास करना चाहें, करें। नहीं करना चाहें, न करें।’

‘स्वामी दयानंद ने एक सिद्धांत की स्थापना की। हमें उसके विरुद्ध क्यों जाना चाहिए?’ एक कार्यकर्ता ने पूछा। श्रीराम ने कहा, ‘हमें यह भी विचार करना चाहिए कि उस स्थापना के क्या कारण थे। इस युग में स्वामी दयानंद एक ऐसे संत महापुरुष हुए हैं जिन्होंने तर्क और विवेक को श्रद्धा भावना से ज्यादा महत्व दिया है। मेरा मानना है कि स्वामी जी ने मूर्तिपूजा और मंदिर के नाम पर चल रहे पाखंड, प्रवंचना और छल-छद्म का विरोध किया। उनका विरोध इतना प्रखर था कि मंदिर और पूजा का धंधा कर रहे लोग धर्मध्वजी लोग बौखला गए। वे कुतर्क करने लगे। परिणाम यह हुआ कि विचार और विवेक की गुंजाइश ही खत्म हो गई। हमारा मनीषी समाज एक अंधेरी सुरंग में भटक गया।’

अप्रिय विवाद का अंत

श्रीराम का कहना था, ‘कि सामान्य भावदशा के लोगों के लिए आकार एक अच्छा माध्यम है। उसे माध्यम बनाकर लोग अपने भीतर आध्यात्मिक गुणों का विकास कर सकते हैं। उसे हटा दिया जाए तो नब्बे पंचानवे प्रतिशत लोगों के लिए आत्म विकास की संभावना ही समाप्त हो जाएगी। आर्यसमाज का प्रसार आज इसीलिए ठहर गया है कि सामान्य लोगों की भावनाओं को इससे दिशा नहीं मिलती। उनकी आस्था जिस बिंदु पर केंद्रित है, आर्यसमाज की कार्यपद्धति या कार्यकर्ताओं का आग्रह उसे खिसकाने लगता है।’

‘आप मूर्तिपूजा को किस रूप में देखते हैं? क्या वह सचमुच ईश्वर की उपासना है। मूर्ति जगन्नियंता का कहाँ तक प्रतिनिधित्व करती है,’ मंत्री ने श्रीराम की बात पूरी होने दी और पूछा। श्रीराम ने उन्हें उत्तर दिया, ‘ईश्वर सर्वव्यापी है इसलिए वह मूर्ति में भी है। उसकी आराधना अपने आप ईश्वर की आराधना हो जाती है। मूर्ति इस मामले में ईश्वर का प्रबल प्रतीक है कि वह साधक के चित्र को आधार देती है। उस आधार पर वह एकाग्र हो सकता है।’

श्रीराम अपनी बात कहे जा रहे थे। समाज के सदस्य उनकी बातों को गौर से सुन रहे थे। मूर्तिपूजा के प्रति उनका विरोध पिघलने लगा था। इसी बीच श्रीराम ने अपनी बात पूरी की कहा, 'रही निर्णय की बात तो जिन मित्रों ने मुझे प्रधान बनाया है, वही तय करें। मैंने अपना निर्णय इस कागज पर लिख दिया है। लेकिन मैं चाहूँगा कि समाज में मेरे रहने या नहीं रहने पर मत विभाजन कर लिया जाए। मित्रों की भावना का पता चल जाएगा। मेरा अनुरोध है कि यह कागज मत विभाजन के बाद ही खोला जाए, जिस पर मैंने अपनी भावना लिखी है।'

मत विभाजन हुआ। साठ सदस्यों में अड़तीस ने श्रीराम के पक्ष में हाथ खड़े किए। उनका आशय था वे प्रधान के पद पर बने रहें। बाइस सदस्य उन्हें हटाने के पक्ष में थे। वीरसिंह ने बहुमत से श्रीराम को विजयी करार दिया। घोषणा के साथ ही उन्होंने एक परामर्श भी दिया कि जहाँ तक हो सके आर्यसमाज की भावनाओं से असहमति अथवा संशोधन को टालना चाहिए।

'लेकिन आप मेरा मतव्य भी तो जान लीजिए महाशय,' श्रीराम ने मत विभाजन से पहले दिया पर्चा खोलकर पढ़ने और सबको सुनाने का अनुरोध दोहराया। उसमें श्रीराम ने लिखा था, 'हम अपने आपको सनातन धर्म का, जिसका न आदि है न अंत, विनम्र विद्यार्थी और साधक मानते हैं। आर्यसमाज में प्रखर विवेक और जीवंत विचार की संभावना थी। सोचा था कि उस तत्व के सहारे अपनी संस्कृति और परंपरा की सेवा करेंगे। थोड़े ही समय में अनुभव हो गया कि यह कठिन है। इसलिए हम अपनी राह अलग बना रहे हैं। मंच पर रहकर मित्रों के लिए असुविधाएँ उत्पन्न नहीं करना चाहते। इसलिए हमें अवकाश दिया जाए।'

प्रधान के पद से त्यागपत्र की घोषणा थी। पूरा होने के बाद श्रीराम ने कहा साधना और समर में हम लोग हमेशा साथ रहेंगे। जिन कार्यक्रमों को मिलजुल कर किया जा सके उनमें सभी मित्रों को निमंत्रण और अभिवादन है। हम भी हरसंभव सहयोग और मार्गदर्शन के लिए तैयार मिलेंगे। इतना कहकर श्रीराम अपने स्थान पर बैठ गए। इस घोषणा के बाद किसी के पास कहने के लिए कुछ नहीं रह गया था।

स्वाधीनता की कठिन डगर

मई १९४५ में दूसरा विश्वयुद्ध समाप्त होने के बाद करीब एक साल तक राष्ट्र में कई तूफान आए। ब्रिटेन में लेबर पार्टी की सरकार बनी। उस

प्रतीक्षा में खड़ा भविष्य

सरकार ने भारत की नियति को स्वीकार किया और वहाँ से अपनी हुकूमत हटा लेने का मन बनाया। शिमला वार्ता के दौरान मुसलिम लीग के नेता मोहम्मद अली जिन्ना की जिद के कारण सम्मेलन भंग हो गया। कार्यकारी कौंसिल में मुस्लिम लीग के सदस्यों की संख्या कुल सदस्यों की संख्या में आधे से ज्यादा रखने के लिए कह रहे थे।

पिछले दो तीन साल में देश की राजनीति ने जैसी करवट बदली, उसमें भारत का विभाजन तय सा हो गया था। शिमला सम्मेलन की विफलता ने उसे और सुनिश्चित कर दिया। सांप्रदायिक तनाव फैलने लगा था। युद्ध के बाद की स्थितियाँ, ब्रिटिश राजनीति और सत्ता में भागीदारी की होड़ ने लोगों में बेहिसाब गुस्सा और असंतोष भर दिया था। स्थिति यह बन गई कि हिंसक उपद्रव के लिए छोटे मोटे बहाने भी काफी होते थे। जरा सा बहाना मिलता और लोग सड़कों पर उतर आते। सन् १९४६ के शुरू महीनों में आजाद हिंद फौज के एक मुस्लिम अफसर का कोर्टमार्शल हुआ। सैनिक न्यायालय ने उसे सजा सुनाई गई। कलकत्ता के मुसलमानों ने इस सजा के खिलाफ जुलूस निकाला। थोड़ी दूर आगे जाने के बाद जुलूस हिंसक हो उठा। कई दूकानें लूट ली गई, ट्राम गाड़ियां जला दी गईं और हिंसक भीड़ ने कुछ लोगों की जाने भी ले लीं।

सेना और सुरक्षातंत्र में अवज्ञा की कई घटनाएँ सामने आईं। पुलिस में भी असंतोष बढ़ने लगा। बंबई में गोदी कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी। गाँधीजी ने इन उपद्रवों के लिए विश्वयुद्ध को जिम्मेदार ठहराया था। युद्ध के बाद समाज में कुछ समय के लिए आ जाने वाले नैतिक स्खलन और उस कारण उच्छृंखलता के विस्फोट की जबर्दस्त आशंका रहती है। उस आशंका के अलावा हिंदुओं और मुसलमानों के बीच दूरी बढ़ाने के लिए तरह तरह के षडयंत्र रचे जा रहे थे। मार्च १९४६ में ब्रिटिश सरकार के मंत्रियों का एक दल भारत आया। तीन कैबिनेट मंत्रियों से बने इस दल ने करीब चार महीने में भारत के करीब पाँच सौ नेताओं से बातचीत की।

मुलाकातों का उद्देश्य भारत को आजादी मिलने और उसके साथ ही सरकार का स्वरूप तय करने की तैयारी था। मई १९४६ में कैबिनेट मिशन ने जो योजना प्रस्तुत की उसके अनुसार भारत के संघीय शासन को आकार देना था। रियासतों और प्रांतों के प्रतिनिधियों से मिलकर बने संघीय शासन के पास

विदेशी मामले, सुरक्षा, आंतरिक व्यवस्था और यातायात का जिम्मा होना था। बाकी काम राज्य विधान मंडलों को देखना थे।

केबिनेट मिशन की योजना को सभी दलों और रियासतों ने मान लिया था। मुस्लिम लीग की सोच अलग ढंग की थी। वह अपने लिए स्वतंत्र राज्य यानी भारत का विभाजन चाह रही थी। मई में यद्यपि उसने केबिनेट मिशन की योजना को मान लिया था, लेकिन दस सप्ताह के भीतर ही अपना समर्थन वापस ले लिया। पाकिस्तान के लिए लीग ने सीधी कार्रवाई की घोषणा कर दी। इस घोषणा के साथ ही देश में घृणा, तनाव और हिंसा का लावा बह निकला। उसकी आंच में जगह-जगह लोग जलने लगे। उस दहकते माहौल में अपना कर्तव्य निश्चित करने के लिए श्रीराम ने मथुरा के विद्वानों, पंडितों और सामाजिक कार्यकर्ताओं की एक बैठक बुलाई। लोगों को बुलाने के लिए वे स्वयं उनके घर तक गए। उधर सीधी कार्रवाई की घोषणा हुई और इधर ठीक बारह दिन बाद घीयामंडी में श्रीराम के निवास पर सात धार्मिक नेता बैठे हुए थे। इनमें तीन हिंदू थे, दो मुसलमान, एक ईसाई और एक सिख। हिंदुओं में एक आर्यसमाज से आए थे।

छत्ता बाजार की मसजिद के इमाम सलीम मुहम्मद से बैठक की अध्यक्षता के लिए कहा गया। उन्होंने मौलाना फारुकी की ओर देखा। एक दूसरे से अध्यक्षता का अनुरोध करते हुए आर्यसमाज के द्वारका बाबू पर सबकी निगाहें टिकी। इस बैठक में तय किया गया कि राजनेता कितनी ही तीखी और काटने वाली बातें कहें हमें अपने समुदाय के लोगों को निरंतर समझाते रहना है। पूजा, प्रार्थना नमाज आदि के बाद अपने अपने धर्मग्रंथों के चुने हुए अंश पढ़कर सुनाये जाए। ऐसे अंश चुने जाएँ जिनमें शांति प्रेम और भाईचारे की शिक्षा दी गई हो। इसी बैठक में निश्चित किया गया कि अपने घर, दफ्तर या प्रतिष्ठान में कम से कम एक ऐसे व्यक्ति को नियुक्त किया जाए, जो दूसरे धर्म का अनुयायी हो। उदाहरण के लिए हिंदू धार्मिक नेता एक मुसलमान को अपने साथ रखें और मुस्लिम नेता एक हिंदू को अपने पास रोजगार दें।

‘आपके पास तो अब्दुल शुरू से ही काम कर रहा है। आपको अलग से कुछ नहीं करना पड़ेगा।’ द्वारका बाबू ने कहा। श्रीराम ने कहा, ‘हम अपनी पत्रिका में दूसरे धर्मों का परिचय और उनका संदेश छापने का निश्चय कर चुके हैं।’

उन्होंने आगे चलकर समन्वय परक साहित्य प्रकाशित करने के निश्चय से भी अवगत कराया। उसके लिए आगंतुक विद्वानों से सहयोग के लिए कहा।

प्रतीक्षा में खड़ा भविष्य

बैठक में तीसरा महत्वपूर्ण निर्धारण यह हुआ कि बेहतर तो यह होगा कि उपद्रव हो ही नहीं। अगर हो भी जाए तो हममें से प्रत्येक व्यक्ति बिना कोई भेदभाव किए दंगे में फंसे लोगों को बचाए। फंसा हुआ व्यक्ति दूसरे धर्म का अनुयायी हो तो उसे बचाने के लिए दंगाइयों से भिड़ भी जाए। इससे दंगे का शिकार हो रहे लोगों का मनोबल बढ़ेगा। एक निर्णय यह भी था कि परिस्थिति और आवश्यकता के अनुसार विभिन्न समुदायों में मेलमिलाप बढ़ाने वाले काम किये जाएँ। ऐसे कामों में एक दूसरे के उत्सवों में शामिल होना, एक दूसरे के धार्मिक संस्थानों की सेवा और मरम्मत करना और घरेलू कार्यक्रमों में आना जाना शामिल था। आमतौर पर लोग एक दूसरे के सुख-दुख में शामिल होते ही रहते थे। राजनैतिक दलों द्वारा पिछले कुछ वर्षों में घोले जहर के कारण यह भागीदारी कुछ कम हुई थी। बैठक में आए धार्मिक नेताओं ने इस खिंचाव को मिटाने का संकल्प लिया और वापस लौट गए।

जवाब में सिर्फ बचाव

सीधी कार्रवाई के दौरान मथुरा में भी प्रदर्शन हुए। बंगाल, बिहार और पंजाब में मारकाट शुरू हो गई। उसकी खबर आने लगी थी और उस कारण दूसरे शांत शहरों में भी तनाव उत्पन्न होने लगा था। सीधी कार्रवाई में हुए प्रदर्शनों, सभाओं ने मथुरा को भी लील लिया। एक साल के भीतर करीब पंद्रह ऐसे अवसर आये, जिसमें दोनों समुदाय एक दूसरे के आमने सामने थे। मथुरा जिले के स्वतंत्रता सेनानियों ने शांति सेना बनाई। इसके कार्यकर्ता सुबह प्रभात फेरी निकालते। महात्मा गाँधी के आश्रम में गाई जाने वाली प्रार्थना गाते हुए गली मोहल्लों में निकलते। 'रघुपति राघव राजाराम' की धुन मथुरा भर में गुंजा देने का श्रेय इन्हीं कार्यकर्ताओं को जाता है। श्रीराम भी इन प्रभात फेरियों में शामिल होते थे। उन्होंने 'अखंड ज्योति' के पाठकों को शांति प्रदर्शनों में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित किया।

जून १९४७ में विभाजन और १५ अगस्त को स्वाधीनता मिल जाने की बात अंतिम रूप से तय हो गई। जिन क्षेत्रों का बटवारा हुआ था वहाँ अल्पसंख्यक सांप्रदायिक हिंसा के शिकार होने लगे। पश्चिमी पंजाब, सिंध और पूर्वी बंगाल में हिंसा धधक उठी। उन प्रदेशों में बसने वाले अल्पसंख्यक अपनी मातृभूमि छोड़कर जाने लगे। पश्चिमी पंजाब और सिंध में हिंदू तथा पूर्वी बंगाल में

मुसलमानों का पलायन शुरू हुआ। भागते हुए लोगों को वहाँ के उपद्रवी तत्वों ने निशाना बनाया। दंगों की खबर देश के दूसरे भागों में भी पहुँची और वहाँ कुछ लोग घर बार छोड़कर जाने की तैयारी करने लगे। मथुरा में कुछ मुसलमान परिवारों ने रातोंरात अपनी जमीन जायदाद बेचकर पाकिस्तान जाने का फैसला कर लिया। उनमें कई सिर्फ इसलिए जा रहे थे कि पाकिस्तान अपना इस्लामी देश होगा। वहाँ उनके सुख सपने ज्यादा साकार होंगे। इन लोगों के जाने की खबर मिलते ही श्रीराम और उनकी धार्मिक टोली के सदस्यों ने तुरंत पहल की। वे उन परिवारों से मिले और यही रहने का अनुरोध करने लगे। उन्हें तरह तरह से समझाया। बीस में से चौदह परिवारों ने अपना इरादा बदल दिया।

तनातनी के इन्हीं दिनों में मथुरा के कुछ धार्मिक स्थान भी उत्तेजना के शिकार हुए। उनकी रक्षा और शांति व्यवस्था बहाल रखना पुलिस का काम था। पुलिस बल पर्याप्त सिद्ध नहीं हो रहा था। मथुरा के पड़ौस में आगरा और भरतपुर भी धधक रहा था। वहाँ भी शांति सेना गठित हुई थी जो लोगों को समझाने बुझाने और सौहार्द बनाये रखने के लिए काम कर रही थी। श्रीराम को इन स्थानों पर जाने के लिए भी कहा गया। कुछ अवसरों पर वे गये भी सही लेकिन उन्होंने मथुरा में रहना ही ज्यादा ठीक समझा। वहाँ उनकी ज्यादा जरूरत थी।

चौक और केशवदेव में कुछ धार्मिक स्थानों पर उपद्रवी तत्वों के हमले की योजना खुल गई थी। उन हमलों को नाकाम करने के लिए श्रीराम अपने साथियों और कार्यकर्ताओं को लेकर केशवदेव मोहल्ले में गये। पुलिस ने उन्हें मोर्चे तक नहीं जाने दिया। वहाँ टकराव की स्थिति थी। कार्यकर्ताओं ने क्षेत्र में रहने वाले अल्पसंख्यक परिवारों में जाना तय किया। असुरक्षित माहौल में दूसरे समुदाय के लोगों पर भरोसा कठिन ही था। उन इलाकों में कहा भी गया कि हिंदू आ रहे हैं। लेकिन अगली ही लहर में साफ हो गया कि शांतिदल के लोग हैं। आने वालों में श्रीराम और उनके सहयोगी हैं। इस सूचना ने कटेरे के लोगों में चिंता की जगह आश्वासन का भाव भर दिया। उपद्रवी लोगों ने अपनी ओर से पूरी कोशिश की कुछ तोड़ फोड़ भी हुई। लेकिन उनके मन की मुराद पूरी नहीं हुई। कई लोग गिरफ्तार कर लिए गए। असुरक्षा और तनाव की आशंका आगे भी बनी हुई थी। इन इलाकों में श्रीराम नियमित जाने लगे। डेढ़ महीने तक वे प्रतिदिन लोगों के पास जाते। उनसे मिलते। उनकी समस्याएँ और

चिंताएँ पूछते। उनके साथ दूसरे कार्यकर्ता और कांग्रेस के लोग भी होते। संपर्क का उद्देश्य लोगों का मनोबल बनाये रखना था।

चुनौतियों भरा उत्सव

१५ अगस्त १९४७ को स्वाधीनता मिली। मथुरा में भी उत्सव मनाया गया। श्रीराम ने अपने निवास पर विशेष यज्ञ किया और मुख्य द्वार पर तिरंगा लगाया। उसके बाद वे कलेक्ट्रेट में हुए उत्सव में शामिल हुए। बाद में कटरा केशवदेव गये। उनके साथ क्षेत्र के सामाजिक कार्यकर्ता और मित्र श्यामलाल भी थे, जिन्हें वे ढाई मित्रों में एक मानते थे। कटरा में रहने वाले परिवारों में भी उल्लास था, लेकिन बहुत खुलापन नहीं था। उनके मन में चिंता और आशंका के भाव थे। श्रीराम ने इन लोगों से कहा आप लोगों को ज्यादा डर लगता है तो हमारे यहाँ आकर रहिए। हमारे प्रेस में आपके समुदाय के लोग काम करते हैं। जितने दिन चाहे रहिए घबराइए नहीं।

उनके इस आश्वासन पर दो परिवार सचमुच तैयार हो गए। श्रीराम ने शाम तक उनके लिए व्यवस्था बना लेने की बात कही। घीयामंडी के मकान में उनके लिए दो कमरे खाली किये और अगले दिन वहाँ ले गये। उन लोगों के पास घरेलू सामान के रूप में ऐसा कुछ नहीं था जिसे ढोने के लिए गाड़ी घोड़े की जरूरत पड़े। एक गठरी बांधी और चल दिए। माताजी ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया और चौके में ही उनके लिए भोजन बनाया। वे लोग लगभग दो सप्ताह वहाँ रहे। वातावरण सहज होने के बाद अपने आप कटरा चले गए।

उपद्रवों के चलते कई अल्पसंख्यक परिवारों में कामकाज की समस्या खड़ी हो गई। लोग उन्हें अपने यहाँ रोजगार देने से परहेज करने लगे थे। जहाँ कहीं वे काम करते थे, वहाँ भी शंका की दृष्टि से देखा जाता था। कुछ जगह तो उन्हें काम से हटा भी दिया गया। ऐसे कुछ परिवार श्रीराम के पास अपनी समस्या लेकर आये। उनकी समस्या हल करने के लिए श्रीराम मालिकों से मिले। मालिकों को समझाया बुझाया। उनकी चिंता अकारण नहीं थी। काम कर रहे लोगों का स्वभाव या चरित्र नहीं, समाज में व्याप्त हो गया अविश्वास और तनाव मुख्य कारण था। उत्तेजना फैला रहे सांप्रदायिक संगठन भी लोगों पर दबाव बना रहे थे।

समझाने बुझाने से कुछ लोगों ने तो हटाये गये कर्मचारियों को वापस ले लिया लेकिन अविश्वास की खाई पाटने के लिए क्या किया जाए? शांतिदल के कार्यकर्त्ताओं ने तय किया कि एक सहकारी समिति बनाई जाए। थोड़ी सी पूंजी इकट्ठी करें और लघु उद्योग शुरू करें। ऐसे उद्योगों में कपड़ा बुनने, रंगाई पुताई करने, मसाले तैयार करने साबुन बनाने और कलपुर्जे ठीक करने जैसे काम चुने गए। इनमें ज्यादा पूंजी की आवश्यकता नहीं थी। अपने पास से और समाज के श्री संपन्न लोगों से मिलकर आवश्यक पूंजी जुटाई और अक्टूबर ४७ तक समिति ने काम शुरू कर दिया। समिति के उद्योगों ने चालीस परिवारों को धंधे से लगाया। सामान तैयार करने के बाद बाजार तक पहुँचाने और कुछ घरों में सप्लाई करने का दायित्व भी इन्हीं लोगों ने उठाया। शुरू में कुछ दिक्कतें आईं लेकिन बाद में अनुभव हुआ कि यह रोजगार पिछले की तुलना में श्रेष्ठ है। अपना है और ज्यादा लाभ दे रहा है, इसलिए भी लोगों का मन इन कामों में रम रहा था। समिति बाद में कुछ वर्षों तक सक्रिय रही।

सामाजिक सक्रियता ने श्रीराम को लोगों का स्नेहभाजन बना दिया था। मार्च से दिसम्बर तक मथुरा भर में गायत्री यज्ञों की घूम मच गई। इस अवधि में पैतीस कार्यक्रम हुए। चार पाँच हजार लोग संपर्क में आए। यज्ञ कार्यक्रमों में श्रीराम का संदेश होता था कि असली यज्ञ अपने भीतर आंतरिक क्षेत्र में संपन्न किया जाना चाहिए। अग्रिहोत्र अनुष्ठान उस आंतरिक यज्ञ का ही प्रतीक है जिसे श्रीकृष्ण में 'ब्रह्मयज्ञ' और 'ज्ञानयज्ञ' कहा है। अपने स्वार्थों की आहुति दी जानी चाहिए। समाज के, राष्ट्र के और विश्व आत्मा के मुख में-यज्ञ की लपटों में। आयोजनों की श्रृंखला का उद्देश्य लोगों के भीतर घुमड़ रहे गुस्से और द्वेष को दिशा देना था। तात्कालिक उद्देश्य तो यही था कि मथुरा में विग्रह खड़े न हों। प्रसिद्ध राजनैतिक कार्यकर्त्ता और श्रीराम के मित्र जगन प्रसाद रावत ने १९४८ के वसंत उत्सव पर कहा भी सही कि मथुरा में धधक रही आग को श्रीराम के यज्ञों की दिव्य लपटों ने भी नियंत्रित रखा है। इन आयोजनों के माध्यम से लोगों में धार्मिकता का सही संदेश नहीं दिया होता तो मथुरा में भारी तबाही होती।

३० जनवरी १९४८ को एक उन्मादी व्यक्ति ने महात्मा गाँधी की हत्या कर दी। उस खबर ने पूरे देश को हिलाकर रख दिया। पंडित जवाहर लाल नेहरू के मुँह से निकले इस वचन में जैसे समूचे राष्ट्र की आत्मा चीत्कार उठी थी कि 'वह ज्योति बुझ गई है।' गनीमत थी कि उन्मादी व्यक्ति हिंदू समाज से



प्रतीक्षा में खड़ा भविष्य

ही था। अगर वह अल्पसंख्यक समुदाय का होता तो क्या होता? इसकी कल्पना करना भी कठिन है।

श्रीराम ने ३१ जनवरी को उपवास रखा। महापुरश्चरण साधना में वैसे भी एक समय आहार लेते थे। महात्मा गाँधी की हत्या के लिए श्रीराम ने पूरे समाज को दोषी माना। उपवास उस दोष के प्रक्षालन के लिए ही था। दूसरे और तीसरे दिन भी उन्होंने कुछ नहीं लिया। उनके उपवास में धार्मिक और सामाजिक नेता भी शामिल हुए। पिछले साल बनाई सद्भाव समिति के सदस्यों के अलावा कांग्रेस के कार्यकर्ता और सामान्य नागरिक भी एक एक दिन के उपवास पर बैठे। फरवरी ४८ की दूसरी तारीख को श्रीराम ने उपवास खोला। उस दिन सौ से ज्यादा लोग मौजूद थे और सबके उतरे हुए चेहरे बता रहे थे कि पिछले वर्षों में फैले जहर का अनुताप सबको दग्ध कर रहा है।

श्रीराम के परिवार में एक शिशु का आगमन हुआ। जिस समय बालक ने जन्म लिया, १९४८ के सितंबर मास में (आश्विन कृष्ण तृतीया को) तब श्रीराम जयसिंहपुरा गये हुए थे। वहाँ तनाव की खबर आई थी। लोगों को समझा बुझा और शांत कर वे शाम को घर लौटे। उनके साथ एक संन्यासी मित्र स्वामी प्रेमानंद भी थे। वे आर्य समाज से संबद्ध थे और भजनोपदेशक थे। कभी कभार श्रीराम के यज्ञ कार्यक्रमों में भजन गा दिया करते थे। आर्य समाजी कार्यकर्ता इस बात के लिए उन्हें बुरा-भला भी कहते थे कि वे एक सनातनी के साथ हैं। लेकिन उन्होंने कभी परवाह नहीं की। स्वामी प्रेमानंद ने घर में प्रवेश करते ही बालक के जन्म की खबर सुनी तो कहा इसका नाम शिव का पर्याय रखना चाहिए। समाज की आत्मा इस समय इस समय द्वेष का गरल पी रही है। यह बच्चा उस गरल पर विजय का स्मरण कराता रहे। श्रीराम के मुँह से निकला 'मृत्युंजय नाम कैसा रहेगा। शिव का ही पर्याय है।'

नाम निश्चित हो गया। नामकरण संस्कार हुआ तो कटरा केशवदेव, छत्ता बाजार और होली गेट के बाहर रहने वाले मुस्लिम परिवार भी बुलाये गये। इन परिवारों ने संकट के दिनों में श्रीराम से किसी न किसी रूप में संरक्षण प्राप्त किया था। सभी धर्मों से आये लोगों की ओर से द्वारका बाबू ने कहा कि आप अपने आपको धार्मिक क्षेत्र तक ही सीमित न रखें। समाज और राजनीति के क्षेत्र में आप की आवश्यकता है। उस क्षेत्र में लोगों को नेतृत्व दीजिए।

द्वारका बाबू की बात का वहाँ मौजूद लोगों ने समर्थन किया। इमाम साहब सलीम ने कहा कि आप मथुरा के लोगों की नुमाइंदगी करेंगे तो यहाँ की माइनारटी ज्यादा सुकून पायेगी। इस तरह की बातें वहाँ आये लोगों को अच्छी लग रही थीं। लेकिन वहाँ आये राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं को थोड़ी असुविधा हो रही थी। मथुरा की राजनीति और वहाँ से छलांग लगा कर सत्ता में पहुँचने का मंसूबा बनाये बैठे लोगों की तो धुकधुकी बन रही थी कि श्रीराम कहीं हाँ न कह बैठे। इन बातों पर गौर करते हुए कुछ वक्ताओं ने कहा भी सही कि और लोगों को इससे परेशान नहीं होना चाहिए। उनके मार्ग में कोई बाधा नहीं आएगी। श्रीराम जैसा साथी सहयोगी पाकर तो उनकी यात्रा और आसान हो जाएगी।

चर्चा के समापन की नौबत आई तो श्रीराम ने कहा, 'हम जिस क्षेत्र में काम कर रहे हैं, वह ज्यादा व्यापक और जिम्मेदारी वाला है। वहाँ रहते हुए राजनीति को दिशा दी जा सकती है। पिछले वर्ष हम सबने अनुभव किया कि लोगों की भावनाओं को नियंत्रित करने में धार्मिक आधार ही सक्षम है। राजनीति और प्रशासन के सहारे स्थितियों पर आसानी से नियंत्रण नहीं किया जा सकता। ये स्थितियाँ लोगों के मन में बैठे बैर वैमनस्य की उपज थी और लोगों के मन तक सिर्फ धर्म ही पहुँच सकता है।'

श्रीराम ने इन शब्दों में अपना निश्चय व्यक्त कर दिया था कि राजनीति में जाने की उनकी जरा भी इच्छा नहीं है। वहाँ आये कुछ मित्रों ने फिर अनुरोध किया तो श्रीराम ने कहा कि सागर और सरिता में तैरने वालों को जलाशयों में आनंद नहीं आता। आप यह भी सोच सकते हैं कि राजनीति को हम जलाशय की तरह मानते हैं। हमें विस्तृत और सभी जलाशयों को पानी देने वाले सागर में तैरना ही सुहाता है। वहाँ आये राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं के गुस्सा रहे चेहरे भी इस घोषणा के बाद पुलकित हो गए। उन्होंने श्रीराम को 'धन्य' 'धन्य' कहा। प्रणाम भी किया। उस प्रणाम में कृतज्ञता कम राहत मिलने की भावना अधिक मुखर हो रही थी।

नये साधकों की माँग

कार्यालय में आ रही डाक श्रीराम स्वयं ही खोलते थे। पत्रों की विषय वस्तु पर भी उनकी निगाह रहती थी। अखंड ज्योति के पाठकों की अपेक्षाओं का आकलन करते हुए उन्होंने एक दिन भूदेव शर्मा से पूछा, 'पंडित जी पाठक हमसे और क्या चाहते हैं?'

‘पत्रों से कुछ खास अनुमान नहीं लगता साहब। लेकिन दो साल पहले की तुलना में पाठकों की संख्या पाँच गुना बढ़ गई है।’ भूदेव शर्मा ने कहा, ‘उनमें से कई लोग अखंड ज्योति के पिछले अंकों के बारे में पूछते हैं। वे उन्हें भी पढ़ना चाहते हैं।’

‘पुराने अंक तो हमारे पास नहीं हैं,’ श्रीराम ने कहा कुछ देर वे सोचते रहे। फिर बोले, ‘उन लोगों की आवश्यकता पूरी करने का एक ही उपाय है कि उन अंकों के उपयोगी लेखों को पुस्तकों के रूप में छाप दिया जाए।’

अखंड ज्योति के संबंध में कोई भी निर्णय माताजी से पूछ कर ही किया जाता था। उनकी राय श्रीराम के विचार से भिन्न नहीं थी। और पुस्तकों के प्रकाश की योजना बनी। अखंड ज्योति में प्रकाशित लेखों का संकलन छह आना सीरिज में छपा। इस सीरिज में नए सिरे से लिखी गई पुस्तकें भी थीं। पुस्तकों का मूल्य तय करने की चर्चा चली तो माताजी ने कहा, ‘बहुत से लोग ऐसे भी होंगे जिनके लिए छह आना खर्च करना मुश्किल होगा। उनके लिए भी विचार करना चाहिए।’

‘क्या किया जाए? हमारे पास इतने साधन भी नहीं हैं कि लोगों को मुफ्त बाँट सकें,’ श्रीराम ने कहा। इसी क्रम में भूदेव शर्मा ने भी अपनी बात जोड़ी। उन्होंने कहा कि जो लोग पैसा खर्च नहीं कर सकते, उन्हें पुस्तक पढ़ना ही नहीं चाहिए। उन्हें पहले अपने भोजन वस्त्र और निर्वाह की चिंता करनी चाहिए।

‘जिन्हें भोजन नहीं मिलता उनके लिए समाज को चिंता करनी चाहिए। अन्न क्षेत्र, धर्मादा, लंगर आदि यहाँ काम करते हैं।’ माताजी ने कहा। इस पर भूदेव का जवाब था कि पुस्तकों का क्षेत्र पुस्तकालय और वाचनालय है, जो खरीदकर नहीं पढ़ सकते, वे वहाँ से प्राप्त कर लें।

फिर यह सोचा जाए कि पुस्तकालयों में हमारा साहित्य पहुँचने की व्यवस्था कैसे बने? माताजी ने एक और मुद्दा उठाया। श्रीराम इस वार्तालाप को सुन रहे थे। वे चुप बैठे कुछ सोच रहे थे। बातचीत किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचते देख उन्होंने कहा, ‘माताजी चाहती हैं कि स्वाध्यायी जन यदि समर्थ नहीं हों तो उन तक पुस्तक पहुँचाने की व्यवस्था बने। उसका मध्यम मार्ग यह है कि कुछ लोगों को कम कीमत में पुस्तकें दी जाएँ।’

वे लोग कौन हैं? निर्धारण किया गया कि यदि कोई पुस्तक मँगाना चाहे और अनुरोध करे तो उसे छह आना सीरिज की पुस्तक सवा आना, आज की प्रचलित मुद्रा में आठ पैसे में दी जाए। विद्यार्थी हों तो उसके लिए प्रधानाध्यापक की संस्तुति आवश्यक कर दी जाए ताकि लोग अनुचित लाभ नहीं उठा सकें। ऐसी पुस्तकों पर विद्यार्थी संस्करण की मोहर भी लगा दी जाए।

‘अखंड ज्योति’ के पृष्ठों पर यह सूचना छपने से सैकड़ों पाठकों ने पत्र लिखे। उनकी अपेक्षा पूरी करते हुए श्रीराम ने विद्यार्थियों को निजी पत्र लिखे। उन पत्रों में दूसरे साथियों को भी पुस्तकें पढ़ाने की सलाह दी गई थी। अक्टूबर १९४९ तक पाँच सौ से ज्यादा पाठकों ने स्वाध्याय सीरिज की पुस्तकें पढ़ ली। पत्राचार में वे अनुरोध करने लगे कि मथुरा आना चाहते हैं। कुछ समय श्रीराम जी के साथ रहेंगे। कुछ युवकों ने श्रीराम को गुरुदेव कहकर संबोधित किया था। मथुरा आने के इच्छुक छात्रों को हाँ करने का मन हो रहा था। उन्हें मना करने की स्थिति ही नहीं बनती थी। मना करने पर उनकी भावनाएँ आहत होतीं। लेकिन स्थान की व्यवस्था नहीं थी।

माताजी ने कहा कि दस बारह साधकों को अपने घर पर भी रखा जा सकता है। लेकिन यह स्थाई समाधान नहीं था। भविष्य में साधकों की संख्या बढ़नी थी। अलग व्यवस्था के लिए आवश्यक साधन नहीं थे। मन इन्हीं उतार चढ़ावों में विकल था। तरह-तरह के विकल्प उठ और बैठ रहे थे। माताजी का तात्कालिक समाधान तो मान लिया गया कि विद्यार्थियों और साधकों को घर पर ही बुला लिया जाए। भूदेव शर्मा से उन्हें पत्र लिखने की बात भी कह दी गई। लेकिन भविष्य का सवाल जहाँ का तहाँ कायम था कि उसके लिए क्या किया जाए। कोई समाधान नहीं सूझने पर श्रीराम ने दिमाग से इस द्वन्द्व को झटका और पूजा कक्ष में जल रहे दीपक की ओर देखने लगे। यकायक लगा कि अंतस में स्तब्ध नीरवता व्याप गई है। ठंडी हवाएँ बह रही हैं। हिमालय के दृश्य मानस में उभरने लगे। पिछली यात्रा की स्मृतियाँ कौंधने लगीं। एक एक कर दृश्य आने जाने लगे। उस नीरव वातावरण में ही गुरुदेव की आवाज गूँजी-‘आश्रम बनाओ, आश्रम बनाओ।’



मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा

: युगऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य- संक्षिप्त परिचय :



ज्यादा जानकारी यहाँ से प्राप्त करें :
http://hindi.awgp.org/about_us

- **विचारक्रान्ति अभियान के प्रणेता** : विचारों को परिसकृत और ऊँचा उठाने में समर्थ 3000 से भी अधिक पुस्तकों के लेखन के माध्यम से विश्वव्यापी विचार क्रान्ति अभियान की शुरुआत की।
- **वेद, पुराण, उपनिषद के प्रसिद्ध भाष्यकार** : जिन्होंने चारों वेद, 108 उपनिषद, षड् दर्शन, 20 स्मृतियाँ एवं 18 पुराणों का युगानुकूल भाष्य किया, साथ ही 19 वॉ प्रज्ञा पुराण की रचना भी की।
- **3000 से अधिक पुस्तकों के लेखक** : मनुष्य को देवता समान, घर-परिवार को स्वर्ग, समाज को सभ्य और समग्र विश्वराष्ट्र को श्रेष्ठ बनाने में समर्थ हजारों पुस्तकें लिखकर समयानुकूल समर्थ मार्गदर्शन प्रदान किया।

- **युग-निर्माण योजना के सूत्रधार** : जिन्होंने शतसूत्री युग निर्माण योजना बनाकर नये युग की आधार शिला रखी।
- **वैज्ञानिक-अध्यात्मवाद के प्रणेता** : जिन्होंने धर्म और विज्ञान के समन्वय की प्रथम प्रयोगशाला 'ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान' स्थापित कर सिद्ध किया कि "धर्म और विज्ञान विरोधी नहीं, पूरक है"।
- **२१ वीं सदी : उज्ज्वल भविष्य के उद्घोषक** : जिन्होंने '२१ वीं सदी : उज्ज्वल भविष्य' का नारा दिया तथा युग विभीषिकाओं से भयग्रस्त मनुष्यता को नये युग के आगमन का संदेश दिया।
- **स्वतंत्रता संग्राम के कर्मठ सेनानी** : जिन्होंने महात्मा गाँधी, मदन मोहन मालवीय, गुरुवर रविन्द्रनाथ टैगोर के साथ राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया एवं स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी "श्रीराम मत्त" के रूप में प्रख्यात हुए।
- **गायत्री के सिद्ध साधक** : जिन्होंने गायत्री और यज्ञ को रुढ़ियों और पाखण्ड से मुक्त कर जन-जन की उपासना का आधार तथा सद्बुद्धि एवं सतकर्म जागरण का माध्यम बनाया।
- **तपस्वी** : जिन्होंने गायत्री की कठोरतम साधना कर २४-२४ लाख के २४ महापुरश्चरण २४ वर्षों में सम्पन्न किया। प्रकृति प्रकोप को शांत कर अनिष्टों को टाला, सृजन सम्भावनाओं को साकार किया।
- **अखिल विश्व गायत्री परिवार के जनक** : जिन्होंने अपने जीवनकाल में ही अपने साथ करोड़ों लोगों को आत्मियता के सूत्र में बाँधकर विश्व व्यापी 'युग निर्माण परिवार' - 'गायत्री परिवार' का गठन किया।
- **समाज सुधारक** : जिन्होंने नारी जागरण, व्यसन मुक्ति, आदर्श विवाह, जाति-पाँति प्रथा तथा परंपरागत रुढ़ियों की समाप्ति हेतु अद्भुत प्रयास किए एवं एक आदर्श स्वरूप समाज में प्रस्तुत किया।
- **ऋषि परम्परा के उद्धारक** : जिन्होंने इस युग में महान ऋषियों की महान परंपराओं की पुनर्स्थापना की। लुप्तप्राय संस्कार परंपरा को पुनर्जीवित कर जन-जन को अवगत कराया।
- **अवतारी चेतना** : जिन्होंने "धरती पर स्वर्ग के अवतरण और मनुष्य में देवत्व के जागरण" की अवतारी घोषणा को अपना जीवन लक्ष्य बनाया और चेतना का ऐसा प्रवाह चलाया कि करोड़ों व्यक्ति उस ओर चल पड़े।

गायत्री परिवार जीवन जीने कि कला के, संस्कृति के आदर्श सिद्धांतों के आधार पर परिवार, समाज, राष्ट्र युग निर्माण करने वाले व्यक्तियों का संघ है। **वसुधैवकुटुम्बकम्** की मान्यता के आदर्श का अनुकरण करते हुये हमारी प्राचीन ऋषि परम्परा का विस्तार करने वाला समूह है गायत्री परिवार। एक संत, सुधारक, लेखक, दार्शनिक, आध्यात्मिक मार्गदर्शक और दूरदर्शी युगऋषि पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा स्थापित यह मिशन युग के परिवर्तन के लिए एक जन आंदोलन के रूप में उभरा है।